सुस्रस्रस्रस्रस्रस्रस्रस्रस्रस्र स्रम्भ स्रम् स्रम्य स्रम् स्रम्यस्य स्रम् स्रम् स्रम् स्रम् स्रम् स्रम् स्रम् स्रम् स

邓采证

KALRA SURRA

AND

ORIGINAL NIRYUKTI

OF

STHAVIR ARYA BHADRABAHU SWAMI

AND

A Bhashya by Shri Sanghadas Qani Kshamashramana thereon with a Commentary begun by Acharya Shri Malayagiri and Completed by Acharya Shri Kshemakirti.

Volume V

FOURTH AND FIFTH UDDESHAS

EDITED BY

GURU SHRI CHATURVIJAYA

AND HIS

SHISHYA PUNYAVIJAYA

THE FORMER BEING THE DISCIPLE OF

PRAVARTAKA SHRI KANTIVIJAYAJI

NYAYAMBHONIDHI SHRIMAD VIJAYANANDA SURIJI

1ST ACHARYA OF

BRIHAT TAPA GACHCHHA SAMVIGNA SHAKHA.

Publishers:-SHRI ATMANAND JAIN SABHA, BHAVNAGAR

Vir Samvat 2465 Copies 560 Atma Samvat 42
Vikrama Samvat 1994 A. D. 1938

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Mirnaya Sagar Press, 26-28, Rolbhat Street, Bombay.



Published by Vallabhadae Tribhuvandas Gandhi, Secretary, Shree Sain Atmananda Sabha, Bhavnagar. श्रीवात्मानन्द-जैनप्रन्थरसमालाया अष्टाशीतितमं रस्नम् (८८) स्यविर-आर्थभद्रबाहुस्वामिप्रणीतस्वोपज्ञनिर्युक्तयुपेतं

बृहत् कल्पसूत्रम्।

श्रीसङ्गदासगणिक्षमाश्रमणसूत्रितेन भाष्येणोपबृंहितम् ।

जैनागम-प्रकरणाद्यनेकप्रन्थातिगृहार्थप्रकटनप्रौडटीकाविधानसमुपलन्ध-'समर्थटीकाकारे'तिख्यातिभिः श्रीमक्क्रिमेल्यगिरिस्तरिभिः प्रारम्ध्या वृद्धपोद्यालिकतपागच्छीयैः श्रीक्षेमकीर्च्या-चार्यैः पूर्णीकृतया च वृत्त्या समलक्कृतम् ।

तस्यायं

पश्चमो विभागः

चतुर्थ-पञ्चमाबुदेशको ।

तत्सम्पादकौ---

सकलागमपरमार्थप्रपञ्चनप्रवीण-बृहत्तपागच्छान्तर्गतसंविद्यशाखीय—आद्याचार्य— न्यायाम्भोनिधि—श्रीमद्विजयानन्दसूरीश(प्रसिद्धनाम—श्रीआत्मारामजी— महाराज)शिष्यरत्नप्रवर्त्तक-श्रीमत्कान्तिविजयसुनिपुङ्गवानां

शिष्य-प्रशिष्यौ चतुरविजय-पुण्यविजयौ ।

प्रकाशं प्रापयित्री---

भावनगरस्था श्रीजैन-आत्मानन्दसभा ।

बीरसंवत् २४६५ | ईस्बी सन १९१८ |

प्रतयः ५००

विक्रमसंवत् १९९४

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां कोलभाटवीथ्यां २६–२८ तमे गृहे निर्णयसागर-मुद्रणालये रामचन्द्र येसु शेडगे-द्वारा मुद्रापितम्



प्रकाशितं च तत् ''बल्लभदास विभुवन<mark>दास</mark> गांधी, सेकेटरी श्रीआत्मानन्द जैन सभा, भावनगर'' इत्यनेन

बृहत्त्रपागःत्वास्त्रमतः सविद्यशास्त्रायः आरागार्थः स्यापाग्ममेरितिस्यः श्ली १५०४ श्ली स्वत्रपागस्य स्रोत यहः प्रतिष्टितः भारतस्यप्रणयः



28.45

HALL MAR

7

था १५५० थी विजयपद्मसीर संशिक्ष

भारतिक प्रशासक स्थापन स्थापन है। भारतिक प्रशासक स्थापन स्थापन है। सी

00

===



बह्रम-सबण-स्मग्णम

विश्वर्ता महाविश्वतिसमा, ज्ञान-तपोमृतिं, जेनशासनप्रभावक,
वृहत्तपोगच्छान्तर्गत संविश्वशास्त्रीय आद्याचार्य,
न्या या स्भो नि धि

श्री २००८ श्री विजयानन्द् सूर्गश्रुर प्रसिद्धनाम श्रीआत्मारामजी महाराजना विश्वमान्य, सुवर्णोज्वलनामधेय, पुनित पृष्ट्यर

आचार्य भगवान

धी १००८ श्री विजयवहा**म सुरिवरना**

चारित्रार्थशताब्दिरूप चारित्रसुवर्णोत्सवना पवित्र स्मरणमां सुवर्णालङ्कृत बृहत्करूपसृत्रतो पश्चम विभाग तेओश्रीना सुवर्णोज्वल सुकोमळ करकमलमां समर्पण करीए छीए.

संबत् १९९४ ज्येष्ठ बहि ९ ता २२-६-१९३८ पाटण

निवेदको⊸गुरु-जिल्य मुनि चतुरविजय-पुण्यविजय

बृहत्कल्पसूत्रपश्चमविभागसंशोधनकृते सङ्गृहीतानां

प्रतीनां सङ्केताः।

भा ० पत्तनस्वभाभाषाटकसत्कचित्कोशीया प्रतिः ।

अमदावादहेलाउपाश्रयभाण्डागारसःका पतिः ।

मो० पत्तनान्तर्गतमोंकामोदीमाण्डागारसत्का प्रतिः।

ले॰ पत्तनसागरगच्छोपाश्रयगतलेहेरुवकीलसत्कज्ञानकोशगता प्रतिः।

कां > प्रवर्तकश्रीमत्कान्तिविजयसत्का प्रतिः ।

ताम्० पत्तनीयश्रीसङ्घभाण्डागारसत्का ताडपत्रीया म्लस्त्रप्रतिः।

ताटी० पत्तनीयश्रीसङ्क्षभाण्डागारसत्का ताडपत्रीया टीकाप्रतिः ।

ताभा ० पत्तनीयश्रीसङ्कभाण्डागारसत्का ताडपत्रीया भाष्यप्रतिः ।

प्रकाश्यमानेऽस्मिन् क्रन्थेऽस्माभिर्थेऽशुद्धाः पाठाः प्रतिष्ट्यरूक्यासोऽस्मक्त्रयन्या संशोध्य () एताइ-मृषकोष्ठकान्तः स्मापिताः सन्ति, इत्थतां पृष्ठ १० पक्कि २६, ए० १७ पं ३०, ए० २५ पं० १२, ए० ३१ पं० १७, ए० १० पं० २४ इत्यादि । ये चात्माभिर्गीलताः पाठाः सम्भानितासे [] एताइकचतुरस्कोष्ठकान्तः परिपूरिताः सन्ति, इत्थतां पृष्ठ ३ पंकि ९, पृ० १५ पं० ६, ए० २८ पं० ५, ए० १९ पं० १६ इत्यादि ।

प्रकाश्यमानेऽस्मिन् घन्थे टीकाकृताऽस्माभिश्च निर्दिष्टानामवतरणानां

स्थानदर्शकाः सङ्केताः ।

अनुयो० आचा० श्रु० अ० उ० आव० हारि० वत्ती आव० नि० गा० } आव० निर्यु० गा० { आव० मृ० मा० गा० उ० सू० उत्त० अ० गा० ओघनि० गा० करपष्टद्वाप्य गा० चाणें जीत० भाग्राह तत्त्वार्ध ० दश० अ० उ० गा० दश० अ० गा० 🏻 दशब० अ० गा० दश० चू० गा० देवेन्द्र० गा० नाट्यशा० पश्चव० गा० पिण्डनि० गा० সহাত ঘৰ মহান ০ আ ০ मल० महानि० अ० विशे० गा०

विशेषचूर्णि

अनुयोगद्वारसूत्र आचाराङ्गस्त्र श्रुतस्कन्ध अध्ययन उद्देश आवश्यकसूत्र हारिभदीयवत्ती आवश्यकसूत्र निर्युक्ति गाथा आवश्यकसूत्र मृहभाष्य गाथा उद्देश सूत्र उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन गाथा ओघनिर्युक्ति गाथा बृहरकरूप बृहद्धाच्य गाथा बृहत्करूपचुर्णि जीतकस्पभाष्य गाथा तत्त्रार्थाधिगमसूत्राणि दशवैकालिकसूत्र अध्ययन उद्देश गाथा दश्वेकालिकसूत्र अध्ययन गाथा दशवैकालिकस्त्र चूलिका गाथा देवेन्द्र-नरकेन्द्रपकरणगत देवेन्द्रप्रकरण गाथा भरतनाट्यशास्त्रम् पञ्चवस्तुक गाथा पिण्डनिर्युक्ति गाथा प्रज्ञापनोपाङ्गसटीक पद पशमरति आर्था मलयगिरीया टीका महानिशीथसूत्र अध्ययन विशेषावश्यकमहाभाष्य गाथा **ब्**हत्करुपविशेषचूर्णि

च्य० भा० पी० गा० च्यव० उ० भा० गा० श० उ० भु० अ० उ० सिक् सिक् सिक् है० औ० स्० हैमाने० द्विस्प० व्यवहारसुत्रं भाष्य पीठिका गाधा व्यवहारसुत्र उदेश भाष्य गाधा शतक उदेश श्रुतंस्कन्य अध्ययन उदेश सिद्धहेंमशब्दानुंशासन सिद्धहेंमशब्दानुंशासन औणादिक सुत्र हैंगानेकार्यपहर द्विसरकाण्ड

यत्र टीकाक्ट्रिड्रमेन्याभिशानादिकं निर्दिष्टं स्वात् तत्रास्वाभित्रिक्षियितं श्रुतस्कन्य-अध्ययन-उद्देश-गायादिकं स्वानं तत्त्रक्रम्यसःकं ज्ञेयम्, यथा पृष्ठ १५ पं० ९ इत्यादि । यत्र च तत्नोक्षियतं भवेत् तत्र सामान्यतया स्वितमुद्देशादिकं स्वानमेतत्यकाद्यमानकृदत्करसस्त्रमम्यसस्त्रमेन ज्ञेयम्, यथा पृष्ठ २ पंक्ति २-३-४, पृ० ५ पं० ३, पृ० ८ पं० २७, पृ० ११ पं० २७, पृ० ६७ पं० १२ इत्यादि ।

त्रमाणत्वेनोद्धृतानां प्रमाणानां स्थानदर्शक-ग्रन्थानां प्रतिकृतयः ।

शेठ देवचन्द ठालमाई जैन पुस्तकोद्धार फंड सुरत । अनुयोगद्वारसूत्र---रतहाम श्रीत्ररपभदेवजी केशरीमलजी श्रेताम्बर संस्था । अनुयोगद्वारसूत्र चुर्णी---अनुयोगद्वारसूत्र सटीक { (मरुधारीया टीका) शेठ देवचन्द ठालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड सुरत । आगमोदय समिति । आचाराङ्गसूत्र सटीक---रतलाम श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था । आवश्यकसूत्र चूर्णी--आवश्यकसूत्र सटीक (श्रीमरूयगिरिकृत टीका) आगमोद्य समिति । आवश्यकसूत्र सटीक आगमोदय समिति । (आचार्य श्रीहरिभद्रकृत टीका) आवश्यक निर्युक्ति--आगमोदय समिति प्रकाशित हारिभद्रीय टीकागत । ओघनिर्युक्ति सटीक---आगमोद्य समिति करूपचूर्णि---हस्तलिखित । ,, करुपबृहद्भाप्य---करुपविशेषचूर्णि---करूप व्यवहार-निशीशसूत्राणि जैनसाहित्यसंशोधक समिति ।

जीवाजीवासिगमसूत्र सटीक---आगमोदब समिति । दश्वैकालिक निर्युक्ति टीका सह---(कल्पसूत्र) देवेन्द्रनरकेन्द्र प्रकरण सटीक ---नन्दीसूत्र सटीक (मरुयगिरिकृत टीका) নাঙ্গ্ৰহান্ধ্ৰদ্---निश्रीधचूर्णि---पिण्डनिर्युक्ति---प्रज्ञापनोपाङ्ग सटीक---बृहत्कर्मविपाक---महानिशीथसूत्र-राजप्रश्लीय सटीक---विपाकसूत्र सटीक---विशेषणवती---विद्रोषावश्यक सटीक-व्यवहारसूत्रनिर्युक्ति भाष्य टीका---सिद्धपासृत सटीक---सिद्धहेमशब्दानुशासन---सिद्धान्तविचार ---सत्रकृताङ्ग सटीक---स्थानाङ्गसूत्र सटीक 53

शेठ देवबन्द लालमाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड सुरत । शेठ देवचन्द लालमाई जैन पुलकोद्धार फंड सुरत । श्रीजैन आत्मानन्दसभा भावनगर । आगमोदय समिति । निर्णयसागर मेस मुंबई । हस्तिलिसित । शेठ देवचन्द ठालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड सरत। आगमोदय समिति । श्रीजैन आत्मानन्द सभा भावनगर । हस्तलिखित । आगमोदय समिति । रतलाम श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था । श्रीयशोविजय जैन पाठशाला बनारस । श्रीमाणेकमुनिजी सम्पादित । श्रीजैन आत्मानन्द सभा भावनगर । रोठ मनसुन्वभाई भगुभाई अमदाबाद । ं हस्तिलिखित । आगमोदय समिति ।

॥ अईम् ॥

मासंगिक निवेदन ।

निर्वुक्ति-भाष्य-वृक्तिसहित बृहत्कल्यसूत्रना आ अगाउ अमे चार विभाग प्रसिद्ध करी कृत्या छीए। आजे एनो पांचमो विभाग प्रसिद्ध करवामां आवे छे। आ विभागमां बृहत्कल्यसूत्रना चोथा पांचमा उदेशानी समावेश करवामां आव्यो छे। आ विभागती समाप्ति साथे प्रस्तुत प्रन्थना मनाता ४२६०० स्रोक प्रमाण पैकी छगभग ४०००० स्रोक सुत्रीनो अंश समाप्त थाय छे।

प्रस्तुत विभागना संशोधनमां, चोधा विभागना ''प्रासङ्गिक निवेदन"मां जणावेळ हृतीयखंडनी छ प्रतिओ उपरांत मो० छे० प्रतिना चतुर्थखंडनी प्रतिओनो पण अमे उपयोग कर्यो छे, जेनो परिचय आ नीचे आपवामां आवे छे।

चतुर्थखंडनी मो० ले० प्रतिओ

१ मो॰ प्रति—आ प्रति पाटण-सागरगच्छता उपाश्रयमां रहेला शैठ मोंका मोदीना ज्ञानभंडारनी छे। एना पानां ८२ छे। दरेक पानानी पृठीदीठ सत्तर सत्तर लीटीओ छे अने ए दरेक लीटीमां ६९-७६ अक्षरो छे। प्रतिनी लंबाई १३॥॥ इंचनी अने पहोळाई ५। इंचनी छे। प्रतिना लंबानी पुण्यका आदि कर्युय नयी; ते अने पहोळाई ५। इंचनी छे। प्रतिना लंबानी पुण्यका आदि कर्युय नयी; ते लतां आ अंय एक ज लेखकना हाथे लखाएल होई तेना पहेला बीना खंडो अनुक्रमें संवत १५०६-७५ मां लखाएला होवाथी आ चोथो खंड संवत १५०५-७६ मां लखाएल होताथी आ चोथो खंड संवत १५०५-७६ मां लखाएल होताथी आ चोथो खंड संवत १५०५ ना अपाड महिनामां पूर्ण कर्यों छे अने त्या मीता संवेद संवत १५०५ ना भावता महिनामां मां पूर्ण कर्यों छे अने लखके आ ज गतिए प्रस्तुत प्रत्यना प्रतानामां स्वाम कर्यों छे, एटले जो लखके आ ज गतिए प्रस्तुत मच्याना त्रीजा चोथा खंडो लख्या होय तो संभव छे के-आ त्रीजा चोथा खंडो अनुक्रमें संवत १५०५-७६ मां लखाएला होवा जोइए। आ प्रति जीणंप्राय स्थितिमां छे। प्रति मीदीना भंडारनी होई एनी अमे मी० संक्षा राखी छे।

२ हैं ० प्रति —आ प्रति पाटण-सागरगच्छना उपाश्रयमां रहेला होहे ह वकीलना झानभंडारनी छे। एतां पानां ७७ छे। दरेक पानानी पूटीवीठ सत्तर सत्तर हीटीओ छे अने दरेक हीटीमां ७४-७९ अखरो छे। प्रतिनी छंबाई १३ इंबनी का प्रांथ एक ज टेसकना हाये प्रतिना अंतमां टेसकनी पुष्पिका वगेरे कहां व नधी; ते छतां आ प्रंथ एक ज टेसकना हाये छताएळ होई तेनो प्रथमखंड संबत १५७८ ना आसो मासमां छताएळ होवाथी बाकीना बीजा खंडो ते पछीना वर्षमां छताएळा छे एमां टेझ पण शंकाने स्थान नथी। प्रतिनी स्थिति जीणींगय छे। प्रति होहेह वकीळना भंडारनी होई एनी अमे हे० संझा राखी छे।

आ बन्ने य प्रतिओ असे उपरोक्त संडारोनी संरक्षक देमचन्द्रसभा द्वारा मेळवी छै। प्रतिओनी समिषियमता

प्रस्तुत प्रन्थना प्रसिद्ध करवामां आवेला चार विभागोमां इस्तलिखित प्रतिओनी समविषमताने अंगे अमे जे इकीकत जणावी छे ते करतां आ विभागमां एने अंगे अमारे जुदुं ज कहेवानुं छे। पहेला चार विभागोमां संशोधनमाटे एकठी करेल प्रतो जुदा जदा पाठभेदबाळी होई चार वर्गमां वहेंचाई जती हती, ज्यारे प्रस्तुत विभागथी शरू करी प्रन्थ-समाप्ति पर्यंत ए वर्गभेद दर थइ जई बधीये प्रतिओ मात्र वे वर्गमां वहेंचाई गइ छे-एक वर्ग ताटी मो े ले भा े हे । प्रतिओनो अने बीजो वर्ग कां । प्रतिनो । पहेला वर्गनी प्रतिओ आपसमां क्यारेक क्यारेक जुदी पड़ी जाय छे, तेम छतां पहेला त्रण चहेजामां आ प्रतिओ पाठभेदना विषयमां जे प्रकारनं समविषम बलण धरावती हती तेवं आ विभागथी नथी रक्षां। आ विभागथी पाठभेदमाटे जदं वलण फक्त **कां०** प्रति ज घरावे छे। आमां घणे ठेकाणे पंक्तिओनी पंक्तिओ अने टीकानी टीकाना अंशो पाठ-भेदबाळा तेमज वधारेना छे। आ दरेक पाठभेदो अने वधाराना अंशोने अमे ते ते ठेकाणे टिप्पणमां आप्या छे । कचित कचित निरर्थक जणाता पाठभेदोनी उपेक्षा पण करी छे. तेम छतां मोटे भागे पाठभेद आदिनी नोंध लेवा माटे अमे अप्रमत्त ज रह्या छीए। आ बधा उमेरेला अने परिवर्त्तित पाठभेदो पैकी जे पाठो अमने महत्त्वना लाग्या छे तेमने अमें मळमां दाखल कर्या है अने बीजी प्रतिना पाठोने दिप्पणमां आप्या है. पण आवं कोई विरल विरल प्रसंगे ज बनवा पाम्यं छे। कां० प्रतिमां जे बधारानी पंक्तिओ अने टीकाअंशो छे ते मोटे भागे एवा छे के जेनं ग्रन्थकारे पहेलां अनेकवार ज्याख्यान करी दीधं छे। केटलाक उमेराओ लिंग-बचन-विभक्तिना फेरफारनी सचनाविषयक हे तो केट-लाक उमेराओ गाथामां आवता च वा तू अपि आदि अञ्ययोनी अर्थसचनाविषयक है: केटलाक उमेराओं गाथा आदिनी प्रतीकना उमेराने लगता हो तो केटलाक उमेराओ अग्रक शब्दोने स्पष्ट रीते समजाववामाटे समानार्थक अब्दना उमेराने लगता हो । आ बधी वस्तु टीकाकारे प्रस्तुत प्रन्थना व्याख्यानमां सेंकडो वस्त्रत कही दीघेल होवाथी कां० प्रतिमांना उपरोक्त उमेराओनुं कछुं ज महत्त्व रहेतुं नथी। तेमज आ पाठोने अमारा पासेनी ताडपत्रीय वगेरे प्राचीनतम टीकाप्रतिओनो अने चृषिं-विशेषचर्णिनो पण टेको नथी, ए कारणथी अमे आ बधा पाठभेदोनी नोंध टिप्पणमां लेवातुं उचित मान्युं छे।

अंतमां अमे पटली आशा राखीए छीए के प्रस्तुत संशोधनमां तेम ज पाठभेदोनी नोंध लेबामां अमे अतिवणी काळजी राखी छे ते छतां आ संबंधमां अमारी स्खलना जणाय तो विद्वान् बाचको क्षमा करे।

> निवेदक-गुरु-शिष्य मुनि चतुरविजय-पुण्यविजय

॥ अर्हम् ॥

चतुर्थोदेशकप्रकृतानामनुकमः ।

		400	760		
सूत्रम्	प्रकृतनाम	ष्ट्रधम्	सूत्रम्	प्रकृतनाम	पृष्ठम्
ę	अनुद्धातिकप्रकृतम्	१३०७	२०-२८	गैणान्तरोपसम्पत्प्रकृतम्	१४२४
२	पाराश्चिकप्रकृतम्	१३२९	२९	विष्वग्भवनप्रकृतम्	१४५८
3	अनवस्थाप्यप्रकृतम्	१३४९	30	अधिकरणप्रकृतम्	१४७३
४–९	प्रज्ञाजनादिप्रकृतम्	१३६७	३ १	परिहारिकश्रकृतम्	१४८०
99-09	वाचनाप्रकृतम्	१३८१	32-33	महानदीशकृतम्	१४८७
१२–१३	संज्ञाप्यप्रकृतम्	१३८४	, , , , ,	उंपाश्रयविधिप्रकृतम्	१४९८
१४–१५	ग्लानप्रकृतम्	१३९२	48-40		
१६-१७	कालक्षेत्रातिकान्त-		१ प्रकृत	मिदं उपसम्पत्प्रकृतम्	इत्यनेन
	प्रकृतम्	१३९९	नामाऽप्युच्ये	त ॥	
१८	अनेषणीयप्रकृतम्	१४१२	২ লগ	मुळे यद्यपि उपाश्चयप्रव	हतम् इ ति
१ ९	कल्पश्चिताकल्पश्चित-		मुद्रितं तथार्ग	पे तत्र उपाभयविधिमक्	तम् इति
	प्रकृतम्	१४१७	हेयम् ॥		

पश्चमोद्देशकप्रकृतानामनुक्रमः।

स्त्रम्	प्रकृतमा म	पृष्ठम्	स्त्रम्	प्रकृतनाम	ष्ट्रष्टम्
१–४	ब्रह्मापायप्रकृतम्	१५०३	१२	पानकविधिप्रकृतम्	१५५५
4	अधिकरणप्रकृतम्	१५१३	१३-३६	ब्रह्मरक्षात्रकृतम्	१५६०
Ę- S	संस्कृतनिर्विचिकित्स-		३७	मोकप्रकृतम्	१५७८
	प्रकृतम्	१५२४	₹८-४०	परिवासितप्रकृतम्	१५८३
१०	उद्गारप्रकृतम्	१५३७	४१	व्य वहारप्रकृ तम्	१५९२
88	आहारविधिप्रकृतम्	१५४६	४२	पुलाकभक्तप्रकृतम्	१५९५

॥ अहम् ॥

बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुऋम ।

चतुर्थ उद्देश ।				
गाथा	विषय	पत्र		
४८७७–४९ ६	८ अनुद्धातिकप्रकृत सूत्र १	१३०७–२९		
	१ हस्तकर्म, २ मैथुन अने ३ रात्रिभोजन ए त्रण स्थानो अनुद्धातिक अर्थात् गुरुप्रायश्चित्तने योग्य छे			
४८७७-८१	चतुर्थ उद्देशनो अने चतुर्थ उद्देश प्रथम सूत्रनो			
	रृ तीय उद्देश साथे मेळ-संबन्ध	१३०७-८		
	अनुद्धातिकसूत्रनी व्याख्या	१३०८		
४८८२-८९	'एक' अने 'त्रिक'पदना निश्लेपो	१३०८-१०		
४८५०–९३	'चद्वात' अने 'अनुद्वात' पदना निश्लेपो	१३१०-११		
४८९४	अनुद्वातिकप्रायश्चित्तने योग्य त्रण स्थानो	१३११		
४८९५–४९४०	१ इस्तकर्मनुं खरूप	१३११–२२		
४८९५–९६	'इस्त'पदनानिक्षेपो	१३११		
४८९७-४९४०	'कर्म'पदना निक्षेपो	१३१२-२२		
४८९७	द्रव्यकर्मनुं स्वरूप	१३१२		
४८९८	भावकर्मना संक्षिष्ट असंक्षिष्ट वे भेदी	१३१२		
४८९९–४९ ११	असंक्रिष्ट भावहस्तकर्मना १ छेदन २ भेदन			
	३ घर्षण ४ पेषण ५ अभिघात ६ स्नेह ७ काय			
	८ आर ए आठ प्रकारो, तेनुं स्वरूप अने तेने			
	लगता दोषो अने अपवादो	१ ३१२-१ ५		
४९१२–४०	संक्रिष्ट भावहस्तकर्मना प्रकारो	१३१५–२२		
४९१२	संक्षिष्ठहस्तकर्मना प्रकारो	१३१५		
४९१३–१४	वसतिविषयक संक्षिष्टहस्तकर्मना प्रकारो	१३१५		
४९१५–१९	वसतिविषयक रूपरोषनुं खरूप, रूपना सचित्त			
	अचित्त वे प्रकारो, तेने छगता दोषो अमे			
	प्रायश्चित्तो	१३१५-१७		

	वृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनी विषयानुकम ।	**
गाया	विषय	47
	[गाथा ४९१५—मादलिप्ताचार्ये विद्यावडे बना- बेळी राजकन्यकाउं ख्दाहरण]	
४९२०—३०	वसतिविषयक विस्तरदोषनुं स्वरूप, साधुनी वस- तिमां वेत्रयास्त्री, सस्त्रीकपुरुष वगेरे पेसी जाय तेमने बहार काढवाने छगती यतनाओं अने	
	अपवादो	१३१७—१९
11030 N	[गाथा ४९२५—श्रीगृहतुं उदाहरण]	
४९३१–४०	हस्तकर्मविषयक प्रायश्चित्तो	१३१९२२
<i>8688-40</i>	२ मैथुनतुं स्वरूप	१ ३ २२–२७
४ ९४ १–४ २	देव, मतुष्य अने तिर्यंच संबंधी मैधुन	१३२२
8	प्राणातिपात-पिडविशुद्धि आदि मूलगुण-उत्तरगुणने लगतां दरेक अपबादस्थानोमां प्रायक्षित्तनो निषेध करवामां आवे छे ते छतां मैथुनविषयक अपबाद-स्थानोमां प्रायक्षित्त केम आपवामां आवे छे ? तेने लगती शिच्यनो शंका अने ते सामे आवार्यनो उत्तर. अशीन जैनशासनमां मैथुनभाव रागद्वेपविर-हित न होवाने कारणे तेमां अपवाद ज नथी किन्तु गीताधीदि कारणवशात् जयणापूर्वक जे प्रतिसेवा करे छे तेना अपपाध्याननी लघु गुरु बुलना करीने प्रायक्षित्तस्थानोमां हानि-वृद्धि करवामां आवे छे [गाथा ४९४३—दिर्गका अने कल्पिका प्रतिसेवाहं स्वरूप]	१३ २२-२३
४९४८–६०	मैधुनविषयक प्रायक्षित्तस्थानोमां हानि दृद्धि अर्थात् ओडा-बत्तापणुं केम थाय छे १ तेत्रुं निर्वेशीय राजा अने दुकाळमां एक क्षेत्रमां वृद्धवास रहेल स्थविर	
	आचार्यना क्षुक्रुक शिष्यना दृष्टान्तद्वारा समर्थन	१३२४–२७
8646-88	३ रात्रिभोजनतुं खरूप	१३२७–२९
	रात्रिभोजन, तेने लगता अपवादो, यतनाओ अने प्रायश्चित्तोत्तुं निरूपण	

व्यक्ति	विषय -	पञ
४९६९–५०५	७ पाराज्ञिकप्रकृत सूत्र २	१३२९-४९
	१ दुष्ट २ प्रमत्त अने ३ अन्योन्यकारक ए श्रण	
	पाराश्चिक शायश्चित्तने योग्य छे	
89 ६९ –७०	पाराश्चिकप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	१३२९
,	पाराश्चिकसूत्रनी व्याख्या	१३३०
४९७१	'पाराञ्चिक'पदनी व्युत्पत्ति अने शब्दार्थ	१३३०
४९७२७४	पाराक्रिकना आशातनापाराक्रिक अने प्रतिसेवना-	
	पाराख्रिक ए वे प्रकारो, तेमना सचारित्रि-अचारि-	
	त्रिपणातुं स्वरूप अने परिणामनी विविधताने लई	
-	अपराधनी विविधता	१३३०
४९७५-८४	१ आशातनापाराश्चिकतुं स्ररूप	१३३०–३२
	१ तीर्थंकर २ प्रवचन ३ ध्रुत ४ आचार्य	
	५ गणधर अने ६ महर्द्धिक, ए छनी आज्ञातनानुं	
	स्वरूप अने तेने छगतां प्रायश्चित्तो	
४९८५-५०२६	२ प्रतिसेवनापाराश्चिकनुं स्वरूप	१३३२-४२
४९८५	प्रतिसेवनापाराश्चिकना १ दुष्ट २ प्रमत्त अने	
	३ अन्योन्यकारक ए त्रण प्रकारो	१३३२
४९८६–५०१५	१ दुष्टपाराश्चिकनुं स्वरूप	१३३२–३९
४९८६–५००५		१३३२—३७
४९८६	दुष्टपाराश्चिकना कषायदुष्ट अने विषयदुष्ट ए वे	
	प्रकारो अने कषायदुष्टनी स्वपक्षदुष्ट-परपक्षदुष्टपद-	
004 03	हारा चतुर्भगी	१३३२
86 ८ ० -6 ई	स्वपक्षकषायदुष्टतुं स्वरूप अने तेने छगता १ सर्व-	
	पनाल २ मुखानंतक ३ उल्काक्ष अने ४ शिख-	
8 ९९ ४–९७	रिणी ए चार दृष्टान्तो परपक्षकषायदुष्टादिनुं स्वरूप	१३३३–३४
8996-4004		१३३४-३५
- 110-7004	कपायतुष्टना वर्णनप्रसंगे सर्वपनालावि दृष्टान्तोमां दर्शावेला दोषोनो प्रसंग न आवे तेमाटे आहारादिना	
	निमंत्रण अने महणने लगती आचार्योष स्थापेली	
	सामाचारी अने ते रीते न बर्त्तवाधी लागता दोषो	
	कार्या विकास कर्मा विकास व	१३३५-३७

बृहत्कस्पस्त्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।	74
विषय	पत्र
२ विषयदुष्टपाराश्चिकतुं स्वरूप	98-28
विषयदुष्टपाराश्चिकती स्वपक्ष-परपक्षदुष्टपदृद्वारा	
चतुर्भंगी, तेने छगतां उपाश्रयपाराभिक, इस-	
पाराश्चिक, निवेशनपारा०, पाटकपारा०, श्वाखा-	
पा॰, ग्रामपा॰, देशपा॰, राज्यपा॰, कुलपा॰,	
गणपा॰, संघपाराञ्चिक आदि पाराञ्चिक प्राय-	
श्चित्तो, तेना दोषो अने विषयदुष्टने क्यांथी क्यांथी	
पाराख्रिक करनो तेनुं निरूपण	
२ प्रमत्तपाराश्चिकतुं स्वरूप	१३३९-४२
पांच प्रमाद पैकी प्रस्तुतमां 'प्रमाद'पदथी स्त्यानार्डी-	
निद्रानो अधिकार	6 5 5 8
स्यानर्द्धिप्रमत्तपाराश्चिकने लगतां १ पुद्गल २ मोदक	
३ फरुसक-कुंभार ४ दन्त ५ वटशालामंजन ए	
पांच रष्टान्तो अने तेने लिंगपाराश्चिक करवामाटेनो	
तथा तेने परित्याग करवामाटेनो विधि	१३३९-४२
३ अन्योन्यकारकपाराश्चिकन्तं स्वरूप	१३४२
अन्योन्यकारकतुं स्त्रहर अने तेने अंगे लिङ्गपारां-	
चिक प्रायश्चित्त	
पाराश्चिकनं खरूप	१३४२-४९
दुष्ट, प्रमत्त अने अन्योन्यसेवी पैकी कोने कया	
प्रकारनुं पाराख्रिक प्रायश्चित्त आपवामां आवे छे	
तेनुं वर्णन	
उपाश्रय-कुल-निवेशनादिपाराश्चिक तथा लिक्कपारा-	
क्चिकप्रायश्चित्तने योग्य अपराधी	१३ ४२

तपःपाराश्चिकतुं स्वरूप अने तेने योग्य व्यक्तिना

कालपाराञ्चिकनो स्वगणमांथी नीकळवानो विधि

कालपाराश्चिकनुं स्वरूप

काळपाराख्रिकनी काळमर्यादा

अने परगणमां जवानां कारणी

गुणोनुं कथन

१३४२-४३

१३४३-४९

88-488

8888

गावा ५००६-१५

५०१६–२४ ५०१६ ५०१५–२४

4074-78

9079-99

4020

4026-38

५०३२-५७

9032

4033-38

बृह्कस्पसूत्र	पंचम	विभागनो	विषयानुक्रम	١	
---------------	------	---------	-------------	---	--

14	बृहकल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयासुकम ।	
गाथा	विषय	पश्र
4034	कालपाराश्चिकनी सामाचारी	१३४४
५०३६–४४	कालपाराश्चिक जे आचार्यनी निश्रामां रही प्रायश्चित्त	
	करे ते आचार्ये ते कालपाराश्विक प्रत्ये केम वर्त्तवुं ?	
	बाचना-प्रच्छना आदि जेवां महत्त्वनां कार्योने छोडीने पण कालपाराक्किकनी खबर लेवी, तेनी	
	तबीयत नरम होय त्यारे तेनी स्वयं सेवा शुश्रूपा	
	करवी, कारणवश पोते जह शके तेम न होय त्यारे	
	पोताने बदले ते कालपाराश्चिकनी खबर लेवा	
	उपाध्याय अगर गीतार्थने मोकलवो इत्यादिने	
	लगती सामाचारी	१३४४–४६
4084-40	कालपाराश्चिक समर्थ होय तो राजा वगेरे तरफथी	
	थता उपद्रवने टाळे अने तेना बदलामां राजानी	
	भलामणयी अथवा पोतानी इच्छाथी श्रीसंघ ते	
	कालपाराख्रिकनी कालमर्थादामां घटाडो करे	
	अथवा तेने सदंतर माफ करे तो ते कालपाराञ्चिक निर्दोष गणाय	
	निद्रिष गणाय	१३४६–४९
५०५८–५१३	७ अनवस्थाप्यप्रकृत सूत्र ३	१३४९–६७
	अनवस्थाप्यप्रायश्चित्तने योग्य त्रण स्थानी-साध-	
	र्मिकसौन्य, अन्यधार्मिकसौन्य अने हस्ताताल	
५०५८	अनवस्थाप्यप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	१३४९
	अनवस्थाप्यसूत्रनी व्यारूपा	१३४९
	अनवस्थाप्यसूत्रनी विस्तृत व्याख्या	१३४५–६७
५०५९	भनवस्थाप्यना आशातनाअनवस्थाप्य अने प्रति-	
6080-89	सेवनाअनवस्थाप्यादि प्रकारो	१३५०
५०६०–६१	१ आशातनाअनवस्थाप्यनुं स्वरूप आशातनाअनवस्थाप्यना तीर्थकराशातनादि छ	१३५०
	आशातनाअनवस्थाप्यना तीर्थकराशातनादि छ प्रकारो अने तेने लगतां प्रायश्चित्तो	
५०६२-५१२३	२ प्रतिसेवनाअनवस्थाप्यनुं स्वस्प	936
4052	प्रतिसेवनाअनवस्थाप्यना माधर्मिकस्तैन्यकारी अन्य-	१३५०-६४
•	धार्मिकसैन्यकारी अने इस्तातालदायी ए त्रण प्रकारो	१३५०

	बृहत्क ल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयातुकम्।	6*
आंग्री	विषय	पत्र
५०६६-८७	१ साधर्मिकसौन्यनुं स्वरूप	१३५०-५६
५०६३	साधर्मिकसैन्यविषयक द्वारगाथा	१३५०
4 048-40	१ साधर्मिकोपधिसौन्यद्वार	१३५०–५१
	साधर्मिकना साधारण के कींमती वस-पात्रादि उपिथना अपहरणधी आचार्यादिने उग्गतां प्रायक्षित्ती	
५०६८	२ व्यापारणाद्वार गुरुओए गच्छादिकने माटे उपधि लेवा सोकलेखा श्रमणो अथवचमां गुरुने जणाव्या सिवाय उपधि लड् ले तेने लगतां प्रायक्षित्तो	१३५ ₹
હ્ય ∘ દ્દ ९–७ १	३ ध्यामनाद्वार उपिथ बळी गइ होय अथवा न बळी गइ होय ते छतां उपिथ बळी गयाने बहाने छोभ बझ धईं उत्कृष्ट उपिथ आदि छावे अने ते बातनी गृहस्थ आदिने स्वबर पडे तेने लगतां प्रायक्षितो	१३५२
५०४२	४ प्रस्तापनाद्वार कोई आचार्यादिए कोई साधु साथे बीजा आचा- र्यादिने आपवामाटे उपकरण मोकल्युं होय तेने ते पोते ज बचमां ठइ ले तेने लगतां प्रायश्चित्तो	१३५३
५०७३-८४	५ शेक्षद्वार	१३५३–५६
•	ससहायक असहायक शैक्ष-शैक्षिकाना अपहारना प्रकारो, तेने छगतां प्रायक्षिको, दोषो तथा शैक्षा- पहारने छगतो अपबाद	•
५०८५-८७	६ आहारविभिद्वार आहारविषयक साधर्मिकसौन्यना प्रकारो अने तद्विषयक प्रायक्षित्त	१३५६
५०८८-५१०२	२ अन्यधार्मिकसैन्यनुं स्वरूप	१३५६-५९
	आहार, उपधि, सचित्त एटले शिष्य-शिष्या-	٠, ١
٠.	विषयक प्रवाजितअन्यधार्मिकस्तैन्य अने गृहस्य-	
u ع	अन्यधार्भिकसैन्यनुं स्वरूप, तेने छगतां प्रायश्चित्तो अने अपवादो	Y = (1 + 1)

१८	बृ हत्कस्पसूत्र	पंचम	विभागनो	विषयानुक्रम	ł
• •	•				

माथा	विषय	पश्र
५१०३-१ ९	१ इस्तातालनुं खरूप	१३५९-६३
4903	हस्ताताल, हस्तालंब अने अर्थादान ए त्रण पाठ-	
	भेदवाळां पदी	१३५९
५१०४-११	१ इस्तातालनुं स्वरूप, तेने लगतां प्रायश्चित्तो अने	
	अपवादो	१३६०–६२
4884-83	२ हसाउंबतुं स्वरूप	१३६२
4868 -68	३ अर्थादाननुं स्वरूप अने ते समजाववामादे	
	अवसम् आचार्यतं दृष्टान्त	१३६२-६३
५१२०–२८	साधर्भिकलैन्यकारी आदि प्रतिसेवनाअनवस्थाप्य	
	आचार्यादिने छगतो प्रायश्चित्तनो विभाग	१३६४–६५
५१२९–३७	अनवस्थाप्यप्रायश्चित्तने योग्य व्यक्तिना गुणो, तेने	
	हरातो विधि अने तेनी सामाचारी	१३६६-६७
५१३८-९६	प्रवाजनादिप्रकृत सूत्र ४–९	१३६७-८१
4886-69	४ प्रवाजनासूत्र	१३६७-८०
	पंडक, वातिक अने छीव ए त्रण प्रव्रज्याने अयोग्य छे	
५१३८	प्रत्राजनादिप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१३६७
	पत्राजनासूत्रनी व्याख्या	१३६७
4838	प्रव्राजनासूत्रमां अधिकार	१३६८
५१४०-४३	प्रवाजनानो विधि	१३६८
	दीक्षाठेनारनी परीक्षानो-पृछगाछ करवानो विधि	
	अने एथी विपरीत रीते दीक्षा आपनार आचार्यने	
	प्रायश्चित्तादि	
५१४४–६३	१ पंडकनुं स्वरूप	१३६९-७३
4 888-86	पंडकनां सामान्य लक्षणो	१३६९-७०
५१४९–६ ३	पंडकना प्रकारो	१३७०-७३
4888	पंडकना भेदो	१३७०
ष्१५०-५१	दूषितपंडक अने तेना आसिक्त उपसिक्त ए वे	
	प्रकारनुं स्वरू प	१३७०

	बृहत्कस्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।	88
गाथा	विषय	यत्र
५१५२ -५६	वपचातपंडकना पहेला भेद चेदोपचातपंडकमुं सक्य अने ते विषे हेमकुमार्तुं उदाहरण तथा बीजा भेद वपकरणोपचातपंडकमुं सक्य अने ते विषे एक जन्ममां पुरुष, सी, नयुंसक एम त्रण वेदनो अनुभव करनार क्रिएनुं दृष्टान्त	१३ ७०-७२
५१५७–६३	अजाणपणे पंडकने दीक्षा अपाइ होय तेने ओळ- खवानी रीत, तेनी चेष्टाओ तेम ज एवाने जाण्या पछी राखवापी लागता दोषो	१३७२-७३
५१६४	२ ह्रीवनुं स्वरूप	१३७३
५१६ ५	३ वातिकनं स्वरूप	१३७४
५१६६–६७ ५१६८–७१	तबनिक्तुं दृष्टान्य कुंमी, ईप्योञ्ज, राकुनी, तत्कर्मसेवी, पाश्चिका- पाश्चिक, सौगन्यिक, आसिक्त, वर्षित, विप्तित आदि नपुंसकोतुं स्वरूप जेम की-पुरुषो झान, ध्यान, साध्याय, तपस्या आदि द्वारा विकारोने रोके छे तेम नपुंसको पण विकारोने रोकी शके ते छतां नपुंसकमादे प्रवच्यानो निषेध केम करवामां आवे छेए जातनी शिष्यनी श्रंका अने	१३७४
५१ ७२–८९	आवार्यनो उत्तर अने ते प्रसंगे बस्सआग्रनुं दृष्टान्त अपवादपदे पंढकादिने प्रवच्या आपवामां आवे तारे तेने केवो देव आदि आपवी, केवी रीते सायु-सामावारी शीलववी, सूत्राविनो अभ्यास केम कराववो हेने वेच आदिनो त्याग केम कराववो हुत्यादिने लगती सामावारी	१३७६ १३७६-८०
५१९०-२ ६	५-९ सुंडापनादिसुझ पंडक, बातिक अने डीव ए जेम प्रज्ञाजनाने मादे जयोग्य छे तेम ग्रंडन, शिक्षा, उपस्थापना, एक- मंडलीमां भोजन अने साथे रहवाने मादे पण अकस्पिक छे	{\$60-6{

**	Secretaly san landing casallant	
वावा	विषय	पत्र
<i>५१९७</i> –५२	९० वाचनाप्रकृत सूत्र १०-११	१३८१–८४
	अविनीत, विक्वतिप्रतिबद्ध अने अन्यवशमितप्राप्तत ए त्रण बाचनाने अयोग्य छे अने विनीत, विक्वति- बर्जी तेमज उपशान्तकषाय ए त्रण तेने योग्य छे	
५१९७–९८	बाचनाप्रकृतनो पूर्वसूत्रसाथे सम्बन्ध	१३८१
	१०११ वाचनासूत्रनी व्याख्या	१३८२
4899 .	अविनीत, विकृतिभोजी अने कषायवानने वाचना	
	आपवाने लगतां प्रायश्चित्तो	१३८२
५२००	अविनीतादि त्रण पदनी अष्टमंगी	१३८२
५२०१–१ ० -	अविनीतादिने वाचना आपवाधी छागता दोषो अने तेने छगतो अपवाद [गाषा ५२०७—'अञ्चवझानितप्राभृत' पदनी ज्याख्या]	१३८२–८४
५२११ –३५	संज्ञाप्यप्रकृत सूत्र १२-१३	१३ ८४–९२
५२११–३५ ५२११–३३	१२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र	
५ २११-३३ 		१३८४-९१ १३८४-९१
•	१२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र दुष्ट, मृद अने ज्युद्राहित ए त्रण उपदेश प्रत्रज्या	
५२११-३३ ५२११	१२ दुःसंज्ञाच्य सूत्र इष्ट, सृद अने ज्युद्धादित ए त्रण उपदेश प्रत्रच्या आदिना अनिधकारी छे संज्ञाच्यम्बन्तनो पूर्वसूत्र माये संबन्ध दुःसंज्ञाच्यसूत्रनी ज्याख्या	8358 8358
५ २११-३३ 	१२ दुःसंज्ञाच्य सूत्र इष्ट, सृद अने ज्युद्धादित ए त्रण ज्यदेश प्रत्रच्या आदिना अनिधकारी छे संज्ञाच्यम्हतनो पूर्वसूत्र माथे संबन्ध दुःसंज्ञाच्यसूत्रजनी ज्याख्या इःसंज्ञाच्यम् जनी ज्याख्या इःसंज्ञाच्यम् इष्ट, सृद अने ज्युद्धादित ए त्रण	१३८४ – ९१
4288-22 4288 4288-22	१२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र इ.ट. मृद अने ज्युद्धाहित ए त्रण उपदेश प्रत्रच्या आदिना अनिधकारी छे संज्ञाप्यम्बन्तनो पूर्वसूत्र माथे संबन्ध दुःसंज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या इ.संज्ञाप्यसूत्रजनी ज्याख्या इ.संज्ञाप्यम् इ.ट. मृद अने ज्युद्धाहित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी	8358 8358
4288-22 4288 4288-22 4288-22	१२ दुःसंज्ञाप्य सूत्र इ.ट. सृत अने न्युद्धाहित ए त्रण उपदेश प्रत्रच्या आदिना अनिधकारी छे संज्ञाप्यस्त्रकानो पूर्वसूत्र माथे संबन्ध दुःसंज्ञाप्यस्त्रजनी ज्याख्या इ.संज्ञाप्यस्त्रजनी ज्याख्या इ.संज्ञाप्यस्त्रजनी ज्याख्या इ.संज्ञाप्यन इ.ट. सृत अने न्युद्धाहित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी मृद्धनुं स्रक्रप	१३८४ -९१ १३८४ १३८५
4288 4288 4288-28 4288-22 4288	१६ दुःसंज्ञाप्य सूत्र इष्ट, मृत अने व्युद्धाहित ए त्रण उपदेश प्रत्रत्या आदिना अनिधकारी हे संज्ञाप्यम्कतनो पूर्वसूत माथे संबन्ध दुःसंज्ञाप्यस्त्रत्रत्री व्याख्या इःसंज्ञाप्या इह, मृत अने व्युद्धाहित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी मृद्धं संकर्प मृद्धं संकर्प मृद्धं संकर्प	१३८४ - ९१ १३८४ १३८५ १३८५
4288 4288 4288-83 4288-22 4288 4288	१६ इ.संक्षाप्य सूत्र इष्ट, मृह अने व्युद्धाहित ए त्रण उपदेश प्रत्रत्या आदिना अनिधकारी हे संज्ञाप्यमुक्तनो पृर्वसूत्र माथे संबन्ध दु:संज्ञाप्यस्त्रत्यनी व्याख्या इ:संज्ञाप्यम् इष्ट, गृह अने व्युद्धाहित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी मृह्युं स्वरूप 'मृह पदनो आठ प्रकारे निक्षेप इन्यमुह्युं स्वरूप अने ते विषे षृटिकाबोद्वर्यं दृष्टाप्त	१३८४-९१ १३८४ १३८५ १३८५ १३८५
4288 4288 4288-28 4288-22 4288	११ इ.संक्षाप्य सूत्र इष्ट, मृद अने व्युद्धाहित ए त्रण उपदेश प्रतन्या आदिना अनिधकारी हे संबाष्यमकतनो पूर्वसूत साथे संबन्ध दुःसंबाष्यम् त्रनी व्याख्या इःसंबाष्यम इष्ट, मृद अने व्युद्धाहित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण दन्दा अव्यक्षा मृद्धं सक्ष्य 'मृदं पदनो आठ प्रकारे निश्चेष दुःसम्बद्धं सक्ष्य अने ते विषे ष्रविकावोद्धदुं द्वारान्य दिग्युः संवप्य अने काल्युद्धं सक्ष्य अने काल्युद्धं सक्षय अने काल्युद्धं सक्ष्य अने काल्युद्धं सक्षय अने काल्युद्धं सक्ष्य अने काल्युद्धं सक्षय अने काल्युद्धं सक्ष्य अन्युद्धं सक्ष्य अन्युद्धं सक्ष्य अन्युद्धं सक्ष्य स्थापंत्र स्थापंत्र स्थापंत्र स्थापंत्र स्थापंत्र स्थापंत्र स्थापंत्र स्थापंत्य स्थापंत्र स्थापंत्य	१३८४-९१ १३८४ १३८५ १३८५ १३८५ १३८५
4288 4288 4288-83 4288-22 4288 4288	१६ इ.संक्षाप्य सूत्र इष्ट, मृह अने व्युद्धाहित ए त्रण उपदेश प्रत्रत्या आदिना अनिधकारी हे संज्ञाप्यमुक्तनो पृर्वसूत्र माथे संबन्ध दु:संज्ञाप्यस्त्रत्यनी व्याख्या इ:संज्ञाप्यम् इष्ट, गृह अने व्युद्धाहित ए त्रण प्रकार अने ए त्रण पदनी अष्टभंगी मृह्युं स्वरूप 'मृह पदनो आठ प्रकारे निक्षेप इन्यमुह्युं स्वरूप अने ते विषे षृटिकाबोद्वर्यं दृष्टाप्त	१३८४-९१ १३८४ १३८५ १३८५ १३८५ १३८५

	बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।	२ १ः	
माथा	विषय	चत्र	
4286	अभिभवमृद अने वेदमृदतुं खरूप अने वेदमृद		
	विषे अनंगरतिराजात्रं दृष्टान्त	१३८७	
५२१९–२२	द्रव्यमृदादिने लगतां उपर्युक्त दृष्टान्तोनो संप्रह	१३८७-८८	
५२२३ –२८	च्युद्राहिततुं स्वरूप अने ते विषे १ द्वीपजातपुरुष		
	२ पंचशैलवासी देवीओथी ठगाएल सुवर्णकार		
	३ अंघलक अने ४ सुवर्णकारव्युद्वाहित पुरुषनां रष्टान्तो	१३८८-९०	
५२२९	खपरनां उदाहरणोमां मृढ अने व्युद्घाहितनो विभाग	१३९०	
५२३०–३३	दुष्ट, मृढ अने ज्युद्राहितमां दीक्षाने योग्य अने		
	अयोग्यनो विभाग अने तेनां कारणो	१३९०-९१	
५२३४–३५	१३ सुसंज्ञाप्यसूत्र	१३९१-९२	
	अदुष्ट, अमृढ अने अञ्युद्धाहित ए त्रणे उपदेश प्रवच्या आदिना अधिकारी छे		
ષ ૨३૪–३ ષ	दु:संज्ञाप्यसूत्रमां दु:संज्ञाप्यने जणाव्या पछी मुसंज्ञाप्य अर्थापत्तियी आवी जाय छे ते छतां सुसंज्ञाप्यसूत्र जुदुं बनाववानुं कारण अने ते प्रसंगे		
	कालिकध्रतातुयोगनी शैलीतुं वर्णन	१३ ९१-९ २	
५२३६–६२	ग्लानप्रकृत सूत्र १४−१५	१३९२–९९	
	निर्प्रन्थी अने निर्प्रन्थो ग्लान अवस्थामां होय त्यारे		
	तेमनी सेवाने छगती यतनाओ, अपवादमार्गो तेम		
	ज ग्ळानावस्थामां विकारोनी अतिप्रवळतादर्शक सक्रमारिका आर्थाउं उदाहरण		
	ઉશ્વનાસ્થા બાયાઉ વ્યાહરન		
५२६३–५३१४ काल-क्षेत्रातिकान्तप्रकृत सूत्र			
• •	१६–१७	१३९९-१४११	
-	निर्मन्थ-निर्मन्थीओने कालाविकान्त तेम ज क्षेत्राति-		
	कान्त अशनादि करपे नहि		
५२६३	काळ-क्षेत्रातिकान्तप्रकृतनो पूर्वसूत्रसाथे संबन्ध	680€	

२२ .	बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।	
गया	विषय	पत्र
	१६−१७ काल-क्षेत्रातिकान्तसूत्रोनी	
	व्याख्या	१४००
५२ ६४–८६	१६ कालातिकान्तसूत्रनी विस्तृत व्याख्या	१४००-५
4268-69	जिनकल्पिकने छक्षीने कालातिकान्त अञ्चनादिनुं	
	स्वरूप, तेनी मर्यादा, प्रायश्चित्तो अने दोषो	१४००–२
५२७०–७ ४	स्थविरकल्पिकोने लक्षीने काळातिकान्त अशनादिनुं	
	स्वरूप, तेनी मर्यादा, तेटला काळ सुधी अशनादि	
	राखी मूकवानां कारणो अने तेने छगती यतनाओ	१४०२-३
५२७५ –८३	भक्त-पानादिने राखी मूकवामां जेम दोषो छे तेम तेने खाववामां पण अनेक दोषो छे माटे कोइए	
	तन लावबामा पण अनक दाषा छ माट काइए स्वाचुं ज नहि ए प्रकारनुं शिष्यनुं कथन अने ते	
	सामे आचार्यनो प्रतिवाद	१४०३-४
५२८४-८६	अशनादि कालातिकान्त थवानां कारणो अने तेने	10.1
	अंगे अपवाद	१४०४-५
५२८७–५३१४	१७ क्षेत्रातिकान्तसूत्रनी विस्तृत न्याख्या	१४०५–११
५२८७–८८	क्षेत्रातिकान्तनी मर्यादा, तद्विषयक प्रायश्चित्त अने	
	दोषोनुं स्वरूप	१४०५
५२८ ९–९१	जिनकत्पिक अने स्वविश्कत्पिकने पोतपोताना	
	मर्यादित क्षेत्रमां क्षेत्रातिकान्तने लगता दोषो लागवा	
	छतां तेमनुं निर्दोषपणुं	१४०६
५२५२ –५३०१	स्थविरकल्पिको पोताना मर्यादित क्षेत्र पैकीनां दूरनां	
	गामोमांथी भिक्षा आदि लावे तेथी बता—क्षेत्ररक्षा,	
	गुरु-बाल-बृद्ध-ग्लान-तपस्वि-प्राप्तृर्णक आदि निभित्ते भिक्षानी तेम ज तेमने योग्य दृघ दृहि घी आदि	
	उपयोगी द्रव्योनी सुलभता, उद्रमादि दोषोनी	
	शुद्धि, बहुमान आदि गुणो अने ते विषे अगारीनुं	
	अर्थात कृपण वाणीआनी स्त्रीतुं तथा बदरीतुं-	
	बोरडीनुं दृष्टान्त	१४०६-९
4302-88	दूरनां गामोमां भृख्या भूस्या भिक्षामाटे जवुं तेम	
	ज भिक्षा छइने आवतुं इत्यादि उपाधि करवा करतां	

	बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।	₹₹
ग्व	विषय	पत्र
	भिक्षा छावनार ते गाममां ज आहारादि करी छे	
	तो शुं हरकत छे तेने छगतुं वादस्थळ	१४०९-११
५३१५–३ ८	अनेषणीयप्रकृत सूत्र १८	१४१२-१७
*** **	भिक्षाचर्यामां अमणे अजाणपणे अनेपणीय स्निग्ध	1011 10
	अञ्चलित उत्कृष्ट अचित्त द्रव्य छीधुं होय तो	
	ते अनुपस्थापित श्रमणने आपी देवुं अने जो तेवो	
	श्रमण न होय तो तेनो प्राधुक भूमीमां विवेक करवो	
4384-85	अनेषणीयप्रकृतनो पूर्वभूत्र साथे सम्बन्ध	१४१२
	अनेषणीयसूत्रनी व्याख्या	१४१२
५३१७–३८	अनुपस्थापित शिष्यने अनेषणीय भक्त आदि आप-	
.,,	बाने लगती यतनाओ, अयतनाथी आपवामां दोष	
	आदिनुं वर्णन तेम ज तेने समजाववाना प्रकारादि	8884-80
022060	कल्पस्थिताकल्पस्थितप्रकृत सूत्र १९	913910-213
५३३९–६१		१ ४१७–२४
	कल्पस्थित अकल्पस्थित श्रमणोने एक बीजाना निमित्ते तैयार थएल कल्पनीय अकल्पनीय पिण्डनुं स्वरूप	
4889	करपश्चिताकरपश्चितप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	9 13 9 16
7447	कल्पस्थिताकल्पस्थितसूत्रनी व्याख्या	१४१७
५३४०	कल्पास्थताकल्पास्यतसूत्रमा व्याख्या कल्पस्थित अकल्पस्थितनुं स्वरूप अने तेमनां महा-	१४१८
7404	व्रतीनी संख्या	१४१८
4389-40	ऋषभ-महावीर अने बावीस तीर्थंकरना कल्पस्थित	1010
	अकल्पस्थित श्रमण-श्रमणीओ, तेमना उपाश्रयो•	,
	समुदाय, संघ आदिने उद्देशीने करेल आधाकर्मादि	
	पिण्डनो कल्प्याकस्प्य विभाग	१४१८–२०
4848-46	चोवीस तीर्थकरना श्रमण-श्रमणीओना कल्पस्थित	
	अकल्पस्थित तरीकेना विभागनुं कारण समजाव-	
	वामाटे तेमना ऋजु-जड, ऋजु-प्राज्ञ अने वऋ-	
	जडपणानुं वर्णन अने न्टप्रेक्षणकर्नुं दशन्त	१४२ १ –२३
4848-18	कल्पस्थित अकल्पस्थितने आश्री आधाकर्मादिना	
	प्रहणने छगतो अपवाद	१४२३२४

नावा	विषय	4त्र
43 88-488	६ गणान्तरोपस म्पद्धा कृत सूत्र २०-२८	१४२४-५
<i>६६६२–५४४</i> ९	२० भिश्चिषयक गणान्तरोप- सम्परसूत्र कोई पण निर्मन्यने ज्ञानादिना कारणे बीजा गणमां उपसंपदा लेबी होय तो आचार्य, उपाध्यायादिने पृक्षतां तेजो सम्मति आपे तो ज तेम थइ शके	१४२४– १ ४४ ४
५३६२	गणान्तरोपसम्पत्प्रकृतनो पूर्व सूत्र साथे सम्बन्ध	१४२४
	भिश्चविषयक गणान्तरोपसम्प-	94105
(700 (त्सूत्रनी व्याख्या	१४२५
५३६३–५४४९	उपसम्पदानुं खरूप	१४२५-४७
५३६३—७७	झान-प्रशेत-चारित्रनी दृद्धि निमित्ते गणान्तरोप- सम्पदानी स्तीकार, तेना १ श्रीत २ चिन्तयन् ३ झजिकादि ४ सख्डी ५ पिशुकादि ६ अपतिषेषक (प्रतिषेपक) ७ पर्यद्वान् ८ गुरुमेपित ए आठ अतिचारो, तेने ळगतां प्रायक्षित्ती अने आठ	
	अतिचारोनुं म्बरूप	१४२५–१८
५३७८–७९	जे भिक्षु निष्कारण प्रतिषेधकादि पासे उपसंपदा स्त्रीकारे तेने लगतो विधि	१४२८
ष३८०-८५	अप्रतिषेधक, पर्वद्वान् अने प्रतीच्छक्तने लगतो	,,,,
५३८६-९४	अपबाद व्यक्त अव्यक्त शिष्यमु स्परूप अने तेमने उपसं- पदा लेबामाटे बीजा साधु माथे मोकलबामां आबे	१४२ ९–३ ०
५३<u>९</u>५ –९६	स्रारे प्रतीच्छनीय आचार्य अने मृजाचार्यने स्नगता आभाज्य अनाभाज्यनो विभाग आचार्य, उपाध्याय आदिनी अनुमति सिवाय उप- सपदा सीकारनार शिष्य अने प्रतीच्छक आचार्यने	१ ४३०—३२ -
	प्रायश्चित्त अने आज्ञा निह आपवानां कारणी	१४३२-३३
<i>ષર્९७–५</i> ४२४	१ ज्ञानोपसम्पदानो विधि	१४३३-३३
५३९७ –५४०३	उपसपदा स्वीकारवा पहेटा आज्ञा मेळववा माटे आचार्य, उपाध्याय अने गच्छने पूछवानी विधि	• • • •

दोषरूप आत्मसमुत्यदोषथी बचवा माटे तथा चारित्रनी दृद्धिमाटे उपसम्पदा छेवानो विधि आदि ५४५०-५१ २१-२२ गणाचच्छेदक अने आचार्य-उपाध्यायविचयक गणा-न्तरोपसम्पत्सत्त्रो

\\$888-84

५४२५-३९

५४४०-४९

4808-88

वाथा	विषय	पश
	गणावच्छेदक अने आचार्य-उपाध्यायने लगतो	
	उपसम्पदा लेबानो विधि	
	२३ भिक्षुविषयक सम्भोगोपसम्प-	
	्रतसूत्र अने तेनी व्याख्या	१४४५-४६
4841-49	संभोगोपसम्पदानां कारणो, गच्छ अने आचार्यना	
	शैथिल्यविषयक चतुर्भंगी अने तेमने चारित्रमार्गमां	
	उद्यत करवानी विधि तथा गणान्तरसंक्रमणने आश्री	
	संविम्न भिक्षु अने संविम्न गण विषयक चतुर्भंगी	
	अने तेने लगती उपसम्पदानो विस्तृत विधि	१४४६–४९
५४७०	२४–२५ गणावच्छेदक अने आचार्य-	
	उपाध्यायविषयक सम्भोगोपसम्प-	
	त्सूत्रो	१४५०-५१
	२६ भिक्षुने लगतुं अन्य आचार्य-	
	उपाध्यायने स्त्रीकारवा विषयक	
	सूत्र अने तेनी व्याख्या	१४५१
4868	अन्य आचार्य-उपाध्यायने स्वीकारवानां कारणी	१४५ १
पश्चर-७३ पूठ	ज्ञाननिमित्ते अने दर्शननिमित्ते अन्य आचाय-उपा- ध्यायने स्वीकारवानो विधि	
	व्यायम स्वाकारयांना विवय पूर्व चारित्रनिमित्ते अन्य आचार्य-उपाध्यायना	१४५२
५४७३ ४०-५२	पूर्व चारित्रानामत्त अन्य आचाय-उपाध्यायना स्त्रीकारविषयक विधि, श्रुतव्यक्त-वयोव्यक्त पट्नी	
1	चतुर्भंगी अने तेने आश्री आचार्य-उपाध्यायना	
	स्त्रीकारनो विस्तृत विधि	
५४९२ उ०-९६		१४५२–५६
4011.00-14	२९−२८ गणावच्छेदक अने आचार्य-उपाध्यायने आश्री अन्य	
	आचार्य-उपाध्यायने स्वीकारवा	
	विषयक सुत्रो	9060 6 -
	W	१४५६-५८
५४९७–५५६	५ विष्वग्भवनप्रकृत सूत्र २९	१४५८-७२

कालधर्म पामेल भिक्षु आदिना देहनी परिष्ठापना-विषयक सूत्र

बृह्स्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयासुकम ।			
मांचा	विषय	पन्न	
4896-96	विष्वग्भवनप्रकृतनो पूर्वप्रकृत साथे सम्बन्ध	9846-49	
	विष्वरभवनसूत्रनी व्याख्या	१४५९	
५४९९-५५०२	विष्वग्भवनसूत्रनी विस्तृत व्याख्यानो उपक्रम अने		
	तद्विषयक द्वारगाथाओ	१४५९	
५५०३–४	१ प्रत्युपेक्षणाद्वार	१४६०	
	काळधर्मगत भिक्षु आदिना शवना परिष्ठापनने योग्य स्थण्डिळभूमीनुं निरीक्षण		
4404-8	२ दिखार	१४६०-६१	
	कालधर्मगत साधुना शवना परिष्ठापनने योग्य दिशा अने तेने लगता उपघातोचुं स्वरूप		
५५१०-१३	३ णन्तकद्वार	१४६१–६२	
	कालधर्मगत भिश्चने योग्य वस्त्रोतुं प्रमाण अने संख्या		
५५१४-१७	४ 'दिवा रात्रों वा कालगतः' द्वार	१ ४६२ –६३	
	कालधर्म पामेल साधुने गीतार्थ साधु आदि वोस- रावे अने योग्य विधि करे पण शोक न करे		
५५१८–२६	५ जागरण-वन्धन-छेदनद्वार	१४६३–६४	
, ,	कोई कारण प्रसंगे दिवसे के रात्रिमां साधुना मृत		
	देहने राखी मुकबुं पडे तेने अंगे जागवानो, बन्ध-		
	ननो अने छेदननो विधि		
9420	६ कुशप्रतिमाद्वार	१४६४	
	साधु कालधर्म पासे ते वस्ततना नक्षत्रने आश्री डाभनां पुतळां बनाववानो विधि		
५५२८ –२९	७ निवर्त्तनदार	१४६५	
	कालधर्मगत साधुना शबने भूलथी आगळ लड्ड		
	गया पछी पाछुं स्थंडिलभूमीमां लाववानो विधि		
4430	८ मात्रकद्वार	१४६५	
	कालधर्मगत साधुना देहने परठव्या पछी आचम-		
	नादिने लगतो विधि	•	
4438	९ शीर्षद्वार	१४६५	
	कालगत मिश्चना मस्तकने राखवानी दिशा		

२ ८	बृहत्कस्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम ।	
पाथा	विषय	43
५५३२ –३५	१० तृणादिद्वार काळधर्मगत साधुना शव नीचे डाभनो संयारो करवानो विधि	१४६६
५५३६—३७	११ उपकरणद्वार काळधर्मगत साधुनी पासे साधुनां उपकरण नहि राखवाधी ठागता दोषो अने प्रायश्चित्त	१४६६
५५३ ८	१२ कायोत्सर्गद्वार साधुना गृत देहने परठच्या पछी उपाश्रयमां आवी काउस्सम्म करवानो विधि	१४६७
4438	१३ प्रादक्षिण्यद्वार साधुना मृत देहने प्रदक्षिणा कर्या सिवाय उपाश्र- यमां आवतुं	१४६७
५५४०–४६	१४ अभ्युत्थानद्वार कालपर्मगत साथुतुं देह भूतादिना प्रवेशने लीपे ल्रह्म जतां के सम्शानभूगीमां लड्ग गया पछी ज्या- श्रयमां पालुं आवे तेने लगतो विधि	१ ४६ ७—६८
4480	१५ व्याहरणद्वार कालधर्मनत साधु भूताविष्ट थया पछी जे साधु आदिनुं नाम ले तेने लोचादि करवानो विधि	१४६८–६९
44 86–89	१६ कायोत्सर्गाडार कालगत साधुने परठवीने उपाश्रयमां आख्या पष्टी परिष्ठापक साधुओए करवानो काउस्सग्ग अने अजितशान्तिस्तवादिनुं गणवुं	१४६९
५ ५५०	१७ क्षपण-स्वाप्यायमार्गणद्वार आचार्यादि प्रभावक पुरुष अथवा मोटा कुटुंब- वाळो साधु कालधर्म पामे त्यारे उपवास असच्झा- यने छगतो विधि	१४६९
વવવ?–4३	१८ व्युत्सर्जनद्वार कालघर्मगत साधुना उपकरणादिनुं विमर्जन	88 £3-00
५९९४-५८	१९ अवलोकनद्वार	१४७०-७१

	वृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनी विषयानुकम ।	25
माना	विषय	বস
	कालधर्मगत साधुना परठवेला मृतदेहनी अखंडता	
	आदि उपरथी निमित्त, गति वगेरेनी परीक्षा	
4449-64	कालधर्मगत साधुने लगतो विधि नहि करवाथी	
	छागतां प्रायश्चित्त, दोषो अने प्रस्तुत सूत्रनो समन्वय	१४७१-७२
4466–93	अधिकरणप्रकृत सूत्र ३०	१४७३८०
	भिश्चए गृहस्थनी साथै अधिकरण-झघडी कर्यो होय	
	तेने शमान्या सिवाय ते भिक्षुने भिक्षाचर्या वगेरे	
	कशुं करवुं कल्पे नहि इत्यादि	
५५६ ६	अधिकरणप्रकृतनो पूर्वप्रकृत साथे सम्बन्ध	१४७३
	अधिकरणसूत्रनी व्याख्या	१४७४
५ ५६७७२	भिक्षुने गृहस्थनी साथे हेश थवानां कारणो, ते	
	क्केशने शान्त नहि करवाथी थतां नुकशानी	8808-0d
५५७३–८०	झघडेला भिक्षु अने गृहस्थने शान्त पाडवानी रीत	१४७५-७७
५५८१–८९	झघडो करीने शान्त नहि थनार भिक्ष, आचार्य,	
	उपाध्याय, गणावच्छेदकने लगतां प्रायश्चित्तो	१४७७-७९
५५९०– ९ १	पक्षपातथी ओछुंवत्तुं प्रायश्चित्त आपवायी दोषो	१४७९
५५९२–९३	अधिकरणने लगतुं अपवादपद	१४७९-८०
*****	30	0000 00
५५९४-५६१		१४८०८६
	परिहारकल्पस्थित भिक्षुने आचार्य-उपाध्याय इन्द्र-	
	मह जेवा उत्सवने दिवसे विपुल भक्तपानादि अपावी शके, ते पछी आपी-अपावी शके नहि. तैनी	
	कोइ पण प्रकारनी वेयावच करी करावी शके इत्यादि	
4498-94	परिहारिकप्रकृतनो पूर्वप्रकृत साथे सम्बन्ध	१४८१
*****	परिहारिकसूत्रनी व्याख्या	१४८१
५९ ६	परिहारतपत्रायश्चित्त लागवानां कारणो	१४८१
9990	परिहारतपनो विधि	१४८२
५५९८-५६१७		१४८२–८६
	परिहारकल्पिक अने गच्छवासीओनो पारस्परिक	
	व्यवहार अने तेने लगतां प्रायश्चित्त आदि	

बृह्रकल्पस ूत्र	पंचम	विभागनो	विषयानुऋम	ł
----------------------------	------	---------	-----------	---

ą o

माचा	विष्यु	पत्र
५६१८–६४	महानदीप्रकृत सूत्र ३२-३३	१४८७–९८
५६१८–३७	३२ महानदी सूत्र	१४८ ७- ९१
•	निर्मन्थ-निर्मन्थीओने गंगा यमुना जेवी महानदीओ	
	महिनामां एकथी वधारे वार उतरवी कल्पे नहि	
4686	महानदीपकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	- १४८७
	३२ महानदीसूत्रनी व्याख्या	१४८७
५६१९२१	३२ महानदीसूत्रगत इमाओ, उद्दिष्टाओ, वंजिताओ,	
	संतरित्तए, उत्तरित्तए आदि पदोनी व्याख्या	१४८७–८८
५६२२–३४	महानदीओने नावथी संतरणने लगता अनुकंपा	*
	तेम ज प्रत्यनीकताविषयक विविध दोषोनुं वर्णन	१४८८–९०
	[गाथा ५६२५—अनुकंपाविषये मुर्हंडराजनुं	
	उदाहरण	
	गाथा ५६२७-२८ प्रत्यनीकताविषये महावीर-	
	देव अने सुदाढ-कंबल-शम्बलदेवीनुं उदाहरण्]	
५६३५–३७	महानदी उत्तरणविषयक संघट्ट, लेप अने लेपो-	
	परि ए त्रण प्रकारो अने तद्विषयक दोषो	१४९०-५१
५६३८–६४	३३ महानदीस्त्रत्र	१४२१-९८
	परावती जेवी छीछरी नदीओं महिनामां वे अगर	
*	त्रण वार उतरवी कल्पे	-
	३३ महानदीसूत्रनी व्याख्या	१४९१
4836-39	३३ महानदीसूत्रमानां विषम पदोनी व्याख्या	१४९१–९२
५६४०–५२	नदी उत्तरवा माटेना संक्रम, स्थल अने नोस्थल ए	
	त्रण प्रकारना मार्गो तेना प्रकारो, खरूप अने आ	
	प्रकारो पैकी कया मार्गे जबुं तेने छगना विभाग,	
	भागाओ वगेरे	१४९२–९५
५६५३–६ ४	संक्रम, स्थल आदि मार्गीने लक्षीने नदी उतरवानी	
	विधि, तेने लगती यतनाओ, दोषी, अपवाद आदि	१४९५ –९ ८
पंदद्य-८१	उपाध्याविधियक्त सन् ३० ०० ००	0 4 01
**** **	उपाश्रयविधिष्रकृत सूत्र ३४–३७ ११ निर्मन्य-निर्मन्यीओने ऋतुबद्धकाळमां अने वर्षा	170-1401
	कतुमां रहेवा लायक उपाश्रयोतुं वर्णन	
	क्षुमः रहना लायक उपात्रयानु वण्न	

	बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुक्रम ।	R.R.	
शाधा	विषय	' শৃত্	
4554-55	उपाश्रयविधिप्रकृतनो पूर्व सूत्र साथे संबंध	. 8888	
	३४-३७ उपाश्रयविधिसुत्रोनी व्याख्या	१४९९	
५६६७–७५	ऋतुषद्धकाळविषयक ३४३५ उपाश्रयविधिसूत्रोनी		
2	विस्तृत व्याख्या, यतना, अपवाद आदि	१५००-१	
५६७६-८१	वर्षावासविषयक ३६–३७ उपात्रयविधिसूत्रनी		
•	विस्तृत व्याख्या, यतना, अपवाद आदि	१५०१–२	
पंचम उद्देशक।			
५६८२–५७२		१५०३–१३	
५६८२-८७	त्रह्मापायप्रकृतनो पूर्व सूत्र साथे संबंध	१५०३-५	
	१–४ ब्रह्मापायस्त्र्त्रोनी व्याख्या	१५०५	
५६८८-५७२०	१२ निर्धन्थविषयक ब्रह्मापायसूत्रनो विषय अने		
	विस्तृत व्याख्या	१५०५–१२	
५६९१–९९	गच्छने विषे शास्त्रस्मरणने लगता व्याघातोनुं धर्म-		
	कथा, महर्द्धिक, आवदयकी, नैपेधिकी, आलोचना,		
	वादि, प्राघुणक, महाजन, ग्लान आदि द्वारोवडे		
	निरूपण	१५०६-८	
५७००-१२	गुरुनी आज्ञा सिवाय शास्त्रसमरण निमित्ते जुदा		
	जनारने लागता दोपोनुं देवताकृत उपसर्गद्वारा		
4	निरूपण अने तद्विषयक छ भंगो	१५०८-१०	
4683-20	गच्छवासना गुणोनुं वर्णन	१५१०-१२	
५७२१–२५	३-४ निर्प्रन्थीविपयक ब्रह्मापायसूत्रोतुं व्याख्यान	१५१२-१३	
५७२६–८३	अधिकरणप्रकृत सूत्र ५	१५१३–२३	
	भिक्षु हेशने उपशमान्या सिवाय अन्य गणने		
	आश्रीने रही न शके		
५७२६	अधिकरणप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५१३	
	अधिकरणसूत्रनी व्याख्या	१५१३	
५७२७-४९	[जुओ रुतीय विभागनो गाथा २६८२ थी		
	२७१७ सुधीनो विषयातुकम पत्र ३०–३१]	१५१४-१५	

14	वृद्दस्यसम्बद्धः पंचयः विभागनी विषवातुकनः ।	
वाधा	निषय	पत्र
4.64 0-68	अधिकरणनी-छेशनी शान्ति न करतां खगणने तजी	
	अन्य गणमां जनार भिक्ष, उपाध्याय, आचार्य	
	आबिने आश्री प्रायश्चित्तनो विभाग अने तेने लगतुं	
	एक श्राहुकारनी चार पत्नीनुं उदाहरण	१५१५-१८
५७६२–८३	हेकाने कारणे गच्छनो साग न करतां हेशयुक्त	
	चित्ते गच्छमां वसनार भिक्षु, उपाध्याय, आचार्य	
	आदिने शान्त करवानो विधि, शान्त नहि धनारने	
	लगता त्रायश्चित्तो, दोषो, अपबाद आदि	१५१८–२३
	[गाथा ५७८० — कुमारदृष्टान्त]	
५७८४–५८२	१५२४–३७	
	सशक्त के अशक्त भिक्षु, आचार्य, उपाध्याय आदि	
	सूर्यना उदय अने नहि आधमवा माटे निःशंक	
	होई आहार करता होय अने पछी सूर्य उग्यो नथी	
	के आध्यमी गयो छेएम स्वयर पष्टतां आहारनो	
	त्याग करे तो तेमनी रात्रिभोजनविरति अखंडित	
	रहे छे; पण सूर्यनो उदय थवा छता अने नहि	
	आथमवा छतां जो ते माटे शंकाशील होई आहार	
	करे तो तैमनी रात्रिभोजनविरित खंडित थाय छै	
4068	संस्तृतनिर्विचिकित्सप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५२५
	६-९ संस्तृतनिर्विचिकित्स आदि	
	सुत्रोनी व्याख्या	१५२५-२६
५७८५–५८१४	६ संस्तृतनिर्विचिकित्ससूत्रनी विस्तृत	
	च्याख्या -	१५२६-३६
4064-60	संस्कृतनिर्विचिकित्सस्त्रोनो विषय अने तेने आश्री	

काल, द्रव्य अने भावधी प्रायश्चित्तनी मार्गणा

५७८८-५८०६ उद्रतवृत्ति, अनुद्रतवृत्ति अने अनसामित, असामित पदोनी व्याख्या, तेने आश्री संकल्प, गवेषणा, प्रहण अने भोजन ए चार पदी वढे घोडशभंगी, घटमान भांगाओनी सोळ छताओ, आठ शुद्ध १५२६

	बृहत्कल्पसूत्र पंचय विमागनी विषयानुकम्।	3.3
शांचा	विषय	'पश्र
	र्रुताओं अने भार्ठ अंशुद्ध रुताओं अने अशुद्ध रुता-	• . •
	ओने अंगे काल, द्रव्य अने भावने आशी प्राय-	
	श्चित्रनो विभाग	१५२६ <u>-३</u> १
५८०७–१४	संस्ट्रतनिर्विचिकित्ससूत्रगत संस्ट्रत आदि पदोनी	* ,
	ज्यास्या	१५३१-३३
५८१५–१६	७ संस्तृतविचिकित्सस्त्रनी व्याख्या	१५३३
५८१७–२७	८ असंस्तृतनिर्विचिकित्ससूत्रनी ब्याख्या	१५३४–३७
	तपोअसंस्ट्रत, ग्लानासंस्ट्रत, अध्वासंस्ट्रत ए त्रण	
	प्रकारना असंस्कृतनुं स्वरूप, प्रायश्चित्त आदि	
५८२८	९ असंस्तृतविचिकित्ससूत्रनी व्याख्या	१५३७
५८२९–६०	उद्गारप्रकृत सूत्र १०	१५३७–४५
•-••	निर्भन्य-निर्भन्यीओ वसन, गचरकुं वगेरे आव्या	
	पछी थुंकी नाखे अने मोढुं साफ करी नाखे तो	
	रात्रिभोजनदोष न लागे	
५८२९	उद्गारप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५३८
	उद्गारसृत्रमी व्याख्या	१५३८
५८३०-३२	भिक्ष आचार्य आदिने आश्री उद्गारविषयक प्राय-	• • • •
	श्चित्त, दोषो अने अमात्य-बटुकनुं उदाहरण	१५३८-३९
५८३३–४५	उद्गारनां कारणो अने तद्विषयक विविध पदोने	
	आश्री प्रायश्चित्तो अने प्रायश्चित्तना प्रस्तारनी रचना	१५३९-४२
५८४६–५५	चद्गारने छक्षी भोजन करवा विषयक विविध	
	आदेशो, कव्सुनितुं दृष्टान्त अने शास्त्रकारने मान्य	
	भोजननो आदेश	१५४२–४४
५८५६–६०	उद्गार गि छनविषयक अपवाद अने ते विषे रह्न -	
	वणिगतुं दशन्त	१५४४–४५
74.488 5.5		04_2040
५८६१–९६	आहारविधिप्रकृत सूत्र ११	१५४६–५४
५८६१	आहारविधिप्रकृतनी पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५४६
•	आहारविधिसूत्रनी व्याख्या	१५४६
5		

ş.v	हदत्कस्पपुत्र पंचम विमागनो विचवानुकम ।	
ऋषा	विषय	•ात
५८६२–६४	मास, श्रीज, रज आदि पदोनी अवस्था अने	
	अभान्तुक, वदुद्भव प्राणादिनुं सक्तप	१५४६–४७
4654-55	आहारविधिसूत्रनो अधिकार	१५४७
५८६७	हे देखमां जोदन, सत्तु, दवि, पाणी बमेरे जीवावित्री	
	संसक्त ज मळतां होय तेवा संसक्त देशमां जवानी	
	विचार करवी, त्यां जवा माटे प्रवत्न करवी, ते	
	देश तरफ प्रयाण करतुं अने ते देशमां पहींचतुं	. १५४८
	आदिने लगतां प्रायश्चित्तो	1486
4646-68	अशिव, दुर्भिक्ष आदि कारणे संसक्त देशमां जवुं आदि थाय तो जीवादिथी संसक्त ओदनादिने	
	लेवानी अने तेनी प्रतिलेखना करवानो विधि, ते	
	प्रमाणे न करवाथी छागता दोषो, अने ओदन	
	आदिमां रहेळा प्राण आदिना पारिष्टापननो विधि	१५४८-५२
4884-95	जीवादिसंसक्त ओदनादिना ग्रहण आदिविपयक	,,,,,
1001.14	अपवाद अने यतनादि	१ ५५ २ –५४
५८९७–५९१८	ः पानकविधिप्रकृत सूत्र १२	१५५५–६०
५८९७	पानकविधिप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	8444
	पानकविधिसूत्रनी व्याख्या	१५५५
५८९८	दक, दकरज, दकस्पर्शित आदि पदोनी व्याख्या	8 444
५८९९–५९१८	मानकना-पाणीना प्रहणनो विधि, तेने छगता	
	भांगाओ, तेना परिष्ठापननो विधि अने तद्विषयक	
	अपवाद वगेरे	१५५५-६०
<i>પુરુ</i> ૧૬ – ૭૫	ब्रह्मरक्षाप्रकृत सूत्र १३–३६	१५६०-७८
	१३-१४ इंद्रियसूत्र अने श्रोतःसूत्र	१५६०
५९१५	बह्मरक्षाप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५६ १
	इंद्रियसूत्र अने श्रोतःसूत्रनी व्याख्या	१५६१
५९२०-२८	इंद्रियसूत्र अने श्रोतःसूत्रनी विस्तृत	
	ब्याख्या	१५६१-६३

	बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुक्रम ।	\$ a
वास्था	विषय	पश्र
	पंद्यु-पश्चिविषयक स्पर्शादियी संभवता दोषो,	
	शायश्चि त्त आदि	
५९२९-३४	१५ एकाकिसूत्र	१५६३–६५
;	निर्मन्थीओने एकला रहेवुं कल्पे नहि	
५९२९ े	एकाकि आदि सूत्रोनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	१५६३
	एकाकिसूत्रनी व्याख्या	१५६४
५९३०-३४	एकली निर्प्रन्थीने प्रायश्चित्त, दोषो अने अपवादो	१५६४–६५
4934-39	१६ अचेल सूत्र अने तेनी व्याख्या	१५६५-६६
	निर्भन्थीने नम रहेवुं कल्पे नहि. नम निर्भन्थीने	
	प्रायश्चित्त, दोषो, अपवाद आदि	
6680-8\$	१७ अपात्र सूत्र अने तेनी व्याख्या	१५ <i>६६–६७</i>
	निर्प्रन्थीने पात्ररहित रहेवुं न कल्पे. निर्प्रन्थीने	
	पात्र नहि राखवाथी लागता दोषो, तद्विषयक	
	स्नुपातुं उदाहरण अने अपवाद	
4688	१८ व्युत्स्रष्टकाय सूत्र	१५६७
	निर्मन्थीने काया वोसरावीने रहेवुं कल्पे नहि	
५९४५–५३	१९ आतापना सूत्र	१५८७७०
	निर्मन्थीने गाम, नगर आदिनी बहार आतापना	
	ळेवी कल्पे नहि	
	आतापना सूत्रनी व्याख्या	१५६७
4984-42	जघन्य मध्यम उत्कृष्ट आतापनातुं स्वरूप अने	
	निर्मेन्थीने योग्य आतापनानो प्रकार अने तेने योग्य स्थान	0 % 6 4 100
५९५३-६४		१५६८-७०
1/14-40	२०–३० स्थानायत, प्रतिमास्थित, निषचा, उत्कदुकासुन, वीरासन,	
	दंडासन, लगंडशायि, अवासुख्,	
	उत्तान, आम्रकुक अने एकपार्थ-	
	शायि सूत्र	१५७०-७३
	स्थानायतादि सूत्रोनी व्याख्या	१५७०

₹€	बृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुकम I	
मध्य	विषय	पञ्च
4943-46	स्थानायत, प्रतिमास्यित आदि पदोनी ब्याख्या, तेने लगता दोषो अने निर्मन्यीने योग्य स्थानासनी	१५७०-७१
५९५७—६ ४	संयतीने स्थानायतादि स्थानासनीनी निषेध करवा विषयक शंका-समाधान	१५७२-७३
५९६५–६८	३१ आकुंचनपट सूत्र निर्भन्यीने आकुंचनपट्ट राखवो अने तेनो उपयोग करवो कल्पे नहि	१५७३७४
५९६ ५	आकुंचनपट्टादिस्त्रोनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५७३
	आकुंचनपट्ट सूत्रनी न्याख्या	१५७४
५९६६–६ ८	निर्भन्थीने आकुंचनपट्ट राखवाथी लागता दोषो, तेने	
	लगती यतना अने अपवाद	१५७४
	३२ सावश्रय आसनसूत्र अने व्यारूया	१५७५
	निर्भन्यीओने सावश्रय आसन उपर वेसवुं सुबुं कल्पे नहि	
५९६९-७२	[:] ३३ सविषाण पीठफलक सूत्र	१५७५-७६
	निर्घन्थीओने सविषाण पीठफळक उपर वेसवुं सुवुं वगेरे करुपे नहि	
	सविषाण पीठफलक सूत्रनी न्याख्या	१५७५
५९६९–७२	निर्घन्थीओने सविपाण पीठफलकने आश्री छागता दोषो	
५९७३	• • • •	१५७६
,	रे४ सष्टुन्तालाबु सूत्र अने ब्याख्या निर्भन्योओने नालयुक्त अलाबुपात्र राखबुं बगेरे करुपे नहि	१५७ ६–७७
५९७४	३५ सङ्गन्नपात्रकेसरिका सुम्र	
1,1-0	रेन सङ्गापात्रकसारका सूत्र निर्प्रन्थीओए दण्डयुक्त पात्रकेसरिका न राखनी	१५७७
<i>લ ૧૭</i> ૬	१६ दारुदण्डक सूच्च अने व्याख्या निर्फर्मीओने दारुदण्डक एटले पादप्रोक्छनक राखवुं कस्पे नहि	ર <i>હ⊷હહાર</i> ક

	दृहत्कल्पसूत्र पंचम विभागनो विषयानुक्रम ।	₹•ø
वाबा	विषय	পদ
4904–94	मोकप्रकृत सूत्र ३७	१५७८-८३
५९७ ६	मोकप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५७८
	३७ मोकसूत्रनी व्याख्या	१५७८
५९७७-९६	मोकसूत्रनी विस्तृत व्याख्या	१५७८-८३
	[नाथा ५९८७-८८ देवीतुं उदाहरण]	
५९९७ –६०३	२ परिवासितप्रकृत सूत्र ३८–४०	१५८३–९१
५९९७- ६ ०१२		१५८३ -८७
	निर्प्रन्थ-निर्प्रन्थीओने रात्रिमां राखी मूकेळो आहार कस्पे निर्	
५९९७	परिवासितप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे सम्बन्ध	१५८३
	परिवासित आहार सूत्रनी ज्याख्या	१५८४
4886	परिवासिताहारतुं स्वरूप	१५८४
५९९९–६००४	अञ्चनावि चार प्रकारना आहारनुं अने अनाहारनुं	
	स्रहर	१५८४-८५
६००५-१२	परिवासित आहार अने अनाहार विषयक दोषोतुं	
	वर्णन, अपवादादि	१५८५-८७
६०१३–२४	३९ आलेपन सूत्र	१५८७-८२
	निर्घन्य-निर्घन्यीओने परिवासित आलेपनद्रव्यनो उपयोग करवो कल्पे निष्ठ	
६०१३–१ ४	आलेपनसूत्रनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५८७
	आपलेनसूत्रनी व्याख्या	१५८७
६०१५-१७	आलेपनसूत्र अने स्रक्षणसूत्रना पौर्वापर्य विषयक	
	शंका-समाधान	१५८८
६०१९–२४	आलेपनने परिवासित राखवायी लागता दोषो अने	
	प्रायश्चित्त	१५८८-८९
६०२५-३३	४० ब्रक्षण सूत्र	१५८९९१
	निर्मन्ध-निर्मन्धीओने परिवासित तैल आदि वडे	
	अभ्यंगन बगेरे करवुं न कल्पे	

१८	बृहत्कल्पसूत्र पंचम विमागनी विवयानुकम ।	
मावा	विषय	पत्र
4084 - ·	ब्रह्मणसूत्रनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५९०
•	सक्षण सूत्रनी व्याख्या	१५९०
६०२६–३२	परिवासित सक्षणने लगतां प्राथिश्वतो, दोषो अने	
	यतनावि	2480-88
4033 —84	व्यवहारप्रकृत सूत्र ४१	૧ ૫૧૧–૧૫
	परिहारकल्पस्थित भिक्षुने योग्य व्यवहार-प्रायश्चित्त	
\$03 \$	व्यवहारप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथे संबंध	१५९२
	४१ व्यवहार सूत्रनी व्याख्या	१५९२
६०३४− ४६	परिहारकल्पस्थित भिक्षुना कारणिक अतिक्रमादि	
	अने तेने रूगतां प्रायश्चित्तादि	१ ५९ २-९ ५
६०४७–५९	पुलाकभक्तप्रकृत सूत्र ४२	१५९५-९९
	निर्मन्थीओने पुढाकमक्त छेवुं कल्पे नहि	
808 0	पुलाकभक्तप्रकृतनो पूर्वसूत्र साथै सम्बन्ध	१ ५ ९ ५
	पुलाकभक्तसूत्रनी व्याख्या	१५९६
६०४८–५०	धान्यपुलाक, गंधपुलाक अने रसपुलाक एम त्रण	
	प्रकारनं पुलाकभक्त, तेनुं खरूप अने तेमने पुलाक	
	तरीके ओळखाववानुं कारण	१ ५ ९ ६
६०५१–५८	पुलाकभक्तविषयक दोषोतुं वर्णन	१५९६-९८
६०५९	निर्मन्थोने आश्री पुलाकभक्तमहणादिविषे भलामण	१५ ९९

पूज्यश्रीभद्रवाहुसामिविनिर्मितसोपज्ञनिर्युक्युपेतं बृह्यत् कल्पसूत्रम् ।

श्रीसङ्खदासगणिक्षमाश्रमणसूत्रितेन रुघुभाष्येण भूषितम् । आचार्यश्रीमञ्द्रगिरिपादविरिषतयाऽर्घगीठिकावृत्त्या तपाश्रीक्षेमकीर्त्या-वार्यवरानुसन्धितया शेषसमप्रवृत्त्या समञङ्कतम् ।

चतुर्थ-पश्चमावुद्देशकौ ।

॥ गईव ॥ वृहत्करूपसूत्र-पञ्चमविभागस्य शुद्धिपत्रम्

पत्रम्	पश्चिः	अशुद्धम्	गुद्धम्
१३१८	१०	अम्हेदाणि	अम्हे दाणि
१३८८	२३	बुग्गाहिया,	बुग्गाहिया
\$886	२४	8488	५३४१
१४३३	9	५६९ ६	५३९६
१४३३	२७	बहुरोगे	बहुरोगी
\$886	२६	५५ँ६३	પ ષ્ઠ ६ ३
१४५३	१७	वतवचो	वतऽवचो
\$883	२३	परिहीणो	परिहीनो
१४९८	१६	अय प्रकु	श्रय विधि प्रकृ
१५५५	१३	वनस्पतिकायाः	वनस्पतिकायः
१५८०	३०	व्युत्सजनं	व्युत्सर्ज नं
१५८५	9	-तोयं विंदुम्मि	-तोयंबिंदुम्मि



॥ श्रीमद्विजयानन्दसूरिवरेभ्यो नमः॥

पूज्यश्रीभद्रबाहुस्वामिविनिर्मितस्वोपज्ञनिर्युक्युपेतं

बृहृत् कल्पसूत्रम्।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणस्त्रितेन लघुभाष्येण भूषितम् । तपाश्रीक्षेमकीर्त्याचार्यविहितया वृत्त्या समलङ्कृतम् ।

चतुर्थ उद्देशः ।

— अ तु द्धा ति क प्र कृ त म्
व्याख्यातस्तृतीय उदेशकः, सम्प्रति चतुर्थ आरम्यते । तस्य चेदमादिस्त्रम्
तओ अणुग्धाह्या पन्नत्ता, तं जहा—हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, राईभोयणं भुंजमाणे १॥

अधास्य सृत्रस्य कः सन्वन्धः ? इति चिन्तायां सम्बन्धविधिमेव ताबदुपदर्शयति— • सुत्ते सुत्तं बज्झति, अंतिमपुप्पेत व बज्झती तंत् । इय सुत्तातों सुत्तं, गहंति अत्थातों सुत्तं वा ॥ ४८७७ ॥

इह सम्बन्धोऽनेकथा भवति — यथा पुष्पेषु मध्यमानेषु यदा 'सूत्रम्' तन्तुर्निष्ठितो भवति तदा तत्रैव स्त्रेऽपरं सृत्रं वष्यते, अन्तिमपुष्पे वा तन्तुर्वध्यते, बङ्का च पुष्पाणि मध्यन्ते; एवं यस्तिकान्तमस्त्रे उद्देशको निष्ठितो भवति ततः सुत्रादपरस्रोद्देशकस्य यद् आधं सुत्रं वद् 10 यदि सहशाधिकारिक भवति तदा सुत्रात् सुत्रं मझन्तीस्त्रच्यते । कापि पुनर्स्थोदपरस्त्रं सम्बन्धते । वाशब्दोषादानात् काप्यधादपरस्य सम्बन्धते । वशब्दोषादानात् काप्यधादपरस्य सम्बन्धः क्रियते ॥ ४८७७ ॥

तत्रार्थात् सूत्रसम्बन्धं तावद् दर्शयति---

घोसो ति गोउलं ति य, एगई तत्य संवसं कोई। खीरादिविधियतणू, मा कम्मं कुञ्ज आरंमो ॥ ४८७८ ॥

१ °ज्ञसते तं° तामा०॥ २ खुत्तं, बत्थातो चा भवे खुत्तं मो० डे०॥ ३ °कारकं डे०॥ ४ °परं सु^० मा० को०॥ ५ स्वीरादिपीणियतण् तामा०॥ इ० १६५

षोष इति गोकुळमिति चैकार्थम् । तत्र तृतीयोदेशकान्त्यसूत्राभिहितचळक्षेत्रद्वारावससयाते गोकुळे संबसन् कश्चित् सायुः 'क्षीरादिबृहितततुः' प्रचुरदुग्ध-दःच्याद्युवचितशरीरो मोहोद्ववेन मा इसाकमे कुर्यात्, ⊲ उंपकक्षणमिदम्, तेन ⊳ मा वा मैथुनं प्रतिसेवेत, अतस्त्रद्वारणार्थमा-दिसक्रसामस्यः क्रियते ॥ ४८७८ ॥ अथ स्वगत् सुत्रसन्वन्यमाह—

हेट्टाऽणंतरसुत्ते, वृत्तमणुग्धाइयं तु पच्छित्तं ।

तेण व सह संबंधो, ऐसो संदर्खो णामं ॥ ४८७९ ॥

तृतीयोहेशके यद्भक्षावन्सतृतं तस्य 'अनन्तराहुने' रोघकास्त्रे यो बहिर्मिक्षाचैर्यं गतस्तां रजनीं तत्रेव बहिरावसति तस्यानुद्धातिकं प्रायक्षितं साक्षादेवोक्तम्, अत्रापि तदेवानुद्धातिकं साक्षादेव सृत्रेणामिषीयते, एवं 'तेन वा' रोघकसूत्रेण समं 'सन्द्रष्टको नाग' सदशपूर्वीपरसूत्र-10द्वयसन्दंशकगृहीत इव सम्बन्धो भवति ॥ ४८७९॥ अथान्याचार्यपरिपाट्या सम्बन्धमेवाह—

उद्वियमंसा वितयानिवासिणो मा करेख करकरमं । इति सुचे आरंभो, आदछपदं च सुएइ ॥ ४८८० ॥ तह वि य अठायमाणे, तिरिक्खमाईसु होइ सेहुस्रं । निसिभुचं गिरिजण्णे, अरुणस्मि व दुद्धमाईयं ॥ ४८८१ ॥

16 ब्रजिकानिवासिनः सन्तः साधव उपितमांसाः सञ्जाताः करकर्म मा कार्षुरिति प्रम्तुतम् व्रिविषय आरम्भः । अर्थे च सम्बन्धः "हत्यकम्मं करेमाणे" इतिरुक्षणं अत्राधपदं स्व-यति ॥ ४८८० ॥

'तबाति' करकर्मणाऽप्यतिष्ठति परिणामे तिरश्चादिषु मैथुंनमृतिसेवनमिष कदाचिद् भवेद् इति द्वितीयपदसूचा । व्रजिकायां च गिरियज्ञादो सायाइसङ्ख्यां निश्चमक्तं प्रतिसेवत २० अरुणोदयवेरुणां वा दम्यादिकं गृहीयादिति तृतीयपदसूचा ॥ ४८८१ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातसास व्यास्था— 'त्रवः' त्रिसह्याकः 'अनुद्वातिकाः' उद्घातो नाम— 'अब्रेख छिकसेसं'' (गा०) इत्यादिविधिना भागपातः सान्तरहानं वा उद्घातः, स विश्वते येषु ते उद्घातिकाः, तद्दिपरीता अनुद्वातिकाः 'प्रज्ञप्ताः' तीर्थकरादिभिः प्रद्वपिताः । 'त्रवया इत्यानिकाः 'स्वप्रपद्वानार्थः । इत्ति इत्यति वा मुख्यानुव्यानेतिति इत्यः—शरीरेकदेशो निक्षया- 26 SSदानादिसमर्थः, तेन यन कर्म क्रियते तद् हरकर्म, तत् कृत्र्वन् । तथा स्त्री-पुग्युग्मं मिथुन- मुच्यते, तस्य भावः कर्मे वा मैथुनस् प्रच्यते, तस्य भावः कर्मे वा मैथुनस् । तथा रात्री भोजनम्—अञ्चनादिकं भ्रुष्ताः । एष सुत्रार्थः ॥ अथ निर्श्वक्तिवित्तराग्रह—

एकस्स ऊ अभावे, कतो तिगं तेण एकगस्सेव । णिक्सेवं काऊणं, णिप्फत्ती होइ तिण्हं तु ॥ ४८८२ ॥

३० इह त्रयाणां सङ्गणा प्रथमतो वक्तत्या । तत्रेकस्याभावे कुतस्थिकं सम्भवैति १ तेन कारणेन १ ⁴ > एतदन्तर्गतः याठः आ० कां० नास्थि ॥ २ एस्सो संवस्ताओ णाम ताथा० । एस्सो स्नार्थनाः

स्वहुओं अणिओं कंशा दे चयांगत भागा। देस्सा सामा तमा प्रसास स्वहुओं अणिओं कंशा दे चयांगत भागा। ४ आसे समझन्यं "हु भागा। ५ 'शुनं प्रतिसेवेत इति द्विं भागा ६ 'स्तरः—एकः कांशा ७ 'विति ? स्तरः प्रति हें स्तरः स्व

प्रथमत एकस्वैव निक्षेपं कृत्वा ततस्त्रयाणां निक्षेपस्य निष्पत्तिः कर्तव्या भवति ॥ ४८८२ ॥ यथापतिज्ञातमेव करोति---

> नामं ठवणा दविष, मातुगपद संगहेक्कए चेव । पञ्जव भावे य तहा, सत्तेएकेकगा होति ॥ ४८८३ ॥

नामेककं स्थापनेककं द्रत्येककं मातृकापदेककं सङ्ग्रदेककं पर्यवेककं भावेककम् । एतानि व सप्तैककानि भवन्ति ॥ ४८८३ ॥

तत्र नाम-स्थापने क्षुण्णे । द्रव्येककं पुनर्ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तमाह— द्व्वे तिविहं मादुकपदिम्म उप्पण्ण-भूय-विगतादी ।

सालि चि न गामा चि न, संघो चि न संगहेकं तु ॥ ४८८४ ॥ 'द्रेत्ये' द्रव्यविषयं एककं विविधम् , तथथा—सिचित्तमचित्तं मिश्रं च । सचित्तं पुनरिष १० द्विपद-चुत्तपदा-ऽपदमेतात् विधा । तन द्विपदेककं एकः पुरुषः, चुत्तपदोककं एकोऽश्च एको हस्ती, अपदेककं एको दृशः इत्यादि । अचित्रकं एकः परमाणुः एकामामणम् । मिश्रेककं सत्ताह्रातः एकः पुरुषः । मानुकार्यदे तु चिन्त्यमाने एककं उत्यन्त-मूत-विगतादिकम्, 'उपम् इ वा, विकार द वा, वुवे इ वा' इत्यव्य पदन्तस्यकेतत्रमित्यः। आदिवाद्याद् अकाराय- क्षरास्मिकाया वा मानुकार्या एकतरं पदम् । सङ्कहैककं बहुत्वेऽप्येकवचनाभिषेयम् , यथा— 15 शालिरिति वा माम इति वा सङ्घ इति वा ॥ ४८८४ ॥ अथ पर्योयेककादीनि दर्शयति—

दुविकप्पं पञ्जाए, आदिइं जण्ण-देवदत्तो ति । अणादिइं एको ति च. पसत्थमियरं च मावम्मि ॥ ४८८५ ॥

पर्यायैककं 'द्विविकत्यं' द्विमकारम्, तद्यथा— आदिष्टमनादिष्टं च, विदोषरूपं सामान्य-रूपं चेत्यथं: । तत्रादिष्टं यज्ञदत्तो देवदत्त इत्यादि, अनादिष्टमेकः कोऽपि मनुष्य इत्यादि । 20 अथवा पर्यायेककं वर्णादीनामन्यतम एकः पर्याथः । मावैककं द्विया—आगमतो नोआगमन तक्ष । आगमतो ज्ञाता उपयुक्तः । नोजामनादः अत्यक्तम् 'इतस्व' अमशत्तामिति द्विष्टा । प्रस्तक्तमायिकादीनामेकतरो भावः, अपशत्तमीदिको भावः । अत्रापश्चनायोवस्वायोवस्व सम्भवात् ॥ १८८५ ॥ अश्व 'विकस्य निक्षेपं कृते द्विकनिक्षेपः कृत एव भवति' इति मन्यमानिक्षकनिक्षेपज्ञापनार्थमिदमाइ—

नामं ठवणा दविए, खेत्ते काले य गणण भावे य । एसो उ खळ तिगस्सा. निक्खेवो होड सत्तविहो ॥ ४८८६ ॥

नामत्रिकं स्थापनात्रिकं द्रम्पत्रिकं क्षेत्रत्रिकं काङ्गिकं गणनात्रिकं भावत्रिकं चेति । एष सङ्गित्रकस्य निसेपः सप्तविभो भवति ॥ ४८८६॥

नाम-स्थापनात्रिके गतार्थे । द्रव्यत्रिकं ज्ञ-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं ज्ञापयति---

१ द्रव्यैककं त्रिविधम्—सचि° सा०कां०॥ २°त् त्रेषा मा०॥ ३°प्दैककं तु उत्प° भा०कां०॥ ४ द्विषा—मादि° सा०कां०॥ ५°सान्यं चे°का०॥ ६°स्तमप्रशस्तं चेति ब्रि° भा०कां०॥

दब्बे सिचतादी, सिचतं तत्थ होइ तिविहं तु । दुषय चतुष्पद अपदं, परूवणा तस्स कायन्त्रा ॥ ४८८७ ॥

द्रव्यत्रिकं सचिता-ऽचित्त-पिश्रमेदात् त्रिया । तत्र सचित्रत्रिकं सूर्यस्त्रिवयं मवति । तत्त्रया—द्विपदत्रिकं चतुष्पदत्रिकं अपदत्रिकम् । तस्य च सममेदस्यापे परूपणा कर्तव्या । इस्य च यथा सचित्रैककस्य कृता तथैवावगन्तव्या ॥४८८७॥

परमाणुमादियं खळु, अबिचं मीसगं च माठादी । तिपदेस तदोगाढं, तिष्णि व लोगा उ खेचिम ॥ ४८८८ ॥

परमाणुत्रयम्, आदिशब्दाद् हिपदेशिकत्रयं यावदन-तप्रदेशिकत्रयम्, एतदिचित्रिकं इष्टब्सम्। मिश्रत्रिकं तु माळात्रयं मन्तव्यम्, तत्र हि पुष्पाणि सचिवानि सुत्रमचिवानिति इत्या। 10 आदिमहणेन साल्हारपुरुषत्रयमित्यादि गृह्यते। श्लेत्रत्रयम्—त्रय आकाश्यदेशाः, "तदोगार्डं" ति तेषु वा—त्रिषु आकाशपदेशेषु अवसादं द्रव्यं क्षेत्रत्रयम्, 'त्रयो वा स्रोक्ताः' अयोकोक-तिर्यक्तिकोर्द्कोकरूक्षणाः क्षेत्रत्रयमुन्यते॥ ४८८८॥

तिसमय तडितिगं वा, कालतिगं तीयमातिणी चेव। भावे पसस्थमितरं, एकेकं तत्थ तिविहं तु ॥ ४८८९ ॥

काळत्रयं त्रयः समयाः, "तद्वितिगं व" चि त्रिममयिखानिकं वा द्रव्यं काळत्रयम्, अथवा अतीता-ऽनागत-वर्तमानकाळा एव काळत्रयम् । भावत्रयं प्रशस्तम् 'इतरद्' अप्रशस्तं चेति क्षिपा । पुगरेकेकं त्रिविधम् । तत्र ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेति प्रशस्तम्, गिस्यात्वमज्ञानमिवर-तिक्षेत्रयमस्तम् । अवितितिरिष हसकर्मं अधुन-रात्रिभक्तमित्तिस्मित्तिहिह प्रस्तावे त्रिविधा। अत्र चौगवैषिकारः ॥४८८॥ व्याख्यातं त्रय इति पदम् । ज्यानुद्धातिकार्यः व्याख्यात्वामाः — व्याग्तमायात्रात्र विकास्य । अत्र विवास्य । अत्

उग्घातमणुग्घाते, निक्मेत्रो छन्त्रिहो उ कायव्यो । नामं ठवणा दविए, खेते काले य भावे य ॥ ४८९० ॥

इह हस्त्वाद दीर्घत्वन उद्धातिकादनुद्धातिकस्य प्रसिद्धिरित कृतवा द्वयोरप्युद्धातिका-ऽनु-द्धातिकयोः पद्वियो निक्षेपः कर्तव्यः । तद्यथा—नामनि स्थापनायां दृश्ये क्षेत्रे काले भावे वेति ॥१८९०॥ तत्र नाम-स्थापने गताये । द्वव्यादिविषयमुद्धातिकमनुद्धातिक च दर्धयति—

उग्धायमणुग्घाया, दव्यस्मि हिलहराग-किमिरागा । खेचस्मि कण्हभूमी, पत्थरभूमी य हलमादी ॥ ४८९१ ॥

'द्रत्ये' द्रव्यत उद्धातिको हरिद्रारागः, सुखेनेवापनेतुं शक्यत्वतः, अनुद्धातिकः क्रमि-सगः, अपनेतुमध्यव्यत्वत् । क्षेत्रत उद्धातिकं कृष्णभूमम् , अनुद्धातिका प्रखरमूमिः । कुतः ! इत्याह—"हरुमादि" ति हरू-कुलिकादिभिः कृष्णभूममुद्धातिभृत्वं-शोदभितुं शक्यम् , प्रखर-३० स्मिरक्षम्या ॥ १८९१ ॥ तथा—

कालम्मि संतर णिरंतरं तु समयो य होतऽणुग्वातो ।

र वांकाचा में कां । र चांविरत्याऽचि भा का । "एत्य अविरहेए अहियारी" इति क्यों विशेषकूर्णी व ॥ ३ व्तियेतुं शक्यम्, न प्रस्तरभूमिः ॥ ४८९१ ॥ काळ कां ॥

भव्यस्स अङ्क पयडी, उग्घातिम एतरा इयरे ॥ ४८९२ ॥

कारुत उद्धातिकं सान्तरं पायश्विषस्य दानम्, अनुद्धातिकं निरन्तरदानम् । वुराव्याद् स्युमासादिकमुद्धातिकम्, गुन्मासादिकमनुद्धातिकम् । अथवा कारुतः समयोऽनुद्धातिको भवति, सण्डशः कर्तुमशक्यत्वात् ; आविष्ठिकाद्य उद्धातिकाः, सण्डियतुं शक्यस्वात् । भावत उद्धातिका मन्यस्याष्टी कर्ममकृतयः, उद्धातियतुं शक्यस्वात् । 'इतस्य' अमन्यस्य सत्कासाऽ प्व 'इतराः' अनुद्धातिकाः ॥ ४८९२ ॥ कृतः ! इति चेद् उच्यते—

जेण खवणं करिस्सति, कम्माणं तारिसो अभव्यस्स ।

ण य उप्पञ्जइ भावो, इति भावो तस्सऽणुग्घातो ॥ ४८९३ ॥
'येन' शुभाध्यवसायेन 'कर्मणा' ज्ञानावरणादीनां क्षणमसी करिष्यति स ताइशो भावोऽ-भव्यस्य कदाचिदपि नोत्पचते इत्यतस्तस्य भावोऽनुद्धातः, कर्मणासुद्धातं कर्त्तुमसमर्थः, अत एव १० तस्य कर्माणि अनुद्धातिकानि भण्यन्ते । अत्र च प्रायक्षितानुद्धातिकेनाधिकारः॥ ४८९३ ॥

तच्च कुत्र भवति ! इत्याह---

हत्थे य कम्म मेहुण, रातीभत्ते य हींतऽणुग्वाता । एतेसिं तु पदाणं, पत्तेय परूवणं बोच्छं ॥ ४८९४ ॥

हस्तकर्मकरणे मैथुनसेवने रात्रिमक्ते, एतेषु त्रिषु सुनोक्तपदेषु 'अनुद्धातिकाति' गुरुकाणि 18 प्राथिशानि भवन्ति । तत्र हस्तकर्मणि मासगुरुकस्, मैथुन-रात्रिभक्तयोश्चदुर्गुरुकाः । एत्रच प्राथिशं यदा यत्र स्थाने भवित तत् पुरस्ताद् व्यक्तीकरिष्यते । अथ 'एतेषां' हस्तकर्मादीनां त्रयाणामपि पदानां 'अत्येकं' पृथक् पृथक् प्रक्षणां वैक्थे ॥ ४८९४ ॥

यथाप्रतिज्ञातमेव निर्वाहियतुकामो हस्तकर्मप्ररूपणां तावदाह-

नामं ठनणाहत्थो, दन्बहत्थो य भावहत्थो य।

दुविहो य दन्वहत्थो, मूलगुणे उत्तरगुणे य ॥ ४८९५ ॥

नामहस्तः स्थापनाहस्तो द्रव्यवस्तो भावहस्त्वेश्वित चतुर्थे हस्तः । तत्र नाम-स्थापनाहस्तौ गतार्थे । द्रव्यहस्तो ज्ञगरीर-मञ्ज्यशरीरव्यतिरिक्तो द्विविधो भवति, तद्यथा —मूक्रगुणनिर्वितित उत्तरगुणनिर्वितितश्च । तत्र यो जीववित्रपुक्तस्य ज्ञरीरस्य हस्तः स मूक्रस्य-जीवस्य गुणेन — प्रयोगेण निर्वितित इति मूक्ष्युणनिर्वितितः, यस्तु काष्ठ-वित्र-रुप्यकर्मोदिषु हस्तः स उत्तर-१६ गुणनिर्वितितं उच्यते ॥ १८९५ ॥ अत्र भावहस्त्वमाह्—

जीवो उ भावहत्थो, णेयन्वो होह कम्मसंजुत्तो ।

चितियो वि य आदेसो, जो तस्स विज्ञाणजो पुरिसो ॥ ४८९६ ॥ ⊸''जीवो'' चि विभक्तिव्यत्ययाद् ⊳ यो जीवस हस्तः 'कर्मसंयुक्तः' आदान-निक्रेणादै-कियायुक्तः स नोजागमतो भावहैस्त उच्यते । द्वितीयोऽपि चात्रादेशः समस्ति—यः 'तस्य' ३० हस्तस्य 'विज्ञायकः' तदुपयुक्तः पुरुषः सोऽपि भावहस्तः, आगमत इत्यर्थः । अत्र नोजागमतो

१ ताटी सो बेंदे विवाऽत्यत्र—चक्के ॥ ४८९४ ॥ तद्यथा—नामं को ०॥ २ र् ० १० एत-इस्तर्गतः पढः भा ॰ नास्ति ॥ ३ °इस्तो कातव्यः । क्रि॰ को ० ॥

भावहस्तेनाधिकारः ॥ ४८९६ ॥ अथ कर्मपदं व्याचष्टे---

नामं ठवणाकम्मं, दन्वकम्मं च भावकम्मं च ।

दन्विम तुण्णदसिता, अधिकारो भावकम्मेणं ॥ ४८९७ ॥

नामकर्म स्थापनाकर्म द्रव्यकर्म भावकर्म चेति चतुर्धा कर्मणो निवेषः । तत्र नाम-स्थापने

• क्षुण्णे । द्रव्यकर्म ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं तुल्लणं वा दशिकानां वन्थनं वा, उपकक्षणमिदम्, तेन कुम्भकार-रथकारादिगतमि द्रव्यकर्म मन्तव्यम् । यद्वा व्यतिरिक्तं द्रव्यकर्म
द्विधा—कर्मद्रव्यं नोकर्मीद्रव्यं च । कर्मद्रव्यं ज्ञानावरणादिकर्मपयीयमनापत्राः कर्मवर्गणापुद्वकाः, यद्वा यद् ज्ञानावरणादिकं कर्म बद्धं न तावदुरयमागच्छति तत् कर्मद्रवयं न नेकमेद्रव्यं आकुष्वन प्रसारणोव्हेषण-प्रमन्तेदाल् पश्चथा । मावकर्म द्विधा—आगमतो
10 नोआगमतश्च । आगमतः कर्मपदार्थज्ञता उपयुक्तः, नोआगमतोऽष्टविधो ज्ञानावरणादिकर्मणासुद्रयः । एषां मध्येऽत्र कर्तमनाधिकारः ? इति चेद् अत आह—अधिकारोऽत्र 'मावकर्मण्य'
मोहोदयखक्षणेन । शेषास्तु थिप्यमतिव्युत्यादनार्थं प्रकृषिताः । ततो भावहत्तेन यत् कर्म
कियते तद् हस्तकर्म भण्यते इति प्रकमः ॥ ४८९७ ॥ अथ भावकर्मेव व्याचिकयासुराह—

दुविहं च भावकम्मं, असंकिलिहं च संकिलिहं च।

उप्पंतु संकिलिङ्कं, असंकिलिङ्कं तु वोच्छामि ॥ ४८९८ ॥ द्विषयं च भावकर्म, तपथा—असंक्षिष्टं च संक्षिष्टं च । चशब्दी स्वगतानेकमेदसूचको । तत्र संक्षिष्टं 'स्थाप्य' पश्चाद् वस्यते । असंक्षिष्टं तु साम्यतमेव वस्यामि ॥ ४८९८ ॥

यथाप्रतिज्ञातमेव प्रमाणयति ---

20

25

80 .

छेदणे भेयणे चेव, घंसणे पीसणे तहा।

अभिघाते सिणेहे य, काये खारे ति यावरे ॥ ४८९९ ॥

छेदनं भेदनं चैव घर्षणं पेषणं तथा अभियातः खेडश्च कायः क्षारः इति चापरः । एवमसं-क्रिष्टस्य कर्मणोऽष्टो भेदा भवन्ति ॥ ४८९९ ॥ एतानि च छेदनादीनि शुषिरे वा कुर्याद-शुषिरे वा । पुनरेकैकं शुषिरच्छेदनादि द्विधा । कथम् १ इति चेद् उच्यते —

एकेकं तं दुविहं, अर्णतर परंपरं च णायव्वं।

अद्वाऽणद्वा य पुणी, होति अणद्वाय मासलहुं ॥ ४९०० ॥

यदगुषिरस्य ग्रुषिरस्य वा छेदनं तदेकैकं द्विविषम्—अनन्तरं परम्परं च ज्ञातक्यम् । पुनरेकैकं द्विषा—अर्थादनर्थाच, सार्थकं निरर्थकं चेत्यथः । अनर्थकं छेदनादिकं कुर्वेदो मासल्खु, असामाचारीनिष्यत्रमिति भावः॥ ४९००॥

कथं पुनः छेदनमनन्तरं परम्परं वा सम्भवति ? इत्याह—

नह-दंतादि अर्णतर, पिप्पछमादी परंपरे आणा । छप्पइगादि असंजर्मे, छेदै परितावणातीया ॥ ४९०१ ॥

नसेंदेनीः आदिम्हणात् पादेन वा यत् छिद्यते तदनन्तरं छेदनमुच्यते । पिष्पलकेन आदिम्हणात् पाइलक्ष-छुरिका-छुक्करादिभिर्यत् छिद्यतं तत् परम्थर-छेदनम् । प्रमनन्तरं पर- म्परं वा छिन्दता तीर्थकर-गणभराणामाज्ञाभकः कृतो भवति । तं छिन्दन्तं दृष्टाऽन्येऽपि छिन्दन्ति इत्यनवस्या । 'पते तिष्ठन्तरुष्ठेदनादिकं सिहरं कुवैन्ति न साध्यायप्' एवं शय्या-तराह्ये चिन्तयति मिथ्यात्वम् । विराधना द्विविधा—संयमे आत्मनि च । तत्र वस्रादौ छिद्यमाने यद्पदिकाद्यये यद् विनाधनभूवैते सोऽसंयमः, संयमविराधनत्ययेः । अष्ट छेदनं कुवैतो हत्तस्य पादस्य वा छेदो भवति तत आत्माविराधना, तत्र च परिताप-ष्रहाः सादिन-६ व्यक्तं पादस्य वा छेदो भवति तत आत्माविराधना, तत्र च परिताप-ष्रहाः सादिन-६ व्यक्तं पाराधिकान्यं प्राथिकान्यः ॥ ४९०१ ॥ अष्य शदं शदोन पायिक्षवमाण्ड—

अञ्चलिर इसिरे लहुओ, लहुमा गुरुगो य होंति गुरुगा य । संघट्टण परितावण, लहु-गुरुगऽतिवायणे मूलं ॥ ४९०२ ॥

अशुषिरमनन्तरं छिनित मासल्यु, शुषिरमनन्तरं छिनित चुर्लेषुकम् । अशुषिरं परम्परं छिदन्तो गुरुको मासः, शुषिरं परम्परं छिन्दतश्चतुर्गुरुकाः भवन्ति । शुषिरं बहुतरदोषताद् १० गुरुतरम्, परम्परे शक्तप्रत्ये परम्परं छिन्दतश्चतुर्गुरुकाः भवन्ति । शुषिरं बहुतरदोषताद् १० गुरुतरम्, परम्परे शक्तप्रत्ये परक्षप्रदे पुनिदिषमरं मानश्चित्तम् । एवं शुद्धपरे पुनिदिषमरं मानश्चित्तम् — 'संचष्टमा' हत्यादि, छेदनादिकं कुर्वेन् द्वीन्द्रियान् सङ्घट्यति चहुरुष्, परितापयिति चहुर्गुरु, उपद्रावयति प्रत्युत्तान् सङ्घट्यति चहुरु, उपद्रावयति प्रत्युत्तः, परक्षप्रत्यति चहुरु, चरित्तपान् सङ्घट्यति चहुरु, उपद्रावयति चहुरः, चतुरिन्दियान् सङ्घट्यति चहुरु, परितापयति छेदः; पर्वेन्द्रियान् सङ्घट्यति चहुरु, परितापविति चहुरः, पर्वेन्द्रयान् सङ्घट्यति चहुरु, परितापविति मुरुप् । एवमिन्द्रियान्, सङ्घट्यति चहुरु, परितापविति मुरुप् । एवमिन्द्रियान् सेम्यन्ति चहुर्गः, पर्वेन्द्रयम्तिषात्रयति मुरुप् । एवमिन्द्रयान् सोम्यन्तर्यस् स्वाप्ति प्रत्यान् । स्वाप्ति स्वर्गः स्वाप्ति स्वर्गः । स्वाप्ति स्वर्गः । स्वाप्ति स्वर्गः । स्वर्गः । स्वित्तरं यथा पीठिकान्यामुक्तं (गा० ४६१) तथैवाश्चापि मन्तव्यम् ॥ ४९०२॥ अथवा द्वितीयोऽयमादेशः—

अञ्चित्तरार्णनर लहुओ, गुरुगो अ परंपरे अञ्चित्तरिम्म । ञ्चतिरार्णनेरें लहुगा, गुरुगा तु परंपरे अहुवा ॥ ४९०३ ॥ अञ्चिरेउनन्तरे रुषुको मासः, अञ्चित्तरे परम्परे गुरुको मासः। शुषिरेउनन्तरे **बतुर्लेषु, ३०** शुषिरे परम्परे चतुर्गुरुकाः। अथवेति प्रायक्षित्तस्य प्रकारान्तरताद्योतकः॥ ४९०३ ॥

एवं तावत् छेदनपदं व्याख्यातम् । अथ भेदनादीनि पदानि व्याख्यातुकाम इदमाह—

एमेव सेसएसु वि, कर-पादादी अर्णतरं होइ । जं त परंपरकरणं. तस्स विहाणं इमं होति ॥ ४९०४ ॥

ज तु परपरकरण, तस्स । वहाण इस हाति ।। ४००४ ।। 'एवमेव' छेदनवत् 'होयेच्चिप' मेदनादिषु पदेषु प्रायक्षितं चक्तव्यम् । नवरं कैर-पादाभ्याम् 25 आदिशब्दाद् जानु-कूर्गेएदिमेः शरीरावयवैः क्रियमाणं मेदनादिकमनन्तरं भवति । यत् तु मेदनादेः परम्पराकरणं तस्य विधानमिदं भवति ॥ ४९०४ ॥ तद्यथा—

कुवणयमादी भेदो, घंसण मणिमादियाण कहादी । पद्मावरादि पीसण, गोप्फण-घणुमादि अभिघातो ॥ ४९०५ ॥

''कुवणओ'' ट्युडस्तेन आदिशब्दाव् उपरु-लेष्टुकादिभिन्नी घटादेः 'मेदः' मेदर्नेष् , द्विषा so त्रिधा वा च्छिद्रपातनमित्यर्थः , एतत् परन्पराभेदनमुख्यते । एवं धर्षण मणिकादीनां मन्त-

१ °वते सा संयमविराधना। अथ मा०॥ २ °स्तरं प्रायश्चित्तं यथा का०॥ ३ °क्तरेण वा पादेन या आ° का०॥ ४ °नं भयति । धर्ष° का०॥ ५ °च्छित्रं पातयतीत्वर्थः। धर्ष° मा०॥

व्यव, यथा मणिकारा उकुटवेधान् कृत्वा मणिकान् घर्षन्ति । आदिशब्दात् प्रवासादिपरि-म्रष्टः । ''कहार्'' ति चन्दनकाछं फलकादिकं वा यद् घर्षति तहा घर्षणम् । ''पष्ट'' ति गन्ध-प्रकृत्वात्र वराः—पथाना ये गन्धासादादीनां पेषणं मन्तव्यम् । गोफणा—चर्मदवरकमयी प्रसिद्धा, स्या धनुःममृतिभिवी लेष्टुक्सुपलं वा यत् प्रसिपति एषोऽभिषात उच्यते ॥४९०५॥ अथवा—

बिहुवण-णंत-कुसादी, सिणेह उदगादिआवरिसणं तु । काओ तु बिंब सत्थे. खारो तु कठिंचमादीहिं ॥ ४९०६ ॥

बियुवर्न-वीजनकं णन्तकं-वस्त्रं कुशः-दर्भसात्मभृतिभित्रीजयन् यत् प्राणिनोऽभिहन्ति एष वा अभिषात उच्यते । सेहो नाम उदकेन आदिशक्दाद् घृतेन तैलेन वा आवर्षणं करोति । कायो नाम द्विपदादीनां 'विमयं' प्रतिक्षपित्ययः तत् रास्त्रेण परम्यराकरणम्तेन 10 पत्रच्छेषादियु निवर्तत्रेति । 'क्षारः' लवणं तमग्रापरे ग्रुपिरे वा कलिष्यादिभः प्रतिपति । 'क्षारिक्षा' वंशकपरी ॥ १९०६ ॥ एष दीधानाहः—

> एकेकार्तो पदातो, आणादीया य संजमे दोसा । एवं त अणदाए. कप्पड अद्वार्ष जयणाए ॥ ४९०७ ॥

एकैकसाद मेदनादिपदावाजाभक्षादयो दोषाः, संयमे आत्मित च प्रामुक्तनीत्या विराधना, 16 प्यमेते दोषा अनर्थकं छेदनादिकं कुर्वतो भवन्ति । अथ अर्थः—प्रयोजनं तस्मिन् पासे यतनया छेदनादिकं करोति तदा करुपते ॥ ४९०७ ॥ इदमेव द्वितीयपदं भावयति—

> अमती अधाकडाणं, दसिगादिगछेदणं व जयणाए । गुलमादि लाउणाले, कप्परमेदादि एमेव ॥ ४९०८ ॥

यथाकृतानां बंबाणामभावे दशिकाश्छेतव्याः, आदिशव्दात् प्रमाणाधिकस्य वा बस्नादेश्छे-१०दमं 'यतनया' यथा संयमा-ऽऽश्मविराधना न भवति तथा कर्तव्यम् । भेदनद्वारे—गुडादिपि-ण्डस्य मेदं कुर्यात्, अळाबु—तुम्बकं तस्य या नाळमधिकरणभयाद् भिन्यात्, कर्षरं-कपाळं तदादिना वा कार्यमुस्पन्नं ततो घटमीवादेर्भेदनम् 'एवभेव' यतनया कुर्यात् ॥ ४९०८ ॥

> अक्खाण चंद्रणे बा, वि घंसणं पीसणं तु अगतादी । बग्धातीणऽभिधातो. अगतादि पताव सणगादी ॥ ४९०९ ॥

ध्रिक्षक्रीत—अक्षाः—प्रसिद्धाः तेषां विषमाणां समीकरेणार्थस्, चन्दनस्य वा स्क्रानादेः परिदाहोपद्ममनार्थं घर्षणं कर्तव्यम् । पेपणद्वारे—म्क्रानादिनिमिचमेव अगदादेः पेषणं विधेयस् । असिषातद्वारे—क्याघादीनामभिभवतां गोफणया धनुषा वाऽभिषातः कार्यः, अगदादेर्बा मताप्यमानस्य ग्रुनक-काकादयोऽभिषतन्तो लेष्टुना मेषयितव्याः ॥ ४९०९ ॥

वितिय दबुङझण जतणा, दाहे वा भूमि-देहसिंचणता । पढिणीगा-ऽसिवसमणी, पडिमा खारो तु सेछादी ॥ ४९१० ॥ क्षेडद्वारे---'द्वितीयम्' अपनादपैदं प्रतीत्य क्षेडपुद्वरितं क्षारमध्ये प्रक्षिप्य परिष्ठापयेत् ।

१ °षा अवस्ति, संयमे आत्मिनि च विराधना छेदनपद्वद् भावनीया। प्रवमेते कां॰॥ २ °रणम्, चन्द्र° मा॰ को॰॥ ३ °पर्व तत्र को भा०॥ प्रधं-पानकं तस्त्रोज्कनं यतनया विषेयम् । "दाष्टे" ति खताया उष्णस्य या गादतरमिम-सापे मतिश्रयम्मिकायामावर्षेणं कुर्योत्, तृषाभिमृतं वा देहं सिखेत्, ग्लानं भक्तप्रस्या-स्थानिनं वा दाहामिमृतं सिखेत्। कायद्वारे—किश्वद् गृहस्यः मत्यनीकत्त्रस्योपद्यमनी प्रतिमां कृत्वा ततो यावद्यावनुकुलो भवति तावद् मार्कं जयेल, अशिवपद्यमनी वा प्रतिमां विद-ध्यात्। क्षारद्वारे—अनन्तरं परम्परं वा शुपिरेऽग्रुपिरे वा मस्तिसमनार्ये क्षारं प्रक्षिपेत् । । तत्र शुपिरे दर्श्ययिन—"स्वारो तु सिङादि" ति सेल्चं-वाल्यमं सिन्दूरं तत्र क्षारः क्षेपणीयः, किं सक्षातो न वा श्वरि ॥ ४९१० ॥ च उपसंदर्श्याह—⊳

> कम्मं असंकिलिङ्कं, एवमियं विष्णयं समासेणं । कम्मं तु संकिलिङ्कं, वोच्छामि अहाणुपुरवीए ॥ ४९११ ॥ किछं हानकर्म समासेन वर्णितम् । सम्पर्धतं संकिछं हानकर्म समास

प्वभिदमसिक्किष्टं हस्तर्कर्म समासेन वर्णितम् । साम्पतं संक्रिष्टं हस्तर्कर्म यथानुपूर्व्यो 10 वक्ष्यामि ॥ १९११ ॥ ⊲ तैदेवाह—-->

> नसहीए दोसेणं, दहुं सरितुं व पुन्वभुत्ताई । एतेहिँ संकिलिहं, तमहं वोच्छं समासेणं ॥ ४९१२ ॥

बसतेर्देषिण वा क्षीणां वाऽऽिक्रनादिकं विधीयमानं रष्ट्रा 'पूर्वभुक्तानि वा' क्षीभिः सार्धे हसित-कीडितादीनि सम्रत्य एतैः कारणैः 'संक्षिप्टं' हस्तकर्मे ययोत्पद्यते तदहं वक्ष्ये समासेन 16 ॥ १९१२ ॥ तत्र वसतिदोषं ताबदाह—

> दुविहो वसहीदोसो, वित्थरदोसो य रूबदोसो य । दविहो य रूबदोसो, इत्थिगत णप्रंसतो चेव ॥ ४९१३ ॥

द्विचियां वसितिदोषी भवति, तथया—विस्तरदोषश्च रूपदोषश्च । तत्र विस्तरदोषो पङ्घ-शास्त्रादिका विस्तीणी वसितः, स पश्चाद् वस्थते । रूपदोषो द्विभा—स्नोरूपगतो नपुंसक-10 रूपताका ॥ १९९३ ॥

> एकेको सो दुविहो, सिचतो खल्ज तहेव अधितो । अधितो वि य दविहो, तत्थगताऽऽगंतओ चेव ॥ ४९१४ ॥

'सः' श्लीक्रमंती नपुंषकरूपगतश्च दोष एकैको द्विविधः—सविदोऽचित्रश्च, जीवयुत-विषयोऽजीवयुत्तविषयश्चेत्यर्थः । अचित्तः पुनरपि द्विविधः—तत्रगत आगन्युकश्च॥ ४९१४॥ ²⁵ उमयमपि व्यावष्टे —

> कट्ठे पुत्थे चित्ते, दंतीवल महियं व तत्थगतं । एमेव य आगंतं, पालित्तय बेहिया जवणे ॥ ४९१५ ॥

याः काष्ठकर्माण वा पुस्तकर्मणि वा निवंतिता स्नीमित्तमा यद्वा दन्त-मयशुप्तकमयं मृतिकामयं वा स्नीरूपं यसां वसती वसति तत् तस्यां तमगतं मन्तव्यप्, तद्वि- ⁵⁰ पयो दोषोऽप्र्युपचारात् तत्रगत उच्यते । एवमेव चागन्तुकमि मन्तव्यप् । आगन्तुकं नाम-यद् अन्यत आगतस् । ततो यथा तत्रगताः स्नीमितमा भवन्ति तथाऽऽगन्तुका अपि भवेयुः ।

१-२ ৺ प्रतदन्तर्वतः पाठः मा• मास्ति ॥ ३ भतादिरेकेको दोषो द्विवि° कां० ॥ इ॰ १६६

तमा चात्र पादलिप्ताचार्यकृता "बेहिक" ति राजकन्यका दृष्टान्तः। स चायम्---

पालिसायरिएहि रत्नो भगिणीसिसिया जंवपिडमा कया । वंकमणुम्मेस-निमेसमयी साळविंदहत्वा आयरियाणं पुरतो चिड्ड । राया वि अईव पालिस्तामस्स सिणेहं करेह । पिजाइएहि एउट्टेहि रत्नो कहियं—मिगिणी ते समणएणं अभिजीगिया । राया न परिर्वित, 5 मणिजो य—पेच्छ, देसेसु ते । राया आगतो, पासिसा पालिसायरियाणं रुद्दो पचोसरिजो स्म । तजो सा आयरिएहि वैड सि विगरणी कया । राया सहसरे आउट्टो ॥

एकमागन्तुका अपि स्त्रीमतिमा भवन्ति । ''जवगे'' ति यत्रनिवयर्थे ईहवानि स्त्रीस्त्रपणि माचुर्वेण क्रियन्ते ॥ ४९१५ ॥ व्याख्यातं द्विविधमत्यत्तित्त् । अय सन्तिषं व्याख्यायते, तदपि द्विविधम—तत्रागतमाग्त्तकं नै । एनदमयमपि व्याख्यातयति—

> पिंडवेसिग-एकघरे, सिचत्तरूवं तु होति तत्थगयं। सण्णमसण्णवरे वा. एमेव य होति आगंतं॥ ४९१६ ॥

प्रातिनेदिमकपृद्धे एकपृद्धे वा—एकनैयोगश्रये कारणतः स्थितानां यत् स्थिया रूपं दृश्यते तत् तत्रगतं सचित्तं रूपं भवति । अथवा शून्यगृद्दमशून्यगृद्धं वा प्रविधेन या तत्र स्थिता स्त्री विकोक्यते तदिपं तत्रगतम् । एवमेव चागन्तुकमिपं सचित्तं स्त्रीरूपं भवति, प्रतिश्रये या स्त्री

16 समागच्छति तदागन्तुकमिति भावः ॥ ४९१६ ॥ अत्र तिष्ठतां दोषानुपदर्शयति—

आर्लिगणादी पडिसेवणं वा, दहुं सचित्ताणमचेदणे वा ।

सदेहि रूबेहि य इंघितो तू, मोहिंग्ग संदिप्पति हीणसत्ते ॥ ४९१७ ॥

तेषां तत्रगतानामागन्तुकानां वा सचितानां स्नीरूपाणामालिङ्गनादीनि प्रतिसेवनां वा कुर्वतो दृष्टा, अचेतनानि वा सीरूपाणि विलोक्य, प्रतिसेव्यमानाया वा स्त्रियः शब्दान् श्रुत्वा, तैः शब्दे २० रूपेश्च 'इन्पितः' प्रव्वालितः -व 'तुंः' पुनर्ष्यं >- मोहाभ्रिः कस्यापि हीनसत्त्वस्य भुक्तभोगिनोऽसुक-भोगिनो वा सन्दीप्यते, ततः स्मृतिकरण-कोतुकदोषा भवेयुः ॥ ४९१७ ॥ कथम् १ इत्याह—

कोत्हरुं च गमणं, सिंगारे कुडुछिद्करणे य ।

दिहे परिणय करणे, भिक्खुणों मूर्ठ दुवे इतरे ॥ ४९१८ ॥ कुत्तृड्ळं तस्पोत्यदो —आसन्ने गत्वा पश्यामि, शृणोमि वा शब्दम् , एवं कुतृह्ळे उत्पन्ने

३० तत्र गमनं कुर्यात, श्रक्तारं वा गायन्ती श्रुग्वा गच्छेत, कुष्यस्य वा छिदं कृत्वा प्रछोक्त्येत, इष्टे च सोऽपि तद्वावपरिणतो भवेत—अहमप्येषं करोमीति, एतद्वावपरिणतः कश्चित् तदेवालिकनादिकं करणं कुर्यात्। एतेषु स्थानेषु भिक्षोर्मूछं यावत् प्रायश्चित्तम्, 'इत्तरयोः' उपाध्याया-ऽऽवार्थयोर्थवाक्रमं 'हूं' अनवस्थाप्य-पाराश्चिकं चरमपुदे भवतः ॥ ४९१८॥

इदमेव ज्याचष्टे---

लहुतो लहुगा गुरुगा, छम्मासा छेद मूल दुगमेव।

र "यसिको प्रणि कां ।। २ झड सि मो० देः ॥ २ चेति । तदु कां ०॥ ध कर्ष वेदितव्यम्, प्रति कां ॥ ५ ৺ एतदन्तर्यतः पठः कां ० एव वर्तते ॥ ६ दृष्ट्वा च सा॰ कां ०॥ ७ "वादिकं कु" मा॰ ॥

20

दिहे य गहणमादी, पुन्तुत्ता पच्छकम्मं च ॥ ४९१९ ॥

तत्रगतः श्रुणोति मासल्यु, कुतृह्वं तस्योत्ययते मासगुरु, ब्रज्तसंबुर्ल्युकाः, श्रुक्कारं शृण्य-तश्चतुर्गुरुकाः, कुळ्यस च्ळिद्रकरणे पंण्मासा लयदः, छिद्रेण पश्यकास्ते पहुर्त्वः, तद्भावप-रिणते च्ळेदः, आलिक्तादिकरणे मुरुप्, एवं भिक्षोः मायश्चित्रगुक्तम् । उपाध्यायस्य मास-गुरुक्कारस्थ्यमनस्थाप्ये पर्यवस्थति । आचार्यस्य चतुर्ल्युकारारच्यं पाराक्षिके तिष्ठति । ऽ अन्याय——आरक्षिकादिभिर्देष्टे सति महणा-ऽऽकर्मणादयः पूर्वोक्ता दोषाः । या वा मतिमा सा कहाविवालिकसमाना भञ्जेत ततः पश्चात्करोतोषः ॥ ४९१९ ॥

पुष वसतिविषयो रूपदोष उक्तः । अश्र विस्तरदोषमाह—

अप्पो य गच्छो महती य साला, निकारणे ते य तर्हि ठिता उ ।

कजे ठिता वा जतणाएँ हीणा, पावंति दोसं जतणा हमा तू ॥ ४९२० ॥ । अल्प्रश्चासौ गच्छो यस्तत्र प्रतिश्रये स्थितः, शास्त्र च सा 'महती' विस्तीणां चङ्कशाले-सर्वः, ते च साभवो निष्कारणे 'तत्र' उपाश्रये स्थिता वर्तन्ते, अधवा कार्ये स्थिताः परं 'बतन्या' वस्त्रमाणस्क्षणया हीनाः, ततो वेदयामसृतिषु स्रीषु समागच्छन्तीषु 'दोषं' कोतुक-स्युतिकरणादिकं प्राप्नुवन्ति ॥ ४९२० ॥ कारणे तु तत्र तिष्ठतामियं यतना—

असिनादिकारणेहिं, अण्णाऽसति नित्थडाएँ ठायंति । ओतप्पोत करिंतीः संथारम-नत्थ-पादेहिं ॥ ४९२१ ॥

अधिवादिभिः कारणेः क्षेत्रान्तेऽतिष्ठन्तसत्त्र अन्यस्या वसतेरमाने विस्तृतायामपि वसतौ तिष्ठन्ति । तत्र च संस्तारकैर्वक-पात्रैश्च भूमिकां अोतप्रोतां कुर्वन्ति, मारुयन्तीत्यर्थः ॥ ४९२१ ॥ इदमेव व्यनक्ति---

भूमीए संथारे, अडुविषड्डे करेंति जह दहुं।

ठोतुमणा वि दिवसओ, ण ठंति रिंच तिमा जनणा ॥ ४९२२ ॥ विस्तीर्णायां वसती तथा भूम्यां संस्तारकान् अदीवतदीन् कुवैन्ति यथा तान् दृष्टा स्थातु-मनसोऽपि न तिष्टन्ति । एण दिवसती यतना । रात्री पुनरियं यतना ॥ १९२२ ॥

वेसत्थीआगमणे, अवारणे चउगुरुं च आणादी।

अणुलोसण निग्मसणं, टाणं अकृत्य रुक्खादी ॥ ४९२३ ॥ वेस्याकी यदि रात्रावागच्छीत भणति च— 'अहमप्यत्र वसामि' इति ततः सा वार-णीया । अथ न वारयन्ति ततःश्वर्त्तोरुकम् आज्ञादयश्च दोषाः । "अणुलोमणे" चि अनुक्रूलै-वेचनैः सा प्रतिचेद्धव्या न सरपरनैः, 'मा साधूनामभ्यास्यानं दयाद्' इति ऋत्वा । "निगमणे" चि यदि सा वेस्या निर्गन्तुं नेच्छिति ततः साधुभिनिर्गन्तव्यम्, 'अन्यक्षिन्' शून्यग्र्हीदि-

र °क्कारवारों छपु' मा॰ कां॰॥ २ घड्छ' मा॰ कां॰॥ ३ 'मिस्तदीये आखिङ्गनादी दृष्टे कां॰॥ ४ 'दतरे पाडकरतस्त्र तिष्ठन्तीऽन्यस्ता कां॰॥ ५ मा॰ विगाऽय—कोतपोत ति कुर्वेत्ति, साळ' तारी॰ भो॰ दें॰। जोतपोतां कुर्वेत्ति, देशीपदिसिदम्, तेन माळ' खं॰॥ ६ 'च्छिति 'कहमप्यत्र बसामि' इतिबच्चा ततः कां॰॥ ७ 'हादी स्थाव' बं॰॥

25

स्वाने स्थातन्यम्, तदभावे दृक्षमूलादाविष स्थेयम्, न पुनस्तत्रेति ॥ ४९२३ ॥ ≪ द्रैदमेव व्यक्तीकरोति—≻

> पुढवी ओस सजोती, हरिय तसा उनिधतेण वासं वा । सावय सरीरतेणग, फरुसादी जाव बनहारो ॥ ४९२४ ॥

म्बापि बहि: पृथिवीकायोऽवश्यायो वा, 'सञ्योतिवी' साप्तिका वा अन्या वसतिः, हरितकायक्तसमाणिनो वा तत्र सन्ति तथापि निर्गन्तव्यम् । अथ बहिरुपिक्षेतनमयं वर्षे वा वर्षेति श्वापदाः शरीरस्तेनका वा तत्र सन्ति ततः परुषवचनैरिष सा वेश्या भणितस्या— निर्भच्छास्पदीयात् प्रतिश्रयात् । आदिशब्दात् तथाप्यनिर्गच्छन्त्यां वन्धनादिकमि विषीयते, यावद् व्यवहारोऽपि करणे उपस्थितायाः कर्तव्यः ॥ ४९२४ ॥ इदमेव भावयति—

अम्हेदाणि विसिहिमो, इश्विमपुत्त बलवं असहणोऽयं । णीहि अणितें वंधण, णिवकडुण सिरिघराहरणं ॥ ४९२५ ॥

साधवो अणन्ति—वयं क्षमाशीला इदानी विविधं विशिष्टं वा सहामहे, ततो यसत्रा-कारवान् साधुः स दस्येते—अयं तु 'ऋदिमस्त्रत्रः' राजकुमारादिः 'वाङवान्' सहस्रयोधी 'असहनः' कोषनो वललारि भवती निर्काशियप्यति ततः स्वयमेव निर्मेच्छ । यदि निर्मेच्छति 15 ततो रूपम्, अथ न निर्मेच्छति तदा सर्वेऽि साधव एको वा बलवान् तां बन्नाति, ततः ममाते मुच्यते । मुक्ता च यदि नृरस्यान्तिके साधूनाक्षेति तदा करणे गत्वा कारणिकादीनां ब्यबहारो दीयते । तत्र च श्रीगृहोदाहरणं कर्तव्यम् । यथा—

यदि राजः श्रीगृहे रत्नापहारं कुर्वन् कश्चिचीरः प्राप्यते ततस्त्रस्य कं दण्डं प्रयच्छ्यः ! । कारणिकाः प्राहुः—शिरस्तदीयं गृखते । साधवो भणन्ति—असाकमप्येषा रत्नापहारिणी २० अञ्यापादिता गुप्पेव ग्रुक्ता । ते प्राहुः—कानि युप्पाकं रत्नानि ! । साधवो भणन्ति— ज्ञानादीनि । कथं तेषामपहारः ! । अनाचारप्रतिसेवनादपथ्यानगमनादिनेति ॥ ४९२५ ॥

अध सद्धीकः पुरुषः समागच्छेत् सोऽपि वारणीयः । तथा चाह—
अहिकारों वारणिंम, जत्तिय अप्फुण्ण तत्तिया वसही ।
अतिरेग दोस भगिणी, रिल आर्द्धे णिच्छुभणं ॥ ४९२६ ॥
आवरिते कम्मेहिं, सच् विव उद्वितो थरथरंतो ।
ध्रेचित य मेंडितानो, एकेकं मे निवार्टीमा ॥ ४९२७ ॥
निनामणं तह चैवा, णिशेस सदोसऽनिनामे जतणा ।
सज्झाए झाणे वा. आवरणे सदकरणे वा ॥ ४९२८ ॥

यत्र केवल पुरुषित्रिता वा स्नी समागच्छति तत्र सर्वेत्रापि वारणायमकारः, सा
30 कर्तव्येति भावः । अत एव चौरसर्गतो पङ्कशाल्यां न वस्तव्यं किन्तु यावद्रिः साधुभिः सा
"अप्रुण्ण" वि व्यासा भवति 'तावती' तावत्यमाणा वसतिरन्वेषणीया । अवातिरिक्तायां
वसतौ वसन्ति ततः 'दोषाः' पूर्वांका भवन्ति । कारणतस्तस्यामपि स्थितानां कश्चित् पुरुषः

१ < ▷ एतदन्तर्गतमवतरणं भा॰ कां॰ नास्ति॥

श्चीसहितः समागच्छति स चानुङ्कवैवेचोभिर्वारणीयः, वार्यमाणश्च मृ्यात्—'एषा मे भगिनी संरक्षणीया, साधूनां समीपे चाशङ्कनीया' इति च्छचना मणिला स्थितोऽसी, रात्री च मारक्षस्तां प्रतिसेविद्धं ततः साधुमिर्वक्तव्यः—व्यरे निर्क्त्ज ! किमस्मानत्र स्थितान् न पश्यसि यदेवम-कार्ये करोषि !; एवसुक्तवा निष्काशनं तस्ये कर्तव्यम् ॥ ४९२६ ॥

भाषाती निष्काश्यमानो रुप्येद् रुष्टश्च 'कर्ममिः' कथायमोहनीयादिभिः 'आह्तः' ठ आच्छादितः साधूनासुपरि शत्रुरिव रोषेण ''बरथरंतो'' ति भृशं कम्पमानः प्रहारं दातु-सुत्यितः वाम्योगेन च 'भिण्डिकाः' त्राडीर्महता शब्देन सुखति, यथा—''भे'' युष्माकमेकैकं निपातयामि ॥ ४९२७ ॥

एवं तस्मिन् विरुद्धे सङ्गाते तस्या वसतेः साधुभिनिर्गमनं 'तथैव' कर्तव्यं यथा पूर्वे वेदया-स्थियामुक्तं यदि वहिनिर्दोषम् । अथ सदोषं ततः 'अनिर्गमे' अनिर्गच्छतामियं यतना—10 स्थाप्यायो महता शब्देन कियते ध्यानं वा ध्यायते । यस्य स्थाध्याये ध्याने वा छब्धिनं मवति सः 'आवरणं' कर्णयोः स्थगनं विद्भाति 'शब्दकरणं वा' महता शब्देन बोले विषीयते ॥ १९२८ ॥ एवमपि यतमानस्य कस्यापि तत् प्रतिसेवनं द्वष्ट्वा कर्मोदयो भवेत् । कथम् ! इति चेद् उच्यते—

वडपादव उम्मूलण, तिक्खिम्म व विज्ञलिम्म वर्चता । कुणमाणी वि पयत्तं, अवसो जह पावती पडणं ॥ ४९२९ ॥ तह समणसुविहिताणं, सन्वपयत्तेण वी जतंताणं । कम्मोदयपच्हया, विराधणा कासति हवेजा ॥ ४९३० ॥

यथा वटपादपस्पानेकमूळपतिबद्धस्यापि गिरिनदीसिलळवेगेनोन्मूलनं भवति, ⊲ "तिक्ष्मिम्न व" वि विमक्तिव्यत्याद् ⊳ यथा वा तीक्ष्णेन नदीपूरेण कृतप्रयत्नोऽपि पुरुषो द्वियते, 20 'विवळ वा' कर्दमाकुळे वा व्रजन् प्रयत्नं कुर्वाणोऽप्यवद्यः पतनं यथा प्राप्नोति, तथा श्रमण- द्विविहितानां सर्वप्रयत्नेनापि निर्विकृतिकविधान-वाचनाधदानादिना यतमानानां ⊲ वंसतिदोषे-णानाचारदर्शनाद् मोहोदयः सङ्गायते । ततश्च ⊳ 'कर्मोदयग्रत्यिका' ⊲ वेदैमोहनीयकर्मो- दयहेतुका ⊳ कर्त्यप्रवित्रारस्य चारितविराधना भवेत् ॥ ४९२९ ॥ ४९३० ॥ एवमसा- वुदीणमोहो द्विदर्बेकसमुदयमिकसोद्यम्रस्यो

पढमाएँ पोरिसीए, बितिया ततियाएँ तह चउत्थीए । मूर्ल छेदी छम्मासमेव चत्तारि या गुरुगा ॥ ४९३१ ॥ भैममायां पौरूषां इस्तर्कमं करोति मुरुम, द्वितीयायां छेदः, तृतीयायां पण्पासा गुरुवः,

१ °स्य विषेपम् ॥ ४९२६ ॥ अ॰ कं॰॥ २ °नस्यापि तत् प्रतिसेवनं दृष्टा कस्यापि मोद्दोदयो कं॰। "एरं पि वर्षतस्य कस्ति कम्मोदतो होआ । कहं !—ववपादक गाह्यस्म" वि सूर्णी विशेषसूर्णी व ॥ २ ४ ० म् एतिस्तात्मीतः पाठः कां० एव वस्ते ॥ ४ ४ ० म् एतदन्तर्मतः पाठः आ० कां० गास्ति ॥ ५ ४ ० म् एतदन्तर्मतः पाठः कां० एव वस्ते ॥ ६ कस्यापि सारि आ० कां०॥ ७ मोद्दोजयाक्मतरं प्रपण्कां०॥

बक्का मत्ता गरवः ॥ १९३१ ॥ एंनानेव निर्शुक्तिगार्था व्याच्हे— निर्ति पडमपोरिसुन्मन, अदहिंति सेवणे भवे मूर्ल । पोरिसिपोरिसिसहणे, एकेकं ठाणगं इसड ॥ ४९३२ ॥

'तिशि' रात्री प्रधमपोरुयां मोहोई वो जातः तस्वामेवाइड पूर्तियदि इस्तर्कमं सेवते तदा अमुक्य । अथ प्रधमपोरुषीमधिसख द्वितीयायां सेवते छेदः । द्वे पौरुष्यावधिसख तृतीयायां सेवते पहुरवः । तिलः पौरुषीरिधसख चतुर्यां सेवमानस्य चतुर्युरुकाः । एवं पौरुषीपौरुषी-स्कृते प्रकृतं प्रायक्षितस्थानं इसति ॥ ४९३२ ॥

वितियम्मि वि दिवसम्मि, पिंडसेवंतस्स मासियं गुरुअं । छद्रे पचक्खाणं, सत्तमए होति तेगिच्छं ॥ ४९३३ ॥

10 एवं रात्री चतुरो यामानिधसद्ध द्वितीये दिवसे मथमणैरुच्यां प्रतिसेवमानस्य मासगुरुकम् । तदः परं सर्वत्रापि मासगुरुकम् । लघ्नि तु प्रायश्चितानि अत्र न भवन्ति, अत एवेदं इस्तकमै-सेवनमनुद्वातिकमुञ्चते । एवमसी प्रतिसेव्य सङ्घाटिकस्यान्यस्य वा कस्याच्यालोवयेत् । स म्र्पं प्रतिकस्यान्यस्य मामुक्तस्य प्रष्टः साधुस्तं पति त्रवीति—व्यत् कृतं तदकृतं न भवति, सम्प्रति भक्तप्रत्यास्यानमश्चिक्त । < संसमके चैकित्स्यं भवति । इयमत्र भावना—⊳ । असिमाने मुचीति—अस्य मोहोदय्यं निर्विक्ततिका-ऽवमोदिरिकादिस्या चिक्तस्या कर्तव्या ॥ १९३३ ॥ तथा—</p>

पडिलाभणःद्वमिंम, णवमे सही उवस्सए फासे । दसमस्मि पिता-पुत्ता, एकारसमस्मि आयरिए ॥ ४९३४ ॥

अष्टमे साथौ प्रतिलामनाया उपदेशो भवति । नवमो मृते—श्राद्धिका उपाश्रये समानी-20 यते सा भवतः धरीरं स्थिरोत् । दशमे साथौ—पिता-पृत्रो युवां सज्ञातिकमामं गत्वा चिकित्सां कुरुतिमायुपदिशति । < प्कादशे सङ्घाटिकमाथौ आचार्याः इत्युक्षेतेनोपदेशो मबति । किमुक्तं भवति १—ः एकादशे प्रवीति—यदाचार्या आदिशन्ति तद् विघेहि । भयं गुद्धः ॥ ४९२४ ॥ शेषेषु प्रायधित्तमाइ—

> छद्वी य सत्तमी या, अहसुद्धा तेसि मासियं लहुवं। उनिरिष्ठ जंभणंती, थेरस्स वि मासिनं गुरुगं॥ ४९३५॥

१ इत्मेव ज्या भाग ॥ २ 'द्भयोऽजनि ततस्त्या' है। ॥ ३ ताटी० मो० दे० विनाऽण्यत्र— सत्र व भवस्ति । अत प्रवाद्भार्था । अत्र इस्तक्षां वस्ते न भवस्ति । अत्र प्रवाद्भार्था । स्वन्य मावगुर्व, स्वाध्मार्था प्रवादा प्रवादा । इस्तु व्यादा । १ व अवस्तरीक्षण्या । भव्य विविद्या स्वाध्मार्था । भव्य विविद्या । स्वाध्मार्था । भव्य विविद्या । स्वाध्मार्था । भव्य विविद्या । स्वाध्मार्था । भव्य । स्वाध्मार्था । भव्य । स्वाध्मार्था । स्वाध्मार्या । स्वाध्मार्था । स्वाध्मार्यार्था बह्न-संसंमी 'यबाहुद्धी' न दोषपुक्तसुपदेशं ददाते, यतश्च गुरूणासुपदेशमन्दरेण खेच्छ्या मणतस्ततो मासिकं खबुकं तयोः प्रायश्चित्तम् । 'उपरितनाः' शहम-नवम-दशमा यत् सदोष-सुपदेशं मणन्ति तेन त्रयाणामपि मासगुरुकम् । स्वितस्सापि पितुः पुत्रेण सह सज्ञातमामं गच्छतो मासगुरुकम् ॥ ४९३५ ॥ अथामृतेन वहादिसाधूनासुपदेशान् विद्वणोति—

संघाडगादिकहणे, जं कत तं कत हयाणि पचक्खा । अविसद्धो दहवणो, ण समति किरिया से कायव्या ॥ ४९३६ ॥

जान अक्षा (बुडनना) ज समारा माराना समाराना ति हरिस ति सा सहारिकस्य लादिशकात् अन्यस्य वा 'हत्तकर्म कृतं मया' इत्येवं कथने कृते सिति स ब्र्यात्—यत् कृतं तत् कृतमेव, इदानीं मकं प्रत्यावश्च हैं, किंत ने अष्टपतिक्रस्य जीवितेन हैं इति । ससमः प्राह—'अविशुद्धो दुष्टमणः' रण्ककादिकः कियां विना न शास्यति अतः किया 'सै' तस्य कर्तव्या, एवं भवताऽप्यस्य मोहोदयमणस्य निर्विकृतिका-उवमीदिरिकादिका किया 10 विश्वेया येनोण्यामो भवति ॥ १९३३ ॥

पडिलाभणा उ सड्डी, कर सीसे वंद ऊरु दोचंगे। स्लादिरुयोर्मंजण, ओअड्डण सङ्क्रिमाणेमी ॥ ४९३७ ॥

लष्टमः पाह—''सङ्घा'' श्राविका सा प्रतिलामनां करोति, प्रतिलामयन्त्यां चोवीः पात्रके स्थिते यथामावेनाम्थ्रपेत्य वा वालिते जरुमध्येन द्वितीयाङ्गादिकमवैगळति, ततः सा श्रादिका 15 करेण स्पृश्चाति, ''सीसे वंद'' वि द्योर्षण वा वन्दमाना पादौ स्पृशेत्, ततः स्वीस्पर्शेन बीज-निसर्गो भवेत् । नवमः पाह—''स्लाइस्व'' वि शूलम् आदिमहणाद् गण्डमन्यतरद्वा तदनु-रूपं रुग्जातमकसातुत्पादते ततः श्रादिका आनियते, सा तत् शूलादिकमप्माजैयति ''ओलदृण' वि गाहतरमुद्धतेयति एवं बीजनिसर्गो भवेत् ततः श्रादिकामानयामः॥ ४९३७॥

सक्तायपछि पेहिं [णं], मेहृणि खुईत णिग्ममोवसमी । अविधितिगिच्छा एसा, आयरिकहणे विधिकारो ॥ ४९३८ ॥

यस्य मोहोदयः समुत्यन्नसम्य पितरं प्रति दशमो भणति— 'सज्ञातकपीर्कं' सज्ञातकप्रीमं ''णं'' इति एनं आत्मीयं पुत्रं नय, तत्र मैथुनिका—मातुळदुहिता तथा सह ''खुईत'' वि सोपहासवचनैर्भिन्नकथाभिः परस्यरं हस्तसङ्कर्षेण च कीडतो बीजनिर्गमो भवेत्, तत्रश्च मोहो- पश्चमो भवति। एवा सर्वाऽट्यविधिचिकित्सा भणिता। यस्तु ब्रवीति—आचार्याणामेतदा- 25 छोचय, तत्तस्ते याँ चिकित्सामुपदिशन्ति सा कर्तव्या। एतदेकादशस्य साथोविधिकथनमुख्यते ॥ ४९३८॥ अत्रैव प्रकारान्तरमाह—

सारुवि गिहत्थ [मिच्छे], परतित्थिनपुंसेंगे य स्रयणया । चउरो य द्वंति लहुगा, पच्छाकम्मम्मि ते चेव ॥ ४९३९ ॥

१ 'तमी साधू यथागुद्धी मन्तव्यो । यथागुद्धी नाम-दोपयुक्तमुपदेशं न द्दतः। यत' के ॥ २ जहक मे । एतमागुद्धापेक मो । दीका । दस्ता टिक्प्पी ४ ॥ ३ 'यका सि वे ॥ ४ 'पर्यव्यक्ति मो । ॥ 'शामं 'तम्' इति मा ॥ १ 'वणं गत्याऽन्ते माग्री औ- वे ०॥ ७ यां कियामुप' के ॥ ८ साक्किय विहस्त्वे, पर' मा ० किम ॥ ९ 'कमेसु सुव' ताना ॥ ॥

कश्चिद् मृथात्— 'सारूपिकः' सिद्धपुत्रः तद्रूपो यो नपुंसकस्तेन हस्तकर्म कार्यताम् । द्वितीयः माह्— गृहस्यपुराणनपुंसकेन । तृतीयो भणति— मिथ्यादृष्टिनपुंसकेन । चतुर्यो मवीति— परतीर्थिकनपुंसकेन । एतेषां चतुर्णामिष ''स्यणय'' ति हस्तकर्मकरणे 'सूचनां' भेरणां कुर्वाणानां चत्वारो उपवस्तपः-कार्जविशेषिता भवन्ति । तत्र मथमे द्वास्थामिष उपवः, विहितिये तपसा उपवः, तृतीये कालेन उपवः, चतुर्थे द्वास्थामिष गृरव हति । अत्र ते हस्तकर्मे कुर्वाणाक्षेत्र , उद्यो द्वास्थामिष गृरव हति । अत्र ते हस्तकर्मे कुर्वान्त, उद्यकेन हस्तो धावन्तित्यथः, तत्रापि 'त प्व' चतुर्लयवः ॥१९३९॥

एसेवं कमो नियमा, इत्थीस नि होइ आणुपुन्नीए।

चउरो य अणुग्वाया, पच्छाकम्ममिनै ते लहुगा ॥ ४९४० ॥

'ण्ए एव' सारूपिकादिकः कमो नियमात् स्त्रीणामिष वानुपूर्व्या वक्तव्यो भवति ।

10 तद्यबा—प्रथमो प्रवीति— सिद्धपुत्रिकया हत्तकमें कार्यताम्, एवं द्वितीयः—मृहस्यपुराणिकया, नृतीयः—मिर्थाहिष्णहस्यताः, नृतुर्थः—परतीर्थित्या । चतुर्णामप्येषंभणतां स्त्रीरम्ईकारापणपरवयाध्यत्यारः 'अनुद्धाताः' गुरुका मासास्त्रयेव तपः-कालविद्रोपिताः मायश्चित्तम् ।

स्थास्कर्मणि तु 'त एयं 'चस्तदेषिणः'

इति द्वारम् । 'इद्वा स्मृत्या वा पूर्वगुक्तानि' इति द्वारद्वयं तु यथा निद्योये प्रथमोद्देशके

15 प्रथमसुत्रे व्यास्वातं तथेवात्रापि मन्तव्यम् । तदेवगुक्तं हस्तकर्मः। अथ मेशुनमभिषिस्तुराह—

मेहुण्णं पि य तिविहं, दिन्वं माणुस्सयं तिरिक्खं च । ठाणाईं मोत्तुणं, पडिसेवणि सोधि स चेव ॥ ४९४१ ॥

मैथुनमि त्रिविषम् । तथयां—दिव्यं मानुष्यं तेरश्चं च । अत्र च येषु स्थानेप्वेतानि दिस्थादीनि मैथुनानि सम्भवन्ति तानि गुक्तवा स्थातव्यम् । यदि तेषु तिष्ठति तानि वा २० दिव्यादीनि प्रतिसेवते तदा तदेव स्थानपायश्चित्तं सेव च प्रतिसेवनायां श्लोधिर्यो प्रथमोड्देशके सागारिकस्त्रेत्रेऽभिहिता (गा० २४७० तः)॥ ४९५१॥

अथ द्वितीयपदं सप्रायश्चित्तमुच्यते । तत्र परः प्रेरयति ---

मूलुत्तरसेवासुं, अवरपद्मिंग णिसिज्झती सोधी।

मेहुण्णे पुण तिविधे, सोधी अववायतो किण्णु ॥ ४९४२ ॥

५ 'मूल्गुणोत्तर्गुणपतिसेबनासु' ৺ प्राणातिपात-पिण्डविशोधिमशृतिविषयासु ৮ 'अपरपदे' उत्सगिरिक्षमा अन्यसिक्षपवादास्थे स्थाने 'शोधिः' प्रायश्चित्तं तावत्रिषिध्यते, न दीयत इत्यर्थः, भैथुने पुनिक्षियेऽपि किमर्थभाषादतः प्रतिसेच्यमाने बोषिर्सिधास्तते : ॥४९४२॥

स्रिराह—द्विविवा प्रतिसेवना—दर्षिका कल्पिका च अनयोः मरूपणार्थं तावदिदमाह— राग-दोसाणुगया, तु द्षिपया कप्पिया तु तदभावा ।

राग-दासाधुगया, तु दाप्पया काष्पया तु तदभावा । आराधणा उ कप्पे, विराधणा होति दप्पेणं ॥ ४९४३ ॥

राग-द्रेषाभ्याम् अनुगता-सहिता या प्रतिसेवना सा दर्षिका, या त कल्पिका सा 'तद-

र "व गर्मो तामा॰ ॥ २ "किम चडलडुगा तामा॰ ॥ २ प > एतरन्तर्गतः पाठः सा॰ डा॰ नार्खा ॥ ४ "प्रिचीयते ? मा॰ ॥ ५ "णार्खसिदमाह सा॰ डा॰ ॥

भावात्' राग-द्रेवाभावाद् भवति । शिष्यः प्राह—दर्पेण करुपेन वाऽऽसेविते किं भवति ! इति उच्चते — करुपेनासेविते झानादीनामाराचना भवति, दर्पेण पतिसेविते तेषामेव विदायना भवति ॥ ४९४३ ॥ आह—यदि राग-द्रेयविरहिता कष्टिगका भवति ताई मैथुने करिपकाया अभावः प्राप्नोति । उच्यते —प्राप्नोतु नाम, का नो हानिः ! । तथा चाह—

कामं सन्वपदेसु वि, उस्सम्म-ऽववादधम्मता जुना । मोतुं मेहुणभावं, ण विणा सो राग-दोसेहिं ॥ ४९४४ ॥

'कामन्' अनुमत्मिदमसाकम्—'सर्वेष्विप पदेषु' मूळोत्तरगुणरूपेषु 'उत्सर्गा-ऽपवाद-धर्मता युक्ता' उत्सर्गः-अतिषेषः अपवादः-अनुजा तद्धमंता—त्रवृञ्जगता सर्वेष्विप पदेषु युज्यते; तथापि मुक्तवा 'मैशुनभावम्' अब्रह्मात्येवनम्, तत्र उत्सर्गधर्मतैव घटते नापवादधर्मता। क्रिमर्थम् १ इत्याह—असौ मैशुनभावो राग-द्वेषाभ्यां विना न भवति, अतौ द्वितीयपदेऽपि न 10 तत्रामायश्चित्तीति हृदयम् ॥ ४९४४ ॥ अयं पुनरस्ति विरोषः—

संजमजीवितहेउं, कुसलेणालंबणेण वऽण्णेणं। भयमाणे तु अकिचं, हाणी वड्डी व पच्छिते॥ ४९४५॥

'संयमजीवितहेतोः' 'चिरकार्ल संयमजीवितेन जीविष्यामि' इति बुद्धा 'कुशलेन वा' तीर्याज्यवच्छित्त्यादिलक्षणेनान्येनाप्यालम्बनेन 'अकृत्यम्' अत्रक्ष 'भजमानस्य' आसेवमानस्य 10 प्रायक्षिते हानिर्वा नृद्धिर्या वहस्यमाणनीत्या भवति ॥ ४९४५ ॥

आह-मैथुने कल्पिका सर्वथैव न भवति ? इति अत आह-

गीयत्थो जतणाए, कडजोगी कारणम्मि णिहोसो । एगेर्सि गीत कडो, अरचऽदुट्टो तु जतणाए ॥ ४९४६ ॥

गीतार्थः 'यतनया' अरुपतरापराधसानप्रतिसेवारूप्या 'कृतयोगी' तयःकर्मणि कृताभ्यासः 20 'कारणे' ज्ञानादी सेवते, एव प्रथमो भक्षः, अत्र च प्रतिसेवमानः करिपक्रमतिसेवावानिति कृत्या निर्दोषः । गांतार्थं यतनया कृत्योगी निष्कारणे, एष द्वितीयो सङ्गः, अत्र सदीषः । एवं चलुणो पदानां बोडङा भक्षाः कर्तन्याः । एकेषां पुनरावार्याणामिद्ध पष्ट पदानि भवन्ति— गीतार्थः कृत्योगी अरक्तो अद्विद्धे यतनया सेवते, एष प्रथमो भक्षः, गीतार्थः कृत्योगी अरक्तो अद्विद्धे यतनया सेवते, एष प्रथमो भक्षः, गीतार्थः कृत्योगी अरक्तो अद्विद्धे यतनया सेवते, एष प्रथमो भक्षः, गीतार्थः कृत्योगी अरक्तोऽद्विद्धोऽयतनया, एष द्वितीयो भक्षः; एवं पञ्चामः पद्विद्धीप्रवाद्य भक्षा भवन्ति । अत्रापि 25 प्रथमभक्षे करिषका प्रतिसेवा गन्तन्या, न रोषेषु ॥ १९४६ ॥

आह—यदि तत्र कल्पिका तर्हि निर्दोष एवासौ, उच्यते—

जति सन्वसो अभावो, रागादीणं हविज निहोसो । जतणाजतेस तेस त. अप्पतरं होति पच्छितं ॥ ४९४७ ॥

यदि 'सर्वेवाः' सर्वेपकारीय रागादीनाममावी मैथूने भवेत् ततो भवित्रोंषः, तच अ गास्ति, अतो न तत्र सर्वया निर्दोषः, परं यतनायुतेषु 'तेषु' गीताशीदिविशेषणविधिष्टेषु साधुष्वरूपतरं प्रायक्षित्तं भवति ॥ १९१७ ॥ अथ यतुक्तम्— "हानिईदिनौ प्रायक्षिते भवति" (गा० १९१५) तत्र हानिं ताबद् विवरीपुराह—

कुरुवंसम्मि पहीणे, रजं अकुमारगं परे पेक्षे । तं कीरत पक्खेवो, एत्थ य गुद्धीऍ पाधण्णं ॥ ४९४८ ॥

कश्चिद् क्पतिरनपत्यः स मिन्निणा श्रोकः —यूयमपुत्रिणस्तः कुळवेरो प्रत्नीणे राज्यसकु-मारकं माला परे राजानः भरवेदाः ततः क्रियतामपरपुरुषप्रक्षेपः, स चौपायेन तथा कर्तंन्यः ६ यथा छोके अध्यवः प्रवादे न समुच्छळति कुमारश्चोत्यस्ते, 'अत्र च' उपायनिक्रपणे बुद्धेः प्राधान्यम्, तयेवासौ सम्यक् परिज्ञायते नान्ययेति भावः॥ ६९४८॥ इदमेव सविशोगमाह—

सामत्थ णिव अपुत्ते, सचिव मुणी धम्मलक्स वेसणता । अणहवियतरुणरोधो. एगेसि पडिमदायणता ॥ ४९४९ ॥

'अयुने' अयुत्रस्य न्रियंस्य सचिवेत तह ''सामस्यणं' पयो ठोजनम्, यथा—कथं नाम

10कुमारः सम्भविता ! । ततो मिश्रिण भणितम्—यथा परक्षेत्रेऽपरेण बीजम् सं क्षेत्रसामित

आभाव्यं भवित एवं तवान्तःपुरक्षेत्रेऽन्येनािप बीजं निस्तृष्टं तथेव पुत्रो भवित । राज्ञा प्रतिपक्षं

तद्वचनम् । सूयोऽप्यमात्यः प्राह—ये मुनयोऽयशःप्रवादाङ्गजन्ते ते 'धर्मरुक्ष्येण' धर्मकथाकारायणस्याजेन यद्वा ''धम्मरुक्त्ये''ति 'राजा सान्तःपुरः श्रावको गृहेऽहेतां प्रतिमाः गुश्रूषते

ताः साषको बन्दिनुमागच्छते' हत्यंवं धर्मन्याजेन ''वेदणय'' चि प्रवेशनीयाः । प्रवमसात्य
15 वननं प्रतिपत्त राज्ञा तथेव इतम् । ततो राजगृहं प्रविष्टेषु साधुषु ये तरुणाः अवनायीजाः—

अविनष्टंषाजौक्षेषां रुक्षणादिमिज्ञात्वा रोधः—नियन्नणा इता, शेषास्तु क्षुष्ठक-स्थितादयो

तसर्विताः । यद्वा ''तरुण्क्षीभिः सार्षे वरुष्टं भोगान् भोजियदुमारिमिरे । राजपुरुष्याक्ष्य धोरक्षप्रिणे भणन्ति—यदि भोगान्न

भोध्यच्चे ततो वयं मारियप्यामः । तत्रैकः साधुः

20 ''वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं, न चापि भर्म चिरसञ्चितं त्रतम् ।

वरं हि रुत्युः सुविशुद्धकर्मणो, न चापि शीलस्मिलितस्य जीवितम् ॥'' इत्यादि परिभाव्य मैर्तुमध्यवस्तिः, तस्वैवमनिच्छतो राजपुरुषेः शिरिष्ठितम् । ''प्गेर्सि पडिमदायणय'' चि 'एकेशार्' आचार्याणामयमिशायः, यथा—मन्देतरप्रकाशे प्रदेशे लेप्य-प्रतिमाया लक्षारसपूर्णोर्याः शीर्षं छित्त्वा दर्शितम्, ततः साधयो मणिताः—ययैतस्य 25 शिरिष्ठित्तम् एवं मवतामपि शिरश्छेदो विधास्यते ॥ ४९४९ ॥ इदमेव भावयति—

तरुणीण य पक्सेत्रो, भोगेहिँ निमंतणं च भिक्सुस्स । भोतुं अणिच्छमाणे, मरणं च तिहँ ववसियस्स ॥ ४९५० ॥

तरुणीनां साधुभिः सहान्तःपुरे प्रक्षेपः कृतः, मोगैश्वैकस्य भिक्षोः प्रथमतो निमन्नणं कृतम्, तस्य च मोकुमनिच्छतो गरणं च तत्र व्यवसितस्य शिरक्छेदश्यके ॥ ४९५० ॥

दहुण तं विससणं, सहसा सामावियं कइतवं वा।

१ °पतेः स॰ के । २ °प्रवीयांसो॰ का । १ °स्ते उस्रणादिभिन्नांत्या दद्धाः, दोषा॰ मा०॥ ४ ताटी० मो० के विवाडव्यम-मरणमध्ये मा०। मरणमङ्गीकतुंमध्ये का । ५ कदमका॰ मा० का । १ व्याः 'पुरुषोऽयं मार्वेत्रे' इति सृषयुष्वेः शीर्वे का ॥

विगुक्तिया य ठठणा, हरिता भयता व रोमंची ॥ ४९५१ ॥
'तत्' तथाविधं 'विश्वसनं' व्यपरोपणं 'लामाविकं' ताधोरेव 'कैतविकं ना' मितायाः क्रियमाणं सहसा दृष्टा 'विञ्क्तिताश्च' अरुक्कृत-विनृषिता ठउना विञ्जेक्य कस्यापि हर्षेण भयेन वा रोमाक्षो भयेत् । ⊲ सैकारोऽङ्काक्षणिकः ⊳ ॥ ४९५१ ॥ अत्रैन मायश्चितमाह—

सुद्धुष्ठसिते मीए, पद्मक्खाणे पडिच्छ गच्छ थेर विद्। मूर्ल छेदो छम्मास चंडर गुरु-लहु लहुग मासो ॥ ४९५२ ॥

सस्ताबद् माण्मस्यवस्तिः स गुद्धः । द्वितीयः—उक्कसितः-'एतेनापि भिषेण क्षित्रं माप्सामः' इति बुद्धा उद्धपितरोमक्षः सङ्गातस्त्य मूटम् । अपरः—यदि न मित्रेसे तत्रे मम श्विरिष्टछवते; एवं मीतस्य मित्रेसेनातस्य च्छेदः । अपरिक्षन्तयति—अहमेवं मार्थमाणः समापि नासादिष्य्यामि, असमाधिमण्णेन च दुर्गतिक्वमी, अतो मक्तप्रसास्यानं कृत्या मिर्रेप्ते; 10 एवं सेवामस्य पहुरवः । अपर इदमाल्यनं करोति—अहं जीवन् मतिच्छकानां वाचनां दास्यामि; तस्य पद्धचवः । अपर इदमाल्यने—गच्छं सारिष्यामि; तस्य चतुर्जुदः । अपर इदमाल्यने—मया विना स्वविराणां न कोऽपि कृतिकर्मं करिष्यति अत्वेदां वैषाष्ट्रस्यक्रतं प्राप्ते मेत्रस्य स्वविराणां न कोऽपि कृतिकर्मं करिष्यति अत्वेदां वैषाष्ट्रस्यक्रतं कोऽपि विसेने; तस्य चतुर्जुद्धकः। अपरः परिभावयति—विद्वांतः—आचार्यासेषां वैषाष्ट्रस्यक्रतं कोऽपि न विचते तदर्भं मतिसेने; तस्य मासस्युक्तम् ॥ ४९५२ ॥ इँदुसेव व्याख्याति— 15

निरुवहयजोणियीणं, विजन्तणं हरिसमुद्धक्तिरें मूर्लं । भय रोमंचे छेदो, परिण्ण काहं ति छम्पुरुवा ॥ ४९५३ ॥ मा सीदेज पडिच्छा, गच्छो फिट्टेज थेर संवेच्छं । गुरुणं वेयावचं, काहं ति य सेवतो लहुओ ॥ ४९५४ ॥

पश्चपञ्चाशतो वर्षाणासुपरिष्टादुपहतवानिका स्त्री भवति, "तेषामारतो अनुषहतवानिका, 30 गर्भ गृह्वातीत्वर्धः । एवं निरुपहतवानिकस्त्रीणां 'विकुर्वण' मण्डनं दृष्टा यस्य हर्षः सम्रह्मस्ति तत्वश्चात्रक्ष प्रतिसेवमानस्य तस्य मृत्रम् । यस्य तु भवेन रोमाञ्च उरावते तस्य च्छेदः । परिज्ञा-मक्तमत्वास्त्र्यानं तां करिष्यामीति यः परिणतस्तस्य बहुरुकाः ॥ ४९५३ ॥

'मा मतीच्छकाः सीदेयुः' इति बुच्या यः सेवते तस्य ग्व्रुङ्काः । यस्तु 'मां विना गच्छः स्किटेत्' इत्यारुम्बते तस्य चतुर्युरु । 'स्पविरान् सङ्गदीन्यामि' इति इत्या सेवमानस्य 26 चतुर्रुषु । 'गुरुणां वैयाष्ट्र्यं करिप्ये' इति हेतोः सेवमानस्य रुपुमासः ॥ १९५४ ॥

उक्ता प्रायश्चित्तस्य हानिः । अथ वृद्धिमाह—

ल्हुजो उ होति मासो, दुन्भिस्स्वऽविसक्राये य साहूजं। बेह्यकुरागरचो, सुङ्गो चिय केच्छए गंतुं ॥ ४९५५ ॥ कालेणेसणसीर्धि, पयहति परिसाबितो दिगिछाए।

१ र > एतरन्तर्यतः पाढः मा॰ कां॰ नालि ॥ २ खडर गुरुगा लडुग मास्त्रो इतिरुप एव पाढः सर्वासिष प्रतिषु क्वेते, अवनीचीनवायमिक्समिन्ने प्रावर्तितः पढः ॥ १ वनामेच निर्मुकिः नार्या ख्वार कां॰ ॥ श्र सहारतो मा॰ ॥

अलगंते चिय मरणं, असमाही तित्थवीच्छेदी ॥ ४९५६ ॥

'इह दुभिसं सविष्यति' इति मला सूरिभितगातमेव गच्छं गृहीला निर्गनत्वय । अध स्वयं अङ्काब्रुव्यदिशीणास्ततः साधवो विसर्जनीयाः । अध न विसर्जयित तत आवार्यस्थासामाचारीनिष्पन्नो लघुको मासो भवति आज्ञादयश्च दोषाः । एते चापरे तत्र दोषा भवन्ति—

६ स गच्छो दुभिन्ने भक्त-पानमरुभागाः ''दिगिछाए'' वि चुसुस्था परितापितः सत् 'कालेन'

काळकसेण एषणाष्ट्रदियपि प्रजहाति, मरणगपि चासमाधिना भक्तमरुभमानस्य भवेत्, तीर्थक्ष्यवच्छेदश्च भवति, अतो विसर्जनीयः सर्वोऽपि गच्छः । तत्र च विसर्जते चिक्तं भवेतः हि अत आह—''नेहाणुराग' हत्यादि पूर्वगायायाः पश्चार्दम् । > स्नेहानुरागरकः कश्चित्
क्षुक्रको नेच्छति गन्द्रं परमनिच्छत्रपि प्रेषितः । ततोऽसौ गुरुखेहानुरागरवाचो देशकन्थात्
10 प्रकायित्वा प्रतिनिद्वराः । सूरिभिरभिहितम्—दुष्टु त्या कृतं यदेवं भूवः प्रत्यागतः ।
आचार्यश्च स्वयं केपुचिक्रआपुद्देषु यो भिक्षा रुमन्ते तस्यः संविभागं क्षुक्रका प्रयच्छित ।
ततः क्षुक्रकश्चित्ति—अहो ! मया गुरवोऽपि क्रेशिताः । ततः स पृथग् मिक्षां हिण्डितः ।

सत्रेका प्रोपितपतिका क्षुक्रकप्रसर्गमन्ति नाथि व च—

भक्तं प्रतिपत्यामीति ॥ ४९५५। ॥ १९५५ ॥ एवं च—

भिक्खं पि य परिहायति, भोगेहिँ णिमंतणा य साहुस्स । गिण्हति एकंतरियं, लहुगा गुरुगा चउम्मासा ॥ ४९५७ ॥ पडिसेवंतस्स तिर्हे, छम्मासा छेदों होति मूलं च । अणबट्टपो पारंचिओ य पुच्छा य तिविहम्मि ॥ ४९५८ ॥

भैक्षमि दुर्भिक्षानुभावेन परिहीयते भोंगेश्च निमम्रणा तस्य साथोः समजनि ततः स 20 विन्तयति—यथेनां प्रतिसेविद्धं नेच्छामि ततो भक्ताभावादसमाधिमरणेन म्रिये, अतः साम्प्रतं तावत् प्रतिसेवे, पश्चाद् दीर्षं कालं संयमं पालविष्यामि सुत्रार्थे च म्रहीष्यामि एतत्प्रत्ययं च प्राथिश्चं चरिष्यामि; एवं चिन्तयिता यतनां करोति । क्ष्यम् ? इत्याह—"गिण्हर्" इत्यादि, एकान्तरितं भकं गृह्वति प्रतिसेवतं च । तत्र प्रथमदिवसं प्रतिसेवमानस्य चत्वारो लघुमाताः । द्वितीये दिनेऽभक्तामेन स्थित्वा तृतीये दिने प्रतिसेवमानस्य चत्वारो ह्यूनास्ताः ॥ १९५७ ॥ 28 एवमेकान्तरितं मकं गृह्वत्स्यां चे 'तत्र' तादशे दुर्भिक्षे प्रतिसेवमानस्य पञ्चम-सत्तमयोदित्यो-यंश्वाकमं षण्मासा लघ्वो गुरवश्च भवन्ति, ततो नवमे दिने च्छेदः, तत एकादशे मृत्यम्, तदनन्तरं प्रतिसेद दिविःऽनवस्याप्यम्, ततः पञ्चदो दिश्व प्रतिसेवमानस्य पाराञ्चिकम् । भाव निरन्तरं प्रतिसेवते तदा द्वितीयदिवस्य एव मुलस्य । एषा ब्रद्धिरभिक्षता ।

"पुच्छा य तिविहम्मि" चि शिष्यः पृच्छति—'त्रिविषे' दिव्य-मानुष्य-तैरक्षळक्षणे मेथुने कि कथमभिकाष उत्पद्यते ! ॥ १९५८ ॥ सरिगह—

१ ॰ प्रवस्तर्गतः पाडः भा॰ को॰ नाति ॥ २ ताडी॰ मो॰ डे॰ विनाऽयश—च प्रतिसेव॰ मानस्य 'तत्र' पञ्च' भा॰ को॰ ॥ ३ °तमातिषु दिनेषु पण्मासा रुपयो गुरसभ अवस्ति, तवरकेदः, ततो मुरुम्, तदनस्तरमनवस्थाप्यम्, ततः पाराश्चिकम् । अय निर° भा० ॥

बसहीए दोसेणं, दहुं सरिउं व पुन्वश्वसाहं।

तेगिच्छ सद्दमादी, असजाणा तीस वी जतणा ॥ ४९५९ ॥

'वसते दें बिण' स्त्री-पशु-पण्डकसंसक्ति छक्षणेन, यद्धा स्त्रियम् आलिक्ननादिकं वा दृष्टा, गृहस्त्रकाले वा यानि स्त्रीभिः सार्षे भुक्तानि वा हिसतानि वा लिलतानि वा तानि स्मृत्वा मैथुनमाव उत्पचते । एवसुत्यने किं कर्तैच्यम् ! इत्याह—''तेगिच्छ'' इत्यादि, चिकत्सा उ कर्तेच्या, सा च निर्विकृतिकमधितिका। तामतिकान्तरस्य शब्दादिका - ये। यतना कर्तेच्या । किंगुक्तं भवति !— अत्र स्थाने स्त्रीयदं रहस्यक्षदं वा ग्रुणोति तत्र स्वित्रसहितः स्वाप्यते, आदिशब्दाद् यत्रालिक्ननादिकं पश्यति तत्रापि स्थाप्यते । ''क्षसक्रण' 'ते तत्यां शब्द-स्वणादिक्यायां चिक्तिसायां सन्तं—सक्तो गृद्धिरिति यावत् सा तेन न कर्तेच्या । एवं 'त्रिच्यपि' दिव्यादिष् मैथुनेयु यतना मन्तंच्या ॥ ४९५९ ॥ इत्येव सविरोधमाह—

बिइयपदे तेगिछं, णिव्वीतियमादिगं अतिकंते ।

सनिमित्तऽनिमित्तो पुण, उदयाऽऽहारे सरीरे य ॥ ४९६० ॥

द्वितीयपदे निर्विकृतिका-ऽवमीदिरिका-निर्वेकाहारोर्द्धस्थाना-ऽऽवाग्ल-ऽप्रकार्थ-प्रधा-ऽष्टमा-दिरूपां चिकित्तामतिका-तस्य शब्दादिकाऽनन्तरोक्ता यतना भवति । एषा च सनिमिचेऽनिमिचे वा मेश्वनामिकाषे भवति । तत्र सनिमिचो वसतिदोषादिनिमिचसप्टस्थः, अनिमिचः पुनः कर्मो-15 दयेन १ आहारतः २ शरीरपरिवृद्धितश्च ३ य उत्सवते । सर्वमेतद् यथा निद्योधे प्रथमोदे-शके भणितं तथैव द्रष्टव्यम् ॥ ४९६० ॥ गतं मैश्वनम् । अथ रात्रिभोजनमाह—

रातो य भीयणम्मि, चउरो मासा हवंतऽणुग्धाया । आणादिणो य दोसा, आवज्जण संक्रणा जाव ॥ ४९६१ ॥

रात्रो भोजने कियमाणे चत्वारो मासाः 'अनुद्धाताः' गुरवो भवन्ति आजादयश्च दोषाः । 20 ये च प्राणातिपातादिविषया आपत्ति-शङ्कादोषाः परिमहस्मापत्ति शङ्कां च यावत् प्रथमोद्देशके च ''नो⁸ कप्पड् राजो वा वियाले वा असणं वा ४'' इत्यादौ रात्रिभक्तद्वत्रे (सूत्र ४२) ⊳ इहैबाभिहितास्त्रे सर्वेऽपि द्रष्टव्याः ॥ ४९६१ ॥ अथ द्वितीयपदमाह—

णिरुवहवं च खेमं च, होहिति रण्णो य कीरत् संती । अद्धाणनिग्गतादी, देवी पूयाय अज्झियमं ॥ ४९६२ ॥

उपद्रवो नाम-अशिवं गरूरोगादिकं वा, तस्याभावो निरुपद्रवम् । 'क्षेमं' परचकाश्रुपछवा-भावः । ततः 'निरुपद्रवं च स्त्रेमं च मदीये देशे भविष्यति' इति परिभाज्य राजा शान्ति कर्त्कुकानस्वपस्थिनो रात्री भोजयेत् । यहा राजपुत्री वा नागरा वा 'राज्ञः शान्तिः क्रियतात्र' इति कृत्वा ये रात्री न अुकति सुतपस्थिनश्च ते रात्री भोजनीयाः, पूप तत्व्य विद्याया उपचार इति परिभावयन्ति, ते च सामवोऽध्यनिर्गतादयस्त्रत्र सम्प्राक्षाकातो वश्यमाणो विधिवंधातज्यः । ३० यहा राज्ञः कस्वापि देवी वानयन्तरपूर्जा कृत्वा तपस्थिता रात्रिभोजनळक्षणम् 'अजिक्षयकं'

१ < ▷ एतविडमध्यमतः पाठः भा० को० नास्ति ॥ २°ळाचे कर्त्तद्या । तत्र को० ॥ ३ << ▷ एतवस्यर्गतः पाठः भा० को० नास्ति ॥

उपयाचितं मन्येत ॥ ४९६२ ॥ कुतः ! इति चेद् उच्यते---

अवबीरिया व पतिणा, सवत्तिणीए व पुत्तमाताए। भेलण्योण व पुद्रा, वृग्गहउप्पादसमये वा ॥ ४९६३ ॥

'धतिना' भर्त्रा 'अवधीरिता' अपमानिता सा देवी, यहा या तस्याः सपत्नी सा पुत्रमाता क्षत्रमा न सुष्ठु बहुभान्यते, ग्रह्मात्वेन या सा गाढतरं ६९ष्टा, वित्रहो वा तस्याः केनापि साध्युत्पनस्ततो वित्रहोत्पादस्य झमनार्थं वानमन्तरपूजा कर्तव्या, स च वानमन्तरो रात्री साखु भोजितेषु परितोषगुद्वहति ॥ ४९६३ ॥ ततः—

एकेकं अतिणेउं, निमंतणा भोयणेण विपुरेणं।

भीतुं आणिच्छमाणे, सरणं च तिहं वबस्तिरस्त ॥ ४९६४ ॥

एकैकं साधुं बळाभियोगेन राजभवने 'अतिनीय' प्रवेश्य रात्रौ विपुळेन भोजनेन निमब्रणा
कृता, अभिहिताश्च साधवः—यदि सम्प्रति न भोध्यध्वे ततो वयं व्यवरोपयिष्यामः ।

एवमुके तेशमेकस्य साधोस्तदानीं भोकुमनिच्छतो मरणं च तत्र व्यवसितस्य शिरिङ्क्षस्,
द्वितीयो द्वशिद्क्षसितः, तृतीयो मीत इत्यादि यथा मैथुने तथा मन्तव्यम् ॥ ४९६४ ॥

अत्र पायश्चित्तमाह----

15

सुद्धुष्ट्वसिते मीए, पश्चन्स्वाणे पडिन्छ गन्छ थेर विद् । मूर्ल छेदो छम्मास चढरों मासा गुरुग लहुजो ॥ ४९६५ ॥ गतार्था (गा० ४९५२)॥ ४९६५ ॥ अत्र यतनामाह—

> तत्त्रेव य भोक्लामो, अणिच्छें भ्रंजामों अंधकारम्मि । कोणादी पक्तेवो, पोइल माणे व जति णीता ॥ ४९६६ ॥

शत्रो भोज्यमानेः साष्ट्रमिरिम्पातव्यम्—भाजनेषु गृहीत्वा ततः 'तत्रैव' स्वमतिश्रये मोध्यामहे, न वर्तते गृहस्थानां पुरतो भोकुम्; एवमुक्तवा ततोऽस्यसागारिकं नीत्वा परिष्ठाप-यित । अधान्यत्र नेतुं न प्रयच्छिति भणिति च—असमाकं पुरतो भोक्तव्यम्; ततो वक्तव्यम्—प्रदीपमपनयत, अन्यस्यके भोजनं कुसीः; ततसेषामपस्यतां कोणेषु आदिशक्वाद् अपरत्र वा एकान्ते करकान् प्रक्षिपति । अथवा बस्तेण पोहलकं बद्धा तत्र मिश्रपति त, भाजनेषु अव प्रतिपत्ति यदि निजकानि अकाबृति भवत्ति ॥ ४९६६ ॥

अश प्रदीपं नापनयन्ति तत इदं वक्तव्यम्---

गेलण्णेण व पुट्टा, बाहाडऽरूची व अंगुली वा वि । भ्रंजंता वि य असटा, सालंबाऽम्रुच्छिता सुद्धा ॥ ४९६७ ॥

यदि ते दुर्बन्नस्ततो भणन्ति—स्कानस्तेत स्पृष्टा वयस्, स्तबास्माकमपण्यस्, बाद् ३० सञ्जादिकामस्ततो व्रियामहे, तस्मान्मा ऋषिहत्यां कुरुत । अथवा श्रीयतन्त्रयम्—अस्मानिर्गन्नकं बाबद् शुक्तम्, बाहाहं च-ममृतं युक्तानां कुतो रुचिरुपनायते ! यथेवं न प्रवर्षपनित ततो मारुस्मानेनाकुर्की वदने प्रविष्य वननसुरुपादयन्ति । यदि तथापि न प्रतियन्ति ततः स्तोकं

१ प्रस्वयस्ति ताटी० मो० डे० ॥

तन्मच्यादास्त्रादयन्ति । अत्र तथापि न विसर्जयन्ति तत एवं साळ्म्बनाः 'अशळः' राग-द्वेप-रहिता असूर्व्छिताः स्त्रोकं मुझाना अपि शुद्धाः ॥ ४९६७ ॥ उपसंहरत्नाह—-

> एत्थं पुण अधिकारो, अणुषाता जेसु जेसु ठाषेसु । उचारियसरिसाइं. सेसाइँ विकोवणद्वाए ॥ ४९६८ ॥

'अत्र पुतः' प्रस्तुतस्त्रे ⊲ ईस्तकसं-नैशुत-रात्रिमक्तविषयैः स्वातैः ⊳ 'अधिकारः' प्रयो- 5 जनम् । कैः ? इत्वाह—चेषु येषु स्वातेषु 'अनुद्धातानि' गुरुकाणि प्रायश्चित्तानि सणितानि तैरेबाधिकारः । 'दोषाणि' ⊲ व्हेषुमायश्चित्तसहितानि स्वातानि ⊳ पुनरुक्वारितार्थसदृशानि ग्रिष्याणां विकोपनार्थसक्तानि ॥ १९९८ ॥

॥ अनुद्धातिकप्रकृतं समाप्तम् ॥

पाराश्चिक प्रकृत मृ

10

15

सृत्रम्---

तओ पारंचिया पन्नत्ता, तं जहा—दुट्टे पारंचिए, पमत्ते पारंचिए, अन्नमन्नं करेमाणे पारंचिए २ ॥

अस्य सम्बन्धमाह---

बुत्ता तवारिहा खलु, सोधी छेदारिहा अघ इदाणि । देसे सब्वे छेदो, सब्वे तिविहो तु मूलादी ॥ ४९६९ ॥

तपोही होषिः सञ्च पूर्वसूत्रे प्रोक्ता, अभेदानीं छेदाहीऽभिषीयते । स च च्छेदो द्विषा— देशतः सर्वतश्च । देशच्छेदः पश्चरात्रिन्दिवादिकः षण्मासान्तः । सर्वच्छेदः 'मृलादिः' मृला-ऽनवस्थाप्य-पाराश्चिकमेदात् त्रिविधः । अत्र सर्वच्छेदः पाराश्चिकछक्षणोऽपिकियते ॥ ४९६९ ॥ आह यथेवं तर्हि—

> छेओ न होइ कम्हा, जित एवं तत्थ कारणं सुणसु । अणुघाता आरुवणा, कसिणा कसिणेस संबंधो ॥ ४९७० ॥

छेद पव स्त्रेऽपि कस्मान भवति ?, ''ततो छेदारिहा पत्रता, तं बहा—दुहे छेदारिहे" हत्यादिस्त्रं किमर्थं न पठितप् ? इति भावः । स्रिराह—यथेवं भवदीया बुद्धिस्ततोऽत्र कारणं र्थंणु— या किखादिस्त्रेऽनन्तरोकेऽनुद्धातास्त्राऽऽरोपणा भणिता सा 'क्वत्सा' ⊲ गुँरुकेत्यर्थः, № 26 हयमपि पाराश्चिकारूयाऽरोपणा कृत्स्त्रेव, अतः क्वत्स्त्राया आरोपणाया अनन्तरं कृत्स्त्रेवारोपणा-ऽभिषीयते । एम सम्बन्धः ॥ १९७० ॥

१ ৺ ▷ एतन्मध्यमतः पाठः भा० कां॰ नास्ति ॥ २ ৺ ▷ एतम्बान्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥ ३ 'ऋष्य' निदासय । तथाठि—या कां॰ ॥ ४ ৺ ▷ एतपनर्मतः पाठः भा॰ कां॰ अस्ति ॥

25

80

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य ब्यारुषा—त्रयः पाराधिकाः प्रज्ञताः । तषाया—दुष्टः पारा-श्चिकः, प्रमत्तः पाराधिकः, 'अन्योन्यं' परस्परं मुल-पायुगयोगतः प्रतिसेवनां कुर्वाणः पाराधिक इति सुत्रसमासार्थः ॥ अथ विस्तरार्थे भाष्यकृत् विभणिपुराह—

अंचु गति-प्रणम्मि य, पारं पुणऽणुत्तरं बुधा विति ।

सोधीय पारमंचइ, ण यािव तद्यूतियं होति ॥ ४९०१ ॥ "अञ्च गति-पून्नयोः" इति वचनाद् अञ्चर्यातुर्गत्नो पूजने चात्र गृखते । तत्र गत्यथां यशा—पारं—तीरं गच्छति येन प्रायिक्षेत्रनासेवितेन तत् पाराधिकत् । अप पारं किन्दुच्यते ! इत्याह—'पारं पुनः' संसारसमुद्रस्य तीरमृत्य 'अनुत्तरं' निर्वाणं 'चुपाः' तीर्थकदावयो हुवते, अनेतासेवितेन साधुनीक्षं गच्छतीति भावः । तद् यस्यापयते सोऽप्युरचारात् पाराधिक । १० उच्यते । यहा शोधेः 'पारं' पर्यन्तमञ्जति यत् तत् पाराधिक म्, अपिथमं पायिक्षतिस्वयः । पूजायां यथा—'न चारि' नैव 'तत्' पायिक्षतपरामनमपूजितं किन्तु पृत्वितमेव, ततो येन तप्ता पारं प्रापित अध्यते—अभ्रमणसङ्खेन पूज्यते तत् पाराधिकं पाराधितं वाऽभिधीयते । तथागात् साधुरपि पाराधिकः ॥ ४९०१ ॥ अथ तमेव मेदतः प्रस्पाति—

आसायण पहिसेवी, दुविहो पारंचितो समासेणं। एकेकम्मि य भयणा, सचरिचे चेव अचरिचे॥ ४९७२॥

एकंकांम्म य अयणा, सचरित्तं चेव अचरित्तं ॥ ४९७२ ॥
पाराधिकः समासेत द्विविषः, तद्यथा—आशातनापाराधिकः प्रतिसेविषाराधिकधा ॥
पुनरेकेकस्मित् द्विविधा भजना कर्तव्या ॥ कथम् ः इत्याह—द्वावप्येतौ सचारित्रिणौ वा
स्थातामचारित्रिणौ वा ॥ ४९७२ ॥ कथं पुनरेषा भजना ः इत्याह—

सञ्चिरित्तं भस्सति, केणित पडिसेवितेण तु पदेणं । कत्थति चिद्वति देसो, परिणामऽवराहमासञ्ज ॥ ४९७३ ॥

केनचिदपराधपदेन पाराधिकाशिक्षोश्येन प्रतिक्षेत्रिते सर्वभिष चारित्रं अश्यित, कुत्रापि पुनः चारित्रस्य देशोऽवतिष्ठते । कुतः १ हृत्याह—'परिणामं' तीत्र-मन्दादिरूतम् 'अपराधं च' उत्कृष्ट-मध्यम-जपन्यरूपमासाध चारित्रं भवेता न वा ॥ १९७३ ॥ इदमेव भाववति—

तुरुम्मि वि अवराधे, परिणामवसेण होति णाणत्तं ।

कत्थति परिणामम्मि वि, तुल्ले अवराहणाणत्तं ॥ ४९७४ ॥

तुल्येऽप्यपरार्वे 'परिणामवरोन' तीन-मन्दाधःथवसायवैचित्र्यवळात् चारित्रपरिमंशादी नानात्वं भवति, कुत्रचित् पुनः परिणामे तुल्येऽपि 'अपराधनानात्वं' प्रतिसेवनावैचित्र्यं भवति ॥ १९७४ ॥ अषाशातनापाराधिकं व्याचित्रवाहुराहु—

तित्थकर पवयण सुते, आयरिए गणहरे महिद्वीए । एते आसार्यते, पञ्छिते मग्गणा होइ ॥ ४९७५ ॥

तीर्थकरं प्रवचनं श्रुतमाचार्यात् गणभरान् महद्धिकांश्च, एतान् य आशातयति तस्य प्रायश्चिते वक्ष्ममाणरुक्षणा मार्गणा भवति ॥ ४९७५ ॥

१ °त्रिणावसारित्रिणौ वा भवेताम् ॥ ४९७२ ॥ कां० ॥

तत्र तीर्थकरं यथाऽऽशातयति तथाऽभिषीयते---

पाहुडियं अणुमण्णति, जाणंती किं व ग्रंजती भीगे।

थीतित्थं पि य बुचति, अतिकक्खडदेसणा यावि ॥ ४९७६ ॥

'प्राभृतिकां' सुरविरचितसमवसरण-महामातिहायोदिपूजाळक्षणामर्हन् यद् अनुमन्यते तक सुन्दरम् । ज्ञानत्रयममाणेन च भवलरूपं जानन् विषाकदारुणान् भोगान् किमिति शुक्के ? । व मिक्किनायादेश्च क्रिया अपि यत् तीर्थमुच्यते तद् अतीवासमीचीनम् । 'अतिकर्कशा' अतीवदुरजुचरा तीर्थकरैः सर्वोषायकुशळेरपि या देशना कृता साऽप्ययुक्ता ॥ १९७६ ॥

अण्णं व एवमादी, अवि पडिमासु वि तिलोगमहिताणं । पडिस्टवमकव्वंतो. पावति पारंचियं ठाणं ॥ ४९७७ ॥

अन्यमप्येवमादिकं तीर्श्वकृतामवर्णं यो भाषंते, तथा 'अपी'त्यम्युवये, 'त्रिकोकमहितानां' 10 भगवतां याः प्रतिमात्तात्सपि यदावर्णं भाषते, यदा—'किमेतासां पाषाणादिमयीनां मास्या-ऽक्षक्कारादिष्जा कियते ?' एवं बुवन्, 'प्रतिरूपं वा विनयं' वन्दन-स्तुति-त्तवादिकं तासाम-वज्ञाबुद्धा अकुर्वन् पाराश्चिकं स्थानं प्रामोति ॥४९७७॥ अथ प्रवचनं—सङ्कृतस्याज्ञातनामाह—

अकोस-तज्जणादिसु, संघमहिक्मिववित संघपडिणीतो । अण्णे वि अत्थि संघा, सियाल-णंतिक-ढंकाणं ॥ ४९७८ ॥

यः सङ्घनयतीकः सः न्य "अङ्गोसन्तज्ञणाइष्ठ" वि विभक्तिय्यत्यपाद् > आकोशन्तर्जना-दिभिः सङ्घनधिक्षपति । यथा — सन्यन्येऽपि शृगाङनान्तिङ-दङ्कप्रमृतीनां सङ्घाः, यादशास्ते तादकोऽयनपीति भावः, एष आकोश उच्यते । तर्जना तु-'हुं हुं ज्ञातं भवदीयं सङ्घल्य' इत्यादिका ॥ १९७८ ॥ अथ श्रुताशातनासाह—

काया वया य ते चिय, ते चेव पमायमप्पमादा य ।

20

25

30

मोक्स्वाहिकारियाणं, जोतिसविजासु किं च पुणो ॥ ४९७९ ॥ दर्शवकालिकोचराध्ययनादौ यत् त एव षट् कायास्तान्येव च व्रतानि तावेव प्रमादा-ऽप्रमादौ सूयोसूय उपवर्ण्यन्ते तद् अतीवायुक्तम् । मोक्षाधिकारिणां च साधूनां ज्योतिषविषासु पुनः किं नाम कार्यं येन श्रुते ताः प्रतिपद्यन्ते !॥ ४९७९ ॥ अयाऽऽचार्याशातनामाह—

> इड्डि-रस-सातगुरुगा, परीवदेसुजया जहा मंखा । अत्तद्रपोसणस्या, पोसेंति दिया व अप्पाणं ॥ ४९८० ॥

आचार्याः सभावादेव ऋदि-रस-सातगुरुकाः, तथा मङ्का इव परोपदेशोधताः, छोकाव-जनमसक्ता इति भावः, 'आत्मार्थपोषणरताः' स्तोदरभरणैकचेतसः । इदमेव व्याचष्टे—द्विजा इवाऽऽस्मानममी पोषयन्ति ॥ ४९८० ॥ अथ गणधराशातनामाङ्व—

> अन्ध्रुजयं विहारं, देसिंति परेसि सयग्रदासीणा । उवजीवंति य रिद्धिं, निस्संगा मो त्ति य भणंति ॥ ४९८१ ॥

१ °वते, अपि च 'त्रिको° भा० ॥ २ ৺ ▷ एतदन्तर्गतः पाठः भा० का० नास्ति ॥ ३ °द्याभिः उपलक्षणत्वाद् मन्त-निमित्तादिभिक्ष पुतः किं का० ॥ नु० १६८

गणधरा गौतमादेयो 'अभ्यवतं विहारं' जिनकस्यप्रभृतिकं परेषामुपदिश्चन्ति सर्व पुन-रुदासीनास्तं न प्रतिषत्ते, 'ऋदिं वा' अक्षीणमहानसिक चारणादिकां छविधमुपजीवन्ति 'निस्स**क्का क्यम्'** इति च मणन्ति ॥ ४९८१ ॥ अथ महर्द्धिकपदं व्याख्यानयति---

गणधर एव महिद्वी, महातवस्सी व वादिमादी वा ।

तित्थगरपदमसिस्सा, आदिग्गहणेण गहिता वा ॥ ४९८२ ॥

इह गणधर एव सर्वलव्यसम्पन्नतया महर्द्धिक उच्यते. यहा महर्द्धिको महातप्रसी वा वादि-विद्या-सिद्धप्रभृतिको वा भण्यते, तस्य यद् अवर्णवादादिकरणं सा महद्धिकाञ्चातना । गणधरास्त्र तीर्धकरप्रथमशिष्या उच्यन्ते, आदिमहणेन वा ते ग्रहीता मन्तव्याः ॥ ४९८२ ॥ अथैतेषामाशातनायां प्रायश्चित्तमार्गणामाह--

> पढम-वितिएस चरिनं, सेसे एकेक चउगुरू होंति । सब्दे आसाहितो. पावति पारंचियं ठाणं ॥ ४९८३ ॥

अत्र र ''तिरथेयर पवयण स्रयं'' इति (४९७५) गाधाक्रमप्रामाण्यात् ⊳ श्रवमः--तीर्थहरो द्वितीय:-सङ्घलयोदेशतः सर्वतो वाऽऽशातनायां पाराधिकम् । 'शेषेष्' सलादिष **एकैकस्मिन् देशतः आशात्यमाने चतुर्गुरुकाः प्रायश्चितं भवन्ति । अभ सर्वतस्तान्याशातयति** 15 ततस्तेष्वपि पाराश्चिकं स्थानं मामोति ॥ ४९८३ ॥

> तित्थयरपदमसिस्सं, एकं पाऽऽसाद्यंत पारंची । अत्यस्सेव जिणिंदी, पमवी सी जेण सत्तस्स ॥ ४९८४ ॥

'तीर्थकरप्रथमशिष्यं' गणधरमेकमप्याशातयन् पाराश्चिको भवति । कृतः ! इत्याह---'जिनेन्दः' तीर्थकरः स केवलसैवार्थस्य 'प्रभवः' प्रथमत उत्पचिहेतुः, सुत्रस्य पुनः स एव 🐿 गणधरो येन कारणेन 'प्रभवः' प्रथमतः प्रणेता, ततस्तमेकमध्याद्यातयतः पाराध्यकमुच्यते ॥ ४९८४ ॥ उक्त आशातनापाराश्चिकः । सम्प्रति प्रतिसेवनापाराश्चिकमाह----

पिंडसेवणपारंची, तिविधी सी होई आणुपृच्वीए ।

दुद्वे य पमने या. णेयच्वे अण्णमण्णे य ॥ ४९८५ ॥

पतिसेवनापाराधिकः 'सः' इति पूर्वोपन्यस्तः 'त्रिविषः' त्रिपकारः 'आनुपूर्व्या' सूत्रोच्छab परिपाठ्या भवति । तद्यथा—द्वष्टः पाराश्चिकः, प्रभत्तः पाराश्चिकः, अन्योन्यं च कुर्वाणः पाराश्चिको ज्ञातव्यः ॥ ४९८५ ॥ तत्र दृष्टं ताबदाह-

> दुविधी य होइ हुट्टी, कसायदुट्टी य विसयदुट्टी य । दविहो कसायदृष्टो, सपक्ख परपक्ख चडमंगो ॥ ४९८६ ॥

द्विविधश्च भवति दुष्टः-कषायदुष्टश्च विषयदुष्टश्च । तत्र कषायदुष्टो द्विविधः-स्वय- क्षदुष्टः परपक्षदुष्टश्च । अत्र चतुर्भक्की, गाथायां पुस्तं प्राक्कतत्वात् । तद्यश्च — त्वपक्षः त्वपक्षः द्षष्टः १ स्वपक्षः परपक्षे दुष्टः २ परपक्षः स्वपक्षे दुष्टः ३ परपक्षः परपक्षे दुष्टः ४ ॥४९८६॥ १ °दयो जिनकल्पादिकपमभ्युधतं विद्वारं परेषा° कां ।। २ प ानमाध्यस्तः शाटः

कां॰ एवं वर्त्तवे ॥

तत्र प्रवमगङ्गं विभावविषुराह---

सासवणाले ग्रहणंतए य उल्लगच्छि सिहरिणी चेव । एसी सपन्खदद्दी, परपन्खे होति मेगविधी ॥ ४९८७ ॥

"सासवणाले" चि सर्वपर्माजेका, "मुहणंतकं" मुखबिसका, उळ्क:-धूकसासेकासिणी यस्य स उल्द्रकाक्षः, 'शिलरिणी' मर्जिता । एते चत्वारो द्रष्टान्ताः । एप स्वपक्षकषायदृष्टी ह मन्तव्यः । परपक्षकषायद्रष्टः पुनरनेकविधो मनतीति निर्यक्तिगाधासमासार्वः ॥ ४९८७ ॥

अधैनामेव विवरीषः सर्पपनालदृष्टान्तं तावदाह-

सासवणाले छंदण, गुरु सच्वं भुंजें एतरे कीवी। खामणम्यावसमंते. गणि ठवेत्तऽण्गहिं परिण्णा ॥ ४९८८ ॥ पुच्छंतमणक्खाए. सोचऽणातों गंत कत्थ से सरीरं। गरु पव्य कहितऽदौतण. पडियरणं दंतमंजणता ॥ ४९८९ ॥

इह प्रथमं कथानकम्-एगेण साहणा सासवभक्तिया सुसंभिया लद्धा, तत्थ से अतीव गेही । आयरियस्म य आलोडयं । पडिदंसिए निमंतिए य आयरिएणं सन्ता वि समक्षिदा । इतरो पदोसमावण्णो । आयरिएणं लक्सियं, 'मिच्छामि दक्कडं' कयं तहानि न उवसमइ. भणइ य- तुज्झ दंते मंजामि । गुरुणा चिंतियं- 'मा असमाहिमरणेण मारिस्सइ' ति गणे 15 अन्नं गणहरं ठवेता अन्नं गणं गंतण भत्तपश्चक्लाणं कयं । समाहीए कारूगया । इयरो गवेसमाणो सज्झंतिए पुच्छइ-कत्य आयरिया ? । तेहिं न अक्लायं । सो अन्नतो सोचा तत्थ गंतं पुच्छड - किं आयरिया ! । ते भणंति - समाहीए कारुगया । पूणी पुच्छड -कहिं सरीरगं परिद्ववियं ! । आयरिएहि य पुन्नं भणियं -- मा तस्स पावस्स मन सरीर-परिद्वाविणयामूर्मि कहेजाह, मा आगट्टि-विगर्डि करेमाणो उड्डाहं काहिइ। तेहिं अकहिए 20 अन्नतो सोउं तत्थ गंतुं उवट्रियाचो गोलोवलं कडिकण दंते मंजंतो मणड-एतेहिं तमे सासवनारुं खड्यं । तं साहृहिं पडियरतेहिं दिदं ॥

अश्राक्षरगमनिका-सर्वपनालविषयं 'छन्दनं' निमन्नणं गुरोः कृतस् । गुरुणा च सर्वे अक्तम् । इतरस्य कोपः । गरुणा क्षामणे क्रतेऽपि स नोपशान्तः । ततोऽनुपञ्चान्ते तस्मिन् 'गणिनम्' आचार्य सापयित्वा अन्यस्मिन् गच्छे 'परिज्ञा' मक्तप्रत्याख्यानमङ्गीकृतम् । तस्य च 25 किष्याधमस्य 'युरवः कुत्र गताः !' इति पृच्छतोऽपि सज्झिलकसायुभिर्मास्यातम् । ततोऽन्यतः अल्बा सब गरबा 'क्रज तेवां शरीरम् !' इति प्रच्छा कृता । गुरुभिख पूर्वमेव तदीयो दृषान्तः कथित आसीत् । ''बायण'' चि अकारप्रकेषात् ततस्तैराचार्यशरीरपरिष्ठापनासूमिने दर्शिता । स चान्यतः श्रत्वा गतो दन्तमस्त्रचं इतवान । साधभिश्च गपिलस्थाने स्थितैः मतिचरणं कृत-मिति ॥ ४९८८ ॥ ४९८९ ॥ वय सुखानन्तकदृष्टान्तमाह---

ग्रहणंतगस्य गृहचे, एमेव व गंत चिसि गलग्गहणं। सम्महेणियरेण वि. गरुए गहितो मता दो वि ॥ ४९९० ॥

१ 'प्या' प्रतदृष्टान्तोकाः स्वप' कां ।। २ 'दाइत, प' भा । मो के ताडी ।

एकेन साधुना मुखानन्तकमतीबोज्ज्वलं रूथम् , तस्य च गुरुभिर्महर्ण इतम् । तन्निष् 'एक्मेन' पूर्वोस्थानकसदशं वक्तव्यम् । नवरं तत् पुतर्गुखानन्तकं प्रत्यंपतोऽपि न गृही-तम् । ततो गुरुणा खगण एव भक्तं प्रत्यास्थातम् । निशायां च निर्म्हं रूथ्या 'मुखानन्तकं गृक्किं क्ष्या 'मुखानन्तकं गृक्किं क्ष्या 'मुखानन्तकं गृक्किं क्ष्या 'मुखानन्तकं गृक्किं क्ष्या । वाहतरं गले महण् कृतम् । सम्पूदेन च 'इतरेणापि' गुरुणा स गलके कृष्यितः । एवं द्वावपि मृत्यो ॥ ४९९० ॥ उल्पक्ताक्षदधान्तमाह—

अत्थंगए वि सिन्वसि, उल्लगच्छी ! उनलणामि ते अच्छी । पढमगमो नवरि इहं, उल्लगच्छीउ त्ति होकेति ॥ ४९९१ ॥

एकः सायुरसाङ्गतेऽपि सूर्ये सीव्यत् अपरेण सायुना परिहासेन भणितः —उद्धकाक्ष !

किमेनमसङ्गतेऽपि सूर्ये सीव्यति ! । स प्राह — एवं भणतस्तव द्वे अप्यक्षिणी उरखनामि ।
10 अत्रापि सर्वोऽपि प्रथमास्यानकगमो मन्तव्यः । नवरमिह स्वगणे प्रत्यास्यातमकस्य कालगतस्य रजोहरणाद् अयोगर्यी कीलिकामाक्रय्य 'मां उद्धकाक्षं भणिति !' इति हुर्वाणो द्वे अप्यक्षिणी उद्धत्य तस्य द्वैकयित, 'वैरं मया निर्यामितम्' इति कृत्वा ॥ ४९९१ ॥

शिखरिणीदृष्टान्तमाह---

सिहरिणिलंभाऽऽलोयण, छंदिऍ सन्वाइते अ उग्गिरणा ।

भचपरिण्णा अण्णहि, ण गच्छती सो इहं णविरं ॥ ४९९२ ॥ एकेन साधुना उद्ध्रष्टा शिखरिणी रुट्या । सा च गुरूणामालोचिता, तया च गुरवः

्कन्तिताः निमन्निताः । सा च तैः सर्वाऽप्याप्तातः । ततः स साञ्चः प्रदूषसुणगानो मारणार्थै । क्विताः निमन्निताः । सा च तैः सर्वाऽप्याप्तातः । ततः स साञ्चः प्रदूषसुणगानो मारणार्थै । व्यक्तपुर्दाणेबान् । स गुरुभिः क्षामितोऽपि यदा नोपशाम्यति ततः भक्तपरिज्ञा कृता । नवरमिद्दं 'सः' आचार्योऽस्यक्षित् गणे न गतः । तस्य च समाधिना कालगतस्य शरीरकं 20 तेन पापालमा दण्डकेन कुट्टितम् ॥ १९९२ ॥

यत एते दोषासतो होमसीबो न कर्तव्यः । तथा चाह---

तिन्वकसायपरिणतो, तिन्वयरागाणि पावइ भयाई । मयगस्स दंतभंजण, सममरणं ढोकणुग्गिरणा ॥ ४९९३ ॥

तीनाः—उत्कटा वे कषायासेषु परिणतो जीवस्तीनतरकाणि भयानि प्राप्नोति । यथा—

2० प्रथमहान्तोक्तस्याचास्य तीनकोभवरिणतस्य दन्तमञ्जनभयम्, द्वितीयदृष्टान्तोक्तयोस्य

शिष्या-ऽऽवार्ययोस्तीनकोधपरिणतयोः समकार्क मरणम्, तृतीयदृष्टान्तपिद्वस्य साधो
छैचनदौक्तम्, चतुर्थेदृष्टान्तोक्तस्य दण्डकोद्विरणम् । इद्याः स्वयक्षकथायदृष्टा लिक्कपारा
षिकाः कर्तस्याः ॥ ५९९३ ॥ गतः प्रथमो भक्षः । अत्र द्वितीयमक्षमाद्य-

रायवधादिपरिणतो, अहवा वि हवेज रायवहओ तु ।

सो लिंगतों पारंची, जो वि य परिकड्कती तं तु ॥ ४९९४ ॥

राज्ञो राजामात्यस्य वा अपरस्य वा प्राकृतगृहस्यस्य वधाय परिणतः, अथवा राजवधक एव स अवेत विहितराजवध इत्यधैः, एवमनेकविधः परपक्षदुष्टः । एव सर्वोऽपि ठिक्कपाराश्चिकः

80

१ °बाणो सृतस्य हे मा- ॥

कर्तव्यः । 'योऽपि चै' आचार्यादिकः 'तं' राजवधकं 'परिकर्षति' वर्षापयति सोऽपि लिक्रपाराखिको विषेयः ॥ ४९९*७* ॥

अथ तृतीयमङ्ग उच्यते—प्रवशः सपक्षे तृष्टः स कथं भवति ? उच्यते—पूर्वे गृह-बासे वसतो वादे पराजित आसीत्, स्कन्दकाचार्येण पालकवत्, वैरिको वा स तस्याऽऽ-सीत् । स पुनः कीहत्रो भवेत् ? इत्याह—

सभी व असची वा, जो दुहो होति तू सपक्स्वम्म । तस्स निसिद्धं लिंगं, अतिसेसी वा वि दिखाहि ॥ ४९९५ ॥ स च सेत्री वा असंज्ञी वा यः सपक्षे दुष्टो भवति तस्य कि ति तिबद्धम्, प्रजञ्जा न

स च संज्ञी वा असंज्ञी वा यः खपक्षे दुष्टो भवति तस्य लिक्नं निषिद्धम्, प्रत्रज्ञा न दातस्येति मावः । अतिशयज्ञानी वा 'उपज्ञान्तोऽयम्' इति मत्वा तस्यापि लिक्नं दद्यात् ॥ ४९९५ ॥ अथ चतुर्थभक्तः परपक्षः परपक्षे दुष्ट इति भाव्यते—

रको जुवरको वा, वधतो अहवा वि इस्सरादीणं ।

सो उ सदेसि ण कप्पड़, कप्पति अण्णस्मि अण्णाओ ॥ ४९९६ ॥ यो राज्ञो वा युवराजस्य वा वधकः अथवाऽपि ईश्वरादीनां वातकः 'स तु' स तुनः सदेशे दीक्षितुं न कस्पते, किन्तु कस्पतेऽन्यसिन् देशेऽज्ञातो दीशितुम् ॥ ४९९६ ॥

इत्य पुण अधीकारो, पढिमिछुग-वितियमंगदुद्वेहिं । तेसिं लिंगविवेगो, दुचरिमें वा लिंगदाणं तु ॥ ४९९७ ॥

अँत्र पुनः मथम-द्वितीयभक्षदुष्टैरियकारः, 'स्वयक्षः स्वयक्षे दुष्टः, स्वयक्षः परपक्षे दुष्टः' इत्याद्यभक्षद्वयविभिरिति भावः । एतेषां लिक्षविवेकरूपं पाराधिकं दातव्यम् । अतिशयज्ञानी वा यदि जानाति 'न पुनरीदशं करिष्यति' इति ततः सम्यगान्तस्य लिक्षविवेकं न करोति । ''दुनरिमे" विं तृतीय-चतुर्थव्यक्षणी यो द्वी चरममक्षे तयोः 'वा' विकल्पेन लिक्षदानं 20 कर्तव्यम् । किम्रुक्तं भवति ?— 'परपक्षः स्वयक्षे दुष्टः, परपक्षः परपक्षे दुष्टः' इति भक्षद्वये वर्षमाना यतुप्रशान्ता इति सम्यग् ज्ञायन्ते ततो लिक्षदानं कर्तव्यम्, अथ नीपज्ञान्तास्ततो न मत्राव्यन्ते । प्रज्ञाज्ञात्व अपि तानि स्थानाित परिदार्थन्ते; एप वाशव्यद्विविद्येश्वः ॥२९९७॥

अथ 'सर्पपनालीदिइष्टान्तप्रसिद्धा दोषा मा भूवन' इति हेतोराचार्येर्णं यथा सामाचारी स्थापनीया तथा प्रतिपादयलाह्—

सन्वेहि वि घेत्तन्वं, गहणे य निमंतणे य जो तु विही।

१ च 'तं' राजवधकं परिकर्यति सोऽपि भा० का०॥ २ 'संबी या' श्रावकः 'असंबी वा' श्रावकः या स्व' कां० ॥ १ 'अज वृतः' प्रस्तुते पाराञ्चिक्तपूष्ठे प्रध्यत्र' कां० ॥ ७ तार्टेन के। ० के तार्टेन के। ० के। ० के। ० के। ० के। ० के। ० के। विचायत्र विचायत्र के। विचायत्र विचायत्र के। विचायत्र के। विचायत्र के। विचायत्र विचायत्र के। विचायत्र के। विचायत्र विचा

इंजंती जतवाए. अजतवा दोसा इमे होति ॥ ४९९८ ॥

सर्वेरिष साधुभिराचार्यप्रायोग्यं सलमात्रकेषु ब्रहीतव्यम् । तवा ब्रहणे च निमक्रणे च को क्ष्मवनाको विचिः स सर्वोऽपि कर्तव्यः । एवं वतनया स्र्यो अञ्जते । अवतनया तु अञा-क्षमण्य 'क्षमे' क्ष्मच्याणा दोषा यवन्ति ॥ ४९९८ ॥ एनामेव निर्मुक्तिताथां माववति —

सन्वेहि वि गहियम्मी, थोवं थोवं तु के वि इन्छंति ।

सम्वेसिं म वि श्रेजति, गहितं पि वितिश्व आदेशो ॥ ४९९९ ॥

सर्वेशि आवार्यमयोग्ये गृष्टीते के विदावार्या इदिमच्छिति, यद्या—तत एकैकस हस्तात् स्तोकं स्त्रोकं गृष्टीला गुरुणा भोकल्यत् ; एप प्रथम आदेशः । अपरे ह्वतते—एकैनैव गुरु-केन्वं ग्रहीलव्यम्, अथान्येशि गृष्टीतं ततस्त्रहृष्टीतगि तेषां सर्वेषां हस्तात् स्त्रोकं सीकं न १० भोक्तव्यम्, किन्तु तैर्निमिन्नतेन वक्तव्यम्—पर्याप्तम्, इत उर्द्धं न गच्छिति; एप द्वितीय आदेशः ॥ १९९९ ॥ अग्रमेकं व्याचरे—

> युरुविकां जो हिंगवाणुक्लो, सो गिण्डती गिस्समणिस्सतो वा । कस्सेव सो गिण्डति भेगरेसिं, अलञ्जमणमिन व थोव थोवं ॥ ५००० ॥

यो गुरुमिकनान् यस गुरुणां 'स्दयानुकुछः' छन्तोनुवर्धी स गुरुमायोग्यं निम्नागृहेम्यो-15 इनिम्नागृहेम्यो वा गृह्वाति, तस्यैव च सम्बन्धि 'सः' आचार्यो भक्त-यानं गृह्वाति, न 'इतरे-वाम्' अपरसाधूनाच् । अथैकः पर्याप्तं न कभते ततोऽकम्ययाने स्तोकं स्तोकं सर्वेवामपि गृह्वाति ॥ ५,०००॥ एप महणविभिरुक्तः । सम्प्रति निमम्नणे विधिमाह—

सति लंभिम वि गिष्हति, इयरेसिं जाणिऊण निन्बंधं ।

ग्रंचित य साबसेसं, जाणति उवसारमणियं च ॥ ५००१ ॥

अ 'सिति' विद्यमानेऽपि प्राञ्चर्येण लाभे यदि इतरे साधवो निमन्नयमाणा गादं निर्वन्धं कुर्वते तत्त्वतं झारबा तेषामपि गृहाति । तत्त्व तदीयं भुक्तावः सावरोपं मुख्यति, मा सर्वस्थित् सुके प्रदेषं स गच्छेत् । उपचारमणितं च जानाति, 'अयमुपचारेण, अयं पुनः सद्भावेन निमन्नवते' इत्येवं वहिश्विद्देश्यक्यमतीत्वर्थः ॥ ५००१ ॥

युरुणो(णं) भ्रुतुन्वरियं, बालादसतीय मंडलिं जाति ।

जं पुण सेसगगहितं, गिलाणमादीण तं दिंति ॥ ५००२ ॥

गुरूणां यद् शुकोद्वरितं तद् बाळावीनां दीयते । तेषाममाने 'मण्डर्की याति' मण्डर्की-मतिम्बद्दे क्षिप्यते । यत् पुनः शेषैः—गुरुभक्तिमद्यतिरिक्तैः साधुभिर्मात्रके गृहीतं तद् ग्ळाना-कौनी प्रयच्छन्ति ॥ ५००२ ॥

> सेसाणं संसद्दं, न छुन्मती मंडलीपडिग्गहए । पत्तेग गहित छुन्मति, ओमासणलंग मोनुणं ॥ ५००३ ॥

'दोषाणा' गुरूव्यतिरिक्तानां संसष्टं मण्डलीपतिअहे न क्षिप्यते । यतु ग्लानादीनामर्वाय

१ स्तोकं स्ट्रिः 'नायि' नैव मुद्धं, किन्तु कां ॥ २ 'व द्वितीयमादेशं व्या' का ॥ ३ 'मां मण्डलीस्विदाः प्रय' कां ॥

'प्रत्येकं' पृथक पृथम माजकेष ग्रहीतं तत तेषालहरितं मण्डम्यां प्रक्षिप्यते. बरमवभाषितलामं मक्तवा. स ने प्रक्षिप्यत इति मावः ॥ ५००३ ॥

पाडणगद्रा व तगं. घरेसमतिबाहबा 'विगिचंति ।

इंह गहण-शंजनविही. अविधीएँ इसे मने होना ॥ ५००४ ॥ प्राप्तणकार्थं वा 'तकं' ग्ळानार्थमानीतं प्रायोग्यं 'भूत्वा' स्वापित्वा सदि 'अतिबाहडाः' ३ अतीवधाताः प्राथणकाश्च नायाताः तदा 'विवेचयन्ति' परित्यजन्ति । एवक्कि ग्रहण-भोजन-विधिभवति । बचेनं विधि न कुर्वन्ति ततस्तस्मिन् अविधी इमे दोवा अवेदः ॥ ५००४ ॥

तिव्वकसायपरिणतो. तिव्वतरागाइँ पावड भयाई ।

मयगस्स दंतमंजन, सममरणं ढोकणुग्निरणा ॥ ५००५ ॥ व्याख्यातार्था (गा० ४९९३) ॥ ५००५ ॥ उक्तः कवायदृष्टः । अय विषयदृष्टमाह--- 10

संजति कप्पदीए, सिजायरि अण्यउतिबागीए व । एसो उ विसयदद्वी, सपक्ख परपक्ख चडमंगी ॥ ५००६ ॥

इहापि खपक्ष-परपक्षपदाभ्यां चतुर्भन्नी, तचवा-स्वपनः सर्पन्ने दष्टः १ सपन्न: चरवने दष्टः २ परपक्षः स्वपक्षे दष्टः ३ परपक्षः परपक्षे दुष्टः ४ । तत्र 'कस्पिकायां' सरप्यां संयत्यां 'संयतः' अध्यपपन्न इति प्रथमो भन्नः । संयत एव शब्यातरत्रविकायामन्यतीर्थिक्यां १६ वाऽध्यपपन्न इति वितीयः । गृहस्यः संयतीकस्पत्यकायामध्यपपन्न इति सतीयः । गृहस्यो गृहस्थायामिति चतर्थः । एव विषयदष्टश्चतुर्विधो मन्तव्यः ॥ ५००६ ॥

अंशेतेष प्रायश्चित्तमाह--- ⊳

पहमे भंगे चरिमं, अणवरए वा वि वितियमंगिमा। सेसेण ज इह पगतं, वा चरिमे लिंगदार्ज तु ॥ ५००७ ॥

प्रथमे भक्ते 'चरमं' पाराध्विकम् 'अनुपरतस्त्र' अनिवृत्तस्त । द्वितीयेऽपि अक्ते वाराध्विकम् । 'शेषेण तु' ततीय-चरममङ्गद्वयेन नात्र प्रकृतम् , अत्र पाराश्चिकस्य प्रस्तुतस्थात् तस्य च परप-क्षेऽघटमानत्वातः । अथवा "वा चरिमे लिंगदाणं तु" ति 'वा' विकस्पेन-अजनवा चरमः भक्तद्वये लिक्नदानं कर्तव्यम् , यद्यपशान्तसादाऽन्यसान् स्वाने लिक्नं दातव्यम् अन्यवा स मेरि भावः ॥ ५००७ ॥ अथ प्रथमभन्ने तीषं दर्शयताह-

लिंगेण लिंगिणीए, संपत्ति जड़ नियच्छती पावी । सच्वजिणाणऽजातो. संघी आसातिओ तेणं ॥ ५००८ ॥

'लिकेन' रजीहरणादिना युक्तः 'लिकिन्याः' संयत्याः सम्पत्तिं यदि अधमतया अधमि कश्चित पापः 'नियच्छति' प्रामोति तर्हि तेन पापेन सर्वजिनानाम 'मार्थाः' संबद्धः सक्कश्च भगवानाञातितो मन्तव्यः ॥ ५००८ ॥

१ न मण्डस्यां प्रक्षिप्यते किन्तु ग्लानादीनामेच दीयत इति कां॰ ॥ २ विविश्वंति भा॰ ॥ दे इह ग° मा॰ कां॰ विना ॥ ४ °एके विषयाधिकायमकीकृत्य प्रदः कां॰ ॥ ५ •० > एत्रस्त-गंतमवतरणं का॰ एव वर्शते ॥

15

पावाणं पावयरो, दिट्टिज्ञासे वि सो ण वट्टित हु । जो जिणपुंगवप्रदं, निमज्ज तमेव धरिसेति ॥ ५००९ ॥ पापानां सर्वेषामपि स पापतरः, अत एव दृष्टः-कोचनस्याभ्यासेऽपि-समीपेऽपि कर्तुं सः 'न वर्तते' न कल्पते यः 'जिनगुक्रवसदां' अमर्णी नत्वा तामेव धर्यवति ॥ ५००९ ॥

b संसारमणवयम्गं, जाति-जरा-मरण-वेदणापउरं । पावमलपडलङ्काः भनंति ग्रहाधरिसणेणं ॥ ५०१० ॥

पावनकारकार्या, ननात श्वरावारताया ॥ ५०१० ॥ संसारम् 'अनवदमम्' अपर्यन्तं जाति-जरा-मरण-वेदनाप्रचुरं पापमरूपटरुच्छन्ना मुद्राधर्य-णेन परिम्रमन्ति ॥ ५०१० ॥ ततः—

> जत्थुप्पजाति दोसो, कीरति पारंचितो स तम्हा तु । सो पुण सेवीमसेवी, गीतमगीतो व एमेव ॥ ५०११ ॥

यत्र क्षेत्रे यस्य संयतीधर्षणादिको दोग उत्पथते उत्तत्स्यते वा स तैस्मात् क्षेत्रात् पाराश्विकः क्रियते । स पुनः सेची वा स्थादसेवी वा, तेन तत् कार्यं कृतं वा भवेदकृतं वेति भावः; प्रयमेव गीतार्थो वा भवेदगीतार्थो वा, स सर्वोऽपि पाराश्विकः कर्तव्यः ॥ ५०११ ॥ कश्यमः ! इत्याह—

> उवस्सय कुले निवेसण, वाङ्ग साहि गाम देस रजे वा । कुल गण संघे निज़्हणाएँ पारंचितो होति ॥ ५०१२ ॥

यस्य यसिनुपाश्रये दोष उत्तरन उत्तरत्यते वा स तत उपाश्रयात् पाराधिकः क्रियते । एवं यसिन् गृहस्यकुले दोष उत्तरनः, तथा निवेशनम्-एकनिर्गन-प्रवेशद्वारो द्वयोर्थामयोर-पानताले व्यादिगृहाणां सन्तिवेशः, एवंत्रियस्वरूप एव ग्रामान्तर्गतः पाटकः, साही-शाखा-20 स्त्रेण श्रेणिकमेण स्थिता ग्रामगृहाणामेकतः परिपाटिः, ग्रामः-प्रतीतः, देशः-जनपदः, राज्यं नाम-यावस्य देशेषु एकमृपतिराज्ञा तावदेशयमाणम् । एनेषु यत्र यस्य दोष उत्तरत्र उत्तरस्यते वा स ततः पाराधिकः क्रियते । तथा कुलेन यो निर्मुदः-बाधः कृतः स कुल्याराधिकः । गणाद् वाधः कृते गणपाराधिकः । सङ्गाद् यस्य निर्मृहण कृता स सङ्गपराधिकः ॥ ५०१२ ॥ किगर्थसुणश्रयादिपाराधिकः क्रियते ! हस्याह--

25 उनसंतो वि समाणो, नारिजति तेसु तेसु टाणेसु । हंदि हु पुणो वि दोसं, तद्वाणासेनणा कुणति ॥ ५०१३ ॥

'उपशान्तोऽपि' खर्जिङ्गोपतिसेवनात् प्रतिनिङ्गोऽपि सन् 'तेषु तोषु स्वानेषु' प्रति-श्रय-कुरू-निवेशनादिषु विहरत् वार्यते । कुतः १ हत्याह—'हन्दि' इति कारणोपपदर्श्वने, 'हु'रिति निश्यये, पुनरप्यसे तस्य स्थानस्थासेवनात् तसेव दोषं करोति ॥ ५०१३ ॥

30 इदमेवे स्पष्टतरमाह---

जेस विहरंति तातो, बारिजति तेसु तेसु ठाणेसु । पढमगभंगे एवं, सेसेसु वि ताइँ ठाणाई ॥ ५०१४ ॥

१ ततः क्षे भा कां ॥ २ °व स्फुटतर भा कां ॥

'येषु' आमादिषु 'ताः' संयत्यो विहरन्ति तेषु तेषु स्थानेषु स विहरन् वार्यते. ततः पाराध्विकः कियत इत्यर्थः । एवं 'प्रथमभक्के' र् 'खेपक्षः खपक्षे दृष्टः' इतिरुक्षणे ⊳ विधि-हक्त: । 'डोबेप्चपि' दितीयादिष भक्रेष तानि स्थानानि वर्जनीयानि । किसक्तं भवति ?--द्वितीयभन्ने यस्थामगार्थामध्यपपन्नस्तदीये कुळ-निवेशनादौ प्रविशन वारणीयः. तृतीय-चतर्थ-भक्तयोः ल 'पैरपक्षः खपक्षे परपक्षे वा दष्टः' इतिरुक्षणयोः ⊳ उपशान्तस्यापि तेष स्थानेष 5 लिकंन दातव्यम् ॥ ५०१४ ॥

> एत्थं पुण अहिगारी, पदमगभंगेण दविह दद्ने वी। उचारियसरिसाई, संसाई विकोवणद्वाए ॥ ५०१५ ॥

अत्र पनः 'दिविधेऽपि' कपायतो विषयतश्च दृष्टे प्रथमभन्नेनाधिकारः । 'होषाणि पनः' द्वितीयभक्कादीनि पदानि उच्चारितसदृशानि विनेयमतिविकोपनार्थमभिहितानि ॥ ५०१५ ॥10 गतो दष्टः पाराश्चिकः । सम्प्रति प्रमत्तपाराश्चिकमाह----

> कसाए विकहा विगडे, इंदिय निहा पमाद पंचविधी। अहिसारी सत्तर्दिम, तहिसं च इमे उढाहरणा ॥ ५०१६ ॥

'कषायाः' कोधादयः, 'विकथा' स्त्रीकथादिका, 'विकटं' मद्यम्, 'इन्द्रियाणि' श्रोत्रा-दीनि, 'निद्रा' वक्ष्यमाणा, एष पञ्चविधः प्रमादो भवति । अयं च निजीधपीठिकायां 15 यथा सविस्तरं समायश्चिचोऽपि भावितस्तथैवात्रापि मन्तन्यः । नवरमिह स्वपनं सुसं-निद्धा इत्यर्थः, तयाऽधिकारः । सा च पश्चविधा---निद्रा १ निद्रानिद्रा २ प्रचला ३ प्रचलप्रचला ४ स्त्यानर्दिश्चेति ५ । तत्र---

> सहपडिबोहो निहा, दहपडिबोहो य निहनिहा य । पयला होड ठियस्सा, पयलापयला उ चंकमँतो ॥

20

25

स्त्यानर्द्धिस्त -- स्त्याना-प्रबलदर्शनावरणीयकर्मोदयात् कठिनीभूता ऋद्धिः-चैतन्यशक्ति-र्थस्यामवस्थायां सा स्त्यानिर्द्धः, यथा धृते उदके वा स्त्याने न किश्चिदपरुभ्यते एवं चैतन्य-ऋज्यामपि स्त्यानायां न किञ्चिदपरुभ्यत इति भावः । अत्र पाराञ्चिकस्य प्रस्ततत्वात स्त्यान-र्द्धिनिद्रयाऽधिकारः । तस्यां चामून्युदाहरणानि ॥ ५०१६ ॥

> पोग्गले मीयग फरुसग, दंते वडसालमंजणे सत्ते । एतेहिं पुणो तस्सा, विविंचणा होति जतणाए ॥ ५०१७ ॥

'पद्रलं' पिशितम् , 'मोदकः' लक्क्कः, 'फल्सकः' कुम्मकारः, 'दुन्ताः' प्रतीताः, बटशा-काभजनम् । एतानि पश्चोदाहरणानि 'सप्ते' स्त्यानद्विनिदायां भवन्ति । 'एतैः' एतद्वद्वान्तोकै-श्रिष्ठैः स्त्यानर्द्धि परिज्ञाय 'तस्य' स्त्यानर्द्धिमतः साधोर्यतनया 'विवेचनं' परित्यागः कर्तव्यो भवति ॥ ५०१७ ॥ तत्र पद्रलदृष्टान्तमाह---30

१-२ ⁴ े एतदन्तर्गतः पाठः मा० कां० नास्ति ॥ ३ 'प्रथमभक्केन' पाराश्चिकप्रायस्थितः-विषयभृतेनाभि कां ।। ४ भतो ॥ इत्याद्यनिद्वाचतुष्ट्यलक्षणम् । पञ्चमी भाव्यते — स्त्यानकि:-स्त्याना- कां ।। ५ ° छ छड्डग फरु वामा ।।

पिसियासि पुन्व महिसं, विगिष्वयं दिस्स तत्थ निसि गंतुं । अण्णं हंतुं खायति, उवस्सयं सेसगं णेति ॥ ५०१८ ॥

प्राम्म गामे प्राो कोडुंबी पक्काणि य तिल्माणि य तिम्मणेषु अ अगेमसो संसप्तगारे अक्सेह । सो अ तहाक्ष्वाणं थराणं अंतिए धम्मं सोउं पबहओ गामाइसु विहरह । तेण य ध्यार्य यामे महिसो विगिषमाणो दिहो । तस्स मंसे अभिकासो जातो । सो तेण अभिकासे सम्भा अविकासो विश्वासा विद्वासा विश्वासा विश्वासा विद्वासा विश्वासा विद्वासा विद्वास विद्वासा विद्वासा व

अय गायाक्षरार्थः — पिन्नितासी कश्चित् 'पूर्वं' गृहवासे आसीत् । स च महिषं विकरितं हृष्ट्वा सञ्जातनद्वसणाभिज्ञपः 'तत्र' महिषमण्डले 'निश्चि' रात्रो गरा अन्यं महिषं हस्त्रा सादति । 'रोषभ्' उद्धरितसुगश्चये नयति ॥ ५०१८ ॥ लङ्कस्टप्टान्तमाह्—

मोयगमत्तमलद्धं, भंतु कवाडे घरस्स निर्मे खाति । भाणं च भरेऊणं, आगतों आवासए विगडे ॥ ५०१९ ॥

पकः साधुर्भिक्षां हिण्डमानो मोदकभक्तं परयति । तक सुक्तिसम्बरुकितमबभाषितं च, परं न कन्न्यम् । ततस्तद्कन्ध्वा तद्दश्यसायपरिणत एव प्रमुक्तः, रात्रौ तत्र गत्वा गृहस्य कपार्यो भंक्त्वा मोदकान् भव्यति, रोषेभीदक्तेभीवनं भृत्वा समागतः । प्राभातिके आवश्यके 20 विकट्यति—ईहराः स्थो मया दृष्ट इति । ततः प्रभाते मोदकभूतं भावनं दृष्टा बातस्, यथा—स्वानिद्विति । तस्वापि किह्नपाराञ्चिकं दृष्तम् । रोषं पुद्गलास्यानकृत्वद् वक्तन्यम् ॥ ५०१९ ॥ अथ फक्तमक्रद्रणन्तमाह—

> अवरो फरुसग मुंडो, मङ्घियपिंडे व छिंदिउं सीसे। एगंते अवयज्झह, पासुत्ताणं विगडणा य॥ ५०२०॥

25 'अपरः' कथित 'फरसकः' कुम्मकारः काणि गच्छे मुण्डो जातः, प्रश्नित इत्यर्थः । तस्य रात्री प्रमुसस्य स्थानाईहरुदाणां । स च पूर्व मृत्तिकाच्छेदाभ्यासी ततो सृतिकाणिण्डानिव समीपमृद्धानां साधूनां छिरांसि च्छेतुनारच्यः । तानि च शिरांसि कडेवराणि चेकान्ते अपो-ज्वाति । रोषाः साध्योऽपस्ताः । स च स्थोऽपि प्रमुक्तः । ततः प्रमाते 'ईह्छः स्वमो मया इष्टः' इति विकटना कृता । प्रमाते च साधूनां विरांसि कडेवराणि च ष्रधामृतानि इष्ट्राः ३० ज्ञातम् , यथा—स्यानांईरिति । छित्रपाराख्यिकं दवत् ॥ ५०२०। अथ इन्तष्टान्तमाह्— अवरो वि धाडिओ मत्तवहरियणा प्रक्तियुक्तं भंतृषां ।

अवरा वि धार्डिओ मत्तहात्थणा पुरकवार्ड भंतूणे। तस्सुक्त्वणित्त दंते, वसही बाहिं विगडणा य ॥ ५०२१ ॥

अपरः कोऽपि साधुर्गृहस्थावे 'भचहिता' शुण्डायृत्सिप्य धावता घाटितः, परुष्य-मानो महता कहेन छुट्टितः । एष 'वृण्यिनमायः । निश्चीयवृणिकृता तु—''एगो साह् गोयरिनिगातो हृत्यिणा पिक्सतो'' इति किस्तितम् । ⊲ ऐवयुमयथाऽपि तं हृस्तिकृतं परामवं स्टुत्वा ⊳ स साधुः तस्वोपिर प्रदेषनापकः मद्युतः । उदीर्णस्त्यानार्द्धश्चोत्थाय पुरक्वाटो भंतवा हृत्तिशाळां गत्वा तस्य हृत्तिनो व्यापादनं कृत्वा दन्तानुस्त्वन्य वसतेवृद्धिः स्थापीयन्ता भूयोऽपि ऽ मश्चसः । ममाते च 'विकटना' स्त्रमाळोवयति । साधुमिश्च दिगवळोकनं कुर्वाणैर्गजदन्ती वीक्षितो । ततः 'स्त्यानर्द्धमान् असी' इति ज्ञात्वा किक्षपाराश्चिकः कृतः ॥ ५०२१ ॥

वटशालाभञ्जनदृष्टान्तमाह-

उन्भामग वडसालेण घड्टितो केइ पुन्त वणहत्थी। वडसालभंजणाऽऽणण, उस्सग्गाऽऽलोषणा गोसे॥ ५०२२॥ 10

एकः साधुः 'उद्धामकः' मिक्षाचर्या गतः । तत्र आमहस्यस्यापान्तराले वरवृक्षो महान् विधते । स च साधुगोदतरपुष्णामिहतो भरितमाजनस्तृषित-चुसुक्षित हैयाँपयुक्तो वेगेनाऽऽ-गच्छन् - ''वैंडसालेण'' वि लिक्रव्यत्याय् ⊳ वरयादपस्य शाल्या शितिस षष्टितः सुद्धुतरं परितापितः । ततो वटस्योपरि भद्वेषसुपगतः तदध्यवसायपरिणतश्च मसुष्ठः । उदीर्णस्त्यानिद्ध-श्चोत्थाय तत्र गत्वा वटपादपं भक्ता उन्मुख्य तदीयां शाल्यमानीयोपश्चयोपरि स्वापितवान् । 15 'उत्सर्गे च' आवद्ययककायोत्सरीत्रिके कृते 'गोसे च' ममाते तथेव गुरूणामालोचयति । ततो दिगवलोके कृते तथैव ज्ञातम् , लिक्क्याराध्वकः कृतश्च ।

केचिदाचार्या हुवते —स पूर्वभवे वनहत्ती बमूब, ततो मनुजभवमागतस्य मनजितस्यो-दीर्णस्त्यानर्द्धेः पूर्वभवाभ्यासाद् बटशालामञ्जनमभवत् । शेषं प्राग्वत् ॥ ५०२२ ॥

क्यं पुनरसौ परित्यजनीयः ! इत्याह--

केसवअद्भवलं पण्णवैति प्रुय लिंग णत्थि तुह चरणं । भेच्छस्स हरह संघो. ण वि एको मा पदोसं त ॥ ५०२३ ॥

केशव:—बाधुदैवस्तस्य नकारवेषकं स्त्यानिद्वंगतो भवतीति तीर्थक्षत्रत्यः पञ्चापयन्ति । एतस्य भयमसंहननिनमक्षीकृत्योक्तम्, इदानी पुनः सामान्यकोकनकाद् द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं वा वर्कं भवतीति मन्तव्यम् । यत एवमतः स प्रज्ञापनीयः—सौम्य ! सुख िक्षम्, नास्ति 25 तव 'चरणं' चारिक्म्। । ययेव गुरुणा सानुनयं भणितो श्रुश्चति ततः शोभनम् । अध न सुश्चति ततः स्वाहः समुदितो किक्षं तत्य मोक्तुमनिच्छतः सकाशाद् 'हरति' उद्दाक्यति, न पुन-रेकः । कुतः ! इत्याह—मा तसैकस्योपिर प्रदेषं गच्छेत्, प्रद्विष्टश्च व्यापादनमिष कुर्यात् ॥ ५०२३ ॥ किक्षप्रारोपन्यमार्थितदमाह—

अवि केवलमुप्पाडे, न य लिंगं देति अणतिसेसी से।

र ''प्गो गिहरवत्ते हरिया। परिधाबितो । सो तं हरियस्त वेरं संजरति । पासुतेसु रात्ते यंतुं पुरकवारे अंजियं हरिय मारेता यंते उक्कांनिता। प्रक्षित्तयस्त बाहिं ठवेति ।'' इति चूर्णियाठः ॥ ३-३ ৺ ोग्यत्यत्तर्गताः प्रकः आ• कां• नाति ॥

देसवत दंसणं वा, गिण्ड अणिच्छे पलायंति ॥ ५०२४ ॥

'श्रापि:' सम्भावने, स चैतत् सम्भावयति —यद्यपि तेनैव भवमहणेन केवल्युरपादयति तथापि ''से'' 'तस्य' स्त्यानर्द्धिमतो लिक्नमनतिश्चयी न ददाति । यः पुनरतिशयशानी स जानाति—न भूय पतस्य स्त्यानर्द्धिनद्दोदयो भविन्यति; ततो लिक्नं ददाति, इतस्या न ध्वाति । लिक्नायहारे पुनः कियमाणेऽयग्वयदेशो दीयते — 'देशनदानि' स्यूल्पाणातिपातिपातिय-स्थापीति गृहाण, तानि चेत् प्रतिपद्धं न समर्थः ततः 'दर्शनं' सम्ययन्ते गृहाण । अथैवम-प्रस्तुनीयमाने लिक्नं भोक्तं नेच्छति तदा रात्रौ तं सुर्व मुक्तवा 'प्रशायन्ते' देशानर्ते गच्छन्ति ॥ ५०२ ॥ ॥ १०३ ॥ ॥ ५०३ ॥ ॥ ५०३ ॥ ॥ ५०३ ॥ । अथान्योन्यं कर्षाणं तीवाह —

करणं तु अण्णमण्णे, समणाण न कप्पते सुविहिताणं ।

उत्तर्भित णाता, तेसि तु विविचणा भणिया ॥ ५०२५ ॥
तुझब्दस्य व्यवहितसम्बन्धतया 'अन्योन्थं' परस्परं पुनर्यत् 'करणं' मुख-पायुप्रयोगेण
सेवनं तत् श्रमणानां मुबिहितानां कर्तुं न करूपते । थे पुनः कुर्वन्ति ते यदि ज्ञातास्त्रदा तेषां
'विवेचना' परिम्रापना भणिता ॥ ५०२५ ॥ इदमेव व्याचप्टे —

आसग-पोसगसेवी, केई पुरिमा दुवेयगा होंति ।

15 तेसिं लिंगविवेगो, बितियपदं रायपव्वइते ॥ ५०२६ ॥

आस्यं—मुखं आस्यमेवास्यक्यं, पोसकः—पायुः, आस्यक-पोसकान्यां सेवितुं शील्मेषाधि-त्यासक-पोसकसीविनः; केवित् 'पुरुषाः' साथवः 'द्विवेदकाः' स्त्री-पुरुषवेदयुक्ता भवन्ति, नपुसक्वेदिन इत्यर्थः; वेषां िक्षविवेकः कर्तव्यः, ⊸िरुक्रंबाराश्चिकं दातव्यपित्यर्थः। ⊳ द्वितीयपदमत्र भवति—यो राज्यश्चितस्यस्यास्यस्य-पोसकसेविनोऽिष लिक्कं नापहियते, परं २०यदनमा स परिस्यक्यते ॥ ५०२६ ॥ गतोऽन्योन्यं व्यर्वणः पारास्त्रिकः। सम्प्रति यो दुष्टा-दियेतः पारिश्चिकः क्रियते तदेतद् दर्शयति—

विइओ उवस्सयाई, कीर्ति पारंचितो न लिंगातो ।

अणुवरमं पुण कीरति, सेसा नियमा तु लिंगाओ ॥ ५०२७ ॥

'द्वितीयः' विषयदृष्ट उपाश्रयादेः पाराधिकः कियते, क्षेत्रत इत्यर्थः, 'न लिक्कार्' लिक्क्यारा-20 धिको न विषीयते । अथ ततो दोषालीपरमते तदाऽनुपरमन् लिक्क्तोऽपि पाराधिकः कियते । 'शेषाः' कषायदुष्ट-प्रमत्ता-ऽन्योन्यसेवाकारिणो नियमाद् लिक्क्याराधिकाः कियनते ॥ ५०२७ ॥ किमेत एव पाराधिकाः ! उताऽन्योऽप्यस्ति ! अस्तीति त्रमः । कीदृशः सः ! इति चेद्र

किमेत एव पाराश्चिकाः ! उताऽन्योऽप्यस्ति ! अस्तीति त्रूमः । कीदशः सः ! इति चेद् उच्यते—

इंदिय-पमाददोसा, जो पुण अवराहम्रुचमं पत्तो । सन्भावसमाउद्दो, जति य गुणा से इमे होंति ॥ ५०२८ ॥

अति सन्भावसमाउद्दो, जिते य गुणा से हमे होति ॥ ५०२८ ॥ इन्द्रियदेशेषात् प्रमाददोषाद्वा पाराधिकापित्रयोग्याय् यः पुनः साधुः 'उत्तमम्' उत्कृष्टमपरा-धपदं पाष्ठः स यदि 'सद्भावसमाइतः' 'निश्चयेन भूगोऽहयेवं न करिण्यामि' इति व्यवसित-

१ ॰ प्तदन्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥ २ °य-प्रमाददोषाद् यः पुर्वे भा• कां॰ ॥

स्त्रदा स तपःपाराश्चिकः कियते, यदि च "से" तस्त्रेमे गुणा भवन्ति ॥ ५०२८ ॥ के पुनर्तो १ इत्याह—

संघयण-विरिय-आगम-पुत्त-ऽत्थ-विहीए जो समन्मो तु । तबसी निग्गहजुत्तो, पवयणसारे अभिगतत्थो ॥ ५०२९ ॥

संहननं-वज्रक्रपभागरावम्, वीर्थ-भृत्या वज्रकुड्यसमानता, आगमः-जपन्येन नवन-३ पूर्वान्तर्गतमावारास्यं तृतीयं वस्तु उत्कर्षतो दश्चमपूर्वमसम्पूर्णम्, तच सुत्रतोऽर्षतम् यदि परिजितं भवति, एतैः संहननादिभिविधिना च-तदुचितसमाचारेण यः 'समग्रः' सम्पूर्णः । 'तपसी नाम' सिंहनिकीडितादितपःकर्ममावितः । 'निग्रहयुक्तः' इन्द्रिय-कषायाणां निग्रह-समर्थः । 'प्रवचनसारेऽभिगतार्थः' परिणामितप्रवचनरहस्यार्थं इति ॥ ५०२९ ॥ किष्य---

तिलतुसतिभागमित्तो, वि जस्स असुभो ण विज्ञती भावो । निज्जहणाइ अरिहो, सेसे निज्जहणा नित्थ ॥ ५०३० ॥

ाजकुर्णाइ आरक्षा, स्ता ाजकुर्णा नात्य । १२०० ।। स्ता जनकुर्णा नात्य । १२०० ।। स्ता जनकुर्णाइ अल्डाने क्रिकेट स स्ता निर्वृहणायाः 'अर्हः' योग्यः । 'शेषस्य' एतहुणविकरूस्य निर्वृहणा नास्ति, न कर्तव्ये-सर्वे :।। ५०३० ॥ इतमेव ज्याचेर्ट —

ष्यगुणसंपजुत्तो, पावति पारंचियारिहं ठाणं । ष्यगुणविप्पमुके, तारिसगम्मी भवे मूलं ॥ ५०३१ ॥ प्तैः─संहननादिभिर्गुणैः सम्प्रयुक्तः पाराधिकाईं स्वानं प्रामोति । यः पुनरेतहुणविषमुक्तः 'ताहते' पाराधिकापविपापेऽपि मुल्मेव प्रायक्षितं भवति ॥ ५०३१ ॥

अध पाराधिकमेव कालतो निरूपयति---

आसायणा जहण्णे, छम्मासुकोस बारस तु मासे । वासं बारस वासे, पडिसेवओं कारणे भतिओ ॥ ५०३२ ॥

आशातनापाराश्चिको जघन्येन पण्मासान् उत्कर्षतश्च द्वादश मासान् भवति, प्ताबन्तं काछं गच्छान्निर्पृदक्तिष्ठतीत्वर्थः। मितसेवनापाराश्चिको जघन्येन संवत्सरम् उत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि निर्पृद आसे। ''पडिसेवजो कारणे महजो'' ित यः मित्रवेवकपाराश्चिकैः सः 'कारणे' कुङ-गणादिकार्थं 'भक्तः' विकल्पितः, यथोक्तकाळादयोगिष गच्छं मिवशतीति मावः॥ ५०३२॥ 25 अध तसेव गणानिर्मानविभिमाह——

इत्तिरियं णिक्खेवं, काउं अण्णं गणं गमित्ताणं। दव्वादि सुमे विगडण, निरुवस्सम्गद्व उस्सम्गो॥ ५०३३॥

इह यः पाराधिकं प्रतिपचते स नियमादाचार्य एव भवति, तेन च खगणे पाराधिकं न प्रतिपचट्यम्, अन्यस्मिन् गणे गन्तव्यम् । तत इत्वरं गणिनक्षेपमासम्बुच्ये शिष्ये कृत्व ६० ततोऽन्यं गणं गत्वा 'द्वन्यादिषु' द्वव्य-क्षेत्र-काल-भावेषु 'शुमेषु' मशस्तेषु 'विकटनाम्' आलो-

१ "कः तथाविधापराधसेवनया पाराञ्चिकप्रायश्चित्तप्राप्तः सः 'कारणे' कुळ-गण-सङ्गा-विकार्ये कां∘ ॥

चनां परगणाचार्यस्य प्रयच्छति । उभावपि च निरुपसर्गप्रत्ययं कायोत्सर्गं प्रकुरुतः ॥५०३३॥ अब किं कारणं स्वगणे न प्रतिपद्यते ? उच्यते---

> अध्यक्तय किरुमयया. आणाभंगी अजंतका सगके। परगर्णे न होति एए. आणाथिरता मयं चेव ॥ ५०३४ ॥

इसगच्छ एव पाराञ्चिकप्रतिपत्ती अगीतार्थानामप्रत्ययो भवति—नुनमक्रत्यमनेन प्रतिसेवितं येन पाराध्विकः कतः । ततस्तेषां निर्भयता भवति, न गरूणां विभयतीत्पर्थः । अविभ्यतश्चा-जाभक्रं कर्वीरन । अयुक्रणा च खगणे भवति, शिष्यानुरोधादिना खयमेव भक्त-पानानयनादौ नियद्यणा वक्ष्यमाणा न भवतीत्यर्थः । परगणे चैते दोषा न भवन्ति । अपि च---तत्र गच्छता भगवतामाज्ञानुपालने 'स्थिरता' स्थैर्य कृतं भवति, भयं चारमनः सङ्गायते, ततः 10 परगण गस्वा तत्र पाराश्चिकं पतिपद्य निरपेक्षः सकोशयोजनात् क्षेत्राद् बहिर्वजित ॥५०३॥।

तस्य चेयं सामाचारी----

जिणकप्पियपडिरूवी, बाहिं खेत्तस्य सो ठितो संतो ।

विहरति बारस वासे, एगागी झाणसंज्ञत्तो ॥ ५०३५ ॥ 'जिनकश्चिकप्रतिक्रपी' 'अलेपकृतं मैक्षं महीतव्यम्, तृतीयस्यां पौरुष्यां पर्यटनीयम्'

15 इत्यादिका यादशी जिनकल्पिकस्य चर्या तां कुर्वन् क्षेत्रादु बहिः स्थितः सन् 'सः' पाराश्चिकः पकाकी 'ध्यानसंयुक्तः' श्रुतपरावर्तनैकचित्तो द्वादश वर्षाणि विहरति ॥ ५०३५ ॥

यस चाऽऽचार्यस्य सकाशे प्रतिपद्यते तेन यत् कर्तव्यं तदाह---

ओलोयणं गवेसणा आयरितो क्रणति सञ्चकालं पि। उपाणों कारणार्रेम, सञ्जययत्तेण कायञ्जं ॥ ५०३६ ॥

आचार्यः पाराश्चिकस्य 'सर्वेकालमपि' यावन्तं कालं प्रायश्चित्तं बहति ताबन्तं सकलमपि कालं यावत प्रतिदिवसमवलोकनं करोति, तत्समीपं गत्ना तहर्शनं करोतीत्यर्थः । तदनन्तरं 'गवेषणं' 'गतोऽह्यक्कमतया भवतां दिवसो रात्रिर्वा !' इति प्रच्छां करोति । उत्पन्ने पुनः 'कारणे' ग्हानत्वरुक्षणे सर्वप्रयत्नेन भक्त-पानाहरणादिकं खयमाचार्येण तस्य कर्तव्यम् ॥ ५०३६ ॥

जो उ उवेहं कुआ, आयरिओ केणई पमाएणं।

आरोवणा उ तस्सा, कायब्वा पुव्वनिदिद्रा ॥ ५०३७ ॥ 25

यः पनराचार्यः 'केनापि प्रमादेन' जनव्याक्षेपादिना 'उपेक्षां कुरुते' तत्त्वमीपं गत्वा तच्छ-रीरस्योदन्तं न वहति तस्याऽऽरोपणा 'पूर्वनिर्दिष्टा' ग्लानद्वाराभिहिता कर्तन्या. चत्वारो गरकास्तस्य प्रायश्चित्तमारोपयितव्यमिति भावः॥ ५०३७॥

बद्क्तम् ''उत्पन्ने कारणे सर्वपयत्नेन कर्तव्यम्'' (गा० ५०३६) तद् भावयति— आहरति भत्त-पाणं, उन्वत्तणमाइयं पि से क्रणति ।

सयमेव गणाहिवई, अह अगिलाणो सयं क्रणति ॥ ५०३८ ॥ अथ स पाराश्विको ग्लानोऽभवत् ततस्तस्य 'गणाधिपतिः' आचार्यः स्वयमेव भक्तं पानं च 'आहरति' आनयति, उद्वर्तनम् आदिशब्दात् परावर्तनोर्द्धकरणोपवेशनादिकं तस्य स्वयं

करोति । वाब जातः 'ध्यकानः' नीरोगस्तत आचार्यं न किमपि कारबति किन्तु सर्वे सवमेव कुरुते ॥ ५०३८ ॥ अधुना बदुक्कम् ''ओकोयणं गवेसण'' (गा० ५०३६) ति तब्या-स्वानार्थमाह—

उभयं पि दाउम्म सपाहिषुञ्छं, बोढुं सरीरस्स य बहुमाणिं । आसासहत्ताम तबोकिलंतं. तमेव खेतं सहवेंति बेरा ॥ ५०३९ ॥

'स्विताः' जाचार्याः शिष्याणां मतीच्छकानां च 'उभयमि' सुनमर्थे च, किविशिष्टम् ! इत्याह—'समितिष्टच्छं' प्रच्छा—मभरतस्याः मतिवचनं मतिष्टच्छा तथा सिहतं समितिष्टच्छम्, सृज्ञविषयेऽप्रेविषये च यद् येन पृष्टं तरातिवचनं दच्या तस्सकाशसुरागम्य तदीयशरीरस्यं ''ब्रष्टमार्थिं' ति वर्षमाने काले भवा वार्षमानी—वार्षस्ययेखां वहानः करस्क्कान्यतां च्छ्छ-नतीति भावः सोऽपि चाऽऽज्ञार्थमागातं 'मस्तकेन वन्दे' इति फेटावन्यनकेन वन्दते । झरी-10 रस्य चोवन्तम्द्र्वा यदि तरमा क्वान्यति तत आधासयन्ति । आधास्य च 'तदेव क्षेत्रं' यत्र गच्छोऽवतिष्ठते तत् ससुरागच्छन्ति स्थविराः ॥ '५०३९॥ व

अथ द्वाविष स्त्रार्थी दत्त्वा तत्र गन्तुं न शक्तोति ततः को विषिः ! इत्याह— असह सुत्तं दातुं, दो वि अदाउं व गच्छति पए वि ।

संघाड ओ सें भन्तं, पाणं चाऽऽणेति मग्गेणं ॥ ५०४० ॥ इहैकस्यापि कदाचिदेकनवनं कदाचिश्व बहुववनं सर्वस्यापि वस्तुन एका-ऽनेकरूपतास्या-पनार्थमित्यदुष्टम् । असहिष्णुरावार्यः सूत्रं दस्वा गच्छति । अथ तथापि न शकोति ततः 'द्वाविप' सुन्ना-ऽर्योवदस्वा 'प्रमे' प्रभात एव गच्छति । तस्य च तत्र गतस्य एकः सञ्चाटको

भक्तं पानकं च 'मार्गेण' पृष्ठत आनयति ॥ ५०४० ॥ कदाचित्र गच्छेदपि तत्रैतानि कारणानि—

गेलण्णेण व पुट्टो, अमिणवसुको ततो व रोगातो ।

गलण्याण व पुड़ा, आभणवासुका तता व रागाता । कालिम्म दुन्बले वा, कजे अण्णे व वाघातो ॥ ५०४१ ॥

स आषार्यों स्कानत्वेन वा स्पृष्टो भवेद अथवा 'तसाद' स्कानत्वकारणाद् रोगाद् 'अभिन-बद्धक्तः' तत्काल्युक्तः स्यात् ततो न गच्छेत्। यदि वा कार्ल 'दुर्बले' न विषते बर्ल समनाय यसिन् गाढातपसम्भवादिना स दुर्बलः-ज्येष्ठा-ऽऽषाढादिकः कालः, दुरश्च्दोऽभाववाची, 28 तसिन् न गच्छेत्, शरीरक्केशसम्भवात्। ''क्जे अण्णे व वाषातो'' इत्यत्न सप्तमी तृतीयार्षे प्राकृतस्वात्, ततोऽयमर्थः---अन्येन वा कार्येण केनापि व्याषातो भवेत्॥ ५०४१॥

किं पुनस्तत् कार्यम् ! इत्याह--

नायपरायण कुवितो, चेइय-तद्द्व-संजतीगहणे।

पुन्जुत्ताण चउण्ह नि, कजाण हवेज असपरं ॥ ५०४२ ॥ वादे कस्यापि राजवल्लमवादिनः पराजयेन नृपतिः कृषितः स्वात् । अथवा वैस्यं-जिना-

र "स्य 'वर्त्तमानम्' उदन्तं वह" भा० कां० ॥ २ "न्तं पृष्ट्वा यदि ताटी० भा० विना ॥ ३ अत्रान्तरे कां० पुरुषे प्रस्थाप्रम्—१००० इति वर्तते ॥

सर्वतं किमिपि तेनाबष्टव्यं स्थात् ततस्त्रान्मोचने कुद्धो भवेत् । अथवा तहत्यस्य-नैत्यह्रव्यस्य संबत्धा वा महणं राज्ञा कृतं तन्योचने वा कुपितः । ततः 'पूर्वोक्तानाम्' इहैन प्रथमोहेशके प्रतिपादितानां (गा०) निर्विषयत्वाज्ञापैन-मक्तपानतिषेघोपकरणहरण-जीवितवाहिन-मेदरुक्षणानां चतुर्णा कार्याणासम्बतस्त कार्यमुखकं भवेत् ततो न गच्छेत् ॥ ५०४२ ॥

अगमने चोपाध्यायः प्रेषणीयोऽन्यो वा, तथा चाह—

पेसेइ उवज्ज्ञायं, अबं गीतं व जो तर्हि जोग्गो । प्रद्रो व अप्रद्रो वा, स चावि दीवेति तं कजं ॥ ५०४३ ॥

पूर्वोक्तकारणवरातः स्वयाचार्यस्य गमनाभावे उपाध्यायं तदमावेऽन्यो वा यो गीतार्थस्तत्र योग्यसः प्रेपचित । स चापि तत्र गतः तत् तेन पाराध्वितेन 'किमित्यय समाश्रमणा 10 नायाताः !' इति पृष्टो वाऽपृष्टो वा तत् 'कार्य' कारणं दीपयेत्, यथा—असुकेन कारणेन नायाता इति ॥ ५०१२ ॥

> जाणंता माहप्पं, सयमेव मणंति एत्थ तं जोग्गो । अत्थि मम एत्थ विसञो, अजाणए सो व ते वेति ॥ ५०४४ ॥

इह यदि स्वानीभवनादिना कारणेन समाव्यगणानायमनं पृष्टेनापृष्टेन वा दीपितं तदा न 1० किम्पयम्यत् तेन पाराश्चितेन वक्तव्यं किन्तु गुवादिश एवोभाग्यां यथोदितः सम्पादनीयः। अथ राजमद्वेषतो निविषयस्वादापनादिना व्यायातो दीपितस्व यदि 'ते' उपाध्याया अन्ये वा गीता-श्रीतस्य श्राक्तं स्वयमेव बुध्यन्ते ततो जाननतः स्वयमेव तस्य माहास्यं तं बुवने, यथा —अ-स्विन् प्रयोजने स्वे योग्य इति क्रियतासुप्रमाः। अथ न जानते तस्य स्वाक्तं ततः स एव तानजानानान् वृते, यथा —अक्ति ममाव तियय इति ॥ ५०२४॥

20 प्तम स्वयमुपाध्यायादिभिन्नी भणितो वक्ति-

अच्छउ महाणुमाँगो, जहासुई गुणसयागरो संघो । गुरुगं पि इमं कजं, मं पप्प मविस्सए लहुयं ॥ ५०४५ ॥

तिष्ठतु यथानुलं महान् अनुगागः व्यिकृतप्रयोजनानुकुल अचिन्त्या शक्तिर्थस्य सः, तथा गुणशतानाम् अनेकेषां गुणानाम् आकरः नियानं गुणशताकः सङ्घः। यत इदं गुरुकः 28 मिष कार्य मां प्राप्य रुषुकं भविष्यति, समर्थोऽहमस्य प्रयोजनस्य सीरुयाऽपि साथने इति भावः॥ ५०६५॥ प्रयोक्ते सोऽनुजातः सन् यत् करोति तदाह—

अभिहाण-हेउकुसली, बहुसु नीराजिती विउसमासु ।

गंतूण रायभवणे, भणाति तं रायदारहुं ॥ ५०४६ ॥

'असिधान-हेतुकुत्रकः' अञ्चलार्गे तकेनार्गे चाऽतीव क्षुण हत्यर्थः, अत एव बहुषु विद्व-ध्रात्समाषु 'नीराजितः' निवेटितः, इत्थम्युतः स पाराधिको राजभवने गरवा तं 'राजद्वारस्य' प्रतीहारं भणति ॥ ५०६६॥ कि भणति ! इत्याह—

पडिहारस्वी ! भण रायस्त्रविं, तमिच्छए संजयस्त्रवि दहुं।

१ 'पनादीनां चतुर्णां मा० का० ॥ २ 'कार्येण ना' का० ॥ ३ 'भावो, ज' तामा० ॥

विवेदणिया य स परियवस्स, जिहि निवो तत्थ तयं पदेसे ॥ ५०४७ ॥ है मतीहारूक्षमेन्! मध्ये गत्वा 'राजक्रपिणं' राजानुकारिणं भण, यदा—स्ता संयतक्षणी द्रष्टुषिच्छति । वस्तुक्तः सन् 'सः' मतीहारत्त्वयेव पार्थिक्स निवेदयति । निवेष च राजानु-मत्या यत्र नणीऽवतिष्ठते तत्र 'तक्तं' साधं पवेत्रयति ॥ ५०४७ ॥

तं द्वहचाण सुहासणत्यं, पुष्ठिन्नसु रायाऽऽगयकोउहस्त्रो ।
पण्डे उत्ताते असुर कपाई, स चावि आहबसह परियवस्स ॥ ५०४८ ॥
'तं साधुं प्रविद्यं सन्तं राजा पूजियला 'शुआसनव्यं' शुभे आसने तिरणणमागतकुत्रु-कोऽआश्रीत् । कान् ! हत्याह—मश्रमा द्वारान्' गर्भीरायोज्ञ कहाविबदप्यक्षतान् 'भतिहार-क्रितिश' ! इत्येवमारिकान् । 'स चापि' साघरे च ग्रष्टः यार्थिवसायके ॥ ५०४८ ॥

किमाच हे ! इत्याह---

10

जारिसग आयरक्खा, सकादीणं न तारिसो एसो । तुह राय ! दारपालो, तं पि य चक्कीण पडिरूबी ॥ ५०४९ ॥ याहशकाः सलु अकादीनाम्, आदिशन्दात् चमरादिपरिमहः, आत्मरक्षा न ताहश एष तव राजन् ! हारपाल्सत उक्तम् ''हे मनीहाररूपिन् !' । तथा स्वमि वाहशस्त्रकवर्ती ताहशो न अविस् , सावभावात् , अनान्तरे चनकारितम्हिदराज्यातन्या, किश्चतिक्रपिन्दार्यान्यान्याक्नार्वन नादिना तस्त्रतिक्रपोठिस तत उक्तम् ''राजक्षपिणं मूहि'', चकर्तिमतिक्रपिन्धिः ॥ ५०४९ ॥ पवस्रके राजा माह— त्वं कथं भ्रमणानां मतिक्षपी ! तत आह——

समणाणं पडिरूबी, जं पुन्छिस राय ! तं कहमहं ति ।
निरतीयारा समणा, न तहाऽहं तेण पडिरूबी ॥ ५०५० ॥
यत् सं राजन् ! पुन्छिस 'अब कथं सं अमणानां मतिरूपी ?' तदहं कथयासि—यद्या 20
अमणा भगवन्तो निरतिचारा न तथाऽहं तेन अमणानां मतिरूपी, न तु साक्षात् अमण इति
॥ ५०५० ॥ मतिरूपियनेव भावयति—

निज्जृहो मि नरीसर !, खेत्ते वि जईण अच्छिउं न लमे । अतिवारस्स विसोधि, पक्रेमि पमायमूलस्स ॥ ५०५१ ॥

हे नरेश्वर ! प्रमादम् इस्याति चारस्य सम्प्रति विद्योधि प्रकेरीमि, तां च कुर्वन् 'निर्यूको 25 डिक्स' निष्कासितोऽस्मि, तत आस्तामन्यत्, क्षेत्रेऽपि यतीनामहमास्यातुं न रुमे, ततः अमण-प्रतिक्रस्वहमिति ॥ ५०५१ ॥ राजा प्राह—कस्त्वया कृतोऽतिचारः ! का वा तस्य विद्योधिः ! एवं द्वहे यत् कर्तव्यं तदाह—

कहणाऽऽउद्वण आगमणपुन्छणं दीवणा य कजस्त । वीसिकायं ति य मप्, हासुस्तिलेतो भणति राया ॥ ५०५२ ॥ ॥ १ कथनं राज्ञा पृष्ठस्य मसक्तरीऽन्यस्यापि यथा प्रवनगावना भवति । ततः 'आवर्तनप्' आकम्पनप्, राज्ञो भक्तीभवनिमिति भावः । तदनन्तरमागमनकारणस्य प्रश्नः—(मन्यामप्— १००० । सर्वमम्यामम्—३४८२५) केन प्रयोजनेन यूयमजाऽऽगताः स्व १ । अज्ञान्तरे प्राप्त थेन कीर्येणागतस्तस्य 'दीपना' मकाशना । ततो राजा ''हासुस्सलिओ'' ति हासेन युक्त उत्स्त:-हृद्दो हासोत्स्तः, हृसितमुखः प्रहृष्टश्च सन्नित्यर्थः, भणति । यथा-प्रया 'निसर्जितं' युक्किलतं निर्विषयाज्ञापनादिकं कार्यमिति ॥ ५०५२ ॥ एवं च किं सङ्जातम् ! इत्याह—

संघो न लभइ कर्ज, लद्धं कर्ज महाणुभाएणं।

तब्मं ति विसर्जिमि, सो वि य संघी ति प्रवित ॥ ५०५३ ॥

निर्विषयत्त्राज्ञापनमुत्कलनादिलक्षणं कार्यं सङ्घो न लभते किन्तु तेन पाराश्चिकेन 'महानु-भागेन' 🗠 सातिशयाचिन्त्यप्रभावेन 🗠 रुब्धम् । न च स एवं कार्यरुमिन गर्वसुद्धहति, यत आह---''तुडमं ति'' इत्यादि, राजा पाह---युष्माकं भणितेनाहं पूर्वप्राहं त्यक्तवा तत् कार्यं विसर्जयामि नान्यथा । 'सोऽपि च' पाराश्चिको बृते —कोऽहम् १ कियन्मात्रो वा १ गरीयान् 10 सङ्घो भट्टारकः, तत्प्रभावादेवाहं किञ्चिज्ञानामि, तस्मात् सङ्घमाह्य क्षमयित्वा यूयमेवं बृत---मुत्कलितं मया युष्माँकमिति । ततो राजाऽपि सह्वं पूजयति ॥ ५०५३ ॥

अन्मत्थितो व रण्णा, सयं व संघो विसजति तु तुद्दो । आदी मज्झ ऽवसाणे, स यावि दोसो धुओ होइ ॥ ५०५४ ॥

राजा सङ्घं मृयात--मया युष्माकं विसर्जितं कार्यम्, परं मदीयमपि कार्यमिदानीं ाः कुरुत- मुझतास्य पाराधिकस्य प्रायधित्तम् । एवं राज्ञाऽभ्यर्थितो यदि वा स्वयमपि तष्टः सङ्घः 'विसर्जयति' मुत्कलयति । किमुक्तं भवति !--यद व्यृढं तद् व्यृढमेव, शेषं तु पुनर्दे-शतः सर्वतो वा प्रसादेन मुखति । तस्य च पाराश्चिकतपसस्तदानीमादिर्मध्यमवसानं वा भवेत . त्रिष्विप सङ्घरपादेशात् 'स चापि' पाराखिकापत्तिहेत्तद्रीयः 'धृतः' कम्पितः, प्रसादेन स्फेटितो भवतीत्पर्थः । तत्र देशो देशदेशो वा प्रायश्चित्तस्य तेन वोडन्यः । अथ राजा तस्यापि मोचने 20 निर्वन्धं करोति तदा तदाप मुच्यते । देशो नाम-पडमागः, देशदेशः-दशभागः ॥ ५०५४ ॥

तत्र देशे यावन्तो मासा भवन्ति तदेतत प्रतिपादयति-

एको य दोन्नि दोन्नि य. मासा चउवीस होति छन्भागे। देसं दोण्ह वि एयं, वहेज ग्रंचेज वा सन्वं ॥ ५०५५ ॥

इहाशातनापाराश्चिको जधन्यतः पण्मासान् उत्कर्षती वर्षं भवति इत्युक्तम्, तत्र पण्मा-थः सानां पछे भागे एको मासो रूम्यते वर्षस्य त पड्मागे हो मासो भवतः । प्रतिसेवनापारा-श्विको जधन्यतो वर्षम् उत्कर्षतो द्वाद्य वर्षाणि भवतीत्यक्तमः, तत्रापि वर्षस्य पड्मागे द्वी मासी द्वादशवर्षाणां पष्टे भागे चतार्वशतिर्मासा भवन्ति । एवंविधं देशं 'द्वयोरपि' आज्ञातना-प्रतिसेवनापाराश्चिकयोः सम्बन्धिनं सङ्घत्यादेशाद बहेत् , यद्वा सर्वमपि सङ्घो मुखेत् , न किमपि कारयेदित्यर्थः ॥ ५०५५ ॥ अथ देशदेशमाह-

अद्वारस छत्तीसा. दिवसा छत्तीसमेव वरिसं च । 30 बावत्तरि च दिवसा, दसभाग वहेळा बितिओ तु ॥ ५०५६ ॥

१ कारणेनाम° कां० ॥ २ °भावेणं तामाः ॥ ३ प № एतत्मध्यमत, पाठ: भा० कां० नास्ति ॥ ध प्यार्क तत कार्यसिति कां॰ ॥

13

30

आशातनापाराश्चिके बण्णासानां दशमे भागेऽष्टादश दिवसा वर्षस्य तु दशमे भागे बर्-त्रिशाहिबसा भवन्ति । प्रतिसेवनापाराश्चिके संबस्सरस्य दशमे भागे बर्ट्निशहिबसा द्वावशव-र्षाणां दशमे भागे वर्षमेकं द्वासप्ततिश्च दिवसा भवन्ति । एतावन्तं कालं यद् वहेद् एषः 'क्षितीयः' देशदेश उच्यते ॥ '५०५६ ॥ उपसंहरलाह—

पारंचीणं दोण्ह वि, जहसमुकोसयस्स कालस्स । छब्मागं दसमागं, वहेज सर्व्व व झोसिजा ॥ ५०५७ ॥

'द्वयोरपि' आशातना-प्रतिसेवनांपाराश्चिकयोजेवत्य उत्कृष्टश्च यः कालसस्य सम्बन्धिनं पङ्गागं दशमागं वाऽनन्तरोक्तं वहेत् । यद्वा 'सर्वमिपे' अवशिष्यमाणं सङ्घः क्षपयेत् , प्रसादेन मुखेदिति मावः ॥ ५०५७ ॥

॥ पाराश्चिकप्रकृतं समाप्तम् ॥

अनवस्थाप्य प्रकृतम्

सृत्रम्---

ततो अणवट्टप्पा पण्णत्ता, तं जहा—साहिमयाणं तेण्णं करेमाणे, अन्नधिमयाणं तेण्णं करेमाणे, हरथादालं दलेमाणे ३॥

अस्य सम्बन्धमाह----

पच्छित्तमणंतरियं, हेट्टा पारंचियस्स अणवट्टो । आयरियस्स विसोधी, भणिता इमगा उवज्झाते ।। ५०५८ ॥

पूर्वसूत्रे पारिश्विकपायश्चित्तपुत्तम्, तस्य 'अधस्ताद्' अनन्तरितमनवस्थाप्यमायश्चित्तं भवति, अतः साध्यतं तदिभिषीयते । यद्वा पूर्वसूत्रे आचार्यस्य शोधिर्भणिता, इयं पुनरुपाच्या- 20 यविषया सैवाभिषीयते ॥ ५०५८ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—त्रयः 'अनवस्याप्याः' तत्क्षणादेव वर्तेष्वनवस्याप-गीयाः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा—साधर्मकाः—साधवस्तेषां सत्कस्योष्ट्रप्यादेवं 'स्तेन्यं' चौर्यं कुर्वाणः । अन्यधार्मिकाः—शाक्यादयो गृहस्या वा तेषां सत्कस्योषप्य्यादेः सैन्यं कुर्वन् । तथा हस्तेनातावनं हस्तातावः, सूत्रे च तकारस्य दकारश्चतिरार्थस्वात्, तं ''दक्याणे'' ददत्, 25 यष्टि-पुष्टि-ककुटादिभिरास्यनः परस्य वा प्रहरिजिति मानः । अववा 'स्वस्थालंवं' ति पाटः, हस्तालम्ब इव 'हस्तालम्बः' अश्चिवादिप्रशानार्थमभिचारकमद्यादिययोगस्तं ''दरमाणे'' कुर्वन् । यद्वा ''अस्थादाणं दक्याणे'' ि पाटः, तत्र 'धर्योदानम्' अर्थोधादानकारणमष्टाङ्गनिमिचं 'दद्व' प्रयुक्तानः । एष सुत्रसङ्गेष्यंः ॥ अथ विस्तरार्थं विभणिष्राह—

> आसायण पिंडसेवी, अणवद्वप्यो वि होति दुविहो तु । एकेको वि य दुविहो, सचरिचो चेव अचरिचो ॥ ५०५९ ॥

आसातनात्रवसाप्यः प्रतिसेव्यनवसाप्यश्चेत्यनवसाप्योऽपि द्विवियो मवति, न केवलं भरासिक इति आपेशब्दार्थः । पुनरेकेकोऽपि द्विवियः—समारिबोऽवारिकस्रेति । एतौ द्वाविपः नेवी पारास्त्रकवद कक्तव्यो ॥ ५०५९ ॥ अवाशातनानवसाप्यमाहः—

तित्थयर पवयण सुते, आयरिए गणहरे महिद्वीए।

एते आसादेंते, पञ्छिते सम्पणा होइ ॥ ५०६० ॥ तीर्थकरः प्रवचनं श्रुतं आचार्यो गणधरो महद्धिकश्चेति । एतानाशातयतः मायश्चिते मार्गणा भवति । अमीषां चाशातना पारश्चिकवद् भावनीया (गा० ४९७६-८२)॥ ५०६० ॥ प्राथश्चित्तमार्गणा पुनरियम्

पढम-बितिएसु णवमं, सेसे एकेक चउगुरू होति । सन्वे आसादेतो. अणवद्रप्पो उ सो होइ ॥ ५०६१ ॥

गण्डिक असार्वेतो, अणबङ्कप्पो उ सी होइ ॥ ५०६१ ॥ ५म्बम-द्वितीययोः' तीर्थक्कर-सङ्घातनयोरुपाययायस्य 'नवमन् अनवस्थाप्यं भवति । ५म्बम-द्वितीययोः' तीर्थक्कर-सङ्घात्रात्रयान्य नवुर्गुरयो भवति । अध 'सर्वाणि' चरवा-व्याप्यो नवुर्गुरयो भवति ॥ ५०६१ ॥ ५म्बम-द्वित तोऽभी अनवस्थाप्यो भवति ॥ ५०६१ ॥

उक्त आजातनानवस्थाप्यः । अथ प्रतिसेवनानवस्थाप्यमाह---

पिक्कसेवणअणवहो, तिविधो सो होइ आणुपुत्रवीए । साहम्मि अण्णाधम्मिय, हर्तथादालं व दलमाणे ॥ ५०६२ ॥ यः प्रतिसेवनावनसाप्यः सूत्रे साक्षादुक्तः स आनुपूर्यो त्रिविधो भवति—साधर्मिकसै-न्यकारी अन्यपार्मिकसैन्यकारी हस्तातालं च दतत ॥ ५०६२ ॥

तत्र साधर्मिकस्तैन्यं तावदाह----

20

साहस्मि तेण्ण उवधी, वावारण झामणा य पहुवणा । सेहे आहारविधी, जा जहिँ आरोवणा भणिता ॥ ५०६३ ॥

सह आहरावया, जाह आरावणा माणा । प्रचर । प्रवासणा पर पद । । साधर्मकाणाम (अपरे। वस्तु नाजादिळ्ळाणस दोन्यं करोति । ''वावारणं' ति गुरुमिळ्य-घेट्टसादत्तार 'व्यापरणा' श्रमणा कृता ततस्त्राद्धाव्य गुरूणामिलेवापातस्तरो स्वस्मेवाधित
हित । ''श्रामणा य'' ति उपकरणं सद्घावेनासद्घावेन वा 'व्यामितं' दम्बं भवेत् स्वयाजेन

क्षावकमभ्यस्य बस्तादिकं गृहीखा स्वयमेव शुक्ते । ''पड्वण'' ति केनाप्याचार्वेण कस्त्रापि
संवस्त्य हत्ते अपराचार्यस्य दोकनाय गतिग्रहः मेलिलस्त्रसायक्तार स्वयमेव सीकरोति ।
''सेहं' ति श्रेक्षविषयं सौन्यं करोति । ''आहारिविहि'' ति दानश्रद्धादिषु स्वामनाकुर्लेषु
गुरुस्तरम्त्रमुद्धाता 'आहारिविधिंग अश्वनादिकमाहारम्बारं गृह्धाति । एतेषु स्वानेषु साधर्मिकसैन्यं भवति । अत्र च या यत्र स्वाने 'आरोपणा' प्रायक्षितापरयगीया मणिता सा सत्र

ऽ०वक्त्यमा । एप निर्मुक्तिगाधार्थक्केषाधंः ॥ ५०६३ ॥ सामत्रसेनामेव विरिद्धाहा—

उनहिस्स आसिआनण, सेहमसेचे य दिट्टऽदिट्टे य । सेहे मूर्ल भणितं, अणनहृष्यो य पारंची ॥ ५०६४ ॥

इहोंच्येः आसिआवणं स्तेन्यमित्येकोऽर्थः, तच शैक्षो वा कुर्यादशैक्षो वा, उभावि दष्टं वा स्तैन्यं कुर्यातामदृष्टं वा । तत्र शैक्षे मुखं यावतः प्रायश्चितं भणितम् , उपाध्यायस्याऽनवस्या-प्यपर्यन्तम् , आचार्यस्य पाराश्चिकान्तम् ॥ ५०६४ ॥ एतदेव भावयति--

सेही ति अगीयत्थी, जी वा गीती अणिहिसंपक्षी। उनहीं पण बस्थादी, संपरिग्गह एतरी तिविही ॥ ५०६५ ॥

होस इति पदेनागीतार्थो मण्यते. यो वा गीतार्थोऽपि 'अनुद्धिसम्पन्नः' आचार्यपदादिसम्-द्धिमगाप्तः सोऽपि शैक्ष इहोच्यते । उपधिः पूनर्वस्वादिकः, आदिशब्दात् पात्रपरिमहः । ल से च 'सपरिमहः' > परिगृहीतः स्वाद 'इतरो वा' अपरिगृहीतः । पुनरेकैकस्त्रिविधः-जधन्यो मध्यम उत्कृष्टश्च ॥ ५०६५ ॥

अर्थ "सेहे मूलं" (गा० ५०६४) इत्यादि पश्चाई व्याख्याति---

10 अंतो वहिं निवेसण, वाडग गाम्रजाण सीमऽतिकंते ।

मास चउ छच लहु गुरु, छेदो मूलं तह दुगं च ॥ ५०६६ ॥

'अन्तः' प्रतिश्रयाभ्यन्तरे साधर्मिकाणामपधिमद्रष्टं श्रीक्षः स्तेनयति मासरुषः, वसतेबीहर-दृष्टमेव स्तेनयति मासगुरु । निवेशनस्यान्तर्मासगुरु, बहिश्चतुर्रुषु । वाटकस्यान्तश्चतुर्रुषु, बहिश्चतुर्गरु । ल श्रीमस्यान्तश्चतुर्गरु, बहिः षडलपु । ⊳ उद्यानस्यान्तः षडलपु, बहिः 15 षङ्गरु । सीमाया अन्तः षङ्गरु, अतिकान्तायां तु तस्यां बहिश्छेदः । "मूलं तह दुगं च" ति मुछं तथा 'ब्रिकं च' अनवस्थाप्य-पाराश्चिकयुगम् ॥ ५०६६ ॥ एतदेव भावयति ---

> एवं ता अहिट्ठे, दिट्ठे पढमं पदं परिहवेत्ता । ते चेव असेहे वी, अदिष्ठ दिडे पुणी एकं ॥ ५०६७ ॥

एवं तावदहृष्टे स्तैन्ये कियमाणे शैक्षस्य पायश्चित्तमुक्तम् । हृष्टे तु 'प्रथमं' मासरुष्ट्रह्मणं 20 पदं 'परिहाप्य' परिहृत्य मासगुरुकादारव्धं मूलं यावद् वक्तव्यम् । अशैक्षः-उपाध्यायसास्या-प्यद्देष्टे 'तान्येव' मासगरकादीनि मूँकान्तानि पायश्चित्तस्थानानि भवन्ति, दृष्टे पनः 'एकं'

१ प > एतदन्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्शते ॥

२ वाडगम्जाण इति पाठः सर्वाखिप प्रतिवृपलभ्यते, किन्तु भा॰टीका-खूर्णि-विशेषच्युण्यं-नुसरिण प्रायश्वितकमानुसारेण च घाष्ट्रग गामुजाण इत्येव पाठः सम्यग् । दश्यता डीप्पणी ३ ॥

³ ॳ > धतवन्तर्गतः पठः आ० एव वर्तते ।

[&]quot;अंतो वसहीए उबहितेण्णं करेति सेहो अविट्ठं मासलहं, बाहि वसहीए मासगुर्व । निवेसणस्य अंतो .. बाहि हा। पाडगरसंती हा, बाहि हा । गामरसंती हा, बाहि की। सजाणरसंती की, बाहि की। सीमाए अंतो फी, बाहि छेदो । एवं ताव अदिदे ।" इति चाणी ।

[&]quot;अंतो वसहीए उवहिंतेण्णं करेड सेहो अदिहं मासलहुं, बाहिं वसहीए मासपुरं । निवेसणस्थंतो मासगुरं, बाहिं : । वाडगस्स अंतो ::, बाहिं : । गामस्स अंतो ::, बाहिं :: । उज्जाणस्स अंतो ::: , बाहि ::: । सीमाए अंतो ::: , बाहि छेदो । एवं ताव अदिहे ।" इति विदेशवसूर्णी म

४ मूलं यावत् प्रायश्चित्तानि भव° का • ॥

भासगुरुकरुक्षणं पदं इसति, चत्रुर्ङेषुकादारञ्यमनवस्थाप्ये निष्ठां यातीत्यर्थः । आचार्यस्याप्य-दृष्टेऽनवस्थाप्यान्तमेव, दृष्टे तु चतुर्गुरुकादारञ्यं पाराश्चिके तिष्ठति ॥ ५०६७ ॥

गतं साधर्मिकोपधिस्तैन्यद्वारम् । अथ व्यापारणाद्वारमाह-

वावारिय आणेहा, बाहिं घेत्तृण उनिह गिण्हंति ।

लहुगी अदिति लहुगा, अणबहुप्पी व आदेसा ॥ ५०६८ ॥

'व्यापारिता नाम' गुरुसि: प्रेमिताः, यथा—''आणेह'' ति उपिधमुत्पायाऽऽनयत । ते वैवमुक्ता अनेकविभमुपि गृहिस्यः 'गृहीत्वा' उत्पाय 'विहिरेय' आचार्यसमीपमप्राता उपिं गृहित्त, 'इदं तव इदं मम' इति विभग्न स्वयोग सीकुवैन्तीत्यर्थः; एवं गृहता मासल्यु । आगता आचार्यस्य न ददित चतुर्कपनः, प्रस्तुतस्त्राद्वाद्वाद्वाद्वा ५ सं स्वच्छन्दवस्त्रमाहकः सापु10 वर्गो > ऽनवस्त्राप्यो भवति ॥ ५०६८ ॥ गतं व्यापारणाद्वारम् । अय ध्यामनाद्वारम्—
सा च प्रयामना दिविश—सती अपती च । तत्रात्वाती तावदाहः—

दहु निमंतण छद्धोऽणापुच्छा तत्थ गंतु णं भणति । झामिय उनघी अह तेहि ऐसितो गहित णातो य ॥ ५०६९ ॥

आचार्याः केनापि दानश्राद्धादिना विर्रूपस्पैर्विक्षीनिमिश्रिताः, तैथ तानि मतिषिद्धानि ।

10 एकश्च साधुस्तां निमम्नणां श्रुत्वा तानि च सुन्दराणि बस्नाणि दृष्टा 'कुच्यः' लोमं गतः । तत
आचार्यमनाष्ट्रच्छ्य ''णं'' दृति तं श्रावकं तत्र गत्वा भणति — असाकसुपियः 'ध्यामितः' दग्धः
ततोऽद्दं तैराचार्येर्युप्पाकं सकारी वस्नार्थं भेमितः; एवसुक्ते दरस्तेनोपियः । स च गृहीत्वा गतः,
अन्ये च साध्य आगताः । श्राद्धेत भणितम् — गुण्माक्ष्मपियदेग्धं दृति कृत्वा यो भविद्धः

शाधुः भेषितसस्य नृतनोपियदेवो वर्तते, यदि न पद्मित्ता ततो भूयोऽपि ददामिति । साधवो

20 बुवते — नासाकसुपियदेग्धो न वा वयं कमणि प्रथयामः । एवं स लोगाभिमृतः साधुस्तेन
श्रावकेण जातः. यथा — गरूणां प्रच्छानास्तेणायं गृहीतवानः ॥ ५०६९ ॥

।कण ज्ञातः, यथा---गुरूणा प्रच्छामन्तरणाय गृहातवान् । सतक्षा किंभवति १ इत्याह---

> लहुगा अणुग्गहमिंम, गुरुगा अप्पत्तियम्मि कायन्वा । मुलं च तेणसहे, बोच्छेद पसजाणा सेसे ॥ ५०७० ॥

१० एवं तेन साधुना सैन्येन वर्केषु गृहीतेषु यद्याप्यसी श्राद्वोऽनुमहं मन्यते—'धयाऽपि तथाऽपि गृहताममी साधवः' इति तथापि चतुर्लघः । अथापीतिकं करोति ततश्चतुर्भुत्वः मायश्चिषं कर्तव्याः । अथापी 'सेनोऽयं सोनोऽयम्' इति शब्दं जनमध्ये विस्तास्यति तदा मुरुष् । यद्य शेषद्रव्याणां शेषसाधूनां वा व्यवच्छेदं "पसज्जण" ित प्रसङ्गतः करोति तिष्यकं प्राथश्चिष्ठम् ॥ ५००० ॥ अथ सर्ती ध्वामनां दर्शयति—

सुव्वत्त झामिओवधि, पेसण गहिते य अंतरा छुद्धो । लहुगो अदेंर्ते गुरुगा, अणवद्रप्पो व आदेसा ॥ ५०७१ ॥

१ < > एतदरवर्गतः पाटः भा० का० नास्ति ॥ २ विविधरूपे का०। "शायरितो केणति दाण-सङ्गतिणा विरुवस्वेहिं वरेयहि निर्मतितो" इति चूर्णो विशेषचूर्णो न ॥ अय 'धुव्यक्तं' सत्येनैव ध्यामित उपिः। ततो गुरुभिक्तंत्रेव भेषणं कृतम्, भेषितश्च सन् वेनाचार्या निमन्नितास्त्रस्यादम्यसाद्वा श्रावकाद् बस्नादिकपुर्पीयं गृहीत्वा अन्तरा 'खुक्यः' क्रोमाभिमृतो यदि गृह्माति तदा लघुको मासः । आगतोऽपि यदि गुरूणां न प्रयच्छति तदा बतुर्गुरवः, सूत्रादेशाद्वाऽनवस्थाप्यो भवति ॥ ५०७१ ॥

गतं ध्यामनाद्वारम् । अथ प्रस्थापनाद्वारमाह---

उक्तीस सनिजीगी, पडिग्मही अंतरा गृहण छुद्धी । लहुगा अदेंतें गुरुगा, अणबट्टप्पी व आदेसा ॥ ५०७२ ॥

केनाप्याचार्येण कत्यापि संयतस्य हसे अपराचार्यस्य दोकनहेतोः प्रतिमहः भेषितः, स च 'उत्क्रष्टः' उत्क्रष्टोपिष्र्यो यद्वा वृत्त-समचतुरस्र-वर्णाक्यतादिगुणोपेतः, तथा सह निर्योगेन-पात्रकवन्यादिना यः स सनिर्योगः । एवंविधस्य प्रतिमहस्य 'अन्तरा' अपान्तराङ एवासी 10 छुठ्यः 'महणे' सीकरणं करोति तत्र चुर्जेषु । तत्र गतसेषां √ सूँरीणां तं प्रतिमहं ≻ न प्रयच्छति चुर्त्रारः, सुत्रादेशेन वाऽननस्याप्यो √ उँसी दृष्टव्यः ≻ ॥ ५०७२ ॥

गतं प्रस्थापनाद्वारम् , अथ शैक्षद्वारमाह—

पञ्चावणिज बाहिं, ठवेतु भिक्तस्स अतिगते संते । सेहस्स आसिआवण, अभिधारेंते व पावयणी ॥ ५०७३ ॥

कोऽपि माञ्चः 'प्रवाजनीय' सशिखां के शेक्षं गृहीत्वा प्रस्तितः, तं च भिक्षाकाले कापि प्रामे बहिः स्वापिक्षा मिक्षार्थम् अतिगतः—प्रविष्टः, प्रविष्टं च सति तस्मिन् अपरः साधुद्धं शैक्षं दृष्टा विप्रनाभे च तस्म ''आसियावणं' अपदःग्णं करोति । साधुविरहितो वा एकाकी कमपि साधुमिधारयन्—मनित कुर्वन् शैक्षे व्यवेत तमपरः साधुविपतार्थं प्रवाचवेत् । यतौ द्वाविप यदा प्रावचिनको जातौ तदा द्वावपि यदा प्रावचिनको जातौ तदा द्वावपि यदा प्रावचिनको जातौ तदा द्वावपि यहा प्रविच्छेदं कुरुत हति 20 सङ्गद्धगाथासमासार्थः ॥ ५००३ ॥ अथैनायेच विद्युणीति—

सण्णातिगतो अद्धाणितो व वंदणग पुच्छ सेही मि । सो कत्थ मज्झ कजे, छात-पिनासस्स ना अडति ॥ ५०७४ ॥ मज्झमिणमण्ण-पाणं, उनजीवऽणुकंपणाय सुद्धो उ । पुद्वमपुट्टे कहणा, एमेव य इहरहा दोसो ॥ ५०७५ ॥

संज्ञानुमिगत आदिशब्दाद् भकादिपरिष्ठापिकार्थं निर्गतः कोऽपि साधुः शैक्षं दृष्टवान् ; अथवा 'आध्वनिकः' पथिकोऽसी साधुस्तः पथि गच्छन् शैक्षं दृष्टवान् । तेन च वन्दनके छते सति साधुः पृच्छति —कोऽित त्वम् : कुत आगताः ! क वा प्रस्तितः ! । शैक्षः प्राह्— अयुक्ते साधुना साद्धं पश्चतः प्रवित्तः प्रवित्तः प्रवित्तः । शैक्षः प्रवित्तः साधुन साधुन साद्धं । शैक्षः प्रवित्तः वा भक्त-पानार्थं 30 पर्वदिति ॥ ५००४॥

१ मा॰ विनाऽन्यत्र—°पर्धि कुत्वा अन्त° तादी॰ मो॰ डे॰ । °पर्धि मार्गियत्वा अन्त° कां॰ ॥ २-३ एतदन्तर्गतः पाठः भा॰ कां॰ नास्ति ॥

ततः स साधुर्मदीयभिदमन्न-पानम् 'उपजीव' सुंदवेति नुवाणो बदि 'सापार्षकोऽवन्' इस्यनुक्रम्यवा ददाति तता शुद्धः । शेक्षेण पृष्ठोऽपृष्टो वा यदि 'प्वमेव' अनुक्रम्यवा वर्मककां करोति तता शुद्धः । 'इतस्या' अपहरणार्थं भक्त-पानं ददतो पर्यं वा क्रभयतो 'दोषः' बहु-गुरुकं प्रायश्चित्तम् ॥ ५००५ ॥ अपहरणप्रयोगानेव दर्शयति—

भत्ते पण्णवण निगृहणा य नावार झंपणा खेव । पत्थवण-सर्यहरणे, सेहे अञ्वत वत्ते य ॥ ५०७६ ॥

अपहरणार्थं भक्त-पानं ददाति धर्म वा तस्त पुरतः प्रज्ञायति । ततः स जैस आइतः सन् भजति—भवत एव सकादोऽहं प्रज्ञानि किन्तु न शकोमि येनाऽऽनीत्सेलपुरतः साजुर, ततो वा गुणिले प्रदेशे निगृहतः, ततोऽसौ तं व्यापारयति—अपुरुत्व निर्छीय तिष्ठेति । 10 ततक्तं तत्र निर्छोनं साधुः पलालादिना अप्ययति, स्थायतीत्र्यशः । अधवाऽन्यैः साधिमन्यं प्रामं प्रसाययति, एकतिन वो प्रचयति —अकुकत्र प्रामात्री जन, अहम्प्यसुध्निन् दिवते नाऽऽग-निष्यामि । अथवा स्वयमेव गृहीत्वा तमपदरति । एतानि यद् पदानि भवन्ति, तक्ष्या— भक्तमदानं १ धर्मकथा २ निगृहनावचनं ३ व्यापारणं ४ झम्पनं ५ प्रसापन-स्वयंदरणं ६ चेति । एतेषु पदसु पदेषु लेक्षे व्यक्तेऽज्यके च प्रायक्षित्रस्वित भवति ॥ ५००६॥ ।

गुरुओ चउलहु चउगुरु, छछहु छग्गुरुगमेव छेदो य । भिक्तु-गणा-ऽऽयरियाणं, मृतं अणवट्ट पारंची ॥ ५०७७ ॥

भिश्चर्यबच्यक्तरीक्षस्पाष्टरणार्थं भक्तं दराति तदा मासगुर, धर्ममद्रापनायां चतुर्केषु, निपू-हनवचने चतुर्गुरु, व्यापारणे पद्धस्यु, झम्पने पहुरु, प्रस्थापने स्वयंहरणे चा च्छेदः । एवम-व्यक्ति शैक्षे भणितम् । अध्यक्ती नाम-यस्याचापि दमश्च न सञ्जातम् । यस्तु व्यक्तः-सञ्जात-२० रमश्चस्त्रव चतुर्केषुकादारच्यं मूठं यावद् भिक्षोः प्रायध्यितम् । गणिनः-उपाध्यायस्य चतुर्केषु-कादारच्यमनदस्याप्ये तिष्ठति । आचार्यस्य चतुर्गुरुकादारच्यं पाराधिके पर्यवस्यति ॥ ५०७७ ॥

एवं ससहाये शैक्षे भणितम् , यः पुनरसहायोऽभिशारयन् ब्रजति तत्र विधिमाह— अभिधारेत वयंतो, पुट्टो वचामऽहं अग्रुगमूर्ल ।

पण्णवण भत्तदाणे, तहेव सेसा पदा णिन्धे ॥ ५०७८ ॥

कोऽपि शैक्ष एकाकी कमण्याचार्यमसिवारयन् प्रत्रायासिम् तो त्रज्ञात । तेन कविद् प्रापे पिष वा सार्थु इट्टा वन्दनकं कृतम् । साञ्चना पृष्टः —क गच्छितः ? । स प्राह — अमुकस्वाऽऽ-चार्यस्य पादम् ते प्रत्रावार्यं नवार्यं नवार्यः । साञ्चन प्रदेश स्वत्रार्थं मक्तवार्यं नवार्यं । स्वयन्त्रयेत्रस्य मक्तवार्यं नवार्यं । वपा-च्यावःऽऽवार्ययोर्थेशक्यं पद्धुतं पहरूकं वहरूकं च भवित, अध्वतनमेकैकं पदं इसतीति सावः । अर्थनिषाणि वुं निय्द्वन-व्यापाण-इम्पनादीनि पदानि न सन्ति, असहायस्वात्, तद्मावात् प्रायिश्वार्यं । ५००८ ॥ एते चार्यः दोवाः—

१ 'तस्तेन सह स्था' कां०॥ २ एतदनन्तरम् तद्यथा — इत्तवतरणं कां०॥ ३ 'घु-वह्नवींः पर्यवस्पति, अध' कां०॥ ध 'मिप तद्विषयं ना' कां०॥

आणादऽर्णतसंसारियत्त बोहीय दुक्तमतं च । साहम्मियतेण्णम्मि. पमत्तवलणाऽधिकरणं च ॥ ५०७९ ॥

होश्रमपहरत आजाभक्षादयो दोषा भवन्ति । अनन्तर्तसारिकांत च भगवतामाजाभक्षाद् भवति । बोषेक्ष दुर्कभत्वं जायते । साधार्मकात्तेयं च कुर्वाणः भवतो लम्बते । प्रमत्तस्य च प्रान्त-देवतया क्रकना भवति । यस्य च सम्बन्धां सोऽपह्रियते तेन समम् 'अधिकरणं' करूह उप-ठ जायते ॥ ५००९ ॥ एवं तावत् पुरुषविषया दोषा उक्ताः । अध स्त्रीविषयांतानेवातिदिशति —

एमेव य इत्थीए, अभिघारेतीऍ तह वयंतीए। वत्तऽन्वत्ताऍ गमो, जहेव पुरिसस्स नायक्वो॥ ५०८०॥

प्रविज्यार नेपा, जहन पुरस्तरत नायज्या । १०८० ॥ एवमेव क्षिया अपि शैक्षिकांयाः अभिकारयन्त्यास्त्रथा "वयंतीए" वि ससहायायाः प्रव-जितुं वजन्त्या व्यक्तायां अव्यक्तायाश्च गमः स एव ज्ञातस्यो यथा पुरुषस्योक्तः ॥ ५०८० ॥ १० अथः प्रावचनिकपदं व्यावधे —

> एवं तु सो अवधितो, जाधे जातो सयं तु पादयणी । निकारणे य गहितो, वचति ताहे प्रसिद्धाणं ॥ ५०८१ ॥

'एवम्' अन्तरोक्तैः प्रकारेः 'सः' शैक्षोऽपहतः सन् यदा स्वयमेव पावचनिको जातः, अन्यो वा निष्कारणे यः केनापि गृष्टीतः स आत्मनो दिवपरिच्छेदं कृत्वा भूयोऽपि बोषिछा- 15 मावासये पूर्वेषासेवाचार्याणीमन्तिके वजति ॥ ५०८१ ॥

> अनस्त व असतीए, गुरुम्मि अब्धुज्जएगतरजुत्ते । धारेति तमेव गर्ण, जो य हडी कारणजाते ॥ ५०८२ ॥

येन स शिक्षो निष्कारणेऽपहतस्तस्य गच्छेऽपरः कोऽप्याचार्यषदयोग्यो न विद्यते ततोऽ-न्यस्यामाये यद्वा स गुरुः-आवार्योऽप्युद्धतस्यैकतरेण युक्तः, अपयुद्धतमरणम् अपयुद्धतिहारं 20 वा प्रतिपन्न इत्यर्थः, ततो यदि कोऽपि शिष्यस्त्रेषां निप्पन्नो नास्ति तदा तमेव गणमसी धारयति यावत् कोऽपि तत्र निष्पन्न इति । यश्च कारणजाते केनाप्याचार्येण हृतः सोऽपि तमेव गणं धारयति ॥ ५०८२ ॥ किं पुनस्तत् कारणम् १ इत्याह—

नाऊण य वीच्छेर्द, पुव्वगते कालियाणुजीगे च । अञ्जाकारणजाते, कप्पति सेहाबहारो तु ॥ ५०८३ ॥

कोऽप्याचार्यो बहुश्रुतसास पूर्वगते किश्चिद् वस्तु प्राप्तृतं वा कालिकानुयोगेऽपि श्रुतस्क-म्भोऽध्ययनं वा विधते तत्त्वान्यस्य नास्ति ततो यधन्यस्य न सङ्कान्यते तदा व्यवच्छियते । प्रवं पूर्वगते कालिकानुयोगे च व्यवच्छेदं ज्ञात्वा तं च सम्प्रसितं दीक्षं प्रहण-धारणासमर्थे विज्ञाय भक्तदान-धर्मकथादिभिविंपरणान्य अम्पनादीन्यपि कुर्वाणः ग्रुद्धः। बह्न तत्याऽऽ-चार्यस्य नास्ति कोऽप्यायीणां परिवर्तकस्त्रास्तामपि कारणजाते वैक्षमण्डतेत् । एवं कल्पते २० शैक्षापद्वारः कर्द्धम् ॥ ५०८३ ॥ तस्य च कारणेऽपद्वतस्य को विधिः ! इत्याह—

र 'थाः कमप्याचार्यम् 'अनिभारयस्याः' असहायायास्तया कं ।। २ 'णां समीपे वज' कं ।।।

25

80

कारणजाय अवहितो, गणं धरेंतो तु अवहरंतस्स । जाहेगो निष्फण्णो, पच्छा से अष्पणो इच्छा ॥ ५०८४ ॥

यः कारणजातेऽपहतः स तदीयं गणं भारयन् अपहरत एवामाव्यो भवति । अध यैन कारणेनापहतस्वतः कारणं न प्रयति तदा पूर्वेषानेवाभवति नापहरतः । स च कारणापहत-• सास्मिन् गणे तावदासे यावरेकोऽपि गीतार्थो निष्पकः, पश्चात् तस्वाऽऽरमीया इच्छा, तत्र वा तिष्ठति पूर्वेषां वा सकारो गच्छति । यस्तु निष्कारणेऽपहतः स प्रकस्मिन् निर्माते नियमात् पूर्वेषामन्तिके गच्छति, न तस्वाऽऽरमीयेच्छेति भावः ॥ ५०८४ ॥

गतं शैक्षद्वारम् । अथाऽऽहारविधिमाह---

ठवणाधरम्मि लहुगो, मादी गुरुगो अणुग्गहे लहुगा । अप्पत्तियम्मि गुरुगा, बोच्छेट पसजणा सेसे ॥ ५०८५ ॥

दानश्राद्वादिकुळं स्थापनागृहं मण्यते, तसित् य आचार्येः असन्दिष्टः अननुजातो वा प्रविद्यति तस्य मासल्यु । अथवा 'पाष्ट्रणैक-ग्लाग्येमहोस्हाऽऽयातः' इति तेषां आद्वानां पुरतो मायां करोति तत्वो मायिन प्रमुक्ति उपयुक्ति यदि ते श्राद्धाः 'अनुमहोऽयय' इति मय्यन्ते तत्व चतुर्लेखु । अथाप्रीतिकं कुर्वनित तत्वश्चरुर्गुरवः, यच तह्वस्वस्वरुद्धादि-।
16 मेपदोषणां 'प्रसुजना' प्रसुक्तिकप्ले मायश्चित्त । ५००८५ ॥ इदमेव व्याच्छे —

अज अहं संदिद्धो, पुद्घोऽपुद्धो व साह्ती एवं।

ूपाडुणग-गिलाणद्वा, तं च पलोहेति तो बितियं ॥ ५०८६ ॥

कश्चिदाचार्येरसन्दिष्टः स्थापनाकुलेषु प्रवित्रय प्रष्टोऽपृष्टो वा ईदं भणति — अद्याहं गुरुभिः 'सन्दिष्टः' प्रेषित इति, ततो मासल्यु । यदि च पूर्वे सन्दिष्टः सङ्घाटकः प्रविष्ट आसीत् २० श्रादेश्च तस्यासन्दिष्टसामे इदं भणितं भवेत् — सन्दिष्टसङ्घाटकस्य दत्तमितिः, ततो मूयात् — प्राभूर्णकार्यं नावार्यं वा साम्प्रतमहमागत इति, एवं 'तं' भवान्यं यदि प्रलोटयित ततो 'द्वितीयं' मासगुरु ॥ '५०८६ ॥ ते च श्राद्धा विपरिणमेयुः, विपरिणतास्थाऽऽचार्यादीनां मायोग्यं न दयुः ततः ग्रुदं ग्रुदेनाप्येतत् मायश्चित्तम् —

आयरि-गिलाण गुरुगा, लहुगा य हवंति खमग-पाहुणए । गुरुगो य बाल-बुद्दे, सेसे सन्वेस मासलहं ॥ ५०८७ ॥

क्षाचार्यस्य स्हानस्य च प्रायोखयनद्वानेषु आदेषु चतुर्गुरवः । क्षपकस्य प्राष्ट्रणकस्य च योग्यमबदानेषु चतुर्केषवः । बाल-वृद्धानां योग्येऽकन्यमाने गुरुमासः । 'शेषाणाम्' एतद्याति-रिकानां सर्वेषामि प्रायोग्येऽकन्यमाने मासल् ॥। ५०८७ ॥

गतं साधर्मिकस्तैन्यम् । अथाऽन्यधार्मिकस्तैन्यमाह---

परधम्मिया वि दुविहा, लिंगपविद्वा तहा गिहत्था य । तेसिं तिण्णं तिविहं, आहारे उवधि सचित्ते ॥ ५०८८ ॥

१ "व्यक्तमपर प्राय" कं ॰ ॥ २ इदं "साहति" ति भण कं ॰ ॥ ३ तदीयमायाविपरिण-तत्वावु आचा कं ॰ ॥

15

परधार्मिका अन्यधार्मिका इत्येकोऽर्थः । ते च द्विविधाः--लिक्कप्रविद्या गृहस्याश्च । 'लिक्सपविष्टाः' शाक्यादयः, 'ग्रहस्थाः' पतीताः । 'तेषाम्' उभयेषामपि स्तैन्यं त्रिविषम्— आहारविषयमुपिधिवषयं सचित्तविषयं चेति ॥ ५०८८ ॥ तत्राऽऽहारविषयं ताबदाह-

भिक्खण संखडीए. विकरणरूवेण अंजती लढी।

आमोगण उद्धंसण, पवयणहीला दुरप्प त्ती ॥ ५०८९ ॥ भिक्षव:--बौद्धास्तेषां सङ्ख्यां कश्चिद् लुब्धो "विकरणस्त्वेण" लिङ्गविवेकेन भुद्धे, तदीयं लिक्नं कृत्वेति भावः । एवं भुझानं यदि कोऽपि 'आभोगयति' उपलक्षयति तदा चतुर्रुपवः । एवसपरुक्ष्य यद्यसी 'उद्धर्षणं' निर्मर्तनं करोति ततश्चतुर्गुरुकाः । प्रवचनहीलां वा ते कुर्युः, यथा--दरात्मानोऽमी भोजननिमित्तमेव प्रव्रजिता इति ॥ ५०८९ ॥ अपि च--

गिहवासे वि वरागा, धुवं खु एते अदिहुकछाणा । गलतो णवरि ण वलितो, एएसि सत्युणा चेव ॥ ५०९० ॥ गृहवासेऽप्येते वराकाः 'ध्रवं' निश्चितमेव अदृष्टकल्याणाः, एतेषां च 'शासा' तीर्थकता दश्चरतरामाहारश्च्यादिचर्यामुपदिशता गरुक एव नवरं न बलितः, शेषं तु सर्वमिष क्रुत-

मिति भावः ॥ ५०९० ॥ गतमाहारविषयं स्तैन्यम् । अथोपधिविषयमाह---

उवस्सऍ उविह ठवेतं. गतम्मि भिच्छम्मि गिण्हती लहुगा । गेण्हण कहूण ववहार पच्छकडुङ्काह णिव्विसए ॥ ५०९१ ॥ 'उपाश्रये' मठे 'उपधिम्' उपकरणं स्थापित्त्रा कश्चिद् भिक्षुकः-बौद्धो भिक्षां गतः, तसिन् गते यदि तदीयसुपिं गृहाति तदा चतुर्रुघवः । स भिक्षकः समायातः स्वकीयसप-

करणं स्तेनितं मत्वा तस्य संयतस्य ग्रहणं करोति चतुर्गरवः । राजकुळाभिमुखमाकर्षति पद्गरवः । व्यवहारं कारयितुमारक्षे च्छेदः । पश्चात्कृते मूलम् । उञ्जरनेऽनवस्थाप्यम् । निर्विषयाज्ञा- 20 पने पाराश्चिकम् ॥ ५०९१ ॥ अथ सचित्तविषयं स्तैन्यमाह---

सचित्रे खड़ादी, चउरो गुरुगा य दोस आणादी । गेण्डण कडूण ववहार पच्छकड्डाह निन्विसए ॥ ५०९२ ॥

सिक्क सैन्ये चिन्त्यमाने भिक्षकादैः सम्बन्धिनं क्षत्रकम् आदिशब्दाद अक्षत्रकं वा यब-पहरति तदा चत्वारो गुरुकाः आज्ञादयश्च दोषाः । महणा-SSकर्षण-व्यवहार-पश्चात्कतोश्चाह- 25 निर्विषयाज्ञापनादयश्च दोषाः प्राग्वद् मन्तन्याः ॥ ५०९२ ॥ अथैतेष्वेव प्रायश्चित्तमाह —

गेण्हणें गुरुगा छम्मास कड़णे छेओं होइ बवहारे । पच्छाकडम्मि मूलं, उड्डहण विरंगणे नवमं ॥ ५०९३ ॥ उहावण निव्विसए, एगमणेगे पदीस पारंची। अणवद्भपो दोस य. दोस उ पारंचितो होइ ॥ ५०९४ ॥ गाथाद्वेयं गतार्थम् (गा० ९०४-५ अथवा २५००-१) ॥ ५०९३ ॥ ५०९४ ॥ सुइं व सुद्धियं वा, णेति अवत्तं अपुच्छियं तेणे ।

१ "विकरणं लिंगविवेगो" इति च्यूणौं विद्याच्यूणौं च ॥ २ °द्वयं व्याच्यातार्थम् कां• ॥

30

वचिम गरिय पुच्छा, खेतं थामं च बाऊणं ॥ ५०९५ ॥

अस्तिको वा अस्तिका वा योऽचापि अन्यक्तः स यस्य शाक्यादेः सम्बन्धी तमप्रद्वा यदि तं क्षात्रकं क्षात्रिकां वा नयति ततः 'स्तेनः' अन्यधार्मिकस्तैन्यकारी स मन्तव्यः, चतुर्गुरुकं च तस्य प्रायश्चित्तम् । यस्तु व्यक्तस्तत्र नास्ति एच्छा, तामन्तरेणापि स प्रत्राजनीयः । किं सर्व-**5 येव ?** उत न **? इत्याक्षक्र**णाऽऽह—क्षेत्रं स्थाम च ज्ञात्वा । किमुक्तं भवति ?—यदि विव-क्षितं क्षेत्रं शाक्यादिभावितं राजवल्लभतादिकं वा तेषां तत्र बरुं तदा प्रच्छामन्तरेण व्यक्तोऽपि प्रमाजियतं न करूपते. अन्यथा त कल्पत इति ॥ ५०९५ ॥

प्रबं ताबिक्षम्प्रविष्टानां स्तैन्यमक्तम् । अथ गृहस्थानां तदेवाह---एमेव होति तेण्णं, तिविहं गारिश्ययाण जं वत्तं ।

गहणादिगा य दोसा. सविसेसतरा भवे तेस ॥ ५०९६ ॥

10 एवमेवागारस्थानामपि 'त्रिविधम्' आहारादिमेदात त्रिपकारं स्तेन्यं भवति यदनन्तरमेव परतीर्थिकानामुक्तम् । 'तेषु च' गृहस्येषु आहारादिकं स्तेनयतां महणादयो दोषाः सविशेषतरा भवेयः । ते हि राजकुले करादिकं प्रयच्छन्ति, ततस्तद्बलेन समिधकतरान् महणा-ऽऽकर्षणा-दीन कारयेयः ॥ ५०९६ ॥ कथं पनरमीषामाहारादिकं स्तेनयति ? इति उच्यते---

> आहारे पिद्राती, तंतु खुड़ादि जं भणित पुरुवं । पिट्रंडिय कब्बड़ी, संछभण पडिग्गहे कसला ॥ ५०९७ ॥

आहैारे-पिष्टादिकं बहिर्विरल्लितं हट्टा श्लल्लिकाः स्तेनयति । उपधी --''तंत्र'' चि सत्राष्टि-काम् उपलक्षणस्वाद् वस्त्रादिकं वाऽपहरति । सचिते — श्रुलकः – बालकस्तम् आदिशब्दाद अक्षरक वा स्तेनयति । एवं यदेव पूर्व परतीर्थिकानां भणितं तदेवात्रापि मन्तव्यम् । कथं 20 पनः पिष्टं स्तेनयति ? इत्याह—"पिद्रंडि" इत्यादि, काश्चित क्षष्टिका भिक्षामटन्यः किश्चिद गृहं प्रविष्टाः, तत्र च बहिः पिष्टं विसारितमास्ते, तच दृष्टा तासां मध्यादेका कल्पस्थिका पिष्टपिण्डिका गृहीत्वा पतद्वहे प्रक्षिप्तवती, सा चाविरतिकया दृष्टा ततो भणितम्-एनां पिष्टपिण्डिकामत्रैव स्थापयतः ततस्त्रया क्षिष्ठिकया कुशरुत्वेनान्यस्याः सङ्घाटिकाया अन्तरे प्रक्षिप्ता । एवं सूत्राष्टिकामपि दक्षत्वेनापहरेत् ॥ ५०९७ ॥ अथ सचित्तविषयं विधिमाह---25

नीएहिं उ अविदिनं, अप्यत्तवयं प्रमं न दिनिस्ति। अपरिग्नहो उ कप्पति, विजहो जो सेसदोसेहिं ॥ ५०९८ ॥

'निजकैः' माता-पिरुभमृतिभिः सर्जनैः 'अवितीर्णम्' अदत्तम् 'अप्राप्तवयसम्' अव्यक्ते पुमांसं न दीक्षयन्ति । यदि पुनरपरिगृहीतोऽब्यक्तः सः 'शेषदोषैः' बाल-जङ्ग-ब्याधितादिभि-र्विप्रमुक्तः प्रवाजयितं कल्पते ॥ ५०९८ ॥ ⊲ स्त्रीविषयं विधिमाह—⊳

अपरिग्गहा उ नारी, ण भवति तो सा ण कप्पति अदिण्या । सा वि य हु काय कप्पति, जह पउमा खुइमाता वा ॥ ५०९९ ॥

र °हारे—कस्याप्यगारिणो ग्रहाङ्गणे पिष्टा'कां ॥ २ °कं पुरुषं 'न दीक्षयन्ति' न प्रमाजयन्ति । यदि कां ।॥ ३ ৺ १० एतमिहान्तर्गतमस्तरणं आ० एव वर्तते ॥

⁴नारी' की सा मावेकापरिमहा न अवति, त्रितृ-मतिप्रसृतीनामन्यतरेण परिगृदीता भवतीति भावः । ⊲ उक्तं च—

> पिता रक्षति कोमारे, भर्ता रक्षति योवने । पन्नक्ष स्थाविरे भावे. न स्त्री खातक्ष्यमर्हति ॥ ⊳

ततो नासावर्क्या सती करूपते प्रशाययितुम् । साऽपि च काचिदरचाऽपि करूपते, यथा प्रमायतीदेवी करकपहुमाता प्रशायतीत, यथा व श्रुक्ककुमारमाता योगसङ्गद्दाभिहिता (आव० हारि० टीका निर्शुक्तिगा० १२८८—९० पत्र ७०१) यशोभद्रा नासी प्रशायिता ॥ ५०९९॥ अथ दिनीयपद्रगाह—

बिह्यपदं आहारे, अद्धाणे हंसमादिगो उनही । उनउजिन्हमा पुरिन, होहिति जुगप्पहाण ति ॥ ५१०० ॥

द्वितीयपदमाझारादिषु त्रिञ्चीप अभिश्रीयते—तत्राऽऽहारेऽध्यानं प्रवेहुकामास्ततो वा उचीणी उपलक्षणत्वाद् अशिवादो वा वर्तमाना असंसरणे अदचमि सन्दम्पनं गृह्वीषुः । आगाढे कारणे उपिपमि हंसादेः सम्बन्धिना प्रयोगणीरायद्येत् । सन्दिचिवचयेऽपि—'भिव-प्यन्तमी गुगभ्यानाः' इत्यादिकं पुष्टाल्भवनं 'पूर्व' प्रथमिव 'उपयुज्य' परिभाज्य सृहस्सञ्जककान् अन्यतीर्थिकञ्चक्रकान् वा हरेत् ॥ ५१००॥ इदमेव भावयति—

असिवं ओम विहं वा, पविसिउकामा ततो व उत्तिण्णा। थिल र्किंग असतित्थिग. जातित अदिण्णे गिण्डंति ॥ ५१०१ ॥

अशिवगृहीत विषये स्वयं वा साधवोऽशिवगृहीता भक्त-पानकाभाभावाच संस्तरेष्ठः, अवयं— दुर्भिक्षं तत्र वा भक्त-पानं न रूमेरन्, 'विह्न्ष्' अध्वानं वा प्रवेष्ट्रकामास्ततो वा उदीणी न संस्तरेष्ठः, ततः स्विरुक्तिनां या स्वरिक्ता—देवद्रीणी तत्यां याचन्ते, यदि ते न प्रयच्छन्ति तदा 20 बळादिष गृहन्ति । अध बठवन्तस्ते दारुणश्रहतयो वा ततोऽन्यतीर्थिकानामपि स्वर्लेषु याच्यते, यदि न प्रयच्छन्ति ततः स्वयमेष प्रकटं प्रच्छनं वा गृहीयुः । एवं गृहस्येष्विप याचितमरूभमानाः स्वयमिष गृहन्ति । असंसर्गणे उद्यिष्टरयेवमेव स्तैन्यययोगेण प्रदीतन्यः ॥ ५१०१॥

> नाऊण य वोच्छेदं, पुन्त्रगते कालियाणुतीगे य । गिहि अण्णतित्थियं ना, हरिज एतेहिँ हेतुर्हि ॥ ५१०२ ॥

पूर्वगते कालिकानुयोगे वा व्यवच्छेदं ज्ञारवा यो गृहस्पञ्चककोऽन्यतीर्थिकञ्चकको बा पूर्वगते कालिकानुयोगे वा व्यवच्छेदं ज्ञारवा यो गृहस्पञ्चककोऽन्यतीर्थिकञ्चकको बा अहण-भारणामेथावी स याचितो यदा न रूप्यते तदा स्वयमि गृहीयात् । 'येते' एवमादिभिः 'हेत्रभिः' कालैगर्ग्रहस्पमन्यतीर्थिकं वा हरेत् ॥ ५१०२ ॥

गतमन्यधार्भिकस्तैन्यम् । अथ "हत्थादारुं दलेमाणे" इत्यादि पाठत्रयं त्रिवरीषुराह— 30

हत्थाताले हत्थालंबे, अत्यादाणे य होति बोधव्वे । एतेसि णाणत्तं, बोच्छामि अहाणुपन्तीय ॥ ५१०३ ॥

15

हस्ताताको हस्तालम्बोऽर्थादानं चेति त्रिषा पाठोऽत्र बोद्धन्यः । एतेषां त्रयाणामपि नानास्वं बस्यामि यथाऽऽनुपूर्व्योऽहम् ॥ ५१०३ ॥ तत्र हस्तातालं तावद् विद्युणीति—

उन्मिष्णस्मि य गुरुगो, दंडो पिडयस्मि होई भयणा उ । एवं खु लोहयाणं, लोउत्तरियाण बोच्छामि ॥ ५१०४ ॥

इह हस्तेन उपलक्षणत्वात् सङ्गादिभिश्च यद् आताडनं स इस्तातालः । स च द्विथा— कौकिको लोकोत्तरिकश्च । तत्र लौकिके हत्ताताले पुरुषवथाय सङ्गादावुद्वीर्णं 'गुरुकः' रूप-काणामशीतिसहस्रलक्षणो दण्डो भवति । पतिते तु महारे यदि कथमणि न मृतस्तदा 'भजना' देशे देशेऽपरापरवण्डलक्षणा भवति । अथ मृतस्तदा तदेवाशीतिसहस्रं दण्डः । एवं 'खुः' खवधारणे, लौकिकानां दण्डो भवति । लोकोत्तरिकाणां तु दण्डमतः परं वश्चामि ॥५१०॥।

हत्थेण व पादेण व, अणवद्वप्पो उ होति उग्गिण्णे । पडियम्मि होति भयणा. उद्दवणे होति चरिमपदं ॥ ५१०५ ॥

हस्तेन वा पारेन वा उपलक्षणस्वाद् यष्टि-मुख्यदिना वा यः साधुः स्वयक्षस्य परपक्षस्य वा प्रहासमुद्रिरित सोऽनवस्थाप्यो भवति । पतिते चु प्रहारे भजना, यदि न मृतस्ततोऽनवस्थाप्य एव, अवाषदाणः—मृतः तदा 'चरमपदं' पाराधिकं अवति ॥ ५१०५ ॥ अत्रेदं द्वितीयपदम्—

> आयरिय विणयगाहण, कारणजाते व बोधिकादीसु । करणं वा पडिमाए, तत्थ त भेदो पसमणं च ॥ ५१०६ ॥

आचार्यः झुळकस्य विनयभाइणं कुर्वेन् हतातालमपि दचात्। 'कारणजाते वा' गुरु-गच्छमभृतीनामात्वन्तिके विनारो प्राप्ते बोधिकत्तेनादिप्वपि हत्तातालं मयुक्तीत । पश्चार्द्वेन हत्तालम्बमाह—"करणं वा" इत्यादि, अशिव-पुररोधादी तत्प्रशमनार्थं 'प्रतिमा' पुचलकं 20 करोति, तत अभिचारुकमम्र परिजपन् 'तत्रैव' प्रतिमायां भेदं करोति, तत्तत्तस्योपद्रवस्य प्रश्न-मनं भवति ॥ '५१०६ ॥ एण निर्मुक्तिगाथा अत एनां विवृणोति—

विणयस्स उ गाहणया, कण्णामोड-खडुगा-चवेडाहिं । सावेक्ख हत्थतालं, दलाति मम्माणि फेडिंतो ॥ ५१०७ ॥

इह विनयराब्द: शिक्षायामपि वर्तते, यत उक्तम् —''विनयः शिक्षा-मणत्योः'' (हैम० 26 अने ० त्रित्वर० क्षो० ११०५) इति । ततोऽवमर्थः—'विनयस्य' महणशिक्षाया आसेवना-शिक्षाया वा माहणायां कियमाणायां कैयोमोटकेन सब्हुकाभिः चपेटाभिवां 'सापेक्षः' जीवि-तापेक्षां कुर्मैन् अत एव 'ममीणि स्फेटयन्' येषु प्रदेशेष्वाहतः सन् मियते तानि परिहरम् आवार्येः शुक्षकस्य हसातावं ददाति ॥ ५१०७ ॥ अत्र परः प्राह्—नगु परस्य परितापे कियमाणेऽसात्वेदनीयकर्मबन्त्रो मवति तत् कथमसाबतुक्षायते ! उच्यते —

3) कामं परपरितावो, असायहेत् जिलेहिं पण्णत्तो । आत-परहितकरो पुण, इन्छिज्जइ दुस्सले स खल्ज ॥ ५१०८ ॥

१ 'कर्णामोटकेन' प्रतीतेन 'सङ्गक्या' टोलकेन 'चपेटया' प्रसिद्धया 'सापेक्षः' कां॰ ॥ २ 'व्य सम्यक्त शिक्षामप्रतिपद्ममानस्य क्वता' कां॰ ॥

'कामस्' अनुमतमिदमसाकम्—परपरिवापो जिनैरसातेहेतुः प्रज्ञासः, परं 'सः' परपरि-तापः 'दुःशले' वाक्छिक्षया दुभेहे दुर्विनीते शिष्ये 'सङ्गु' निश्चितमित्यत प्रव । कुतः ! इत्याह—''आय-परिष्यक्तरे'' पि हेती प्रधमा भावप्रधानस्य निर्देशः, तिर्वादायस्यः —आस्मनः परस्य च हितकस्त्वात् । तत्राऽऽत्मनः शिष्यं शिक्षां ग्राह्यतः कसेतिरालाभः, पत्य दु सम्यम्गृहीतिक्षस्य यथावत् चरण-करणानुपालनात्यो भूयासो गुणाः । पुनःशन्दो विशेषणे, ६ स वैतद् विशिनष्टि—यो दुष्टाध्यवसायतया परपरिताशः कियते स प्रवासातहेद्वः प्रज्ञसः, यस्तु ग्रुद्धाध्यवसायेनाऽऽत्म-परहितकरः कियते स नैवासातहेद्वारिति ॥ ५१०८ ॥

अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन द्रदयति-

सिप्पंणेउणियहा, घाते वि सहंति लोइया गुरुणो ।

ण य मधुरणिच्छया ते, ण होति एसेविहं उत्मा ॥ ५१०९॥ 10

ज् 'सिंग्यं' ति मकारोऽळाक्षणिकः, ⊳ शिरुपानि-च्यकारकसंप्रयुतीति नैपुण्यानि च—

छिपि-गणितादिकरूणकेशकानि तद्यं कीक्काः शिक्षकाः 'गुरोः' आचार्यस्य धातानिष सहन्ते,
न च 'ते' धातास्त्रानीं दारुणा अपि 'मधुरिक्ययाः' युन्दरपरिणामा न भवन्ति, किन्तु
शिच्यादिपरिज्ञाने वृचिक्षभ-जनपुजनीयतादिना परिणामस्तेषां युन्दरारी भवतीति भावः । पर्वेवोषमा 'इष्ट' प्रस्तुतार्थं मन्तव्या, यथा तेषां ते धाता हितास्त्रथा प्रस्तुतस्यापि दुविनीतस्य 18
शिच्यस्थिति भावः । अत्रायं बृदद्भाष्योक्तः सोधनयोऽपरी दृष्टगनः—

अहवा वि रोगियस्सा, ओसह चाङ्क्ष्ट्रिं पिज्जर पुर्वि । पच्छा तालेजुमवी, देहहियद्वाएँ दिज्जह से ॥ इय भवरोगत्तस्स वि, अणुकूलेणं तु सारणा पुर्वि । पच्छा पडिकलेण वि. परलोगडियह कायव्या ॥

"ओसह" ति विभक्तिलोपादीषधमिति मन्तन्यम् ॥

11 4809 11

20

अत एव साधुरेवंविघो भवेत्---

संविग्गो महविजो, अमुई अणुयत्तओ विसेससू । उज्जनमपरितंतो, इन्छियमत्थं लहह साह ॥ ५११० ॥

'संविद्यः' मोक्षाभिलाषी, 'मार्दविकः' स्तन्धताविकरः, 'अमोचि' गुर्क्षणाममोचनशीलः, ४० 'अनुवर्तकः' तेषाभेव च्छन्दोऽनुवर्ती, 'विरोषज्ञः' वस्तवस्तुविभागवेदी, उशुक्तः साच्यार्यादी, अपरितान्तो वैयान्तसादी, एवंविधः साधुरीप्सितमर्थामिह ९१त्र च लमते ॥ ५११०॥

अब "कारणजाते व बोहिगाईसु" (गा० ५१०६) ति पदं व्याचष्टे---

बोहिकतेणमयादिसु, गणस्स गणिणो व अचए पत्ते । इच्छंति हत्थतालं, कालातिचरं व सर्खं वा ॥ ५१११ ॥

१ 'तावेदनीयकर्मचन्धनिवन्धनं प्रज्ञ' कं∘॥ २ प्राप्तः प्रतिताताः परः कां॰ एर वर्तते ॥ ३ 'णामवद्यन्तयाऽमोजकः 'अनु' कां॰॥ ४ 'यादी सोत्सादः, 'अपरितात्तः' वैया-मृत्यादी भनिर्वेदचान्, पर्च' कां॰॥ बोषिकत्तेषमने आदिशन्दात् खापदादिमयेषु वा यदि 'गणस्य' गच्छस्य 'गणिनो वा' श्राबाधिस्य 'आस्यदः' आस्यन्तिको विनाशः प्राप्तस्यत् 'कारुतिचरं वा' कारुतिकर्मेण 'सयो बा' ककारुमेव इस्तताह्ममच्छिन्ति, गीतार्थो इति गम्यते ॥ ५१११ ॥

जब इस्तालम्बं व्याख्यानयति—

असिन पुरोनरोघे, एमादीनहससेसु अभिभूता। संजायपचया खलु, जण्णेसु य एनमादीसु ॥ ५११२॥ मरणभएणऽभिभूते, ते णातुं देवतं बुनासेते। पडिमं काउं मज्जे, विघति मंते परिजर्नेता॥ ५११३॥

अधिवेन लोको मुयान् भियते, परबलेन वा पुरं समन्तातुमस्द्रस् , तत्र बहिःकटकयोषैः
10 आभ्यन्तराणां कटकमर्दः क्रियते, अन्नक्षयाद्वा श्रुभा भियते, आदिशब्दाद् गल्याण्डादिभियां
रोनीदिने दिने प्रमृतो जनो मरणमश्रुते, एवमादिभिः वैश्वसेः दुःवैरिभृतास्त्रे पौरजनाः
'सञ्जातसस्याः' 'बोऽस पुरं आचार्या बहुश्रुतो गुणवान्तस्वी स शक्तो वैश्वसिदं निरोद्धस्,
नामाः कश्चिद् 'इति समिति—सम्या जातः प्रत्ययो वेषां ते तथा, न केवलमन्नेव किन्तु
अन्येष्यप्येवमादिषु सञ्जातपत्वयास्त्र सम्मृत्य तमाचार्य 'श्रायस्य' इति शरणगुपाताः पाजलि15 प्रदाः पावपतितासिष्ठिति ॥ ५९१२ ॥

ततः स आचार्यस्तान् पौरजनान् मरणभयेनाभिभृतान् देवतामिबाऽऽस्मानं पर्युपासीनान् ज्ञात्वा तदनुकम्पापरीतिचतः प्रतिमां कृत्वा तत अभिचारकमम्बान् परिज्ञपन् तां प्रतिमां मध्य-भागे विध्यति, ततो नष्टा सा कुरुदेवता, प्रशमितः सर्वोऽप्युपद्रवः। एवंविघहत्तारुम्बदासी यदाऽभ्युतिष्ठते तदा तत्कारुमेव नोपस्थाप्यते किन्तु कियन्तमपि कारुं गच्छ एव वसन् 20 व्यामर्वनं कार्यते॥ ५११३॥ अथाऽशीदानमाह—

अणुकंपणा णिमित्ते, जायण पडिसेहणा सउणिमेव । दायण पुच्छा य तहा, सारण उब्भावण विणासे ॥ ५११४ ॥

द्रायण दुण्ठा प तहा, सारण उटमावण विणास ॥ ५११४ ॥ कस्याप्याचार्थस भागिनो मतं परिलय प्रकृत्त्रपा? कुरुक्तप्रपादी, तत आवार्थस भागिनो मतं परिलय प्रकृत्त्रपा? 'क्यमयं द्रव्यमन्तरेण गृहवासमध्यासिप्यते !' इत्येवंक्षणा वृद्ध । स व 'तिसिचे अतीव 20 कुसलः' इति कृत्वा तेनैवावार्जनयां द्रेगोविणजोरिन्तके तं भागिनेयं रूपक्याचनाय भिषतवार । स व तेत्रेकेन विण्या 'किं मम राकुनिका रूपकान् हृदते !' एवसुच्या प्रतिषद्धः, द्विती-येन इ रूपक्रमवक्तानां दर्शना कृत। द्वितीय व वर्षे द्वाम्यामपि विणम्यां प्रच्छा कृता । तत आवार्यण 'सारण' क्रयाणक्रमहणविषया शिक्षा दचा । ततो येन स्पन्ना न वचास्तस्य सर्वेशविनाशः समजति, येन द्व चचासस्य 'उद्धावनं' महर्दिकत्वासम्यादनं कृतवान् । एष 80 निर्मुक्तिगाथास्तर्यः । भागार्थस्य क्यानकारवसेयः । तबेदन् —

उज्जेणीए एगो ओसकायरिको नेमितितो । तस्त य दुन्नि मित्ता वाणियगा, ते तं आपु-च्छिदं आपुच्छिदं वहर्राते—िर्क्षं मंड गिण्डामो दुवामो वा ! । एवं ते इस्तरीभूषा । तस्त य आयरियस्त भागिणेजो भोगामिकासी आगम्य तं आयरियं केक्दण् मम्मित कर्ते आवरियेणं

ख़क्कपण समं तेसिं दोण्हं पि मित्ताणं सगासं पैसवितो-- हृदगसहस्तं देहिं। तेण गंतं आयरि-बबबणेणं मिगतो- देहि । भणइ- किं सम सउणी रूबगा हगेति ? नित्य सम पत्तिया. वीसमेत्ते देगिं। तेण नेच्छियं. आयरियस्स य निवेदियं। ताहे आयरिएण वितियमित्तस्स सगासं पेसवितो. मिगतो य आयरियवयणेणं । तेण चंगोडए काउं बह्र णवरुया दंसिया-एतो जाबतिएहिं मे रूवएहिं इच्छा तावतिए गिण्हह । तेहिं आगंतुं आयरियस्स उवणीतो ४ नउलगोः ताहे भाइणिज्ञस्स दिस्रो । बितियवरिसे ते वणियगा दो वि आयरियं पुच्छंति-एसमंबरिसे केरिसं भंडं गेण्हामो ! । आयरिएहिं सउणिवाहची भणिती-जित्ति ते घरसारी तेण कप्पास-घय-गले घेत्रं अंतोघरे संगोवेह । बितिओ अप्पसारियं भणितो — तमं सबहं तण-कट्ट-बंसे घण्णं च घेत्तं बाहिं नगरस्स निरमोयद्वाणे संगोवाहि । तदा य अणवुद्री जाया, अह अगी उद्वितो, सबं नगरं दब्नं। सउणीइचस्स सबं कप्पासाति दब्नं, बितियस्स न दब्नं, ताहे 10 तेण तं तण-कट्टं धण्णं च समहग्वं विकियं. अणेगाणं सयसहस्साणं आभागी जातो । तओ सउ-णियाहतो आयरियं मणति—किंड में निमित्तं विसंवतियं ! । आयरियणं भणियं—किं मम निमित्तं सउणीया हगई ! । तओ पायपंडिएणं खामिओ । । पुणो उक्साविओ । ॥५११॥। असमेवार्थं गाथात्रयेण भाष्यकार आह---

> उञ्जेणी ओसण्जं, दो वणिया प्रन्छियं ववहरंति । 15 भोगाभिलास भच्चया ग्रंचंति न रूवए सउणी ॥ ५११५ ॥ चंगोड णउलदायण, वितितेणं जित्त तहिं एको । अण्णामिम हायणामिम या गिण्हामी किं ति पुच्छंति ॥ ५११६ ॥ तण-कडू-नेह-धण्णे, गिण्हह कप्पास-दस-ग्रलमादी । अंतो बहिं च ठवणा. अग्गी सउणी न य निमित्तं ॥ ५११७ ॥

तिस्रोऽपि व्याख्यातार्थाः । नवरं भचको भागिनेय उच्यते । "जित्तए तिहं एको" वि 'यावन्तो युष्मभ्यं रोचन्ते तावतो नवलकान गृह्णीत' एवं द्वितीयेन वणिजा भणितम् 'तत्र' तेषां मध्ये एको नवलको गृहीतः । अन्यस्मिन् 'हायने' वर्षे इत्यर्थः । 'दृष्यं' वस्त्रसच्यते । "सउणी न य निमित्तं" ति 'न च' नैव मम शकुनिका निमित्तं हदते ॥ ५११५ ॥ ॥ ५११६ ॥ ५११७ ॥ 25

> एयारिसी उ परिसी, अणवद्रव्यो उ सी सदेसम्म । णेतण अण्णदेसं, चिद्रउवद्रावणा तस्स ॥ ५११८ ॥

'पतादशः' अर्थादानकारी यः पुरुषोऽभ्यतिष्ठते स खदेशे 'अनवस्थाप्यः' न महावतेषु स्थाप्यते किन्तु तमन्यदेशं नीत्वा तस्य च तत्र तिष्ठत उपस्थापना कर्तव्या ॥ ५११८ ॥ 39

कृतः ! इति चेद उच्यते ---

पुरुवन्मासा भासेज किंचि गोरव सिणेह भवतो वा । न सहड परीसहं पि य. णाणे कंडं व कच्छक्षो ॥ ५११९ ॥

१ °इ १। तेण 'कुविको' सि नाउं सो आयरिको पाय° का॰ ॥

तं नैमिषिकं तम्रस्तितं होकः पूर्वाभ्यासाद् निमिष्टं प्रच्छेत्, सोऽपि ऋद्विगौरवतः बेहाब्राः भयाद्वा 'किश्विष्ट्' लामा-डलभादिकं तम्रस्तितो माषेत । अपि च — स ज्ञानविषयं परीषदं तम्र न सस्ते, सोखुं न शक्तोतीत्यर्थः । यथा कच्छः—पामा तद्वात् पुरुषः 'कण्डूं' कार्जितं विना स्यातुं न शक्तोति एवमेषोऽपि तम्र निमित्तकथनमन्तरेण न स्यातुं शक इति भावः ॥ ५१९९ ॥

कथा पर्वोक्तमप्त्यर्थे विशेषज्ञापनार्थं मुगोऽप्याह—

तह्यस्स दोन्नि मोत्तुं, दब्वे भावे य सेस भयणा उ । पद्धिसिद्ध लिंगकरणं, कारणें अण्णत्थ तत्थेव ॥ ५१२० ॥

इह "साधिमधर्वितिष्यं करेगाणे" इत्यादिसुयक्तमप्रामाण्येन हत्यायावस्तृतीय उच्यते, स त्रिधा—हस्तानाको हस्तावस्योऽर्थादानं चेति । तत्राऽऽधे द्वे पदे मुनन्ना यत् रोषम्—अधौदानारूयं 10 तृतीयं पदं तत्र द्वयतो मावतस्य किष्ठपदाने भजना भवति । कथम् ! इत्याह—"पदिसिद्ध" इत्यादि, उत्तरत्र "कारणे" इत्यभिधास्यानत्वाद् इह निष्कारणमिति गय्यते, ततो निष्कारणे मृतिषद्वमर्थोदानकारिणो 'किष्ठकरणे' द्रव्यक्तिकृत्य भाविकृत्य वा तत्र क्षेत्रे प्रदानम् । 'कारणे तुं भक्तमत्याक्यानप्रतिश्विकश्रणेऽन्यत्र वा तत्र वाऽनुज्ञातमेव ॥ ५१२० ॥

एषा पुरातना गाथा, अत एनां विवरीपुराह-

हत्थातालो ततिओ, तस्स उ दो आइमे पदे मोतुं। अत्थायाणे लिंगं, न दिंति तत्थेव विसयम्मि ॥ ५१२१ ॥

हस्तातालः सुत्रकमभागाण्येन तृतीयः, तस्य द्वे आदिमे हस्तातालः-हस्तालग्वरुक्षणे पदे सुचवा यद् अर्थादानाल्यं पदं तत्र वर्तमानस्य तत्रैव 'विषये' देशे लिक्नं न ददति ॥ ५१२१ ॥ स च अर्थादानकारी गृहिलिक्नी वा स्यादयस्त्रलिक्की वा । तत्र्वे—

शिहिलिंगस्स उ दोण्गि वि, ओसकें न दिति भावलिंग तु । दिजंति दो वि लिंगा. उवदिए उत्तिमद्दस्स ॥ ५१२२ ॥

यो गृहिलिङ्की प्रवाश्यार्थमभ्युषिष्ठते तस्य द्वि अपि द्रव्य-भावलिङ्के तस्मिन् देशे न दीयेते । यः पुनरवसकस्तस्य द्रव्यलिङ्कं विद्यत एव परं भावलिङ्कं तस्य तत्रैव न ददति । यद। पुनरसाबुष्पार्थयतिषस्यर्थसुपतिष्ठते तदा तस्मित्रपि देशे द्वयोरपि गृहस्था-ऽवसक्तयोर्ह्के अपि ४० लिङ्के दीयेते ॥ ५१ २२ ॥ अषवेदं कारणप्र—

ओमा-ऽसिवमाईहि व, तिपस्सिति तेण तस्स तत्थेव ।

ून य असहाओ सुचह, पुट्टो य भणिज वीसरियं ॥ ५१२३ ॥

अवमा-ऽशिव-राजद्विष्टादिषु वा समुप्रस्थितेषु गच्छस्य 'प्रतितर्णय्यति' उपग्रहं करिय्यति तेन कारणेन तत्रेव क्षेत्रे तस्य लिक्नं प्रयच्छन्ति । तत्र चेयं यतना—''न य असहाओ'' ३० हत्यादि, स तत्रारोपितमहात्रतः सन् 'असहायः' एकाकी न मुच्यते, लोकेन च निमिन्तं पृष्टो

१ भाषः । अतोऽन्यदेशान्तरे नीत्या स महाव्रतेषु स्थापनीय इति प्रक्रमः ॥ ५११९ ॥ अधानन्तरोक्तमप्यर्थं गं० ॥ २ एतर्वन्तरे प्रन्थाप्रम्—१५०० कां० ॥ ३ ॰णा विति तत्थे ॰ तार्ये० सा॰ गं० तामा० ॥

भणति—विस्मृतं मम साम्प्रतं तद् निमित्तमिति ॥ ५१२३ ॥ अय साधर्मिकादिसैन्येषु मायश्चित्तसुपदर्शयति—

> साहम्मिय-उन्नधम्मियतेण्वेसु उ तत्य होतिमा भयणा । लहुगो लहुगा गुरुगा, अणवट्टप्पो व आएसा ॥ ५१२४ ॥

सौधर्मिकसैन्या-5न्यभार्मिकसैन्ययोद्धत्र तावदियं 'भजना' प्रायश्चित्रस्वा मवति —आहारे ६ स्रोनयतो लघुमासः, उपि स्रोनयतश्चतुर्लेषु, सचितं स्रोनयतश्चतुर्गृतः । आदेशेन वाऽनव-स्थाप्यम् ॥ ५१२४ ॥

अहवा अणुवज्ज्ञाओ, एएसु पएसु पावती तिविहं । तेसुं चेव पएसुं, गणि-आयरियाण नवमं तु ॥ ५१२५ ॥

अथवा 'अनु राध्यायः' य उपाध्यायो न भवति किन्तु सामान्यमिश्चः सः 'प्तेषु पदेषु' १० आहारोपिक-सचिन्तस्तेपु यथाकमं 'त्रिविधं' लघुमास-चतुरुंचु-चतुर्गुरुळ्कणं प्रायश्चिपं प्रामोति । 'प्तेन्वेच च' आहारादिषु पदेषु गणिनः-चत्राध्यायस्वाऽऽवासेस च 'नवमम्' अनव-स्वाध्यं भवति ॥ '५१२' ॥ अत्र परः ग्राह—ननु सुत्रे सामान्यनानवस्वाध्य एव भणितः न पुन्लेषुमानाविस्त्री त्रिधं प्रायश्चित्रच तत् क्ष्याय्यं मिन्तम्यं निर्माणक्ष्याः प्राव्यते—आर्हतान् नामेकान्तवादः कापि न भवति । तथा चाह—

तुस्तमि वि अवराहे, तुस्तमतुस्तं व दिजाए दोण्हं । पारंचिके वि नवमं, गणिस्स गुरुणो उ तं चेव ॥ ५१२६ ॥

तुल्यः-सहबोऽपराशः द्वास्थानपि-आचार्याप्राध्याक्ष्यं सैवितत्तत्त द्वयोरिषि तुल्यमतुल्यं वा प्रायक्ष्यित्तं रोयते । तत्र तुल्यदानं प्रतीतमेव, अतुल्यदानं पुनिरेदम्—'पाराधिकेऽपि' पाराधिकापित्योग्येऽप्यपरावपदे सेविते 'गणिनः' उपाध्यायस्य 'नवसम्' अनवस्याप्यमेव २० दीयते न पाराधिकम्, 'गुरोः' आचार्यस्य पुनः 'सदेव' पाराधिकं दीयते । ततो यदापि सुत्रे सामान्येनाऽनवसाप्यमुक्तं तथापि तत् पुरुषविदोगपेक्षं प्रतिपद्यम्, यद्वाऽभीक्ष्णसेवानिष्यक्तम् ॥ ५२६६ ॥ तथा वाडः—

अहवा अभिक्लसेवी, अणुवरमं पावई गणी नवमं । पावंति मूलमेव उ, अभिक्लपिडसेविणो सेसा ॥ ५१२७ ॥

अथवा साधर्मिकस्तैन्यादैः 'अभीक्शसेवी' पुनः पुनः प्रतिसेवां यः करोति स ततः स्वानाव् 'अनुवरमन्' अनिवर्षमानः 'गणी' उपाध्यायो नवमं प्राप्नोति । 'दोषास्तु' ये उपाध्यायस्वमा-चार्यस्वं वा न प्राप्तास्तेऽभीक्ष्णपतिसेविनोऽपि मृत्क्रमेव प्राप्नुवन्ति नानवस्थाप्यम् ॥ ५१९७ ॥

अत्थादाणो ततिओ, अणबहो खेचओ समक्लाओ । गच्छे चेव वसंता, णिज्जूहिजंति सेसा उ ॥ ५१२८ ॥

१ 'तत्र' तयोः-अनन्तरोक्तयोः साधर्मिकसैन्या-उन्यधार्मिकसैन्ययोसाविदयं गं॰ ॥ २ प्त्यम्, तथा भगवद्वजनप्रामाण्यात् ॥ ५१२७ ॥ अथ पूर्वोक्तमर्थमुपसंहरन् विशेषं चामिषातुकाम इदमाह—अस्था^० गं॰ ॥

15

अष्टाञ्जनिमित्तपयोगेण अर्थ-द्रव्यमादते इति अर्थादानः. ततोऽर्षादानास्त्यो सस्तृतीयोऽ-नवस्थाप्यः स क्षेत्रतः समाख्यातः, तत्र क्षेत्रे नीपस्थाप्यत इत्यर्थः । 'शेषास्तु' हस्ताताङकारि-प्रमृतयो गच्छ एव वसन्तो निर्यूशन्ते, आलापनादिमिः पेदैः बहिः क्रियन्ते इत्यर्थः॥ ५१२८॥

अथ कीद्दशगुणयुक्तस्यानवस्थाप्यं दीयते ! इत्याह-

संघयण-विरिय-आगम-सत्तत्थविहीय जो समग्गी त । तवसी निग्गहजुत्ती, पवयणसारे अभिगयत्थी ॥ ५१२९ ॥ तिलतसतिभागमेची, वि जस्स असमी न विज्ञती भावी। निज्जहणाएँ अरिही, सेसे निज्जहणा नित्य ॥ ५१३० ॥ एचगुणसंपउत्ती. अणवदृष्पी य होति नायव्वी । एयगणविष्यमुके, तारिसयम्मी भवे मूळं ॥ ५१३१ ॥ आसायणा जहण्ये. लम्मासकोस बारस उ मासा । वासं बारस वासे. पडिसेवओं कारणे महओ ॥ ५१३२ ॥ इत्तिरियं निक्खेवं, काउं चडकं गणं गमित्राणं। दब्बाइ सहे वियदण, निरुवस्तरगद्ध उस्तरगो ॥ ५१३३ ॥ अप्पश्चय निर्भयया. आणामंगी अजंतणा सगणे।

परगर्णे न होति एए. आणाधिरया मर्य चेव ॥ ५१३४ ॥

गाथापद्रकं यथा पाराश्चिके व्याख्यातं (गा० ५०२९-३४) तथैव मन्तव्यम् । नवरं "दच्बाइ समे वियडण" ति द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेष 'श्रमेष' प्रशस्तेष: द्रव्यतो वटवक्षादी क्षीरवृक्षे, क्षेत्रत इक्षक्षेत्रादी, कालतः पूर्वीहे, भावतः प्रशस्तेषु चन्द्र-तारादिबलेषुः गुरूणां 20 'विकटनाम' आलोचनां ददाति । तत आचार्या भणन्ति--''एयस्स साहुस्स अणबद्धप्पतवस्स निरुवसम्मनिमित्तं ठामि काउसम्मं ति अन्नत्थससिएणं इत्यादि वौसिरामि" इति यावत चतुर्विशतिस्तवमञ्जार्योऽऽचार्या भणन्ति—एष तपः प्रतिपद्यते ततो न भवदिः सार्धमालापादिकं विधास्यति, यूयमप्येतेन सार्धमालापादिकं परिहरध्वमिति ॥ ५१२९ ॥ ५१३० ॥ ५१३१ ॥ ॥ ५१३२ ॥ ५१३३ ॥ ५१३४ ॥ एवं तपः प्रतिपद्य यदसौ विद्रधाति तद उपदर्शयति---

सेहाई वंदंती. परगहियमहातवी जिणी चेव । 25

विहरह बारस वासे, अणवद्रप्यो गणे चैव ॥ ५१३५ ॥

शैक्षादीनिप वन्दमानः 'जिन इव' जिनकल्पिक इव च प्रगृहीतमहातपाः, 'पारणके निर्हेपं मक्त-पानं महीतव्यम्' इत्याधनेकाभिमहयुक्तं चतुर्थ-पष्टादिकं विपुरुं परिहास्तपः कुर्वन्निति भावः । एवंविधोऽनवस्थाप्यः 'गण एव' गच्छान्तर्गत एवोत्कर्षतो द्वादश वर्षाण विहरति 30॥ ५१३५ ॥ इदमेव भावयति---

अणवर्डं वहमाणी, वंदइ सो सेहमादिणी सन्वे । संवासी से कप्पइ, सेसा उ पया न कप्पंति ॥ ५१३६ ॥ परगणेऽनबस्ताप्यं बहमानः 'सः' उपाध्यायादिः श्रैक्षारीनिष सर्वात् साधूत् वन्दते । तस्य च गच्छेन सार्धमेकत्रोपाश्रये एकस्सिन् पार्धे शेषसाधुजनापरिमोग्ये प्रदेशे संवासः कर्तुं कस्पते । शेषाणि तु पदानि न करयन्ते ॥ ५१३६ ॥ कानि पुनस्तानि ! इत्याह्—

> आलावण पहिषुच्छण, परियद्वद्वाण वंदणग मत्ते । पहिलेहण संघाडग. भत्तदाण संग्रंजणा चेव ॥ ५१३७ ॥

आल्यनं स साधुभिः सह न करोति तेऽपिं तं नाऽऽलपन्ति । एवं 'परिवर्तनम्' एकतो मुलभ्यन्ति । एवं 'परिवर्तनम्' एकतो मुणनम् 'उत्थानम्' अन्युत्थानं ते अपि न कुर्वेन्ति । वन्दनकं तु सर्वपामपि स करोति तत्थ पुनः साथवो न कुर्वेन्ति । 'भन्ते" वि खेरुमाश्रादिमत्यर्पणं तत्थ न किवते सोऽपि तेषां न करोति । उपकरणं परस्प न प्रत्युपेक्षन्ते । सङ्घाटकेन परस्परं न भवन्ति । भक्तवानमन्योऽन्यं । व कुर्वेन्त । एकत्र मण्डस्यां न सम्युक्षते । यचाऽन्यत् किचित् करणीयं तत् तेन सार्थं न कुर्वेन्ति । ५१३० ॥

"संघो न लभइ कर्जा०" इत्यादिगाथाः (५०५३–५७) पाराश्चिकवद् द्रष्टन्याः ॥

॥ अनवस्थाप्यप्रकृतं समाप्तम् ॥

प्रवाजनादि प्रकृतम्

15

20

स्त्रम्—

तओ नो कप्पंति पञ्चावित्तए, तं जहा---पंडए वाईए कीवे ४॥

अस्य सम्बन्धमाह----

न ठविजर्इ वएसुं, सजं एएण होति अणवड्डो । दुविहम्मि वि न ठविजह, लिंगे अयमक जोगो उ ॥ ५१३८ ॥

येन तहोषोपरतोऽपि 'सवः' तत्सणादेवानाचरिततगोविशेषो भावित्नक्रपेषु महावतेषु न स्थाप्यते पतेन कारणेनानवस्थाप्य इस्तुच्यते, स चानन्तरसूत्रे भणितः। अयं पुनः 'अन्यः' पण्ड-कादिद्विविषेऽपि द्रव्य-भाविज्के यो न स्थाप्यते स प्रतिपाचते । एप 'योगः' सम्बन्धः। ॥५१३८॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्यास्था—अयो नो करुपन्ते प्रवाजयितुम् । तद्मधा — 25 'पण्डकः' नपुंसकः । 'वातिको नाम' यदा स्वनिमित्ततेऽन्यथा वा मेहनं काषायितं मवति तदा न शक्तोति वेदं धारयिदुं यावल प्रतिसेवा छता । 'क्कीवः' असमर्थः, स च दृष्टिक्कीवा-दिरुक्षणः । एव सुत्रार्थः ॥ अथ भाष्यविस्तरः —

१ °पि तथैव तेन सह नालपन्ति । तथा सूत्रा° को० ॥

बीसं तु अपन्वजा, निजुत्तीए उ विश्वया पुन्ति । इह पुण तिहिँ अधिकारो. पंडे कीवे य वाईया ॥ ५१३९ ॥

'विंशतिः' बारू-बृद्धादिभेदाद् विंदातिसङ्क्ष्याः अपन्नात्र्याः 'पूर्व' नामनिष्पन्ने निश्चेपे 'निर्युक्ती' पञ्चकरपे समपद्यं वर्णताः । इह पुनक्षिभिरेवाधिकारः —पण्डकेन क्रीवेन अवातिकेन चेति, गुरुतरदोषदुष्टा अमी इति कृत्वं ॥ ५१३९ ॥

अथ प्रवाजनाविधिमेव तावदाह-

मीयत्ये पन्नावण, गीयत्थे अपुन्छिऊण चउगुरुगा । तम्हा गीयत्यस्स उ. कप्पइ पन्नावणा प्रन्छा ॥ ५१४० ॥

गीतार्थनेव प्रशासनार १९ ११ से स्वर्ध स्वास्त्र विकास स्वर्ध क्रिक्स । १० गीतार्थनेव प्रशासन कर्तन्या नागीतार्थने । यथगीतार्थं प्रशासनित तदा चतुर्गुरुक्स । १० गीतार्थोऽपि यदि 'अष्ट्वा' प्रज्ञामन्तरेण प्रशासन्यति तदा तसापि चतुर्गुरुक्ताः । तसादि गीतार्थस्य प्रज्ञाञ्च इस्ता प्रशासना कर्तुं करूरते । प्रज्ञानिधिश्चायम् —कोऽसि स्वम् १ को वा ते निर्वेदो येन प्रश्रम्भिः ॥ ५१४० ॥ एवं प्रष्टे संति —

सयमेव कोति साहति, मित्तेहिँ व पुच्छिओ उवाएणं । अहवा वि लक्सणेहिं, इमेहिँ नाउं परिहरेखा ॥ ५१४१ ॥

असमेम कोऽपि पण्डक कथाति, यथा— सहरो मतुष्यत्वे ममेहशः त्रैराशिकवेदः ससुदीण इति । यद्वा मित्रैसस्य निर्वेदकारणमभिषीयेत । प्रत्राजकेन वा स एवोपापपूर्वे पृष्टः कथयेत् । अथवा 'ठवणेः' महिठासमावादिभिः 'एभिः' वश्यमाणेजीत्वा तं परिहरेत् ॥ ५८४१॥ तत्र पृच्छां तावद माययति—

नजंतमणजंते, निन्वेयमसङ्खे पहमयो पुच्छे ।

अन्नाओ पुण भन्नइ, पंडाइ न कप्पई अम्हं ।। ५१४२ ॥

यः प्रत्नजितुमुपस्थितः स ज्ञायमानो वा स्यादज्ञायमानो वा । ज्ञायमानो नाम-अमुकोऽ-मुकपुत्रोऽसम्, तद्विपरीतोऽज्ञायमानः । ⊸ तंत्र यो ज्ञायमानः ⊳ स यदि श्राद्धः-श्रायको न भवति ततः प्रथमतस्तं निर्वेदं पृच्छेत् । यः पुनरज्ञातः स समासेन भण्यते—न कल्यतेऽस्माकं पण्डकादि प्रत्राजयितुम् ॥ ५१४२ ॥ स च यदि पण्डकस्तत एवं चिन्तयति—

25 नाओ मि ति पणासह, निन्वेयं पुच्छिया व से मिता। साहंति एस पंडो, सयं व पंडो ति निन्वेयं ॥ ५१४३ ॥

ज्ञातोऽस्म्यहममीभिरिति मत्त्रा प्रणश्यति । अथवा यानि 'से' तत्य मित्राणि तानि प्रच्छबन्ते—एम तरुण ईश्वरो नीरोगध विद्यते ततः केन निर्वेदेन प्रवज्ञति है। एवं प्रष्टानि तानि सुवते—एम पण्डक इति । स्वयं वा सः 'पण्डकोऽस्म्यहम्' इति निर्वेदं कथयःति 2011 ५१४३ ॥ अथ पूर्वोस्तिक्रितानि पण्डकञ्क्षणानि निरूपयिनि—

१ 'ज्याः' प्रवातियतुमयोग्याः । 'पूर्व' कां । २ 'शि जुनी एंजकप्यो' इति चूर्नी विशेष-चूर्जी न ॥ ३ 'त्या । गाधायां सप्तमी तृतीयार्थे ॥ ५१३९ ॥ कां ० ॥ ७ सति किम् १ इत्याह—सय' कां ० ॥ ५ ৺ ▷ एतन्मध्यातः पाटः भा० एव वर्तते ॥

महिलासहावी सर-वश्रमेओ, मेर्ण्ड महंतं मउता य वाया । ससहगं प्रत्मभरेणगं च. एयाणि छ प्यंडगलक्खणाणि ॥ ५१४४ ॥

पाडको बक्ष्यमाणनीत्या महिलाखमावो भवति । स्तर-वर्णभेदश्य तस्य भवति । त्ररोदो नाम-पुरुषस्य स्त्रिया भवति । त्ररोदो नाम-पुरुषस्य स्त्रिया स्वर्षा अवित । वर्णभद्यो नाम-पुरुषस्य स्त्रियाश्य स्तराद् विरुक्षणस्त्रस्य स्त्रो अवि गृह्यन्ते, ततो वर्णभद्ये नाम-वर्णादयः तस्य स्त्री-पुरुषविरुक्षणा अन्यादृष्टा भवन्ति । 'सेद्स्' अन्नाद्वानं तस्य 'महत्य' मुक्तम् भवति । वाक् च 'मृदुक्ता' कोमला भवति । मृत्रं सशब्दम-केनकं च भवति । एतानि षट् पण्डकरुक्षणानि मन्तन्यानि ॥ ५१४४ ॥

'महिलास्वभावः' इति पदं व्याचष्टे---

गती भवे पचवलोइयं च, मिदुचया सीयलगत्तया य ।

धुवं भवे दोक्खरनामधेजो, सकारपवंतरिओ ढकारो ॥ ५१४५ ॥ 10 गतिः स्त्रीवद् मन्दा सविश्रमा च भवति । पार्थतः प्रवृतस्य मत्यवद्योकितं कुर्वेन् गच्छति । शरीरस्य च स्वग् मृद्धी भवति । 'शीतङगात्रता च' अज्ञोपाञ्जानां शीतङः स्पर्धो भवति । पतानि क्षिया इव लक्षणानि दृष्ट्वा मन्तव्यम्—'शुवं' निश्चितमयं द्यक्षरनामभेषो भवेत् । तचाक्षरद्वयं सकारमत्यन्तरितो ढकार इति मतिपत्तव्यम्, माक्रतशैक्या 'संदः' संस्कृते तु 'वण्डः' इति मावः ॥ ५१४५ ॥ किञ्च—

गइ भास वत्थ हत्थे, किंड पिंड भ्रमा य केसऽलंकारे। पच्छन्न मञ्जणाणि य. पच्छन्नयरं च णीहारो ॥ ५१४६ ॥

''गह्'' ति यथा स्त्री तथा शरीः सिविकारं गच्छति । स्त्रीवद् माणां माणते । तथा वस्त्रं यथा स्त्री तथा परिष्ठे , श्विरो वा वस्त्रण स्थायति । ''हर्त्ये'' ति हत्तौ कूर्परायो विन्यस्य क्योक्योवी निवेदय जच्यति । अभीक्ष्णं च कटीमई करोति, पृष्ठं वा वस्त्रेण सुस्पीगतं करोति । 20 माणाण्यस्य सिविममं भूयुगल्युत्स्थिपति, भूरोमाणि वा स्त्रीसद्यानि । स्त्रीवत् केशानामोटयति । माण्यक्रवानाम् क्यानामक्यानाम् स्त्रीवि । प्रच्छत्रे च परेदो 'माजनानि' स्त्रानांनि करोति । प्रच्छत्रन्तरं च 'नीहारः' उच्चार-प्रवत्र वाणासकस्तेन क्रिवते ॥ ५१६६॥

पुरिसेसु भीरु महिलासु संकरो पमयकम्मकरणो य । तिविडम्मि वि वेदम्मि, तियभंगो होड कायन्त्रो ॥ ५१४७ ॥

'पुरुषेषु' पुरुषमध्ये 'भीरः' समयः शङ्कमान आस्ते । महिलासु 'सङ्करः' सम्मिलनशीलो निःशङ्को निर्भयसिष्ठस्ति । प्रमदाः—स्नियः तासां यत् कर्म—कण्डन-दरून-पचन-परिवेषणोदका-हरण-प्रमार्जनादिकं तत् स्वयमेव करोतीति प्रमदाक्रमंकरणः, इत्त् ''बहुळ्क्ग' (सिद्ध० ५-१-२) इति वचनात् करीरि अन्द्रसत्यः । प्रमादिकं बाह्यळ्क्गं पण्डकस्य मन्तव्यम् । आम्यन्तरं तु ळ्क्षणं तस्य तृतीयवेदोदयः । स च नापुंककेदिस्नियेऽपि वेदे भवति, यतः १० आम्य— विविधेऽपि वेदे मत्येकं त्रिकमङ्गः कृतियो भवति । कथ्यः । हति चेत् उच्यते— पुरुषः पुरुषवेदं वेदयति, पुरुषः स्त्रीवेदं वेदयति, पुरुषो नपुंसकवेदं वेदयति, एवं स्नी-गुंसक-

१ मेहं मदंतं मउई थ तामा॰ ॥

योरिप वेदनयोदयो मन्तव्यः ॥ ५१४७ ॥ श्राह यथेवं ततो यदुच्यते 'झी-पुरुष-नपुंसकवेदा यथाकमं फ्रम्फका-द्वाभि-महानगरदाहसमानाः' तदेतद् व्याहन्यते ! अत्रोच्यते —

> उस्सम्मलक्सणं खलु, फुंफ्म तह वणदवे णगरदाहे । अववादतो उ भड़ओ. एकेको दोस ठाणेस ॥ ५१४८ ॥

इह विविश्वतस्य बस्तुनः कारणित्रपेश्नं सामान्यसरुप्युस्तर्ग उच्यते, ततस्रयाणामिष वेदानामिदमुस्तर्गेरुक्षणमेव मन्तव्यम् । यथा—स्त्रीवेदः पुम्फकामिसमानः, पुरुषवेदो वनद-वामिसमानः, नपुंसक्वेदो महानगरदाहसमान इति । अपवादतस्तु त्रिविषोऽपि वेदः 'कक्तः' विकल्पितः । कथम् ! इत्याह — एकैश वेदः क्ष्यानं ग्रुप्तवा इत्ययोरपि द्वयोः स्थानयोदे-ते यथा—स्त्री स्त्रीवदसमाना वा पुरुषवेदसमाना वा नपुंसकवेदसमाना वा मनेत् , एवं 10 प्रस्य-तपंदक्योरपि वक्तव्यम् ॥ ५१४८॥ अथ मकारान्तरीण पण्डकव्यालमाह —

ाराप वक्तव्यम् ॥ ५२४८ ॥ अय प्रकारान्तरण पण्डकळ्कणमाहः— दुविहो उ पंडओ खल्ज, दुसी-उवघायपंडओ चेव ।

उनघाए वि ष दुनिहो, वेंए य तहेन उनकरणे ॥ ५१४९ ॥ द्विवधः सङ् पण्डकः, तद्यथा— दृषितपण्डक उपघातपण्डकश्च । दृषितपण्डको द्विविधः— श्राप्तिक उपसिक्तश्च । ⊲ ऐतत्र भेदद्वयमयोद् व्यास्थातम् । ⊳ उपघातपण्डकोऽपि द्विविधः—

15वेदोपघाते उपकरणोपपाते च ॥ ५१४९ ॥ तत्र दृषितंग्ण्डकं तावद् व्याख्यानयति — दृसियवेओ दृसिय, दोसु व वेएसु सज्जए दृसी । दसेति सेसए वा, दोहि व सेविजए दृसी ॥ ५१५० ॥

दुषितो वेदो श्रेस्य स द्षितवेदा, एष दूषित उच्यते। 'द्वयोषा' नपुंपक-पुरुषवेदयोः अथवा नपुंसक-स्रोवेदयोर्थः 'सजति' मसक्रं करोति स प्राकृतशेल्या दूसो मध्यते। यौ वा 'दोषी' 20 सी-पुरुषवेदौ 'दूषयित' निन्दति स दूषी। 'द्वार्था वा' आस्यक-गोसकाम्यां यः सेव्यते सेवते वा स दूषी॥ ५१५०॥ अस्यैव मेदानाह—

> आसित्तो ऊसित्तो, दुविहो दूसी उ होइ नायव्वो । आसित्तो सावचो, अणवचो होइ ऊसित्तो ॥ ५१५९ ॥

स दूषी द्विविधो ज्ञातच्यो मर्वात — आसिक्त उपसिक्तम् । आसिको नाम 'सापत्यः' 26 यस्पापत्यसुरापते, सर्वाज इति भावः । यस्तु 'निरपत्यः' अपत्योत्पादनसामध्येविकङः, निर्वाज इत्यर्थः, स उपसिक्त उच्यते ॥ ५१५१ ॥

ब्याख्यातो दृष्पिण्डकः, अथोपघातपण्डकमाह--

पुन्ति दुचिण्णाणं, कम्माणं असुभफ्रतिवागेणं । तो उवहम्मह वेओ, जीवाणं पावकम्माणं ॥ ५१५२ ॥

३० पूर्वे 'दुर्धाणीनीं' दुराचारसमाचरणेनार्जितानां कर्सणामञ्चभक्तः 'विपाकः' उदयो यदा भवति ततो जीवानां पापकर्सणां वेद उपहन्यते ॥ ५१५२ ॥ तत्र चायं दृष्टान्तः---

जह हेमो उ कुमारो, इंदमहे भृषियानिमित्तेणं।

१ अ > एतदन्तर्गतः पाठः कां • एव वर्त्तते ॥ २ °नां' परस्तीगमनाविद्वरा° कां • ॥

मुच्छिय गिद्धो य मुजो, वेजो वि य उवहजो तस्स ॥ ५१५३ ॥ यथा हेमो नाम कुमार इन्द्रमहे समागता या श्रृणिकाः—बालिकातासां निमिचेन 'मूच्छितो गृद्धः' अख्यत्वमासक्तः सन् 'गृतः' पम्चस्वमुपगतः, वेदोऽपि च तस्योपहतः सक्कात इत्यक्षरार्थः। भावार्थः कथानकादवसेयः। तचेवपम—

हेमपुरे नगरे हेमकुडो राया । हेमसंभवा भारिया । तस्त पुषो वरतविबहेमसिलां हेमो नाम कुमारो । सो य पचजोवन्यो अलया इंदमहे इंदहाणं गाओ, पेच्छह य तत्थ नगरकुटवालियाणं स्ववर्हणं पंचसप लि-पुण्क-पृथकड्टक्यहत्ये । ताओ दहुं सेवगपुरिसे सणह— किमेयाओ आगागओ ! कि वा अभिरुसीति ! । तिहिं स्वियं—हुंद समाति वरं सोमां व अभिरुसीति ! । तिहिं स्वयं —हुंद समाति वरं सोमां व अभिरुसीति । प्रियाम नेण सेवगपुरिसा— अहमेपार्धि इंदेण बरो दयो, नेह एयाओ अंतेउरिमा । तिहिं ताओ घेद्यं स्वयाओ अंतेउरि छूडाओ । ताहे नागरजणे रायाणं 10 वविह्यो — मोणह वि । तओ रला भणियं — कि मज्झ पुषो न रोयति बुढं जामाउओ ! । तो नागरा बुण्डिका दिया । 'एयं रह्नो सम्वतं' ति अविण्णप्य गया नागरा । कुमरिण ता सक्ता गरिणीया । सो य तामु अतीव पत्तो । पस्तस्त य तस्त सम्बवीयनीगाको जाओ । सो नाभा ताभा वाचाओ तस्त वेओवयाओ जाओ मानो य । अते मणंति — ताहि चेव 'अप्पडिसेवगो' ति स्तियाहि अहाएहिं मारिओ ॥

एव वेदोपघातपण्डक उच्यते ॥ ५१५३ ॥ अथोपकरणोपघातपण्डकमाह—

उवहय उवकरणम्मि, सेजायरभृणियानिमित्तेणं ।

तो कविलगस्म वेओ, ततिओ जाओ दुरहियासो ॥ ५९५४ ॥ शस्यातरसूणिकानिभिन्नेन पूर्वम् 'उपकरणे' अङ्गादानास्ये 'उपहते' छिन्ने सति ततः कमेण कपिलस्य दुरिभिहस्तृतीयो वेदो जात इत्यक्षरार्थः । भावार्थस्तु कथानकेनोच्यते— 20

मार्चित्र अपरिया | तेर्सि सीसी किविलो नाम खुडूगी | सी तिज्ञायरस्य सूणियाए सह खेडूं करेति | तस्स तस्येव अध्योववाओ | जाओ | अक्षया सा तिज्ञायरस्य सूणियाए सह खेडूं करेति | तस्स तस्येव अध्योववाओ जाओ | अक्षया सा तिज्ञायरस्य सूणियाए पराणिणी नातिदूरे गायीणं दोहणवाडगं गया | सा तओ दुद्ध-दृष्टिं चेन्ण्याऽऽगच्छति | किविलो य तं चेव वाडगं भिक्खायरियं गच्छति | तेणंतरा असारिए आणच्छमाणी वला भारिया उप्पा-इया | तीए कच्चित्रया अदूरे पिया छिन्ने किसि करेड़ | तीए तस्स किहेवं | तेण सा दिह्य 25 जोणिकमेप रुहिरोबिखना महीए लोकिंतिया य | सो य कोहाडहत्थमाओ रहो | किविलो य तेण कालेण भिक्सं अदिजुं पिडिनेयची, तेण य दिहा | मुखाओ से सागारियं सह जरूपरेहिं निकंतियं | सो य आयरियसमीवं न गओ, उन्निक्संतो | तस्स य उचारणोवचाएण वितेओ वेदी उदिण्णो । सो जुनकोष्टिर्माए संगहिओ | तस्य से इत्यविको वि उदिनो ॥

एष उपहतीपकरण उच्यते । अयं च पुं-नवुंतकवेदोदयाद् आख-पोसकमतिसेवी भवति, १० वेदोदयं च निरोक्षं न शकोति ॥ ५१५४ ॥ तथा चात्र दृष्टान्तः—

जह पढमपाउसमिंग, गोणो घाओ त हरियगतणस्स ।

अञ्जलकाति कोर्डिनि, नानणां दुष्मिगांचीयं ११ ५९५५ ॥ वर्ष हु केद पुरिसा, भोत्त्वा वि भोयणां पतिविसिद्धं ! तात्र वा डोंति उ सुद्धा, जाव च पढिसेवियो सावो ॥ ५१५६ ॥

ताव च हाति उ तुष्टा, जाव च पाकराज्या चारा ता र र र स यथा प्रथमे प्रावृषि 'गी:' वदीवदाँ हरितलुकस आती दुरिभन्यां च्याप्कां च 'कोकि-१ श्विती' कावनुस्रवृति, एवं 'के विद्' उत्कटवेदा: पुरुषा भीवनं 'प्रतिविश्वितं' क्रिक्य-पुरं श्वित्य-इस तावतु दुष्टा न भवत्ति यावदास-पोसक्ठक्षणो भावो न प्रतिसेवितो मचति ॥ ५१५५ ॥ १ ९९५६ ॥ एवंविधः कदाचिदनाभोषेन प्रव्यवितो भनेत् ततः केन देतुन स्वयन्त्

गहमं तु संजयस्ता, आयरियाणं व स्विप्पमालोए ।
विद्या व गिग्मपाणं, चरिचसंभेषणी विकहा ॥ ५१५७ ॥
स पण्डकः प्रेत्रजितः सन् प्रतिसेचनाभिमायेण संस्तत्व महणं कुर्यात् । स च संस्वः
श्चिममावार्याणामालोचयेत् । यदि नालोचयित ततस्वतुर्गुरः । अथवा प्रतिअसन्तर्भस्यस्यमादः 'विहः' विचारमूसी गतानां चारियसन्तरेदिनी निकवां कुर्यात् ॥ ५१५७ ॥
स्वर्येच भावयति—

छंदिय गहियँ गुरूणं, जो न कहे जो व सिहुबहेडला । परपक्स सपक्खे वा, जं काहिति सो तमापजे ।। ५१५८ श्री 'छन्दितो नाम' तेन पण्डकेन 'मां मितसेक्स, अहं शा खां बातिसेचे' इत्येवं यो निम- बितो क्या स्पाइतेन गृहीताः, एतो हाथिप विदे गुरूणां व कववतः 'बिष्टे वा' कथिते विदे गुरू व उपेशां कुर्वेन्ति तवा संपामणि चतुष्ठेतः । यथ परपक्षे स्वयक्के स्व स्वतिसेवनां ३० कुर्वेच् स पण्डक उष्ट्राहादिकं करिष्यति तत् ते 'आपचन्ते' मामुचन्ति ॥ ५१५८ ॥ ''बरिखर्सनेयणी विकह"' (गा० ५१५०) ित पदं स्थावर्षे—

इत्यिकहाउ कहिचा, तासि अवसं पुणी प्यासेति । समलं सावि अर्गार्थ, खेतो य ण एयरे ताहं ॥ ५१५९ ॥

स यण्डकः सीकथाः कथयति, यथा ताः परिशुज्यन्ते यद् वा सुसं तव अकति । यदं

क कविरता पुनस्तासामवर्षे मकाशयति, यथा—समळं स्वावि 'अमन्ति य' दुर्वन्य सर्वेदं
किक्रम्, ताद्य च परिशुज्यमानासु पुरुषस्य खेदो जायते, ''एतरे'' वि अस्ताकं पुनस्यक्षके
'कानि' दुवयानि न भवन्ति ॥ ५१५९ ॥ स च एण्डक एवंविषैः कुन्वेष्टिकैक्क्ष्विक्यकः—

सागारियं निरिक्तित, वं च मलेळव जिंबई इत्यं । पुष्कित सैनिबसेवी, अतिव सुदं अदं विव दुद्दा वि ॥ ५२६० ॥ ॥ अक्षानिकमानवः परस्य वा साकामीस्य निरीक्षते । 'तव' सागारिक स्कोप स्वानिका

तं इस्तं जिन्नति । भुक्तभोगिनं च साधुं स्ट्रसि प्रच्छित — नपुंसकस्य यूर्व स्ट्रक्तसे सेवियो

१ प्रमाजि॰ भा॰ कां॰ स २ हिंतो गुडणं साथा॰ त ३ सेवि अतिसुदं, अदं खिय दुदा वि सेवेमि तासा॰ ॥

वा न वा!, तसिन् सेव्यमाने अतीच कुक्कुल्बले ! ततकाल सार्धोराशयं क्रास्य मणति—अहमेव मर्पुक्कः 'द्विषाऽपि' आल्क-पोसकाभ्यां क्रतिसेक्नीयः । एवं तं पण्डकं क्रासा गरुणामालेक्नीविकति वक्षमः ॥ ५१६०॥

सो समग्रासिहितेसुं, पविचारं कत्यई अलगमानो ।

तो लेविजमारद्धो, गिहिनो तह असतिस्थी य ॥ ५१६१ ॥

'सः' पण्डकः 'श्रमणश्चलिहितेषु' स्कञ्चाव-ध्याननिरतेषु साधुषु वेयुनपश्चित्तरं कुत्राच्य-क्रमणनतातो सृहिणसामाऽन्यतीर्थिदया प्रतिसेणितुमारच्यः ॥५१६१॥ तत्रेते दोषा भनेषुः—

अक्तो च अकितीया, तम्मूलावं तर्हि पत्रयणस्स । तेसि चि होइ संका, सच्चे एयारिसा मचे ॥ ५१६२ ॥

"तिह्ं" ति 'तत्र' विविक्षिते प्रामादी 'तन्मूलं' तद्धेतुकं प्रवचनस्यायणधाकीतिश्च भवति । १० तत्रायको जान-छावाधातः, क्कीर्तिः-अवर्णनाद्भावणम् । वे च भट्ट-चट्ट-तर्तनमन्तरायतं क्वितेकस्ये तेकमारि शक्का भवति—सर्वेऽप्यारी अगका 'इंटला एवं' त्रेराशिका अविष्कति । 'मन्ये' इति निपातो वितकीर्थः ॥ ५१६२ ॥ अयदाःपदमकीर्तिपदं च व्यव्यष्टे—

एरिससेवी सब्दे, वि एरिसा परिसो व वासंडो ।

सो एसो न वि अची, असंखाई घोडमहीहैं ॥ ५१६३ ॥ प्रमुतजननीलके टोक एवं मूखक् - ईदर्श-क्युंसकं सेविद्यं शीलं वेकं ते ईदशसेविनः, सर्वेऽप्येते 'ईदशाः' कैराविकाः, 'ईदशो बा' तम्मबहुत एक सरक्वाः । एवनवशःकीति

क्रक्यः सर्वजानि प्रचरति । साकृत् वा निका-विचाराविनिर्गतान् दङ्गा जुवानः केलिनिया कुनते— करे भर्दे भड़ित् ! गोकित् ! स एव श्रीमन्दिरकारकः । अन्यः मह— सम्पेष स इसि । अवदा ते प्रवीत् — समायन्त्रक समागन्त्रत अनगाः ! यूपमि तावशं तावशं तावशं क्रवा । अव्या वस्तुकः क्रवादस्ति जुनते काँग्रेसिकः समागन्त्रतं क्रवांत् । योटाः—कटाः, आविक्रक्यात् क्षानिकः विकर-पोष्टाविक्षिकः ॥ ५१६३ ॥ उकाः वण्डसः, अय क्रीव्यादः—

कीवस्त बोच वार्य, कम्युदय निरोहें जायती ततिओ !

तिमा वि सो वेष गयो, पण्डिलुस्सम्स अववादे ११ ५१६४ ११ इतिका भीलां जुललियकं वान, क्षित्रकते इति क्षीतः। किनुकं भवति :—मेनुनानियानं अ क्ष्यास्तानं विकारं भवति वीवविन्दंश परिमानते स्त्र होताः। वार्षं च महामोहकार्गेवचेन भवति । यदा च परिमानता तिर्मानं करोति तदा निरुद्धक्ति काल्यकरेण कृतिकारो स्वाप्त । यदा च परिमानता निर्मानं कराति । स्वाप्त निर्मानं कराति । स्वाप्त कराति कराति । स्वाप्त कराति । स्वाप्

१ भिः सार्धमस^{० का}॰॥

स्रोकः ॥ ५१६४ ॥ गतः क्लीवः, अथ वातिकं व्याचष्टे--

उदएण वादियस्सा, सविकारं जा ण तस्स संपत्ती । तस्रनि-असंबुडीए, दिइंतो होइ अलभंते ॥ ५१६५ ॥

यदा सिनिमिचेनानिमिचेन वा मोहोदयेन सागारिकं 'सिवकार' काषायितं भवति तदा न कश्काति वेदं भारयितुं यावक 'तत्व' मितिकेमानस्य सम्प्राप्तिमेबति, एव वातिक उच्यते ।
अञ्च च नक्विकेनामंबनाया आगार्याः प्रतिसेवकेन दृष्टान्तो भवति—

एगो तब्बनिओ जळयरनावारूढो । तथ्य तस्त पुरओ अहामावेण अगारी असंबुडा निबिद्वा । तस्त य तबनियस्त तं दहुं सागारियं थद्धं । तेण वेयउकड्याए असहमाणेण जणपुरओ पडिगाहिया अगारी । तं च पुरिसा हंतुमारद्वा तहावि तेण न सुका । जाहे से 10 बीयनिसम्मो आओ तारे सका ॥

अयमपि 'अरुभगनः' अशमुबन् निरुद्धचेदो नुसंसकतया परिणमति ॥ ५१६५ ॥ उक्तो वातिकः । ''एकम्रहणेन तजातीयानां सर्वेषामपि गृहणम्'' इति कृत्वा अपरानिप नुसंसक्तमेदान निरुपयति—

> पंडए वाहए कीवे, कुंभी ईसालुए ति य । सउणी तकम्मसेवी य, पिक्खियापिक्खिते ति य ॥ ५१६६ ॥ सोगंधिए य आसित्ते, विद्विए विष्पिए ति य । मंतोसिहिओवहते, इसिसत्ते देवसत्ते य ॥ ५१६७ ॥

'सोगन्थिको नाम' सागारिकस्य गन्धं तुमं मन्यते, स च सागारिकं जिन्नति मरूथित्वा वा इन्हां जिन्नति । ''आसिचो नाम'' सीजरीगसक्तः, स मोहोस्कटतया योनी मेहनमनुप्रविषय ³⁰नित्यमास्ते । एते सर्वेऽपि निरुद्धक्तयः कालान्तरेण नपुंसकतया परिणमन्ति । ⊲ प्रैते च पण्डकादयो दञ्जापि प्रतायितुगयोग्याः । तथा ⊳ 'बर्द्धितो नाम' यस्य बालस्येव च्छेद्र वे दस्वा

र्र कार तस्स जाय संप° तामा०॥ २ ⁴ा ल एतिबहान्तर्गत पाठः को० एव वर्तते॥ ३ °दं कृत्या दे०॥

ह्यौ आतरावपनीतो । 'विध्पितस्तु' यस्य जातमात्रस्वेवाह्नष्ट-पदेशिनी-मध्यमाभिर्मजयिस्ता वृषणह्रयं गालितम् । अपरस्तु मञ्जेणोपहतो भवति । अन्यः पुनरौषध्या उपहतः । कश्चिद् ऋषिणा शप्तो भवति----मन तपःप्रमावान् पुरुषमावस्ते मा भूयात् । एवमपरो देवेन रुष्टेन शप्तः । एते वर्द्धितादयः पडपि यद्यप्रतिसेवकास्तदा प्रत्राजयितव्याः ॥ ५१६७॥

'अथैतेषां प्रवाजने प्रायश्चित्तमाह---

दससु वि म्लाऽऽयरिए, वयमाणस्स वि हवंति चउगुरुगा । सेमाणं छण्हं 'पी. आयरिष्टं वटंति चउगुरुगा ॥ ५१६८ ॥

पण्डकादीन् आसिक्तान्तान् दशापि नयुंसकान् यः प्रवाजयति तस्याऽऽचार्यस्य दशस्यि प्रत्येकं मूल्यः । तेष्वेव दशस्य यो बदति 'प्रवाजयत' तस्याऽपि चतुर्युत्का मवन्ति । 'रोषाणां' विद्वितादीनां षण्णामपि प्रतिसेवकानां प्रवाजने आचार्यस्य चतुर्युत्कक्षः । यो बदति 'प्रवाजयत' 10 तस्यापि चतुर्युत्कक्षः ॥ ५१६८ ॥ अथ शिष्यः प्रश्चयति—

थी-पुरिसा जह उद्यं, धरेंति झाणोववास-णियमेर्हि । एवमपुमं पि उद्यं, धरिज जति को तिहें दोसो ॥ ५१६९ ॥ यथा की-पुरमा ध्वानोपवास-नियमैरुपुका वेदोदयं धारयन्ति, एवम् 'कपुमान्' नपुंस-कोऽपि यदि वेदोदयं धारयेत् ततः 'तत्र' प्रवाजिते को दोषः स्वात् ! ॥ ५१६९ ॥

अहवा ततिए दोसो, जायइ इयरेसु किं न सो भवति।

एवं खु निरंध दिक्खा, सर्वेययाणं न वा तिर्धं ॥ ५१७० ॥ अथवा युप्पाकमिमायो भवेत — 'तृतीये' नपुंतके वेदोदये चारित्रमङ्गळक्षणो दोषो अवेत , तंत उच्यते — 'इतरयोः' स्वी-पुरुषयोरिंग वेदोदये स दोषः किं न भवति ! । अपि च — क्षीणमोहादीन सुस्वा होषाः सर्वेऽशि संसारस्था जीवाः सर्वेदकाः, तेषां च दोषदर्कनादेव 20 भवदुक्तनीया तिहित् दीक्षा, तद्मावाच 'न तीर्थं' न तीर्थस्य सन्ततिभवति ॥ ५१७० ॥ तिराह —

थी-पुरिसा पत्तेयं, वसंति दोसरहितेसु ठाणेसु । संवास फास दिट्टी, इयरे वत्यंबिटइंतो ॥ ५१७१ ॥

क्षी प्रवाजिता क्षीणां मध्ये निवसति, पुरुषः प्रवाजितः पुरुषमध्ये वसति, एवं तौ प्रत्येकं दोष- 26 रहितेषु स्थानेषु वसतः । इतरस्यु—पण्डको यदि स्रीणां मध्ये वसति तदा संवासे स्पर्शतो हष्टितश्च दोषा भवन्ति, एवं पुरुषेष्वपि संवसतसस्य दोषा भवन्ति । वत्सा-ऽऽब्रदृष्टान्तश्चात्र भवति—

यथा बस्सो मातरे दृष्ट्या स्तन्यमभिरुपति, माताऽपि पुत्रं दृष्ट्या प्रकौति; आम्रं वा साद्यमान-मस्त्राचमानं वा दृष्ट्या यथा मुलं क्क्रियति; एवं तस्पॅ संवासादिना वेदोदयेनाभिरूप उत्सवते ॥ . सुक्ता-ऽभुक्तभोगिनः साववो वा तमभिरुषेषुः । यत एवमतः पण्डको न दीक्षणीय:30

[्] १ पि य, आ° तामा० ॥ २ तसीवं वदतोऽपि कां० ॥ ३ °घो जायते 'इत' कां० ॥ ४ °ख पुरुष-स्रीसंवासादिसमुत्थेन वेदो° कां० ॥ ५ साधु-साध्वीजना वा त° कां० ॥

25

🗷 भ१७१ 🖟 जिलीकादे एतेः बह्मकेः प्रमाजनेदंपि---

असिने जोसीयरिए, रायदुन्ते मए न आनाहे । केसम उनिकडे, नाने तह देसण चरिने ॥ १९७२ ॥

स प्रमाजिक सन् अतिकसुरकमिष्यक्ति, अधिवरहरीतानां वा प्रतिकर्ण करिष्यति । अप्रमाननीदर्ये राजद्विहे बोधिकादिमये वा आगादे ग्लान्ते उच्चार्ये वा ज्ञाने दर्शने चरित्रे वा साहायकं क्रिकेच्छित्। एतैः कारणैः क्ष्यकं प्रयाजयेत ॥ ५१७२ ॥

अधैनामेबै बाशां व्यास्त्वाति ---

शमरुडु-मएसुं, ताबड़ निक्स्त वेव समयुड्डा । बिजो व सबं तस्स व, तिष्क्सति वा बिद्धाबस्त ॥ ५१७३ ॥ सुरुको व जन्मको या, नावादी निष्क्रमक तस्विहित । चामो देमावंकमि, कच्चे जोक्न-अभिकेर्ति वा ॥ ५१७४ ॥

राजद्विष्टे वोधिकादिको च जायार्थे तुष्या सः अधियमकार्थेच् । किष्ठकं भवति !—
राजद्विष्ट सम्बद्धिते देशान्तरं राष्ट्रकतां तिविकारकाद्यं भक्त-मानापुराष्ट्रम्यं करिप्यति, राजवस्वके वा क ज्याकात्रको राज्य-सम्बद्धान्ति, लेशिकादिको सः स स्ववास् स्वव्यस् परिप्रक्राणं विभावति । स्वत्यस्यार्थे —स पण्डकः सक्येत वेषो मनेन् रात्तो स्ववस्य विकित्यति ।
स्वत्यति , यद्वा सः प्रस्ता वैक्या स्वत्यस्य सं वेतन-वेषश्चादिना 'मनिवार्यच्यति । उपकारिप्यति । वाष्ट्रम्बद्धान्य उपनार्थकारिका सः ममस्यद्वायस्य सद्धात्रसं करिष्यति, स्वयमेव वाऽस्वत्यकार्यं विस्तिसस्यते ॥ ५९७३ ॥

त्मा पुरोत्तमस्ये वा बार्ल्यः वादिकवात् वर्षान्यक्वकानि शास्तात् सुक्रोऽक्की भक-% पद्मादिभ्यंतम्पित्मात्रिकारिय्यति । पर्यः— वव चारित्रं स्वतिश्चं न स्वत्यते तत्नी देशाय-पत्रमणं कुर्वतां मार्थमायादिषु सञ्चादित्साद् यकः धनादिभ्यत्तकरादिस्वायत्योपकरिय्यति । व्यवमा-ऽशिवयोगी प्रतितर्वियाति । अत्र चानानुपूर्वी अपि वस्तुत्वस्यापनार्थे अवस्मा-ऽशिवय द्वारयोः पर्यन्ते व्यास्थानम् ॥ ५१% ।

एएहिं कारणेहिं, आसादेहिं तु जो उ पन्याने ।

पंडाईसोलसमं, क्य उ कन्ने विभिन्यस ॥ ५१७५ ॥

वतः करणेरायदेः समुपक्षितेयः पण्डकारिकोदयकस्यान्यतः नपुंतकं प्रयाज्यति तेस्टऽ० वार्षेव 'कृते' समापिते कार्ये तस्य नपुंतकस्य 'विवेचनं' परिक्षपनं कर्तव्यस्य ॥ ५१७५ ॥ तत्र प्रवाजनायां तावद विधिमाह—

> दुविहो जाममजाणी, अजाणमं पश्चवंति उ द्वेहिं। जणपश्चयद्वयाए, नर्जनमणक्रमाये वि ॥ ५१७६ ॥

१ 'त्रचि । कै: १ इत्याह—असिते का॰ ॥ २ वा वैयातृत्यं करि' कां० ॥ ३ 'व विद्विक्तः मार्थां कां ॥ ४ 'चकमें, त' ताभा० ॥ ५ वा वयाकमं वेतन-मेपजोत्पादनाषुवदस्यं करि' कां० ॥ ६ 'म्-आजाराति सावि' कां० ॥

. द्वितिको वर्षुतकः—काषकोऽकाषकः । तव को व्यक्तिः वेशायकं वैशिषकः क्याज-विद्यं च करपते' स काषकः, सिद्धपरीलोऽजाषकः । तव काषकपुष्टिवतं महारपति — मवान् दीशाया अयोग्यः, स्वरोऽक्यकप्रेष्यारी आवकपर्यं व्यतिपवल, कान्यव क्षमार्थकं विराधना ते मविष्यति । व्यक्षपक्षप्रयेक्षम् सङ्ख्यपति । व्यक्षेत्रां वद्धाक्ष्मां नेच्छति पतन-प्राधिकारीक्षाति व्यापनक्ष किविद्यविद्यारिकं कारणपुरस्थितं स्वराधकावकं जनमत्यार्थम् ६ 'व्यक्षीयः' कर्राव्यक्षारिकः प्रशास्त्रकति । व्यक्षपक्षात्रक्षात्रकावकं जनमत्यार्थम् व । स्वराधकावकं विदिः कर्तन्यः ॥ ५१७६ ॥

किंदिष्ट्रम् म छिहली, कत्तरिया भंड लोग वाटे व । यम्पक्ट समि राउल, यदहार विविचना निविद्या ॥ ५१७० ॥

कटीपहर्क स परिषापितवयः ३ 'किह्सी' क्षिस्त सस्य शिरिस ध्यस्यीयः । ध्यस्य नेष्णित १८ ततः कर्चर्या 'भाण्डेन वा' छुरेण गुण्डनं विवेयम्, लोनो वा विष्यवन्यः । 'ध्यस्थि" वि परतीधिकमतादीनि ल पाठनीयः । क्षते कार्ये धर्यक्या कर्तन्या नेन निज्ञं विरुद्धार गण्डलि । लगेव लिज्ञं च ग्रुष्टाति ततः 'सीह्निभः' आवकैः मज्ञामकीयः ३ अय राजकुरुं गर्वा कथयति तत्ते व्यवहारोऽपि कर्तव्यः । एवं तस्य 'विभिष्या' परिद्वापना 'विभिन्ना' वस्यम्यावादीया विवेया । एव द्वारणाथासमासादाः ॥ ५१७७ ॥ साम्यवयेनायेव विद्यमिति—

कडिपद्वयो अभिनवे, कीस् छिड्ली व अम्दऽवेसऽऽसी। कत्तरिया भंडं वा. अणिच्छें एकेकपरिडाणी ॥ ५१७८ ॥

कटीपहकोऽभिनवप्रश्नितस्य तस्य कियते न पुरत्भावपुरकः, शिरसि च 'क्रिट्सी वाम' शिसा भियते । यदि तृषात्—किं ममामावपुरकं सर्वसुण्डतं वा त क्रुकतः :, तती बृषमा भणन्ति—अस्पाकमपि प्रथमपेवमेव कृतमासीत् । तच सुण्डचं कर्तयं कर्तवं वा त्रक्रितः अथ नेच्छति २० ततः 'भाण्डेन' क्षुरेण, क्षुरमण्यनिच्छतो होवः कर्तन्यः । एवयेकैकपरिद्वाणिर्मन्तव्या। शिस्ता तु सर्वत्रापि धारणीया ॥ ५१७८ ॥

छिइलि तु अणिच्छंते, भिक्तुममादीमतं पऽणिच्छंते । परउत्थियनचन्नं, उक्तमदाणं ससमए वि ॥ ५१७९ ॥

अब शिक्षायि नेच्छति ततः सर्वमुण्डनमापि विधोयते । बाउस्तु-द्विविक्ष शिक्षा— 25 महणे आसेवने च । आसेवनाशिक्षायां क्रियक्षण्यमस्यां न प्राव्यते । बाइण्याधिक्षाक्षय्— भिक्षकाः—सौगतास्याम् आदिशब्दान् कपिलादीनां च परतीर्थिकानां मतमध्याप्यते, अब तदि नेच्छति ततः शृक्षारकाव्यं पाठ्यते, तदप्यनिच्छतां द्वादद्यक्षे यानि परतिर्थिकनकः व्यतानिषद्वानि सुत्राणि सानि पाठबन्ति, तान्यप्यनिच्छतः स्वसमयस्यालपका उत्क्रमण विद्यक्षिता दीयन्ते ॥ ५१७९ ॥ आसेवनाशिक्षायां विविमाह—

वीचार-पोबरे बेरतंजुओ रचि द्रें तरुणाणं । बाहेह वर्ष वि कसे, बेरा वाहेंस जरेणं स ५१८० ॥

१ "इक-परिधानादिभिः कां । १ विविच" ताभा । ३ "धार्याः । 'कि' दे ।।

विचारमूर्मि गच्छन् गोचरं वा पर्यटन् स्थविरसाधुसंयुक्तो हिण्डाप्यते । रात्रौ तरुणानां क्रे कियते । तं च साधवो न पाठयन्ति ततो यदि श्रृयात-मामपि पाठं शाहयत, ततः स्विताः साधवो यंत्रन माहयन्ति ॥ ५१८० ॥ किं तत् ? इत्याह-

वेररगकहा विसयाण णिंदणा उद्र-निसियणे गत्ता ।

चक-खिल्स बहसो, सरोसमिव चोदए तरुणा ॥ ५१८१ ॥

यानि सत्राणि वैराग्यकथायां विषयनिन्दायां च निवद्धानि तानि प्राग्रते, अथवा वैराग्य-कथा विषयनिन्दा च तस्य पुरतः कथनीया । उत्तिष्ठन्तो निषीदन्तश्च साधवः 'गुप्ताः' सुर्सेवृता भवन्ति यथाऽकादान स न पश्यति । तस्य यदि सामाचार्या जुक-स्वितितानि भवन्तिः जुक नाम-विस्मृतं किश्चित् कार्यम् , स्खिलतं-तदेव विनष्टमः ततो ये तरुणास्ते सरोपमिव तं 16 परुषवचीभिर्वहशी नीदयन्ति येन तरुणेष नानुबन्धं गच्छति ॥ ५१८१ ॥

अध धर्मकथापदं स्याचेष्ट--

धम्मकहा पाढिजति, कयकजा वा से धम्ममनखंति ।

मा हण परं पि लोगं. अणुञ्चता दिक्ख नो तज्झं ॥ ५१८२ ॥

धेर्मकथाः वा स पाठ्यते । 'कृतकार्या वा' येन कार्येण दीक्षितस्तं समापितवन्तः "से" 16 तस्य धर्ममाख्यान्ति, यथा—महाभाग ! रजोहरणादि िठकं धारयन् परभवे बोधेरुपधातकर-णाय खं वर्तसे, ततो मा परमपि लोकं 'हन' विनाशय, मुख रजोहरणादि लिक्स्म, तबाणुव-तानि धारयितं बुध्यन्ते न दीक्षा ॥ ५१८२ ॥

प्वं प्रज्ञापितो यदि मुश्चिति तदा लष्टम्, अथ न मुश्चिति ततः-

सिक खरकिमओं वा. भेसेति कतो इधेस कंचिको ।

निवसिद्धे वा दिक्खितों, एतेहिं अणातें पडिसेहो ॥ ५१८३ ॥

20 र्थे: खरकर्मिकः संजी स पूर्व प्रजाप्यते-असाभिः कारणे त्रेराशिकः प्रवाजितः, स इदानीं लिक्न नेच्छति परित्यक्तं ततो ययं प्रज्ञापयत । एवमुक्तोऽसावागत्य गुरून् वन्दिस्वा सर्वानिष साधून निरीक्षते, ततस्तं पण्डकं पर्वकथितचिद्वेरुपलक्ष्य भूमितलास्फालन-जिर:-कम्पन खरदृष्टिनिरीक्षण-परुषयचनैर्भेषयति - कृत एषः 'इह' युष्माकं मध्ये 'कञ्चित्कः' नपुं-25 सकः १ इति; तं च ब्रवीति — अपसर साम्प्रतमितः, अन्यथा व्यपरोपयिष्यामि भवन्तम् । एवमुक्तोऽपि यदि लिक्नं न मुञ्जति, त्यरकार्मिकस्य वा श्रावकत्याभावे यदि नृपस्य कथयति---अहमेतैर्दिक्षितः साम्प्रतं पुनः परित्यजन्तिः ततो व्यवहारेण जेनव्यः । कथम् ? इत्याह---यद्यसी जनेनाज्ञातो दीक्षितस्ततः प्रतिषेषः क्रियते, 'नासाभिदीक्षितः' इति अपलप्यत इत्यर्थः ॥ ५१८३ ॥ अथासै। ब्रयात---

अज्झाविओ मि एतेहिँ चेव पढिसेधों कि वऽधीयं ते।

१°यते । ते च साधवस्तं न पा°कां० ॥ २ 'धर्मकथाः' धर्मप्रधाना आख्यायिका उत्तराध्ययनाचन्तर्गताः स पाठ्यं कां ॥ ३ भाष्यं "सं" डे॰ ताटी ।। ४ यदि 'सर-कर्मिकः' आरक्षकः 'संकी' श्राचकस्ततः स पूर्वं कां० ॥

80

छलियातिकहं कहुति, कत्थ जती कत्थ छलियाई ॥ ५१८४ ॥

अहमेतेरेबाध्यापितस्ततोऽपि प्रतिषेषः कार्यः, न किमप्यसाभिरच्यापित इत्यर्थः । अथवा वक्तस्यम् — किं स्वयाऽपीतम् १। ततोऽसौ छलिवकाच्यादिकथामाकर्षेत् तत्र वक्तस्यम् — कुत्र यतयः १ कुत्र च छलितादिकाच्यकथा १, साधवो वैराध्यमार्गस्थिताः श्वकारकथां न पठन्ति न वा पाठपन्ति ॥ ५१८४॥ वयमीदशं सर्वज्ञमाषितं सुत्रं पठामः—

पुट्वावरसंजुत्तं, वेरम्गकरं सतंतमविरुद्धं ।

पोराणमद्भगगहभासानियतं हवति सत्तं ॥ ५१८५ ॥

यत्र पूर्वसूत्रनिबन्धः पाश्चात्यसूत्रेण न व्याह्न्यते तत् पूर्वापरसंयुक्तम् । 'वैराग्यकरं' विष-यसुख्वेसुक्वजनकम् । स्वतेष्ठं ग—स्वसिद्धान्तेन सहाविरुद्धं स्वत्रष्ठाविरुद्धम्, 'सर्वेषा सर्वकार्छं सर्वत्र नास्त्वात्मा' इत्यादिस्वसिद्धान्तविरोधरहितमित्यर्थः । 'पोराणं नाम' पुराणेः—तीर्थकर-10 गणधरुक्षणेः पूर्वयुरुषेः प्रणीतम् । अर्थमागयभाषानियतमिति प्रकटार्थम् । एवंविधमस्वदीयं सूत्रं भवति ॥ '५१८५॥ किश्च-

जे सुत्तगुणा भृणिया, तृन्त्रिवरीयाह् गाहए पुन्वि ।

नित्थित्रकारणाणं, स चेव विगिचणे जयणा ॥ ५१८६ ॥

ये सूत्रस्य गुणाः ''निहोसं सारवंतं च, हेउजुत्तमर्हकियं ।'' इत्यादयः पीठिकायां (गा० 16 २८२) भणिताः 'तद्विपरानानि' तद्वणविकत्याने सुत्राणि पूर्वमेव तं ब्राहयेत् । ततः 'निसीर्ण-कारणानां' समाप्तिविवक्षितप्रयोजनानां सेव 'विवेचने' परिष्ठापने यतना भवति ॥ ५१८६ ॥ एवं व्यवहारेण परिष्ठापनेविधिकतः। यस्तु व्यवहारेण न शक्यते परित्यकुं तस्यायं विधि —

कावालिए सरक्ले, तचिण्णय वसभ लिंगरूवेणं। वडुंबगपन्वइए, कायन्व विहीऍ वोसिरणं॥ ५१८७॥

गीतार्था अविकारिणो द्वपमा उच्यन्ते, ते कागार्किक-सरजस्कतचिक्रकैवेषप्रदर्णन ते परिष्ठापथन्ति । यः वडुम्बकः-बहुल्वजनः प्रवाजितसत्येवेविषेन विषिना व्युत्सर्जनं कर्तव्यम् ॥ ५१८७ ॥ एतदेव भावयति—

> निववछह बहुपक्लिमि वा वि तरुगैविसहामिणं बिंति । भिमकहा ओमद्रा. न घडड इड वच परतिर्दिथ ॥ ५१८८ ॥

यो तृपस्य बहुमो बहुपाक्षिको बा-प्रभूतस्वजन-मित्रवर्गस्त्योरयं परिष्ठापने विधि:—यदा नपुंसको रहिस तरुणमिक्षुमवभाषते भित्रकथां वा करोति तदा ते तरुणदृष्मा इदं ब्रुवते— 'इह' यतीनां मध्ये ईट्शं न घटते, यदि त्वभीदशं कर्तुकामोऽसि तत उक्तिष्क्रमणं कुरु पर-तीर्थिकेषु वा वज ॥ ५१८८ ॥ ततो यदि वृथात्—

> तुमए समगं आमं, ति निग्गओ भिक्लमाइलक्लेणं। नासति भिक्लुगमादिसु, छोट्टण ततो वि हि पलाति॥ ५१८९॥

१ °चा पुण, तेणं चिय णं विविञ्तंत तामाः ॥ २ 'कसम्बन्धनः 'लिङ्गरूपेण' वेषप्रहणेन कां ॥ ३ °णवसहा इमं विं° तामा ॥ ४ वि विपळा" तामा ॥॥

'स्वया समग्रहं पातीविकेषु गिनिष्यामि' प्वसुक्तः स तरुणवृषम व्याममिति मणित्वा निर्गेच्छति । निर्गेतस्य मिश्रुकादिवेषण गत्वा तेषु मिश्रुकादिषु प्रक्षिप्य नक्सति । वः पुणसात्र मीतोऽपि तं साधुं न श्रुवति तं रात्रो सुसं मत्वा 'तत एव' मिश्रुकादिखानात् पद्मवते, मिश्रादिश्रक्ष्येण वा निर्गेतो नक्ष्यति ॥ ५१८९ ॥

६ सूत्रम्---

एवं मुंडावित्तए सिक्खावित्तए उवट्ठावित्तए संभुंजि-त्तए संवासित्तए ५-६-७-८-९ ॥

यथैते एण्डकादयस्त्रयः प्रवाजयितुं न करवन्ते एवमेत एव कथश्चित् छल्तिने प्रवाजिता अपि सन्तः 'मुण्डापयितुं' शिरोलोचेन ल्रश्चितुं न करवन्ते । एवं 'शिक्षापयितुं' प्रस्पेषणा-10 दिसामा वारीं प्राहयितुम् 'उपस्थापयितुं' महात्रतेषु व्यवस्थापयितुं 'सम्मोकुम्' एकमण्डलीसयु-देशादिना व्यवहारयितुं 'संवासयितुम्' आसमसमीपे आसयितुमिति सुत्रार्थः ॥ अत्र भाष्यम् —

पन्नाविओ सिय चि उ, सेसं पणगं अणायरणजोग्गो । अहना समायरंते, परिमपदऽणिनारिता दोसा ॥ ५१९० ॥

स पण्डकः 'स्मान्' कदाचिदनाभोगादिना भवाजितो भवेत्, इतिशब्दः खरू परामर्शार्थः ।
18 एवं भवाजितोऽपि यदि पश्चाद् ज्ञातखदा ''सेसं पणगं'' ति विभक्तिव्यत्यात् 'शेषपञ्चकस्य'
ग्रुण्डापनादिख्श्रणस्मानाचरणयोग्यः, न तद् आचरणीयमिति भावः । अथ खोभाषमिभूततस्य।
वदिष समाचरति ततः पूर्वस्मिन्-अवाजनास्ये पदे ये अवचनापयशः अवादादयो दोषा उक्ताखे
अनिवारिताः, तदवस्या एव मन्तव्या इति भावः ॥ ५१९० ॥

मुंडाविओ सिय त्ती, सेसचउकं अणायरणजोम्मो ।

अहवा समायरंते, पुरिमपदऽनिवारिया दोसा ॥ ५१९१ ॥ अनाभोगादिना ग्रुण्डापितोऽपि स्मात् ततः 'शेषचतुष्कस्य' शिक्षापनादिरुक्षणस्याचरणे अयोग्यः । अथ समाचरति ततः पूर्वपददोषा अनिवारिताः ॥ ५१९१ ॥

एवं तिस्रो गावा वक्तव्याः, यथा--

सिक्खाविजो सिय ची, सेसतिगस्सा अणायस्णजोग्गो । अइवा समायरंते, पुरिमणदःनिवारिया दोसा ॥ ५९९२ ॥ उवद्वाविजो सिय ची, सेसदुगस्सा अणायस्णजोग्गो । अहवा समायरंते, पुरिमषदःनिवारिया दोसा ॥ ५९९३ ॥ संग्रंजिओ सिय ची, संवासेडं अणायस्णजोग्गो । अहवा संवासिते, पुरिमणदःनिवारिया दोसा ॥ ५१९४ ॥

30 एवं मद्विधसचित्रज्ञयकरुपसूत्राणि कमेर्षं भवन्ति ॥ ५१९२ ॥ ५१९३ ॥ ५१९३ ॥ तथा भागामी इष्टान्ताः—

25

१ °ण षडेव भ° कां॰॥

बुकाको कंदाची, उच्छुनिकारा च बह रतादीचा । विस्थित-गोरसाच य, होंति विकास जह कमेर्च ॥ ५१९५ ॥ बह वा बिसेनवादी, गर्मे जातस्स वाममादीया । होंति कमा जोवर्मिम, तह छन्दिह कप्यसूचा उ ॥ ५१९६ ॥

यवा मुलाव कन्द-कन्ध-शासादयो मेदाः क्रमेण भवन्ति, इञ्जविकासध्य स्त-कक्षणयो उ यवा क्रमेण जावन्तै, सुरिपण्डस्य वा यथा स्वाश-कोश-कुशुळादवी गोरसस्य च दिध-नवनीतादयो विकाश यथा क्रमेण भवन्ति, वधा वा गर्भे प्रविष्टस्य जीवस्य निषेकः—जोजा-शुक्तगृद्धलाहर-णळक्षणस्तदाद्यः आदिशब्दान् कळला-ऽर्बुद-पेशीमसृतयः पर्याया भवन्ति, वासस्य वा तस्यैव 'नामादयः' नामकरण-वृद्धाकरणप्रसृतयः क्रमाद् यथा ठोके भवन्ति, तथा पद्विभकत्य-सृत्राणि यथाक्षमभाविमवाजैनास्मिद्कविषयाणि क्रमेण भवन्ति ॥ ५१९५ ॥ ५१९६ ॥ 1

॥ प्रवाजनादिपकृतं समासम्॥

वाचनाप्रकृतम्

सूत्रम्—

तैओ नो कप्पंति वाइत्तप्, तं जहा—अविणीप्, विगईपिडवाडे, अविओसिवयपाहुडे १०॥ तओ कप्पंति वाइत्तप्, तं जहा—विणीप्, नोविगई-पडिवाडे, विओसिवयपाहुडे ११॥

अखै सम्बन्धमाह---

पंडादी पडिकुट्टा, ङिन्दि कप्पन्धि मा विविधेतं । अविणीयमादितितयं, पनादय एस संबंधो ॥ ५१९७ ॥ 20 पण्डकावयसय यर पद्विधे सनिचद्रव्यकरूपे मतिकुक्षाः स्थप्ने केन्दित्, एवं विदित्वा 'मा स्थितीतादिक्तितं मशक्येत्' इति क्रत्या मस्तुतस्त्रमारम्मते । एव सम्बन्धः ॥ ५१९७ ॥ - श्रीकावस्त्रोण सम्बन्धयाहः—>

सिक्यावर्षं च मोतुं, अविभिनवादीन सेसवा दावा । योगंता पश्चितिद्वा, अववरतो होइ कव्ये उ ॥ ५१९८ ॥ ये पूर्वतृषे व्ह क्षमञ्ज्ञांचे क्षमञ्ज्ञांच अरिवादिताः तेनो मञ्जूषेकां महणशिक्षावणां

मुक्ता शेषाणि स्वानानि अविनीतादीनां त्रयाणां नैकान्तेन प्रतिषिद्धानि । महणशिक्षापतिषे-षार्ये त प्रस्तुतं सुत्रमारभ्यते । अयमपरः सम्बन्धस्य 'कल्पः' प्रकारो भवति ॥ ५१९८ ॥

अनेनायातस्यास्य व्याख्या—त्रयो नो कल्पन्ते 'वाचिवतुं' सूत्रं पाठिवतुमर्थं वा श्रावि-तुम् । तद्यवा—'अविनीतः' सूत्रा-ऽर्धदातुवै-दनादिविनयरहितः । 'विक्रतिपतिचद्धः' श्रवा-विदस्तिविद्रोषगृद्धः, अनुप्रधानकारीति भावः । अध्यवद्यमितम्-अनुप्रधान्तं प्राप्तिमिव प्राप्तुते— नत्कपात्रकोशिटिकं तीकाध्यवस्यं यस्यासी अध्यवद्यमितप्राप्तुतः ॥ एतद्विपरीतास्तु त्रयोऽपि कस्यन्ते वाचिवित्तु । तद्यथा—विनीतो नोविक्कतिमतिबद्धो व्यवद्यमितप्राप्तुतक्षेते सुत्रार्थः ॥ अथ निर्वक्तिवित्ताः—

> विगइ अविणीएँ लहुगा, पाहुड गुरुगा य दोम आणादी । सो य इयरे य चत्ता. बितियं अद्धाणमादीस ॥ ५१९९ ॥

विक्कृतिमतिबद्धमिवनीतं च बाचयतश्चतुर्केषुकाः । अञ्यवदामितमाभृतं बाचयतश्चतुर्पु-रुकाः । आज्ञादयश्च दोषाः । सं च 'इतरे च' साधवः परित्यक्ता भवन्ति । तत्र स ताबद् विनयमकुर्वेन् ज्ञानाचारं विराधयतीति कृत्वा परित्यकः, इतरे च तमिवनीतं दृष्ट्वा विनयं न कुर्वेन्तीति परित्यक्ताः । द्वितीयपदमत्र भवति—अध्वादिषु वर्तमानानां योऽविनीतादिरप्युप-15 महं करोति स वाचनीयः । एषा निर्मुक्तिगाथा ॥५१९९॥ एनामेव भाष्यकृद् विदृणोति—

अविणीयमादियाणं, तिण्ह वि भयणा उ अद्विया होति । पदमगर्भगे सुत्तं, पदमं वितियं तु चरिमम्मि ॥ ५२०० ॥

अविनीतादीनां त्रयाणामपि पदानां अष्टिका मजना मयति, अष्टमङ्कीत्यर्थः । यथा— अविनीतो विक्कतिमतिबद्धोऽज्यवशमितप्राभृतः १ अविनीतो विक्कतिप्रतिबद्धो व्यवशमित-२०प्राभृतः २ इत्यादि यावदष्टमो भङ्को विनीतो विक्कत्यप्रतिबद्धो व्यवशमितप्राभृतश्चेति । अत्र च प्रथमे भङ्के प्रथमतृत्रं निपति, 'चरमे' अष्टमे भङ्को द्वितीयं सुत्रमिति ॥ ५२००॥

अथ त्रयाणामपि वाचने यथाकमं दोषानाह----

इहरा वि तार्वं थन्भति, अविणीतो लंभितो किम्रु सुएण । मा णड्डो णस्सिहिती, खए व खारावसेओ तु ॥ ५२०१ ॥

5 'इतरथाऽपि' श्रुतमदानमन्तरेणापि ताबदिबनीतः 'स्तम्यते' स्तन्न्यो भवति किं पुनः श्रुवेन रूम्मितः सन् १, महिमानमिति रोषः । अतः स्वयं नष्टोऽसौ अन्यानपि ना नाशियप्यति, क्षते वा साराबसेको मा भूदिति कृत्वा नासौ वाचनीयः ॥ ५२०१ ॥ अपि च—

गोजूहस्स पडागा, सयं पयातस्स बहुयति वेगं।

दोसोदए य समणं, ण होइ न निदाणतुस्त्रं वा ॥ ५२०२ ॥

इह गोपालको गवामम्रतो भूत्वा यदा पताका दर्शयित तदा ताः शीम्रतरं गच्छन्तीति श्वितः; ततो गोयुश्स्य स्वयं मयातस्य यथा पताका वेगं वर्धयित तथा दुर्विनीतस्यापि श्वतम-

१ 'स्य सोऽव्य' भा॰ को॰ ॥ २ 'स च' अविनीताविर्वाच्यमानः 'इतरे का॰ ॥ ३ 'स तम्म' को॰ ॥

दानमधिकतरं दुर्विनयं वर्षयति । तथा दोषाणां—रोगाणामुदये 'चः' समुखये 'शमनम्' औषधं न दीयते, यतक्ष निदानाहुत्थितो व्याधिः तसुरुयं—तस्तदशमपि वस्तु रोगमृद्धिनयात्र दीयते; यहा दोषोदये दीयमानं शमनं न ननिदानतुरुयं भवति, किन्तु भवत्येव, ततो न दातस्यम्; एवमस्यापि दुर्विनयदोषभरे वर्तमानस्य श्रुतौषधमहितमिति क्रत्या न देयम्॥ ५२०२॥

विणयाहीया विजा, देंति फलं इह परे य लोगम्मि।

न फलंति विषयद्दीणा, सस्साणि व तोयद्दीणाई ॥ ५२०३ ॥ विनयेनाषीता विद्या इह परत्र च लोके फलं ददति, जनपूजनीयता-यशःप्रवादलामादिक-मैहिकं निःश्रेयसादिकं चाऽऽमुध्यिकं फलं दौकयन्तीति हृदयम् । विनयदीनास्तु ता अषीता न फलन्ति, सस्यानीय तोयदीनानि—यथा जलमन्तरेण धान्यानि न फलन्ति ॥ ५२०३ ॥

अथ विक्रतिप्रतिबद्धमाह— रसलोलताड कोई. विगति ण ग्रयति दढो वि देहेणं।

राजाशुर्वाद काइ, प्रभात म झुनात का प्रमृत्य का प्रमृत्य प्रभाव म प्रकृत अभ्योग व समाई, न चलह कोई विणा तीए ॥ ५२०४ ॥
रसलोल्यतया कश्चिद् देहेन हढोऽपि विकृति न मुझति स वाचितुमयोग्यः । कश्चित्
पुनरस्यक्रेन विना यथा शक्टं न चलति तथा 'तया' विकृत्या विना निवें हुं न शकोति तस्य
गुरूणामनुजया विधिना ग्रह्मो बाचना दातन्येति ॥ ५२०४ ॥ किख—

ग विधिना गृहतो वाचना दातब्येति ॥ ५२०४ ॥ किञ्च— उस्सग्गं एगस्स वि, ओगाहिमगस्स कारणा कुणति ।

गिण्हति व पडिग्गहर, विगति वर मे विसर्जिता ॥ ५२०५ ॥ योगं वहमानः कश्चिदेकत्याध्यवगाहिमस्य कारणाद् ⊲ विक्रॅत्यनुज्ञापनाविषयं ⊳ कायोत्सर्गं करोति । प्रतिप्रदे वा विक्रतिं गृद्धाति, वरममुनाऽध्युपायेन मे विक्रतिं विसर्जयितारः ॥ ५२०५ ॥ एवं मायां कुर्वतः किं भवति १ इत्याह—

अतवो न होति जोगो, ण य फलए इच्छियं फलं विज्ञा।
अवि फलति विउत्तमगुणं, साहणहीणा जहा विज्ञा।। ५२०६।।
'अतथाः' तपसा वित्ताः 'थोगः' बुरत्यरोहेशनादित्यागरो न भवति। न च तपसा विना गृह्यमाणा 'विचा' श्रुतज्ञानरूवा 'ईप्तित' मनोऽभियेतं फलं फलति, 'अपि' इति अभ्युचये, मखुत विद्युक्त 'अगुणम्' अनये फलति। यथा साधनहीना विद्या, यस्याः प्रद्याप्तिमस्तिकाया 25

अश्राज्यवद्यमितप्राभतं व्याचष्टे----

अप्पे वि पारमाणि, अवराधे वयति खामियं तं च । बहुमो उदीरयंतो, अविओसियपाहुडो स खलु ॥ ५२०७ ॥ 'अहपेऽपि' परुषमाणणादावपराधे ''पारमाणिं'' परमं कोषसमुद्धातं यो व्रजति, 'तच्च' ५० अपराधजातं क्षामितमपि यो बहुञ्च उदीरयति स सम्बन्ध्यवसमितप्राभृत उच्यते ॥ ५२०७ ॥

विद्याया उपवासादिको यः साधनोपचारः सा तमन्तरेण गृह्यमाणेति भावः ॥ ५२०६ ॥

१ °न्ति, पर्व विद्या अपि विजयमन्तरेण निष्मला मन्तव्येति ॥ ५२०३ ॥ कां० ॥ २ ॰ी >> एतन्मभ्यगतः पाठः कां० एव वर्षते ॥

भारत वाचने दोषानाह----

दुविधो उ बरिबाओ, इह चोदण कलह देवपच्छलणा । परलोमस्मि य अफलं, खितस्मि व ऊसरे बीजं ॥ ५२०८ ॥

दुर्विनीजदेरपात्रस्य वाचनादाने 'दिविचः परित्यागः' इह-रह्णोकमेदान् भवति । तत्रह-अकेकपरित्यागे नाम-स यदि स्नारणादिना प्रेयेते तदा कळ्ढं करोति, अपात्रवाचनेन च ममर्च प्रान्तदेवता अळ्येन् । परलोके तु परित्यागः —तत्स क्षुतप्रदानं 'अफ्डं' सुगति-वोधिकामादिकं पारत्रिकं फलं न मारयति, उत्तर इव होते बीजपुत्तं यथा निष्फलं भवति ॥ ५२०८ ॥

"सो य इयरे य चता" (गा० ५१९९) इति पदं व्याख्याति—

वाहअंति अपत्ता, हणुदाणि वयं पि एरिसा होमी । इय एस परिचातो. इह-परलोगेऽणवत्था य ॥ ५२०९ ॥

स तावद् ज्ञानाचारविराभकतमा संसारं परिश्रमतीति परित्यकः । इतरेऽपि साधवस्तान् बाच्यमानान् दृष्ट्य चिन्तयन्ति —अहो ! अपात्राण्यपि यदि बाच्यन्ते ''दृष्णुदाणि'' ति ततेः साध्यतं वयमपीदशा भवामः; ''इय'' एवं तेषामपि तुर्विनयादौ प्रवर्तमानानासिद्-यरकौकयोः परिस्थामः कृतो मक्ति । अनवस्था चैवं भवति, न कोऽपि विनयादिकं करोतीत्यर्थः॥ ५२०९॥ अथ 'द्वितीयपदमध्वादिषु भवति' (गा० ५१९९) इति बद्कं तदृ ज्याचष्टे—

अद्भाग-ओमादि उपन्यहरिम, बार अपत्तं पि त बद्रमाणं ।

षुष्टिक्जमभाषास्म स संधरे वी, अण्णासतीए वि तु तं पि वाए ॥ ५२१० ॥ अण्यति वा अवशेश्वें वा आदिश्वव्याद् राजब्रिष्टाविषु वा भक्त-प्राविद्या गच्छक्षोपमहे सर्तमानम् 'अणात्रमध्ये दुविनीतादिकं रुज्यितमप्रकं वाचयेत् । अथवा किमप्यपूर्वे धृतं तस्या20 ऽऽचार्थस समस्ति, पात्रमृतश्च शिप्यो न प्राप्यते, तक्षान्यत्रासङ्ख्यमाणं व्यवच्छिष्यते, ततः संसरणेऽधि अपात्रं वाचयेत् । यद्या नालि तत्यान्यः कोऽपि क्षिप्यस्ततोऽन्यस्याभावे 'मा सुत्रार्थो विस्मरताप्य' इति इत्वा (नमप्र) अपात्रपूर्व वाचयेत् ॥ ५२१०॥

॥ वाचनाप्रकृतं समाप्तम् ॥ चाचनाप्रकृतं समाप्तम् ॥ संज्ञाप्य प्रकृतम्

25 सूत्रम्---

तओ दुस्सन्नप्पा पन्नत्ता, तं जहा—दुट्टे मूटे वुग्गा-हिए १२॥

अस्य सम्बन्धमाह---

सम्मचे वि अजीग्या, किष्ठ दिक्खण-वायणासु दुइादी । दुस्सम्बन्धारंमी, मा मीह परिस्समी हीजा ॥ ५२११ ॥

१ °तत इवानीं घय° कां०॥ २ °माणे वियक्षं धार्थ ताक्षा० ॥

तुष्टात्यस्त्रयेः सम्यक्तवप्रत्येऽप्यत्योग्याः कि युनर्दीक्षण-वावनयीः १, कातसेषां प्रज्ञापने 'मोकः' निष्फळः प्रज्ञापकस्य परिश्रमो मा मृदिति दुःसंज्ञाप्यसूत्रमारम्यते ॥ ५२११॥

स्रोत सम्बन्धितायातस्त्रास्य व्यास्था—त्रयः दुःस्रोत—क्रुच्चेण संज्ञाप्यन्ते—प्रतिबोध्यन्त इति दुःसंज्ञाप्याः धक्रसाः । तदाशा—'दुष्टः' तत्त्रं प्रज्ञापकं वा प्रति द्वेषयान्, स वाप्रज्ञाप-तीयः, द्वेषेणोपदेकाप्रतिपदेः । एवं 'सृदः' गुण-दीवानमिजः । 'च्युद्धाहितो नाम' कुपज्ञापकः ऽ इडीक्कतिपरीताववोधः । एव सुत्रार्थः ॥ अय माध्यविस्तरः—

दुस्सभप्यो तिविहो, दुइाती दुईों विणाती पुर्वित ।

मुंहस्स य निक्खेतो, अद्विद्दों होड् कायच्यों ॥ ५२१२ ॥ दुःसंज्ञाच्यो दुष्टादिमेदात् त्रिविधः । तत्र दुष्टः 'पूर्व' पाराश्चिकस्त्रे यथा वर्णितः तथा-ऽत्रापि मन्तव्यः । मुदस्य पुनरष्टविषो निक्षेपो वक्ष्यमाणनीत्या कर्तव्यो भवति ॥ ५२१२ ॥ 10 तत्र पदत्रयनिष्णक्षामष्टमेश्वीं तावदाह—

> दुडे मूढे बुग्गाहिए य भयणा उ अड्डिया होंह । पदमगर्मेंगे सुत्तं, पदमं विद्यं तु चरिमस्यि ॥ ५२१३ ॥

तुष्टो मुद्रो खुद्धाहित इति त्रिमिः पदैरष्टिका मजना मवति, अष्टौ मक्का इत्यर्थः । अत्र च प्रथमे भक्के प्रथमं सूत्रं निपति, 'चरमे' अष्टमे भक्के 'अतुष्टोऽसूद्दोऽख्युद्धाहितः' इस्येवं-15 खक्को 'द्वितीयं' वक्ष्यमाणं सूत्रमिति ॥ ५२१३ ॥ अथ मृदस्याष्ट्या निक्केपमाह—

दन्त्र दिसि खेत काले, गणणा सारिस्त अभिभवे वेदे। बुग्गाहणमन्त्राणे, कसाय मत्ते य मृहपदा ॥ ५२१४ ॥

द्रव्यमुद्धो दिम्पुदः क्षेत्रमुदः कालमुद्धो गणनामुदः सोहश्यमुद्धोऽभिमवसूदो वेदसृद्धक्षेत्रम्ध्या मृदः। तत्रा "सुमाहण" वि व्युद्धाहणामुद्धो व्युद्धाहित इति चैकोऽधः, स च वहसमाणद्भीस- १० जातविणिक्सुतादिवत्। ''अन्नाणि' वि ननः कुस्त्याश्वाद् 'अन्नानं' निष्यान्तानम्, तत्रा मासन्तरामायणादिकुञास्त्रश्चित्रस्थानम्, तेन यो मृदः सोऽपि स्युद्धाहितौ मण्यते। 'क्षाय-सृदः' तीत्रक्षपायनान्, स च कृषायुद्धे सूर्यभान्तादिद्धान्तासिद्धे-अन्तर्वदि । 'सनो नाम' यक्षावेशेन मोहोदयेन वा उन्मयीमृदः, स च अभिमवसूद-वेदमृदादावस्तरतीति । एतानि मृद्धम्दानि भवन्तीति द्वारमान्तासङ्क्षेपार्थः।। '५२१० ।। साम्यत्येनामेव विकृणोति— 28

धुमादी बाहिरतो, अंतो धत्तूरगादिका दव्बे ।

जो दब्बं व ण जाणति, घडिगावोदों व्य दिहुं पि ॥ ५२१५ ॥ इह यो नोक्षेनाभ्यत्वरेण वा द्वंत्येण मोहश्रुपरातः स द्वव्यवृद उच्यते । तम कांकंतो भूगदिनाश्चकुलितो शे शुक्कति, 'अन्तः' अन्यन्तरे च धत्रुकेण मंदननोष्ट्रवैदिन वा अकेन यो शुक्कति । अथवा यः पूर्वदष्टं द्वव्यं काळान्तरे दृष्टमपि न जानीते संद्रव्यमूक्षः ।30 भटिकावोडवत---

१ वः प्रस्तुतस्त्रोपासाः सम्य शं ।। २ एतदनन्तरं कां पुस्के प्रम्थाध्रम्—२००० इति वर्तते ॥ ३ क्षीमाद्द मो ० ॥ ४ क्षो व दिद्वतो तामा ।।

एगस्स वाणियस्त पन्नसिवस्त भज्जा पंडरंगेण समंसंपरुमा। पंडरंगेण भज्णति — अणि-ख्वुयए हियए केरिसी रती ?, विविक्तविसम्मरसो हि कामः, तो नस्सामो। 'मा य अयसो होहिति' चि अणाहमङ्यं छोढुं पर्कीवित्ता नद्दाणि गंगातडं गयाइं । सो वणितो अलया आगओ वर्त दक्कं पासिता ताणि य अद्वियाणि रोवित्रमाहतो। भज्जासिणेहाणुरागेणं 'एयाणि । अद्वीणि से गांगं नेमि' ति ताणि अणाहमङ्गादिणी पिट्याए छोढुं गंगं गतो । तीए भज्जाए य दिद्दो, न य संजाणित। ताए पुष्टिछओं—को तुमं !। तेण अस्तायं—पवसियस्त वर्ष रक्कं, भज्जा य मे दक्का, ततो मए भज्जाणुरागेणं 'ताणि कहियाणि गांगं नेमि' वि आगतो, 'गंगाए छुढेहि सुगति जाहिति' एवं पि ता से सेयं किरीम । तीस अणुक्ता जाया। तीए भणियं—अदं सा तव भज्जा। न पचियति। एयाणि अद्वियाणि के अलिकः 10 याणि !। बहुविहं भन्नमाणो जाहे न पचियति ताहे तीए जं पुढिं कीलियं जंपियं सुतं एव-मादि सबं साभिकाणं संवादियं ताहे पचिज्ञिओ। एस दबसुढो ॥ ॥ ५२१५॥

अथ दिम्पूट-क्षेत्रमृद-कालमृदानाह--

दिसिम्हो पुरुवाऽवर, मण्णति खेते तु खेत्तवसासं । दिव-रातिविवसासो, काले पिंडारदिद्रंतो ॥ ५२१६ ॥

5 दिम्मूडो नाम —िवरिता दिशं मन्यते, यथा—पूर्वामपरामिति । क्षेत्रमृढः—क्षेत्रं न जानाति, क्षेत्रम्य वा विषयीसं करोति, विपतिमवबुध्यते हत्यर्थः, रात्रा वा परसंसारकमारमीथं मन्यते. एप क्षेत्रमृढः । कारुमृढो दिवसं रात्रिं मन्यते । अत्र पिण्डार्ड्झन्तः—

एगो पिंडारगो उठभामिगासुतो अठमवहुरू माहिमद्धि-दुद्धं निमदं पाउं दिवसतो सुत्ते। तुओ उद्विओ निह्मचमदितो जोण्हं मण्णमाणो दिवा चेव महिसीओ घरेसु छोहूण उठभामि-२० गावरं पहितो। 'किमेषं ?' ति जणकरूकरो जातो तुओ विरुक्तम् मुओ ति। एवं दिव-साइ-विवक्तासं कुणंतो कारुमुद्दो भण्णह् ॥ ॥ ५२१६॥

गणनामुढं सादृश्यमुढं चाह---

ऊणाधिय मत्रंतो, उट्टारूढो व गणणतो मृढो । सारिक्ख थाणु पुरिसो, कुईबिसंगामदिट्टंतो ॥ ५२१७ ॥

यो गणयन् उत्तमधिकं वा मन्यते स उष्ट्राह्रह इव गणनामृढो भण्यते ।

बहा—एगो उद्दरास्त्रे उद्दीओ एगबीस सम्बद्ध । अन्नया उद्दीग आरुदो गणितो अस्य आरुदो तं न गणेद, सेमा वीस गणेद । पुणो वि गणेद वीसे । 'तस्त्रि मे एगो उद्दो' वि अण्णे पुच्छद । तेहिं भणितो— जत्थारुदो सि एस ते इगबीसद्दमो ॥

साहस्यमुद्धे यथा स्थाणुं पुरुषं गन्यते । अत्र च कुटुम्बिनौ—महत्तर-सेनापती तयोः ⁵⁰सङ्घामेण दृष्टान्तः—

एगो गामो चोरसेणावइणा चोरेहिं समं आगंतण रचीए हतो । तत्थ य गामे जो महत्तरी

१ °णियस्स भजा पंडरंगेण समं संपद्धगा। अन्नया सो वाणियो पउत्थो। पंडरंगेणं भण्णति—अणिब्दुयपहिं केरिसी कां०॥

80

सो तत्व चोरसेणावहस्स सरिसो । तओ संगामे उवद्रिए चोरसेणावई मारितो. गामिछःहिं 'महयरो' ति मण्णमाणेहिं दडो । चोरेहि य गाममहयरो 'सेणावह' ति काउं पर्कि नीओ । सो भणति—नाहं सेणाहिवो । चोरा भणंति—एस रणिपसाइओ ति पलवइ । अनया सो नासिउं सगामं गतो । ते भणंति--को सि तमं ! पेतो पिसाओ वा तेण पडिस्रवेण आगओं ?। तओ साभिनाणे कहिए एच्छा संगहिओं। उमओ वि सवणा सारिक्खमदा ॥५२ १७॥ इ संशाभिमवमदमाह----

> अभिभृतो सम्मुज्झति, सत्थ-ऽग्गी-वादि-सावयादीहिं। अब्भ्रदय अणंगरती. वेदम्मि त रायदिष्टंतो ॥ ५२१८ ॥

सङ्गामादी खड़ादिना शक्षेण, प्रदीपनके वा अभिना, वादकाले वा बादिना, अरण्ये बा श्वापद-स्तेनादिभिश्वाभिभतो यः सम्मुद्धति सोऽभिभवमूदः । वेदमृदस्त स उच्यते यः 10 'अभ्यत्येन' अतीववेदोदयेन 'अनक्ररतिम्' अनक्रकीडां करोति । राजदृष्टान्तश्चात्र भवति-

जहा आणंदपुरं नगरं । जितारी राया । वीसतथा भारिया । तस्स पुत्तो आणंगी नाम बारुते अच्छिरोगेण गहितो निचं रुयंतो अच्छति । अन्नया जणणीते णगिणियाप अहाभावेण जाणु-ऊरुअंतरे छोढ़ं उवगृहितो । दो वि तेसिं गुज्झा परोप्परं समप्मिडिता, तहेव तुण्हिको ठितो । उद्धीवाया रुवंतं पुणी पुणी तहेव करेति । सी वि द्रायति रुवंती । पवसमाणी तस्येव 15 गिद्धो। मातए वि अण्पियं । पिता से मतो । सो रज्जे ठितो तहावि तं मायरं परिभंजति । सचिवादीहिं वसमाणो वि णो ठितो ॥ 11 4286 11

प्रवोक्तं वक्ष्यमाणं चार्थं सङ्ग्हीत्रमिमां गाथामाह---

राया य खंतियाए, वणि महिलाए कुला कुईंबिम्मि । दीवे य पंचसेले. अंधलग सवण्यकारे य ॥ ५२१९ ॥

'राजा' अनन्तरोक्तः खन्तिकायामनुरक्तो वेदमुढः । 'वणिग्' घटिकावोद्राख्यः खमहि-लायां रक्तः खमहेलामनपलक्षयन् द्रव्यमुदः । 'कुद्रन्त्रिनः' सेनापतेर्महत्त्रस्य च कुलानि साह-श्यमदे उदाहरणम् ॥

"दीवे" चि द्वीपजातः पुरुषः । "पंचसेले" चि पश्चशैलवास्तव्याभिरप्सरोभिवर्यद्वाहितः सुवर्णकारः । "अंधरुग" ति धूर्तव्युद्धाहिता अन्धाः । "सुवन्नगारे" ति सुवर्णकारव्युद्धाहितः 25 पुरुषः । एते चत्वारोऽपि वक्ष्यमाणलक्षणा व्युद्धाहणामुढा मन्तव्याः । एष सङ्खरगाधासमा-सार्थः ॥ ५२१९ ॥ साम्प्रतमेनामेव विवणोति--

बार्लस्स अच्छिरोगे, सागारिय देवि संफ्रसे तसिणी। उभय चियत्तऽभिसेगे, ण ठाति बुत्तो वि मंतीहिं ॥ ५२२० ॥ कींडणऽणाहमडयं. झामित घरं पतिम्मि उ पउत्थे । धुत्त हरणुज्झ पति अद्वि गंग कहिते य सहहणा ॥ ५२२१ ॥ सेणावतिस्स सरिसो. वणितो गामिलतो णिओ पिछ ।

१ °ळ जा अ' तामा०॥ २ छोदं अणा "तामा०॥ E- 904

णाई ति रणपिसाई, घरे वि दह्वो कि णेच्छंति ॥ ५२२२ ॥ ईदं गाधात्रवं गतार्थम् । नदरम्—"उमय चियचऽभिसेगे" वि 'उमयोरिप' देवी कुमारवोः प्रीतिकरं तद् विषयसेवनम् । राज्याभिषेकेऽपि सङ्गाते तामसौ न मुख्यति ॥ ५२२० ॥

द्वितीयगांषायाम्—''पुत्त हरणुञ्झ'' ति पूर्तेन तस्या विगमार्याया अपहरणम् । तस्या कणि पतिस्रविवस्या ग्रह्मातटे गमनस् ॥ ५२२१ ॥

कृतीयगाथायाम्—"नाहं ति" इत्यादि, महत्तरेण 'नाहं सेनापतिः' **इत्युक्ते चौराम्बिन्त-**यन्ति— एष रणपिशाचकी तेनैवं वर्षिक । गृहेऽपि गतं तं महत्तरे ते प्रामेयकाः 'दग्यः' इति इत्या नेच्छन्ति सङ्करीतुष् ॥ भरसर ॥

व्यास्थातो मृदः । सःपति व्युद्धाहितं व्याचिस्यासुर्द्वीपजातदद्दान्तमाह— पोतविषक्ती आवण्णसक्त फलएण गाहिया दीवं ।

सुतजम्म विश्व भोगा, बुग्गाहण णावविषयाऽऽया ॥ ५२२३ ॥
पूर्गो विणते । तस्स भजा अर्ड्व रहा । सो विणिज्ञेण गंतुकामो तं आपुज्छति । तीए
भिष्यं—अर्ह पि आगण्डामि । तेण सा नीता । सा गुविषणी । समुद्दम्ब्ये विष्यहं जाणवर्ष ।
सा फब्यं विवयमा अंतरदीवे पषा । तस्थेव पस्ता दार्यं । सो विणिजो समुद्दे मध्ये । ता
११ मिह्न हिस्म चेव टाए संस्टमा । ताए सो बुग्गाहितो—जद भाणुस पिष्टिज्ञासि ते
नासेज्ञासि, ते भाणुसक्ष्येण रक्ससा । अत्रमा दुव्यावहयगिएण वाणिया आगया । ते दर्दु
सो नासेद । तेहिं नायं बुग्गाहिओं केणावि । कह वि अष्ठीणो पुष्टिक्को सब्बं कहेद ।
तेहिं बहुसो पन्नविओ—एयं महापावं, परिचयाहि । तहा वि नो परिचयति ॥

अधासराधः — 'पोतः' प्रवहणं तस्य विपत्तिः । आपनसस्या च सा फरूकेन द्वीपं प्राहिता । १० सुतस्य जन्म इद्धिश्राभवेत् , भोगांश्च तेन सह भोकुमारच्या । व्युद्धाहणकं च कृतम् । नीव-णिजस्य चिरादायाताः । एवविधा व्युद्धाहिताः प्रज्ञापनाया अयोग्याः ॥ ५२२३ ॥

तथा चाह---

पुर्विय दुग्गाहिया, केई, णरा पंडियमाणिजो । णिच्छंति कारणं किंची, दीवजाते जहा नरे ॥ ५२२४ ॥ 25 पूर्वे स्युद्धाहिताः केचिद् नराः पण्डितगानिनो नेच्छन्ति कारणं किश्चित् श्रोजुनिति शेषः, द्वीपजातो यथा नरः ॥ ५२२४ ॥ अत्र पश्चिशेलदृष्टान्तमाह—

चंवा अर्णगसेणो, पंचडच्छर बेर णवण दुम वरूप । विद्वपास णवण सावग, इंगिणिमरणे य उववातो ॥ ५२२५ ॥ चम्पायामनक्रमेनः सुवर्णकारः, कुमारनन्दीति तस्य नामान्तरम् । तस्य च प्रकारिक उठ द्वीपवास्त्रत्याभ्यामप्तरोभ्यां च्युद्धाहितस्य सर्विरेण तत्र नयनम् । 'द्वमश्य' वटकृतोऽपान्तराहे

१ इदं माधात्रयं चूर्णिद्वयेऽप्यग्रहीतत्नाइन्यकर्ष्टकमित्र स्वयते । गतार्यं चैतत् । नवरम् भाष्या २ वताम् ।भोष्योग्या ३ ताः, तैः प्रकापितोऽपि न परित्यकवाद् । पर्यं श्रंगा ४ व्यासिक्ष्येत्रा हष्टः तबाऽऽतेष्ट्रणम् । साबिरस्य 'बळते' आवर्षे गरवा मरगम् । 'बिह्यार' चि 'बिह्वार' आरण्डनामानः पत्रिणकोषां वर्शनम् । तेः श्रेश्वात्रेऽद्वीपे नयनम् । हास-प्रहासार्थ्या सृष्य इहानीतस्य आपकेण च बहुतरं प्रज्ञाप्यमानस्य तस्त्रीक्षनीमर्थयतिपितः । ततः प्रश्चात्रेऽद्वीपे उपपात हत्यक्षरार्थः । कथानकं तु (मन्यामम् — २००० । सर्वेग्नयामम् स्थ-८५५ं), समतीतं बहुविन्तरं चेति इस्या न लिख्यते ॥ ५२२५ ॥ अन्यष्टहान्तराहः—

अंधलगभन पत्थिव, किमिन्छ सेजऽण्ण धुन वंचणता । अंधलमनो देसो. पञ्चयसंबाहणा हरणा ॥ ५२२६ ॥

काश्यक्कः कश्चित् पार्थिवः । स किमीप्सितं शस्या-ऽन्नादिदानं ददाति । धुर्तेन च तैवां वचना । कष्य : इत्याह—'शन्यरुभकोऽनुको देशः समस्ति तत्र पुष्पान् नपामः' इत्युक्ता पर्वते सङ्घाटना कृता, परस्परं लगयित्वा तत्रै आसिता इत्यर्थः । ततः 'हर्णं' तदीवं द्वस्यं 10 कृता गत इत्यक्षरार्थः । भावार्थः पुनरसम्—

अंधपुरं नगरं। तत्व अर्णाची राया। सो य अंघभतो। तेण समं काउं अंघलयाणं अमाहारों दिनो। सत्य खाण-पाणाइए सुपरिमाहिया सुस्सूसिजंता अच्छंति। तेर्सि सुवहं दंधं अध्य। अन्याय एगेण पुषेण दिहा। तओ 'एए सुसामि' ति मिच्छोबयारेणं ते अतीव उवचरति। अन्या तेण अंघलमा भीण्या—अन्ये अंघलमदासा, जत्य अन्ये द्यामी 18 सो सखी वि देसो अंघलमत्यो, राया य तत्य अंघलणं अम्मापियरं, तुक्मे एत्य दुष्टिया, जइ इच्छह तो तत्थ गेमो। तेष्टि इच्छियं। तओ रातो नीणेषा नाइदूरेषा अण्या—इह्डस्थि वोरा, जइ में किंचि अंतद्यं अध्या ता अप्येह। तेहिं वीसेमेण अण्या नियमं । तथो तेण ते पुरिक्षं मिमाहस्स लाइचा अनोवलमा महंते सिछं छिन्नरंक डोंगरसमं मामिया भाण्या य—पत्थरे नेण्यह, जो में अक्षियह तं पहणेजाह, जह में कोइ भणेजा—धृतिया केण वि 20 अधा होंगरं भामिया' जाणह ते बोरे, तओ पहणिजाह। एवं भणिषा पष्टाणो। ते य गोवासमाहिंहिं दिहा, भणंति य—सुद्वा वरागा होंगरं भामिया पुषेणं। तन्नो 'एते ते वोर' जि काउं पत्थरे खिवंति डोयं च न देंति॥ ५२२६॥ सुवर्णकारहष्टान्तगाह—

लोमेण मोरनाणं, भवना ! छेजेज मा हु ते कवा । छादेमि णं तंबेणं, जति पत्तियसे ण लोगस्स ॥ ५२२७ ॥

कथिय् बोद: मुर्चणंकारेण भिनतः, यथा—'भवक!' भागिनेय! ''मोरगाणं'' ति कुण्ड-कानां कोचेन मा 'ते' तत कर्णों क्रियेताय्, अतो यदि कोकच न मत्ययसे ⊲ तैंतः ''ण''मिति एतत कण्डल्यगर्ज ⊳ तामेण कादयान्यत्रभित्यकरार्थः। भावार्षस्यस्य—

पगस्स बोह्स्स जन्मपुनण्यादियाणि क्रंडकाणि काणेस सुनण्यकारेण विद्वाणि । तथो तेण भण्णार्—भागिणेज । जहां तन पुते एवं करेमि जहा पगाणियस्स पंथे वन्यमाणस्स न ३० कोइ हरह, अलहा ते सुनण्यक्षेमेण चोरेहिं कृष्णा क्षेत्रेस्सति । तेण भणियं—एवं होउ

१-२ °श्चरीक° वे ।। दे °श्च ले कार्वेऽप्यस्थाः आसि° कां ।। ध べ ▷ एतदस्सर्गतः पाठः कां - एव वर्राते ॥

चि। कळाएण ते कुंडले चेतुं अने सुवनतीरियामया काउं दिण्णा, भणिओ अ—जणो मणिहिंद् —कळाएण सुद्दो बराओ, न य ते पणिजियव्यं। 'एवं' पडिवज्जिजा निम्पओ। कोगो जो जो पासह सो सो भणह —सुंदरा रीरिया। सो भणह —सोवन्निया एए, तुक्से विसेस न बाणह ॥ ५२२७॥ किंग्र —

जो इत्थं भूतत्थो, तमइं जाणे कलायमामो य । वुग्गाहितो न जाणति, हितपहिँ हितं पि भण्णंतो ॥ ५२२८ ॥

योऽज कोऽपि 'भूतार्थ' परार्थः तस्हं जाने कलादमानकश्च जानाति । एवसती तेन सुवर्णकारेण खुद्धाहितो हितैः पुरुषेः हितमपि भण्यमानो न जानाति । ईदशा स्युद्धाहणामुद्धा मन्तन्थाः । अज्ञानमृद्धादयस्यु सुगमत्वाद् भाष्यकृता न व्यास्थाताः, अत एवासाभिद्धौरगा10 यायानेव व्यास्थाता इति ॥ ५२२२८ ॥

अथेषां मध्ये के मुद्धाः ! के वा व्युद्धाहिताः ! इति दर्शयन्नाह—

रायकुमारो वणितो, एते मूढा कुला य ते दो वि । बुग्गाहिया य दीवे, सेलंघल-भचए चेव ॥ ५२२९ ॥

यो राजकुमारो मातुपतिसेवकः, यथ विणग् घटिकाबोद्रास्यः, ये व 'ते' सेनापति-मह-16 परसत्के द्वे अपि कुले, एते मृदा मन्तव्याः । यस्तु द्वीपजानः, यश्च पञ्चश्चेलखुवर्णकारः, ये बान्धाः, यश्च 'भषकः' सुवर्णकारमागिनेयः, उपलक्षणत्याद् ये च भारतादिकुशास्त्रश्चति-माविता अञ्चानमृद्धाः, एते व्युद्धाहिता मन्तव्याः ॥ ५२२९ ॥

अवैषां मध्ये के प्रवाजयितुं योग्याः ? के वा न ? इत्याह—

मोत्तृण वेदमृढं, अप्पडिसिद्धा उ सेसका मृहा।

बुग्गाहिता य दुट्टा, पडिसिद्धा कारणं मोत्तं ॥ ५२३० ॥

वेदमुदं मुक्तवा ये 'दोषाः' द्रदय-श्रेतमूदादयसोऽप्रतिषिद्धाः, प्रवाजयिद्यं कत्यन्त इत्यर्थः । ये द्व न्युद्धाहिताः 'दुष्टाश्च' कषायदुष्टादयसे कारणं मुक्तवा प्रतिषिद्धाः, कारणे द्व कत्यन्त इति भावः ॥ ५२३० ॥ किसर्थमेते प्रतिषिद्धाः ? इत्याह—

जं तेहिँ अभिग्गहियं, आमरणंताए तं न ग्रंचंति ।

25 सम्मत्तं पि ण लेग्गति, तेसिं कत्तो चरित्तगुणा ॥ ५२३१ ॥

यत् ^तः' लुद्धाहितादिभिः किमपि शाक्यादिदर्शनम् अन्यद्धा भारतादिकं मिध्याश्चतम् 'अभिगृहीतत्' आभिमुख्येनोपादेयतया लीकृतं तद् आमरणान्तं न सुझन्ति । अत एवेतेश् सम्यचनमपि न रुमति, कृतश्चारित्रगुणाः ' इति ॥ ५२३२ ॥

कथं पुनरमीयां सम्यक्तवमपि न लगति ! इत्याह---

80

सोय-सुय-घोररणग्रह-दारभरण-पेयकिश्वमङ्ग्सु । सम्मेसु देवपूर्यण-चिरजीवण-दाणदिद्वेसु ॥ ५२३२ ॥

१ 'त्र-काळ-गणना-साहद्यमूदा' कां ॥ २ लब्मित तामा ॥ ३ 'आमरणान्ततया' मरणळक्षणमन्तं यावव् न मुक्ति ॥

इचेवमाहलोइयकुस्युरवुग्गाहणाकुहियकचा । फुडमवि दाहजंतं, गिण्हंति न कारणं केई ॥ ५२३३ ॥

इह भारतारी शीच-धुत-घोररणसुल-दारमरण-प्रेतकृत्यमयेषु देवपूजन-चिरजीवन-दान-इटेषु च स्वरोंषु ये माविता भवन्ति, यथा—शौचविधानात् पुत्रोत्पादनाद् वोरसमरशिरः-प्रवेशात् धर्मपत्रीपोषणात् पिण्डपदानादिप्रेत्यकर्मविधानाद् वैधानसदिदेवपूजनात् चन्द्रसहसा- ऽ विक्रपविरकाळजीवनाद धेनु घरिज्यादिदानात् स्वर्गा अवाय्यन्ते ॥ ५२३२ ॥

इत्येवमादिकीकिककुश्चतिन्युद्धाहणाकुषितकणीः सन्तस्तसाः कुश्चतरपटनायां स्फुटमिष दर्षयमानं 'कारणम्' उपपर्वि 'केचिव्' गुरुकर्भाणो न शतिपद्यन्ते अवसे दुःसंज्ञाच्या मन्तस्याः ॥ ५२३३ ॥

सूत्रम्---

तओ सुसण्णप्पा पन्नत्ता, तं जहा—अदुट्टे अमूढे अदुग्गाहिए १३ ॥

त्रयः 'स्तृतंत्राध्याः' सुत्पत्रज्ञापनीयाः प्रज्ञाः । तद्यथा —अदुष्टोऽमूढोऽन्युद्राहितस्रेति ॥ आह्—पूर्वसूत्रेणेवाधीपत्त्या इदमवसीयते —यदेवद्विपरीता अदुष्टादयः सुसंज्ञाध्याः ततः किमर्थमिदमारुथम् ? उच्यते —

कामं विपक्सिसिद्धी, अतथावतीइ होतऽबुत्ता वि । तह वि विवक्सो बुक्ति, कालियसुयधम्मता एसा ॥ ५२३४ ॥ 'कामभ्' अनुमतमिदम्—विपक्षस्य-प्रतिपक्षार्थस्य सिद्धिरनुकाऽप्यर्थापस्या मवति तथापि विपक्षः साक्षादुच्यते । कुतः ! इत्याह—कालिकश्चतस्य 'धर्मता' स्वमादः जैकी एपा— यदर्थापरिक्रकोऽप्यर्थः साक्षाद्रीभर्यायते ॥ ५.२१४ ॥ तथा च तक्षक्षणान्येव दर्शयति— 20

> वबहार णऽत्थवत्ती, अणिष्यएण य चउत्थभासाए । मृहणय अगमितेण य. कालेण य कालियं नेयं ॥ ५२३५ ॥

"ववहारे"ति नैगम-सङ्ग्रह-च्यवहाराह्याक्षयो ज्यवहाराय उच्यते, ऋजुन्याधास्त्र चतारो निश्चयनथः। तत्र 'व्यवहारेण' व्यवहारत्यमतेन कालिकश्चने प्रायः सूत्रार्थनिवन्यो भवति, ''अहिगारो तीहि लोसलं'' ति' (आव० निर्यु० गा० ७६०) वचनात् । ''नऽर्यवनी''ति १८ व्यविद्यां कालिकश्चते न व्यवहियते किन्नु तथा ळ्ळ्योऽप्ययंः प्रपश्चितज्ञविनेयजनानुमहाय साह्रादेवाभिषीयते, यथा उत्तराध्यपनेषु प्रयमाध्ययमें ''आणानिहेसकरे'' (गा० २) हत्यादिना विनीतस्तरपमिभाषायार्थाणिक्कथमप्यविनीतस्तरप्रयः ''आणाजनिहेसकरे'' (गा० ३) हत्यादिना सूयः साक्षाद्विमितिसिति । ''अणप्यिण्य य'' पि 'अनर्पितं—विषय-विमागस्यानर्थं तेन कालिकश्चतं रचितम् विभागस्यानर्थं तेन कालिकश्चतं रचितम् विभागस्यानर्थं तेन कालिकश्चतं रचितम् विभागस्यानर्थं तेन कालिकश्चतं स्वित्यः विश्वायः कर्णावाद्वयं' (निश्चीय उ० १ स्व १); हत्याद्वरं अवश्वायः सार्वियं परिहारद्वाणं अणुनवाद्वयं' (निश्चीय उ० १ स्व १);

१ ति मृखावद्यकवच° कां॰ ॥

॥ संज्ञाप्यवकृतं समाप्तम् ॥

ग्लान प्रकृत म्

सूत्रम्-

15

20

25

निगांधि च णं गिळायमाणिं पिता वा भाया वा पुनो वा पळिस्सएजा, तं च निग्गंधी साइजेजा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परि-हारट्ठाणं अणुग्घाइयं १४॥ निगांधं च णं गिळायमाणं माया वा भगिणी वा धृता वा पळिस्सएजा, तं च निग्गंधे साइजेजा, मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहार-ट्ठाणं अणुग्घाइयं १५॥

अधास्य सत्रद्रयस्य कः सम्बन्धः १ इत्याह---

उवहयभावं दब्वं, सिक्तं इति णिवारियं सुत्ते । भावाऽसुभसंवरणं, गिलाणसुत्ते वि जोगोऽयं ॥ ५२३६ ॥

१ इति नन्द्यध्ययनवन्त्र^०का० ॥

दुष्टतादिमियोंकैः वपहतः-पृषितः भावः-धरिणामो यस्य तदुष्ट्तभावम् , प्रविविधं सम्बन्धं द्रव्यं प्रमाजनादी ''इय'' प्रवमनन्तरस्के निवारितम् । इहापि ग्लानष्टमेः शुभमावस्य परिज्-जनानुमीदनरुक्षणस्य 'संपरणं' निवारणं विश्वीयते । अयं 'बीगः' सम्बन्धः ॥ ५२३६ ॥

अनेनाश्वातस्थात्य स्थास्था — 'निर्धन्या' प्रागुक्तशब्दार्थाम्, चशक्ये वाक्यान्तरीयस्थाते, ''कं'' इति वाक्याककारे, ''गिकायमाणि' ति 'कायन्ती' ''के वर्षक्षने' शरीरक्षयेण वर्षक- व वस्तुवनर्त्ती पिता वा आता वा पुत्रो वा निर्धन्यः सन् 'परिष्कतेत्' प्रयक्ती धारवन् निर्वक्षक्षक् उत्थापयन् वा शरीरे स्पृशेत्, 'तं व' पुरुषस्थं ता निर्धन्य मैथुनप्रतिवेदनगाशा 'कावनेत्' अनुमोदयेत् तत आपयते चातुर्भोतिकं परिहास्थानमगुद्धातिकम् ॥

एवं निर्भ्रन्यसूत्रमपि व्यास्त्रेयम् । नवरम्—माता वा मिगनी वा दृष्ट्तिता वा परिष्यजेल् , एष सुत्रार्थः ॥ अथ निर्पुक्तिनिस्तरः—तत्र परः माह्—नतु 'पुरुजोत्तमो वर्मः' इति इत्वा 10 प्रथमं निर्भन्यस्य सुत्रमिधातस्य ततो निर्भन्ययाः, अतः किमवै स्यत्यासः ! इत्याह्—

> कामं पुरिसादीया, घम्मा सुत्ते विवज्जतो तह वि । दृब्बल-चलस्समावा, जेणित्थी तो कता पदमं ॥ ५२३७ ॥

'कामस्' अञ्चनतिनित्स्— यत् 'पुरुषादसः' पुरुषपुरुष्या धर्मा अवन्ति, तथापि सूते विषर्वयः इतः । कुतः : इत्याहः— दुर्वछा- पृतिवछितकछ चरुरुमावा च स्त्री येन कारणैन 15 भवति ततः भथममसी हृता इत्यदीषः ॥ ५२३७ ॥

बत् तु सूत्रे परिष्वजनमभिहितं तत् कारणिकम् अत एवाह---

निगंषो निगंषि, इत्थि निहत्यं च संजयं चेव । पलिसयमाणे गुरुमा, दो लहुमा आणमादीणि ॥ ५२३९ ॥

निर्फ्रम्थो निर्फ्रम्थी परिष्वजति चतुर्युरुकाः तथसा कालेन च ग्रुपः। 'श्वियम्' व्यविरतिकां क्षः परिष्वजति त एव तपसा ग्रुपः। ग्रुहस्तं परिष्वजति चतुर्वेषुकाः कालेन ग्रुपः। संयतं परिष्वजति त एव 'क्षाम्यामपि कपवः' तपसा कालेन च । खर्वत्र चाज्ञादीनि वूचणानि सवन्ति ॥ भरवर ॥ इत्सेव स्थाचष्टे—

निर्मांथी थी गुरुगा, गिहि पासंडित्समणे य चउलहुगा।
देशिह गुरू तबगुरुगा, कालगुरू दोहि वी लहुगा।। ५२४०।।
निर्धन्यस्य निर्धन्यी परिष्वजतः चतुर्गुरगे ह्याथ्यमपि गुरुकाः। स्तियं परिष्वजनक दर्व तपोगुरवः। गृहस्यं परिष्वजतः चतुर्लग्वः कालगरवः। पापण्डियुरुवं 'श्रमर्गं वा'सावं

१ °कम्, बतुर्युक्कमिखायाः ॥ वर्ष का- ॥ २ दोहि वि गुरु तव° ताना- ॥

परिष्यजतमञ्जलकाय एव 'द्वास्यामपि' तपः-कालास्यां रूघवः ॥ ५२४०॥

मिच्छत्ते उड्डाहो, विराहणा फास मावसंबंधो । आतंको दोण्ह भने, गिहिकरणे पच्छकम्मं च ॥ ५२४१ ॥

निर्मन्त्रं निर्मन्त्री परिष्वजन्तं दृष्ट्रा यथान्यकादयो मिथ्यात्वं गच्छेयुः, एते यथा बादिन-5 साचा कारिणो न भवन्ति । उङ्काहो वा भवेत् , एते संवतीमिरिष सममन्नव्यवारिणः । एवं शक्काषां चतुर्गुरु, तिःशक्कितं मुरुम् । एवं प्रवचनत्वः विराधना भवेत् । तेन वा स्पर्शेण द्वसोरिष मोहोदयं सङ्गाते भावसम्बन्धोऽपि स्वात्, ततस्य प्रतिगमनादयो दोणाः । आतक्को वा द्वसोरन्यतस्य भवेत् स परिष्वजने सङ्गामेत् । गृहस्यस्य च परिष्वजनकरणे पश्चात्कर्मदोषो भवेत् ॥ ५२४१ ॥ इत्मेव पश्चार्द्धं स्वाचष्टे—

> कोढ लए कच्छु जरे, अवरोष्पर संकमंते चउभंगो । इत्योगाति सहीण य, अचियत्तं गिण्हणादीया ॥ ५२४२ ॥

कुष्ठ-क्षत-कच्छू-ज्वरवभृतिके रोगे परस्यरं सङ्कामति चतुर्भक्को भवति — संयतस्य सम्बन्धो कुछादिः संयत्याः सङ्कामति १ संयत्याः सम्बन्धो वा संयतस्य सङ्कामति २ द्वयोरप्यन्थोन्यं सङ्कामति ३ द्वयोरिण न सङ्कामति ७ । अत्राधभक्षत्रये रोगनङ्कमणङ्कतोः परितापनादयो 16 दोषाः । तथा 'दृश्यो" इत्यादि, तस्याः क्षियः सम्बन्धिनो ये ज्ञातयो ये च सुद्धरस्तेषामधी-तिकं भवति — च किमैयं अमणोऽस्मत्यम्बन्धिनीमित्यमालिङ्गति ! इति । ⊳ ततस्य प्रदृणा-ऽक्कपणादयो दोषाः ॥ ५२७२ ॥

गिहिएसु पच्छकम्मं, भंगो ते चेव रोगमादीया । संजय असंखडादी, भ्रता-ऽभ्रते य गमणादी ॥ ५२४३ ॥

गृहिषु परिष्वज्यमानेषु पश्चारकर्म भवति, 'संयतेन स्पृष्टोऽहम्' इति क्रत्वा गृहस्यः स्नानं कुर्योदिति सावः । अविरतिकायाः परिष्वक्ने मावसम्बन्धोऽपि जायेत, ततश्च 'सङ्गः' त्रसम्बन्धे-विराणना भवेत्, रोपसङ्गणादस्य त एव दोषाः । संयतं तु परिष्वजनस्रेन सहासङ्क्वादयो दोषाः । एवं ताविष्काराणेऽस्त्रानाथक्षेत्रम् ए। प्रदेश ।। । एवं ताविष्काराणेऽस्त्रानाथक्षेत्रम् ।। प्रदेश ।।

एमेव गिलाणाए, सुत्तडफलं कारणे तु जयणाए । कारणे एग गिलाणा, गिहिकुल पंथे व पत्ता वा ॥ ५२४४ ॥

एवमेव ग्लागाथा अपि संबत्याः परिष्वजने कियमाणे दोषजालं मन्तव्यम् । एरः प्राह्— नन्वेवं सुत्रमफलं प्राप्नोति, तत्र हि परिष्वजनमनुज्ञातं खादनं पुनः प्रतिषिद्धम् । स्रीराह— कारणे यतनया कियमाणे परिष्वजने सुत्रमवतरित । कथं पुनस्तत्य सम्भवः ! इत्याह—कारणे ८०काचिदार्थिका "एरा" नि एकाकिनी संहुना, सा च पश्चाद् ग्लानीमृता, "गिहिकुल" नि गृहस्पकुलानिश्रया सा स्थिता, अथवा "गिहिकुल" नि सा तस्येककुलसमुद्धना भगिन्यादि-

१ °ता अनागादा-Szगादपरि° कां० ॥ २ ॰ ० एतःसभ्यतः पाठ-कां० एव वर्तते ॥ ३ °कुळ-विश्व° कां० । "गिहिक्ल ति सा गिहत्यकुलं गिस्साए ठिया" इति स्वर्णो विदोयस्वर्णो च ॥

सम्बन्धेन निजका गृहस्वतां परित्यज्य तदन्तिके प्रविज्ञता, सा चानीयमाना पिष वा वर्तमाना विविद्यतम् वा प्राप्ता म्ळाना जाता ॥ ५२४४ ॥ तत्रेयं यतना—-

माता भगिणी धूता, तधेव सण्णातिगा य सङ्गी य । गारत्थि कुर्लिगी वा, असोष सोए य जयणाए ॥ ५२४५ ॥

तस्थाः संयत्या या माता भिगनी दुहिता वा तया तस्या उत्थापनादिकं कार्यते । एतासा-5
ममाने या तस्याः 'संज्ञातका' भागिनेथी-पौत्रीप्रभृतिका तथा कार्यते । तस्या अभावे श्रादिकमा । तदमाने गृहस्थया यथाभद्रिकया कुलिक्षित्या वा कार्यते । तास्विष प्रथममञ्जीचवादिनीभिः. ततः शोचवादिनीभिरण यतन्या कार्यतत्यम् ॥ ५२३५ ॥

एयासि असतीए, अगार सण्णाय णालबद्धो य ।

समणो वऽनालबद्धो, तस्तऽसति गिद्धी अवयतुक्को ॥ ५२४६ ॥ व एतासां कीणानभावे योऽगारः 'संज्ञातकः' तस्याः सजनः, स च मातुक-पुत्रादिरिष स्याद् अतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह—'नालबद्धः' वङीबद्धः, पितृ-आतृ-पुत्रमञ्जतिक इत्यर्थः, स उत्थापनादिकं तस्याः कार्यते । तदभावे श्रमणोऽपि यस्तस्या नालबद्धो असमानवयाः । तस्यासति अनालबद्धोऽपि यो गृद्धी वयसा अतुष्यः स कार्यते ॥ ५२४६ ॥

दोन्नि वि अनारबद्धा उ, जुजंती एत्थ कारणे । किही कण्णा विमज्झा वा. एमेव परिसेस वि ॥ ५२४७ ॥

15 (कि:बं

नालबद्धाभावे 'द्वाविप' स्नी-पुरुषावनालबद्धाविप 'कारणे' आगाढे उत्थापनादिकं कारयितुं युज्यन्ते । तत्रापि प्रथमं "किटि" ति स्थितिरा स्नी कार्यते । तद्भावे कन्यका । तद्पाती मध्यमा । एवं पुरुषेप्वपि वक्तव्यम् ॥ ५२४७ ॥ अंधुमेवार्थं पुरातनगाथया व्याख्यानयति—

असईय माउनग्गे, पिता व भाता व से करेजाहि। दोण्ड वि तेसि करणं. जति पंथे तेण जतणाए ॥ ५२४८॥

मातृवर्गो नाम-स्त्रीजनः तैस्याभावे यः तस्याः संयत्याः सम्बन्धी पिता वा श्राता वा स उत्थापनादिकं करोति । "दोण्ट वि" इत्यादि, द्वयोरिष तयोः करणम्, किमुक्तं भवति !— पिष वर्तमानायाः प्राप्ताया वा अथवा निजकाया वा अनिजकाया वा अनन्तरोक्तविभिना तस्या उत्थापनादिकं कर्तव्यम् । यदा च पिष म्काना संबुता तदा स्वयमेव 'यतनया' 26 गोपाककसुकृतिरोधानरूपया तस्याः परिकर्म करोति ॥ ५२४८ ॥

अथवां ''दोण्ह वि'' ति विभक्तिच्यत्ययाद् द्वाभ्यामपि द्रष्टव्यम् । तत्रावमर्थः— थी पुरिस पालऽपाले, सपक्त परपक्त सोयऽसीये य । आसाहिम्म उ कजे, करेति सन्वेहि जतणाए ॥ ५२४९ ॥ भागादे कौर्ये क्रिया वा प्रत्येण वा नाल्यदेन वा अनाल्यदेन वा सपन्नेण वा परपन्नेण ५०

१ "एतदेवार्थं स्मीए पुरातनाए माहाए बन्काणेह—'असर्वय माउवस्मे' माहा ॥" इति विशेष-खूर्णों ॥ २ तस्त्रिन् 'अस्ति' अविद्यमाने यः कां॰ ॥ ३ कार्ये आत्यन्तिके स्कान्ये कां॰ ॥ इ॰ १७६

20

वा झौचवादिना वाड्योचवादिना वा सर्वेरिष यतनया कारयति ॥ ५२४९ ॥ पंयम्मि अपंयम्मि व, अण्णस्स्यस्ति सती वऽकुणमाणो । अंतरियकंजुकादी, स विय जतणा तु पुब्बुत्ता ॥ ५२५० ॥

पैथि अपिथ वा वर्तमानाया अन्यस्थाभावे यद्वा विचतेऽन्यः परं स मणितोऽपि न कन्नरीति ततः स्वयमेवं कुर्वन् गोपाङकञ्जुकादिभिरन्वरितः करोति । अत्र च सैव पूर्वेक्ता वसना मन्तव्या या तृतीयोदेशके प्रथमसूत्रे ग्छानसंयत्याः प्रतिचरणे प्रतिपादिता (गा॰ ३७६८ तः)॥ ५२५०॥ एवं तावदेकाकिनः साधीर्विधिरुक्तः। अथ गच्छे तमेबाह—

> गच्छिम्मि पिता पुत्ता, भाता वा अज्जगो व णत्तू वा । एतेर्सि असतीए, तिविहा वि करेंति जयणाए ॥ ५२५१ ॥

10 गच्छे बसतां यदि तस्याः पिता पुत्रो आता वा 'आर्यको वा' पितामहादिः 'नाता वा' पोत्रोऽह्वित ततः संयतीनामगरस्य वा कीजनस्याभावे तैः कर्तव्यम् । 'पत्तेषा' पितृमसृतीनाम- भावे 'त्रिविधा अपि' व्यतिर-मध्यम-तरुणाः साथवः 'यननया' गोपालकञ्चकतिरोहिताः कुर्वन्ति ॥ ५२५१ ॥ इदं गच्छे प्राप्ताया अभिहितम्, अथ पिथ वर्तमानाया उच्यते—

दोण्णि वि वयंति पंथं, एकतरा दोण्णि वा न वचंती । तत्थ वि स एव जतणा, जा बुत्ता णायगादीया ॥ ५२५२ ॥

'ह्रेर आदे' निजका-ऽनिजके संयत्यो पन्धानं बजनः, एकतरा वा बजति, ह्रे अपि न बजतः, एवमेते त्रयः प्रकाराः । अत्र तृतीयः प्रकारः द्यून्यः, स्थानस्थितानां वा अदाक्कवतां गच्छमप्राक्षानां वा भवति । त्रिष्यपि चानीषु ं येतना सेव मन्तव्या ⊳ या पूर्वे ज्ञातकादि-क्रमेण गच्छे प्राप्तायाः प्रोक्ता ॥ ५२५२ ॥

एवं पि कीरमाणे, सातिज्ञणें चउगुरू तती पुच्छा । तम्मि अवत्थाय भवे, तहिगं र्चं भवे उदाहरणं ॥ ५२५३ ॥

'प्रवमिप' यतनया कियनाणे परिकर्मणि यदि सा निर्मन्यी पुरुषस्पर्धे स्वादयति तदा चतुर्पुरवो द्वाभ्यामपि तपः-कालभ्यां गुरवः । ''ततो पुच्छ'' ति ततैः शिष्यः पुच्छति— यस्यां ग्रजानस्सायामुरथातुमपि न शक्यते तस्यामपि मेथुनाभिकायो भवतीति कथं श्रद्धेयम् ? ।

१ 'या तस्याः प्रतिकर्म करोति, कारयतीत्यर्थः॥ ५२५९॥ अत्रैव विशेषविधिवातिः दिशाबाद्ध—पंपिम ६०॥ २ 'पवि' मार्ग 'अपि यां प्राप्ते यां प्राप्ते सामान्याः संपदाः। अस्यत्यः प्रतिवन्तस्य 'असति' असति, असावो नाम-नास्यत्ते यद्वा कां ॥ ३ 'व तस्याः प्रतिवरणं कुवै' कां ॥ ४ पवि वर्षमानायाः संपदाः प्रताराः—तत्र 'द्वे अपि' निजका 5निजकै संयत्यो साधुना समे पन्धानं वजन इति प्रयक्तः, पक्तरा वा वज्ञतिति द्वितीयः, द्वे अपि न वजन इति दृतियः, प्रवसेत चलः । । अक् तृतीयः प्रकातिः इतियाः, प्रविक्तं चलः प्रकाराः। । अत्र तृतीयः प्रकाति इतियः, द्वे अपि न प्रतार वादः । अपि प्रतार वादः को एव पति ॥ ६ च इमें उदा' तावाः ॥ ७ 'ततः' पूर्वोक्तार्थमतिपादनातन्तरं विष्यः को ॥

स्रिसह—'तत्र' इति तारगवस्थायामि गोहोदये इत्युताहरणं भवेत् ॥ कुलवंसिम्म पद्दीणे, सर्स-भसएर्हि च होइ आहरणं । स्रुकुमालियपञ्चला, सपचवाता य फासेणं ॥ ५२५४ ॥

श्चाक-असकाम्यामाहरणं भवति । कथम् १ इत्याह —कुटवंशे सर्वेसिन् अशिवेन प्रक्षीणे सति सुकुमारिकायाः भवज्या ताम्यां दत्ता । सा चातीव सुकुमारा रूपवती च । ६ ततसेन स्पर्वदेषेण उपरुक्षणतया रूपदेषेण च समत्यवाया जाता ॥ ५२५४ ॥

एनामेव निर्पुक्तिगाथीं व्याख्याति---

जियसतुत्तरवरिदस्स अंगया सस-भसा य सुकुमाली ।
धम्मे जिणपण्णसे, कुमारगा चेव पत्वद्दता ॥ ५२५५ ॥
तरुणाइने निषं, उवस्सए सेसिगाण रक्तद्दा ।
गणिणि गुरु-भाउकहँणं, पिहुवसए हिंडए एको ॥ ५२५६ ॥
इस्तता। दसमागं, सन्वे वि य विद्योगे उ उठभागं ।
अम्हं पुण आयरिया, अद्धं अद्वेण विमयंति ॥ ५२५७ ॥
इत-महित-विप्परद्धे, विष्कुमारेहिं तुरुमिणीनगरे ।
किं काहिति हिंडंतो, पच्छा सस्तो व मस्तो वा। ५२५८ ॥
आसर्थ वणिय गहणं, समोहंथं एसों मंडगं वितितो ।
आसर्थ वणिय गहणं, साउग साविकस्व टिकस्वा य ॥ ५२५९ ॥

१ 'स-भिस' को॰ । एवमधेपि सर्वत्र मुखे टीकायां च 'भसक' स्थाने 'भिसक' इति पाठत्वरं केयम् । चूर्णो विशेषचूर्णो च 'भसग' इति इस्वते ॥ २ 'था' भाष्यकारो दवा' को॰ ॥ ३ 'हणं, विसुख' तामा॰ ॥ ४ 'णो स्थ छ' तामा॰ ॥ ५ 'दह्य ए' तामा॰ विना ॥ ६ तत्र ताचत् प्रथमं कथानकसुरुयते — इहेव को॰ ॥ ७ 'सगहरियाए सस-भसता मणंति—सुकुमालियाए तपण्यं मा कणाओ वि विणसिस्हिति तो फेडेना तुन्मे कण्यत्य सारवे । तेहिं वीद्धं उदस्तमं महाम बीद्धं उत्तरता' इति चूर्णो विशेषचूर्णो च ॥

विराहिषा भिक्सं न देंति । तजो सो एगो भिक्सं हिंडतो तिण्हं पज्जरं न रुद्ध । विङ्णो पच्छा देसकाले फिडिए हिंडतो न संथर द ताहे सा भणह—दान्भे दुक्तिया मा होह, अहं अर्च पचक्सामि । पचक्साए मारणंतियसमुखाएणं समीहया। तेहिं नार्य—कालगा वि । ताहे एगेणं उक्षारणं गहियं, विर्एणं सा गहिया । गच्छंताणं ताए हैंसि वि पुरिसकासो वेहलो ह बाहिज्यं च । तजो ते तं पिठविचा गया गुरुसगार्स । इसरी रचीए सीयल्वाएणं समासस्या सचेषणा जाया । गोसे एगेणं सस्यवाहपुरेणं दिहा । ताए सो भणिजो —जाइ ते मए कजं तो सारवेहिं । सा तेण सारविया महिला से जाया । ते मायरो जालया मिक्सं हिंडते दहुं पाएमु पर्विया एरुना । सा तेहिं सारिक्संण एच्चिनाया पुण्णे पन्नाविया। एवं जह साव तीए समुष्यायगयाए साहज्जयं, क्रिमंग पुण इयरी गिलाणी न साहज्जिजां ।।

अधासराधः — जितश्चुनरबरेन्द्रस्य 'अङ्गजी' पुत्रौ श्रश्चक भसकौ सुकुमारिका च दृहिता। ततो जिनमणीते घर्ने कुमारकावेव तो माजिता। कमेण च ताभ्यां भगिन्यिप माजिता॥ ततस्या रुपरोण तरुणराकीण तिरुप्याक्षेत्रे शेषसाध्वीनां रक्षणार्थं गणिन्या सुरवे निवेदितस्। गुरुपिख माजोः कथितस्। ततः पृथगुपाश्रये तां गृहीत्वा स्वितौ। तयोमध्यादेको भिक्षार्थं हिण्डते, एकत्तां रक्षति॥

15 किमये पुनस्तस्या रक्षणमेवं तो कृतवन्ती ! इत्याह — "इक्सागा" इत्यादि । 'इश्बाकवः' इश्वाक्क्वंशनुपतयः प्रजाः सम्यक् पालयन्तोऽपालयन्तकः यथाकमं तदीयपुण्य-पापवोर्द्यभागं लगन्ते । सर्वेऽपि व 'कृष्णयः' हिर्विद्यन्त्रपत्य एवमेव पद्भागं लगन्ते । अस्माकं पुनः प्रवचने आवार्योः साधु-साध्वीकनं संयमा-ऽऽस्य-प्रवचनिषयमत्यपायेभ्यः सम्यक् पालयन्तो अपालयन्तो वायाकमं पुण्यं पापं वार्द्वमदेन विभवन्ति अत एव तो तां रिक्षितवन्ताविति भावः ॥ तत्य — "विष्टुकुमारेदि" वि कृष्णयाः—यादवाक्तेषां कुमारो कृष्णकुमारो, श्वाकक-ससकानित्यर्थः, ताभ्यां तृहसिणीनगर्यौ उपसर्गकारी तरुणकाने भूयान् हत-भिवत-विप्रारच्यः कृतः। तत्र व त्वयस्य-विप्रारच्याः स्वति कि कि करिप्यति पश्चाद्विक्षं न्तर-परुष्ट-वचनैः प्रकर्षेण निवारितः । तत एवं प्रमृत्तलोकं विराधिते वति कि करिप्यति पश्चाद्विक्षं हिण्डमानः असको भसको वा भक्त-पानलगाभावात ?, न किमपीति सादः ॥

वतः सुक्कमारिकाया आत्रोरनुकम्पया 'परिज्ञा' भक्तमत्याख्यानम् । ततो मरणसम्बद्धातेन 'समबहता' कालगतेविमित ज्ञाला एकः 'भाण्डम्' उपकरणं द्वितीयस्तां गृहीतबात् । ततः शीतल्यातेन आक्षसायाः तत्या विण्ञा महणम्, काल्यन्तरेण च आतृस्यां साहस्येण मत्यिमज्ञाय दीक्षा प्रदक्षेति ॥ ५२५५ ॥ ५२५६ ॥ ५२५० ॥ ५२५८ ॥ ५२५९ ॥ ५२५५ ॥

न्याका वरवात ॥ परपप ॥ परपद ॥ परपु ॥ परपु

एसेव गमो नियमा, निर्माणीणं पि होति नायव्वो । वार्ति कुल पव्यक्ता, अत्तपरिण्णा य भातुम्मि ॥ ५२६० ॥ एष एवं गमो निर्मन्थस परिष्वजनं कुवैतीनां निर्मन्थीनां ज्ञातव्वो अवति । नवरम्—

१ ° घ निर्मन्धीस्त्रोक्तो गमो नियमाव् निर्मन्धः कां ग

'तासां' निर्भन्यीनां सम्बन्धी ''कुरु'' चि एककुरोद्धवो आता रूपवान् प्रवितिस्तस्यापि क्रमेण भक्तपरिज्ञा सङ्गाता ॥ ५२६० ॥ इदमेव व्याचष्टे—

> विउलकुले पन्वहते, कप्पद्वग किठियकालकरणं च । जोन्वण तरुणी पेछण, सगिणी सारक्सणा वीर्सु ॥ ५२६१ ॥ सो चेव य पडियरणे, गमतो जुवतिजण वारण परिण्णा । कालगतो त्ति समोहर्तो, उन्झण गणिया पुरिसवेसी ॥ ५२६२ ॥

कापि विपुक्कुले समुद्धतं भगिनीद्वयं प्रत्नजितम् । ततः कुळवंशस्त्रीय सर्वोऽपि प्रक्षीणः । नवरमेकः करूपस्थको जीवति । ततः संज्ञातकदर्शनायागतेन तेनार्थिकाद्वयेन किढिका—स्विवरा मातेत्व्ययैः तक्ष्मसृतिकुटुम्बस्य काळकरणं श्रुतम् । स च करूपस्थकः प्रत्नाज्य गुरूणां दतः । यौवनं च प्राप्तोऽसावतीव रूपवान् समजिन, ततस्तरुणीभिः प्रेयते । ततो गुरूणामाज्ञ्या ते 10 भगिन्यौ विष्वगुपाश्रये नीत्वा संरक्षितवत्यौ ॥ ५२६१ ॥

कथम् ! इत्याह—स एव 'प्रतिचरणे' रक्षणे गमो भवति यः सुक्कमारिकाया उक्तः । एवं युवतिजनवारणे कियमाणे तस्य भगिनीदुःसं तथाविषं दृष्ट्रा भक्तपरिज्ञा । ततः 'समबहतः' कारुगत इति विज्ञाय 'उज्झनं' परिष्ठापनम् । तस्य च स्नीस्पर्धेन समाधासितस्य पुनश्चैतन्ये सक्जाते पुरुषद्वेषण्या गणिकया अहणम् । ततस्तस्याः पतिः सक्जातः । कियत्यपि कार्ले गते 15 समागताभ्यां भगिनीभ्यां प्रत्यभिज्ञाय भृयः प्रजाजित इति ॥ ५२६२ ॥

॥ ग्लानप्रकृतं समाप्तम् ॥

काल क्षेत्राति कान्त प्रकृत म्

सूत्रम्---

नो कप्पड्ट निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पढमाए पोरिसीए पढिग्गाहित्ता पच्छिमं पोरिसिं उवाइणावित्तए । से य आहच्च उवाइणाविए सिया तं नो अप्पणा मुंजिजा, नो अन्नेसिं अणुप्पएजा, एगंते बहुफाछुएँ थंडिले पडिलेहित्ता पमजित्ता परिट्टवेयव्वे सिया। तं अप्पणा मुंजमाणे अन्नेसिं वा दलमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्टाणं उग्वाइयं १६॥

१ 'रक्षणं तस्य कृतव' कं ।। २ 'ते क्षपवान् इति कृतवा पुढ' कं ।। ३ 'य पएसे पिढ' कं । एतदनुसारेणैव कं • टीका, दृश्यता पत्रं १४० - टिप्पणी ३॥

नो कप्पइ निग्गंथाण वा २ असणं वा ४ परं अस-जोयणमेराए उवायणावित्तए। से य आहब उवाइ-णाविए सिया तं नो अप्पणा भुंजिज्जौ जाव आव-जह चाउम्मासियं परिहारहाणं उग्घाइयं १७॥

अस्य सूत्रद्वयस्य सम्बन्धमाह—

भावस्स उ अतियारो, मा होज इती तु पत्थुते सुने । कालस्स य खेनस्स य, दुवे उ सुना अणतियारे ॥ ५२६३ ॥

'भावस्य' अन्नन्नतपरिणानस्य 'अतिचारः' अतिकामे मा भूदिति अनन्तर्यस्तुते सूत्रे मित
पादिते। अध कालस्य च क्षेत्रस्य चातिवारः—अतिकामे मा भूदिति हे सूत्रे प्रारम्येते ॥५२६३॥

10 अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याच्या—नो क्रव्यते निर्मन्थानां वा निर्मन्थीनां वा अन्ननं वा पानं वा सादिमं वा प्रथमायां पोरुण्यां प्रतिगृह्य पश्चिमां पोरुर्यां "उवाहणाविचर्य" वि 'उपानायिश्वं' सम्प्रापियद्विति । तच "आहच्च" कदा चित्र् उपानायितं स्यात्
ततः 'तद् 'अवानायिकं नाऽऽस्पना भुन्नीत न वा अन्येषां साधूनामनुषद्वात् । किं प्रनस्तिः
विभेयम् : इस्याह—एकान्ते बहुमाशुँके स्पण्डिले प्रयुप्ते चन्नुष्ता प्रमुच्य रजोहरणेन परि
10 ष्ट्रापियतन्त्रयं स्यान । तद् आत्मना भुन्नानोऽन्येषां वा ददान आपवाने चानुमासिकं परिहारस्थानमद्वातिककं ॥

एवं क्षेत्रातिकान्तसूत्रमपि वक्तव्यम् । नवरम् — अर्द्धयोजनव्क्षणाया मर्थादाया अति-कामियनुमरानादिकं न करमते । त्याच तद्यानाथिनं भवेत् तनो यः स्वयं तद् भुद्रेक्षऽन्येषां वा ददाति तस्य चनुरुषुक्तिनि सुनद्वयार्थः ॥ अथ निर्भुक्तिविस्तरः —

वितियाउ पदम पुल्वि, उत्रातिणे चउगुरुं च आणादी । दोसा संचय संसन दीह साणे य गोणे य ॥ ५२६४ ॥ अगणि गिलाणुचारे, अब्सुद्वाणे य पाहुण णिरोधे !

सञ्ज्ञाय विषय काइय, पयलंत पलोक्क्यों पागा ॥ ५२६५ ॥
आतां तावत् पश्चिमा चतुर्थां पोल्पी किन्तु द्वितीयायाः योरून्याः प्रथमाऽपि पूर्वा भण्यते

26 प्रथमायाश्च द्वितीया पाश्चात्या, एवं तृतीयाया द्वितीया पूर्वा द्वितीयायास्तृतीया पाश्चात्या,
चतुर्थ्यास्तृतीया पूर्वा तृतीयस्याश्चदुर्था पश्चिमा । ततः प्रथमायाः पौरून्या द्वितीयायामञ्जादिकमतिकामयतश्चतुर्धेक्कम्, आजादयश्च दोषाः । तथा सञ्चयो भवति । चिरं चावति
ष्ठमानं तदशनादिकं प्राणिभिः संसक्तं भवति । दीर्षज्ञातयो वा श्चा वा समागच्छेत् ततः स

१ °जा, नो अलेसि अणुप्पच्जा, एगेते चहुफासुए पएसे पहिलेहित्ता पमिजाना परिदृष्ट्यच्चे सिया। ते अप्पणा भुजमाणे अवस्ति चा दलेमाणे आयज्ञद को०॥ २ "सोव हे सुवे 'प्रस्तुते' प्रति' को०॥ ३ 'शुके प्रदेशे प्रस्तु' को०॥ ४ 'मू, चतुर्लेषुकानित्यर्थः। एवं कं०॥

द्रवमाञ्चनस्वप्रहत्त उत्बाह्ममशकुवन् ताभ्यां लायेत् । 'गीः' वाठीवर्दत्तेन वा हन्येत । अत्रा-ऽऽस्मविराधनानिष्पन्नं चतुर्पुरः । तद्भयेन च इतस्ततः स्पन्दमानो भाजनं भिन्यात् तत्र चतुर्रुषु । तेन च विना या परिद्याणसानिष्पन्नम् । अथैतेषां भयानिश्चिपति तत्थ्युर्जुश्च ॥ ५२६७ ॥

"आगणि" ति आग्रावुर्त्यितं भाजनभारत्यापृतादेनानिर्गच्छन् दक्षेत् , तत्प्रतिबन्धेन वा उपघेद्विहो भवेत् तत्रोपिषिनिष्यकं प्राथिश्वस् । ग्रहानस्य वेयाबृत्यसुद्धतैनादिकं भारत्याप्वतो न अकरोति, अफियमाणे परितापनादिकं स प्राप्तुयात् तिलाप्यं चतुर्वेषुकादि पाराधिकान्तम् , अधिकाष्ट्रय करोति ततो भासत्त्य । तेन परिगृहीतेनोचारं स्थुत्सप्तुं न शकोति ततो भार्य्यतो कानस्यारोपणा, अध गृहीतेन व्युत्स्युतित तत्र उड्डाहः । गुरूषां प्राप्तुणकस्य चाऽप्रयुत्सानं करोति चतुर्वेस्तु, अथ करोति ततो भाजनमेदादयो दोषाः । भूतमाजनभारणे गात्रनिरोधेन नासमाधिभेवेत् । तथा साध्यायं न प्रस्ताप्यति । आचार्थादीनां पादपक्षारुत्वदिकं विनयं न 10 करोति । कायिकां न व्युत्स्यति, गृहीतेन चा स्युत्स्यति । प्रच्छायमानस्य वा भाजनं प्रछुटेत् , तस्य च प्रछोटने पानकादिना हाव्यमानाः प्राणिनो विषयंन्ते ॥ ५२६५ ॥

अधामुनेव सञ्चयादिदोषान् व्याचष्टे---

निस्संचया उ समणा, संचयि तु गिहीव होति घारेंता । संसर्चे अणुवभोगो, दक्खं च विगिचिउं होति ॥ ५२६६ ॥

निस्सञ्चयाः श्रमणा उच्यन्ते, ततो यदि तेऽपि गृहीत्वा धारयन्ति तदा गृहिण इव सच्च-यिनो भवन्ति । विरं चावतिष्ठमानं तद् भक्त-पानं संसञ्चेन । संसक्तं च साधूनामुपमोक्तं न करुपते, 'विवेक्तं च' परिष्ठापिषत्ं तद् दुःसं भवति, यतस्तत्र परिष्ठाप्यमाने येः प्राणिभिः संसक्तं ते विनाशमध्युवते ॥ ५२६६॥

एमेव सेमएस वि, एगतर विराहणा उभवतो वि । असमाधि विणयहाणी, तप्यचयनिजराए य ॥ ५२६७ ॥

एवमेव 'रोबेप्बापि' दीघीदिषु द्वारेषु भावना कर्तत्या, सा च प्रागेव कृता । तथा 'एकत-रस्य' साघोभीजनस्य वा विराधना दीघेजातीयादिषु भवति । उभयम्-आत्मा संयमधिति द्वयं तस्य विराधना उभयविराधना । ''असमाहि'' ित अग्रिना दक्षमानस्यासमाधिमर्गं भारेणा-कान्तस्य वा असमाधि:-दुःखेनावस्थानं भवेत् । गुरुपसृतीनां च विनयहानिं कुर्यतस्यस्य-25 निर्जराया अपि हानिभैवति ॥ '२९६० ॥

पच्छित्तपरूजणता, एतेसि ठवेंतए य जे दोसा । गद्दितकरणे य दोसा, दोसा य परिद्ववेंतस्त ॥ ५२६८ ॥ तम्हा उ जिंहें गहितं, तिंहें भ्रुंजणें विजया भवे दोसा । एवं सोधि ण विज्ञति, गहणें वि य पानती वितियं ॥ ५२६९ ॥ ॐ 'फतेचा' सम्बन्धतीनां सर्वेषानि प्रायक्षिपरुक्षणा कर्तव्या, सा च प्रागेन लेकतः कृता ।

र "द्यन्ते । पतेषु सर्वेष्वपि यथायोगं तिविष्पन्नं प्रायक्षित्तम् ॥ कां० ॥ २ वा "उम्यते वि" ति उभयस्य वा विराधना दीर्धजातीयादिषु भवति । अथवा उभयम् कां० ॥

'खापयतः' निक्षिपतक्ष ये दोषाः, ये च गृहीतेन कार्याणि कुर्वतो भाजनमेदमसृतयो दोषाः, ये च परिष्ठापयतो दोषासेऽपि वक्तव्या इति ॥ ५२६८ ॥

यत एताबन्तो दोषाः तस्माद् यस्मामेव पौरुष्यां गृहीतं तस्मामेव भोक्तव्यम् । एवं कुर्वता 'दोषाः' पूर्वोक्ता बर्जिता भवन्ति । परः प्राह—नन्वेवं क्षोधिनं विद्यते यतः "ग्रहणे वि" ьिष्ठ यावद् भिक्षां गृह्वाति ताबदेव द्वितीयां पौरुषीं प्राप्नोति ॥ ५२६९ ॥ सुरिराह—

> एवं ता जिणकरपे, गच्छिम्म चउत्थियाएँ जे दोसा । इतरासि किण्ण होती, दन्ने सेसम्मि जतणाए ॥ ५२७० ॥

एवं ताबज्ञिनकिल्पकानामुक्तं यदुन 'यस्वामेव गृहीतं तस्यामेव भोक्तव्यम्'। गच्छवासिनस्तु प्रथमायां गृहीत्वा यदि चतुर्थामतिकामयन्ति तदा ये सञ्चयादयो दोषा उक्तास्तान् प्राप्नवन्ति । 10 मूचोऽषि परः भेरयति— 'इतरयोः' द्वितीय-तृतीययोः पौरुप्योरश्चनादि द्वव्यं धारयती किमेते दोषा न भवन्ति ! । गुरुराह—भवन्ति, परं द्वव्यं भुक्तरोषे कारणे यतनया धार्यमाणे दोषा न भवन्ति ॥ ५२७० ॥ कथं पुनस्तदुद्वरितं भवति ! इत्याह—

पिंडलाभणा बहुविहा, पहमाएँ कैदाचि णासिमविणासी । तत्थ विणासि अंजेऽजिण्णे परिण्णे य इतरं पि ॥ ५२७१ ॥

अभगतश्राद्धेन दानश्राद्धेन वा किंत् प्रकरणे प्रथमणैरुव्यां बहुविधा प्रतिलाभना कृता, बहुिमिभेश्य-गोज्यद्रव्येरित्यथं: । तच द्रव्यं द्विशा—विनाशि अविनाशि च । श्रीरादिकं विनाशि, अवगाशिमादिकमिनाशि । तत्र यद् विनाशि द्रव्यं तद् नमस्कार-पौरुषीप्रवाहसा-नवन्ती सुजते । रोषसाधुनां यथजीर्णं यदि वा तैः परिज्ञातं—तस्या विकृतेः प्रस्वास्थानं कृतम् अभकार्थो वा प्रत्यास्थाः आसार्थिका वा ते ततः 'इनरदिष' अविनाशि द्रव्यमिष 20 सुजते ॥ ५५०१ ॥ असुमेवार्थं व्यावधे—

जह पोरिसिचया तं, गर्मेति तो सेसगाण ण विसक्ते । अगर्मेताऽजिण्णे वा, घरंतिं तं मत्तगादीसु ॥ ५२७२ ॥

यदि पौरुपीप्रत्याख्यानवन्तैसन् द्रव्यं सर्वमधि 'गमयन्ति' निर्वाद्यिदुं **राकुवन्ति ततः** 'शेषाणा' पूर्वोर्द्धप्रत्याख्यानिनां 'न विसर्जयेयुः' न द्रष्युः । अथ ते सर्वमिष न गमयन्ति ततः 20 पूर्वोद्धम्त्याख्यानिनामपि दीयते । अथ तेषामप्यजीभि ततो मात्रकादिषु 'तद्' अश्वनादिकं भारयन्ति ॥ ५२०२ ॥ अथवाऽस्ता कारणेन आरथेत—

तं काउ कोइ न तरह, गिलाणमादीण दाउमश्चण्हे ।

नाउं व बहुं वियरह, जहासमाहि चरिमवज्रं ॥ ५२७३ ॥ 'तद्' अश्रनादिकं 'कृत्वा' सुत्तवा कश्चिद् ग्रशनादीनां प्रायोग्यमानीय दातुष् 'अलुष्णे' 30 अतीवातपे चटिते न शकोति, एतेन कारणेन धारयेत् । यहा 'बह' प्रमृतं मैसं कृष्णे ततः

'मा परिष्ठापितस्यं भवेद्' इति' ज्ञाला गुरबोऽशनादेषेरणं वितरित, अनुजाननीत्यर्थः । १ कदापि णा° तामा० ॥ २ °ति ते म' मो० के० ॥ ३ °न्तः, उपलक्षणमिदम्, तेन नमस्कारसहितप्रस्यास्थानवन्तो वा तद द्रव्यं को० ॥ ४ °ति कृत्या को० ॥ तोषायामेकवचनं पाकुतत्वात् । अथवा > "जहातमाहिं" ति प्रथमपोकृत्यां क्रव्यं परमधा-व्यजीर्णं ततो यावज्ञीर्यते तावज्ञारयेदिष । एवं यथा यथा समाधिभवित तथा तथा अञ्जीत परं चरमावर्जम् , चतुर्वी पौरुर्वी नातिकामयेदिति मावः ॥ ५२७३ ॥

तन्न च धार्यमाणे इयं यतना---

संसक्षिमेसु छुब्भइ, गुलाइ लेवार्डे इयरे लोणाई । जंच गमिस्संति पुणो, एसेव य अत्तसेसे वि ॥ ५२७४ ॥

ज च गामस्तात जुणा, स्तत च खुनसता व । १ तर्वहा ।
'संसजिमेषु' संसक्तियोग्येषु 'लेशकृतेषु' गोरसादिद्वन्येषु गुडादिकं प्रक्षिप्यते येन न
संसज्यन्ते । इतरत्वाम-अलेपकृतं तद् यदि संसक्तियोग्यं तदा तत्र लग्नादिकं प्रक्षिपेद्
न गुडस् । यख प्रथमपौरूष्यं द्वितीयपौरूष्यां न। युक्ता पुनः गमयिष्यन्ति, कियतीमिपे
वेलां प्रतीक्ष्य भूयो भोक्ष्यन्त इत्यर्थः, तत्रापि युक्तरोषे धार्थमाणे 'एग एन' गुडादिमञ्जूपणसूरो 10
विधिभेवति ॥ ५२७४ ॥

चोएइ घरिअंते, जइ दोसा गिण्हमाणि किन्न भवे । उस्सम्म वीसमंते, उन्भामादी उदिक्खंते ॥ ५२७५ ॥

'नोदयति' ग्रेरयति परः—वर्षवं भक्त-पाने धार्यमाणे दोषास्ततो सकादौ ग्रुष्टमाणे किमेते श्वान-गवादयो दोषा न भवन्ति ? भवन्त्येव । तथा कायोत्सर्गे कुर्वतोऽपि त एव बाहुपरि-15 तापनादयश्च दोषाः, एवं विश्रान्यतोऽपि त एव दोषाः, उद्धानकिभक्षाचर्यो ये गतास्त्रदादौनिप ''उदिक्संते'' वि प्रतीक्षमाणस्य त एव दोषाः ॥ ५२७५ ॥ पर एव पाह—

एवं अवातदंसी, पूले वि कहं ण पासह अवाये।

हंदि हु णिरंतरोऽर्ज, भरितो लोगो अवायाणं ॥ ५२७६ ॥ यधेवं युवमपि 'अपायदर्शिनः' सुक्षानप्यपायान् प्रेक्षच्वे ततः स्यूकानपि भिक्षाचर्यादि-²⁰ विषयानपायान् कयं न परयथ !, 'हन्दीति' उपदर्शने, 'हु' निश्चितस्, परयन्तु भगवन्तो यद् एवं निरन्तरोऽप्ययं लोकोऽपायानां भृतः ॥ ५२७६ ॥ कथम् ! इति चेद् उच्यते—

> भिक्खादि-वियारगते, दोसा पढिणीय-साणमादीया । उप्पक्षंते जम्हा, ण हु लब्भा हिंडिउं तम्हा ॥ ५२७७ ॥

उपकार अन्याभ अ कुल्या हिल्डि प्रमुश । २००० ॥ भिक्षा-विचारादी गतानी भाषूना मित्रपोक स्थान-गवादयी बहवी दोषा यसादुत्यवन्ते ²⁵ तस्मादु 'नहि' नैव साषुना हिण्डिद्धं लम्यम् ॥ ५२७७ ॥

> अहवा आहारादी, ण चेव णिययं हवंति घेत्तव्या । णेवाऽऽहारेयव्वं, तो दोसा विजया होंति ॥ ५२७८ ॥

अथवाऽऽहारात्यः 'नियतं' सर्वदा न महीतव्या भवन्ति किन्तु चतुर्ध-पद्धाँदिकं कृत्वा सर्वेथैवाशकेनाहारो माधः। यद्वा नैव कदाचिदण्याहारयितव्यम्। एवं 'दीपाः' अणायाः 80 सर्वेऽपि वर्जिता भवन्ति॥ ५२७८॥ एवं परेणोके सरिराह—

१ < > एतनमध्यतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥ २ °म्, तदिष युष्माकं न बुष्यत इत्यर्थः ॥ कां॰ ॥ ३ °ष्टा-ऽष्टमादिकं कां॰ ॥ १० १००

भण्णति सज्झमसज्झं, कजं सज्झं तु साहए मतिमं । अविसज्झं साधेती. किलिस्सति ण तं च साधेति ॥ ५२७९ ॥

भण्यतेऽत्र प्रतिवचनम्—कार्य द्विविधम्—साध्यमसाध्यं च । तत्र मतिमान् साध्यमेव कार्य साधयति नासाध्यम् । तुशब्द एवकारार्थः । यस्तु युष्मादद्वोऽविसाध्यं साधयति स ५ केवन्त्रं क्किस्यति न च तत् कार्यं साधयति, यथा मृतिण्डेन पटादिसाधनाय प्रवर्तमानः पुरुष इति, असाध्यं चात्र भिक्षाचर्यादावप्येटनम् ॥ ५२७९ ॥ कुतः ! इति चेद् उच्यते—

जित एयविष्पहूणा, तव-णियमगुणा भवे निरवसेसा । आहारमादियाणं, को नाम कहं पि क्रव्वेजा ॥ ५२८० ॥

यदि एतै:—आहारादिभिविविधं मक्त्रमँग हीना:—रहितास्त्रमौ-नियमगुणा निरवरोषा मवेषुः 10तत आहारादींनां को नाम कथामपि खुर्थात् ! अत आहारम्मश्णार्थं मिक्षायामटनीयमिति मक्तमः। एनेन ''अहवा आहारादीं'' (गा० ५२७८) इत्याचपि मखुक्तं द्रष्टव्यम् ॥ ५२८० ॥ इत्योव सविशेषशाह—

> मोक्खपसाहणहेतु, णाणाती तप्पसाहणो देहो । देहहा आहारो, तेण तु कालो अणुण्णातो ॥ ५२८१ ॥

१६० इह मोक्ष्यसाधनहेनवः 'ज्ञानादीनि' ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि, तेषां च प्रसाधनी देहो भवति, अती देहार्थमाहार इच्यते । स च काले गृह्यसाणो थार्थमाणो वा चारित्रस्थानुषयातको भवति, तेन कारणेन कालोऽनुज्ञातः ॥ ५२८१ ॥ कथम ! इत्याह —

काले उ अणुष्णाए, जित वि हु लग्गेज तेहिं दोसेहिं। सुद्धो बुवादिणेतो, लग्गति उ विवज्जऍ परेणं॥ ५२८२ ॥

श्रीवप्रहत्त्रबळ्ळणो द्वितीयादिषौरुपीत्रयातमको वा काळो भक्त-पानादेषौरणोऽनुज्ञातः । एवं-विषेऽनुज्ञातं काळ वर्षापं 'तैः' पूर्वोक्तरीथः 'छायेत' सुश्चेत तथापि शुद्धः । अनुज्ञात-काळात् परेण 'उपानाययन्' अतिकामयन् 'विषयेये' अविवामानेष्यपि दोषेषु 'छगति' सप्रायक्षिंचो मन्तव्यः ॥ ५२८२ ॥

पहमाएँ गिण्डित्णं, पच्छिमपोरिसि उवादिणति जो उ । ते चेत तरथ दोसा, बितियाए जे भणिय पुर्व्वि ॥ ५२८३ ॥ प्रथमायां पौरप्यां ग्रहीत्वं पश्चिमां पौर्श्वी योऽतिकामयित तत्र त एव दोषा ये पूर्वै प्रथमायां ग्रहीत्वा द्वितीयायामतिकामयतो जिनकल्पिकस्य भणिताः ॥ ५२८३ ॥ अमित चातिकामणकामणाति—

> सज्झाय-लेव-सिव्वण-भायणपरिकस्म-सङ्गदीर्हि । सहस अणाभोगेण व, उवादियं होज्ज जा चरिमं ॥ ५२८४ ॥

१ "काले उ" नि तुशस्री विशेषणे, स चैतद् विशिनप्टि—आद्यं क्षं०॥ २ श्रिक्षेत्रो मवतीत्वर्षः ॥५२८२॥ इदमेवान्यपदं भावयति –पढमाए क्षं०॥ ३ श्वा यः सासुदर्पाना-ययति तत्र क्षं०॥

साध्यायेऽतीवोपयोगात् विस्मृतम् । एवं लेपपिरकांणं कुर्वतः, वस्नं वा सीव्यतः, भावनं वा पिरकांयतः, देशकथादिकं वा सहरस्-आळवालं कुर्वतः, आदिशब्दः सहरस्यानेकभेदः स्वकः । एतेषु यद् अत्यन्तव्यप्रत्वं स सहसाकारः, 'अनामोगः' अत्यन्तविस्मृतिः । एवं सहसाकारेणानामोगेन वा 'बरमां' चतुर्थी यावदतिकामितं भवेत ॥ ५२८४ ॥

आहञ्चवाइणाविय, विभिचण परिण्णऽसंथरंतम्मि । अन्नस्स गेण्डणं भंजणं च असतीएं तस्तेव ॥ ५२८५ ॥

पतैः कारणैः ''आह्य'' कदाचिदतिकामितं भवेत् ततः 'विवेच्य' परित्यज्य 'परिज्ञा' दिवसचरमस्त्यारुवानं कर्तव्यम्। अथ न संतरन्ति ततः काले पूर्वमाणे 'अन्यस्य' अञ्चनादेश्रीहणं भोजनं च कर्तव्यम्। अथ कालो न पूर्वते न वा तदानीं पर्याप्तं रूप्यते तेतः यतनया यथा अगीतार्थोः 'तदेवेदमञ्चनादिकम्' इति न जानन्ति तथा तस्येव परिगोगः कर्तव्यः॥भ२८५॥ वि

बिह्यपएण गिलाणस्स कारणा अधवुवातिणे ओमे । अद्भाण पविसमाणो, मज्झे अहवा वि उत्तिण्णो ॥ ५२८६ ॥

अद्भाग भावतसामा, भरक्ष अह्या ाव उत्तरणा । १ २८२६ ॥ द्वितीयपदे व्याप्ताः वाराणात् प्रायोग्धं भक्तादिकमतिरिकमपि कार्ठं घारयेत्, व्यानकृत्ये वा तावद् व्याप्ताः यावत् चसम्पोत्धी जाता, अथवा अवमे पर्यटत एव चतुर्थं सङ्गाता, अध्वनि वा प्रविद्यान् सार्थवद्यगोऽतिकामयेत्, एवसध्वनी मध्ये वर्तमानस्ततो वा उत्तीर्णोऽ-15 संस्तरन् श्रतिकामयेद् मुझीत वा न कश्चिद् दोषः ॥ ५२८६ ॥

व्याख्यातं कालातिकान्तस्त्रम् । अथ क्षेत्रातिकान्तस्त्रं व्याख्यानयति-

परमद्भजोयणाओ, उजाण परेण चउगुरू होंति ।

आणादिणो य दोसा, विराहणा संजमा-ऽऽषाए ॥ ५२८० ॥ अर्थयोजनं-द्विगव्यतं ततः परमञ्जादिकमतिकामयतश्चतुर्ग्ह । आसां तावर् अर्थयोजनम् २० अप्रोद्यातादिष परेणातिकामयतश्चतुर्गृहकाः । आज्ञादयश्च दोषाः, संयमा-ऽऽस्पनीश्च विराधना ॥ ५२८० ॥ तामेवाह—

भारेण वेदणाए, ण पेहती खाणुमादि अभिघातो । इरिया पगलिय तेणग, भाषणभेदो य छक्काया ॥ ५२८८ ॥

भारेणाकान्तो वेदनाभिभूतः साणु-कण्टकादीनि न पेसते, अश्वादिभिर्वाऽभिहन्यते, अथवा 25 "अभिषाउ" वि बरशासादिना शिरसि षट्यते, ईर्या वा न शोधयति, दूर्तयनेन च अक्तपान परिगळिते प्रथिच्यादिनिराषना, सेनैर्वा समुदेशो हियेत । क्षुधा-पिपासातिस वा क्षीण-करुस भाजनमेदो भवेत् तत्र षट्कायनिराषना । आत्मनः परस्य च तेन विना परिहाणिः ॥ ५२८८ ॥ परः माह—

१ तत एवमन्यस्य 'असति' अभावे यत' कं ।। २ एतरनन्तरम् अधात्रैव द्वितीयपद-माह् एववतर्षा कं ।। ३ "विषयपूर्ण" ति सत्तम्यये तृतीया। द्वितीय' कं ।।। ४ 'ता, अतस्तत्रापि उपानाययेत्, चरमपौरुपीमित्यर्थोद् गम्यते। अध्वति कं ।।। ५ एतरनन्तरं प्रन्याप्रम्—२५०० कं ।।।

उजाण आरएणं, तहियं किं ते ण जायते दोसा । परिहरिया ते होजा. जति वि तहिं खेतमावजे ॥ ५२८९ ॥

उचानावारतो प्रामादेशनीयमाने भक्त-पाने किं ते दोषा न जायने यदेवयुवानात् परत इत्यमिषीयते ! । सुरिराह—'ते' दोषालीर्थकरवचनप्रामाण्येन परिहता भवन्ति यचप्यनु-• बातक्षेत्रे तान् दोषानापद्यते ॥ ५२८९ ॥ पुनरिष परः भेरवाति—

. एवं सुत्तं अफलं, सुत्तनिवातो इमो तु जिणकप्पे । गच्छम्मि अद्धजोयण, केसिंची कारणे तं पि ॥ ५२९० ॥

ननु यनुषानात् परतो नातिकामियतन्वयः ततो यत् "परमद्भजोयणमेराजो" चि सूत्रं भिणतं तद् अफलं प्रामोति । आचार्यः माह—यद् 'अप्रोधानात् परतो नातिकामियतन्वयः' 10 इत्युच्यते स एप सूत्रार्थनिपातः 'जिनकस्ये' जिनकस्यितव्यत् । नेपाधितानार्याणामयमियातः, प्राचित्त वात्रातः इत्यादि सूत्रं तद् गच्छवासिविषयम् । नेपाधितानार्याणामयमियात् यया——चच्छवासिविषयम् । नेपाधितानार्याणामयमियात् यया——चच्छवासिविषयम् । यद्वा "केसिंची कारणे तं पि" चि अन्यया व्यास्यायते— केषाधिद् आवाये नाल-इद्धादीनां कारणे 'तंदिप' अर्थयोजनं गग्यते ॥ ५२९० ॥ इत्येष्यं आवाये नाल-इद्धादीनां कारणे 'तंदिप' अर्थयोजनं गग्यते ॥ ५२९० ॥

सक्खेर्ने जदा ण लमति, तत्तो दूरे वि कारणे जति ।

गिहिणो वि चिंतणमणागतिम्म गच्छे किमंग पुण ॥ ५२९१ ॥
'स्वक्षेत्रे' समागे यदा न रूमते तदा दूरेऽप्यावार्यादीनां कारणे मकः-पानमहणार्थं यतते,
अर्थभोजनमपि गच्छतिति मावः । अपि च — यथपि स्वमागे प्राचुर्वेण रूभ्यते तथाऽप्युस्तदर्शगंतस्त्र न हिण्डतीयम् । कुतः ! इत्याह—यदि तावद् गृहिणोऽपि कश्यविकयसम्प्रक्ता
अनागतं मापूर्णकाथर्थं पृत-गुड-रुवण तण्डुरादीनां चिन्तां कुर्वन्ति कमङ्ग पुनेगच्छे सम्बाख-बूदे
येषां क्रयविकयः सम्बच्ध नाहित तैः मापूर्णकाथर्यमागतं न चिन्तीयम् ! ॥५२९१॥ ततः—

संघाडेगो ठवणाकुलेसु सेसेसु बाल-बुह्वादी ।

तरुणा बाहिरगामे, पुच्छा दिइंतऽशारीए ॥ ५२९२ ॥ ६ समाने यानि वानमादादीनि स्थापनाकुळानि तेषु गुरूणां सङ्घाटक एकः प्रविद्यति । यानि स्वयामे शेषाणि कुळानि तेषु बारू-इद्धा-ऽसाहिष्णुवस्तुतयो हिण्डन्ते । ये तु तरुणास्ते विद्यानि पर्यटन्ति । शिष्यः पृच्छति—किमादरेण क्षेत्रं प्रस्पुपेक्य रक्षव १ । गुरुराह्— अगार्या दृष्टान्तीऽत्र कियते ॥ ५२९२ ॥

परिमियभत्तपदाणे, णेहादबहरति थोवथोवं तु ।

पाडुण वियास आगत, विसण्ण आसासणा दाणं ॥ ५२९३ ॥ एगो किविणवणिओ अगारीए अविस्ससंतो तंदुरु-घत-स्वण-कडुभंडादियं दिवसपरिव्वयं

१ °स्ते, गाधायामेकवचनं प्राकृतत्वात्, यदेव° कां ।। २ 'तद्' अर्थयोजनमपि मक्त-पानानयनार्थं गम्ब कां ।।

परिमितं देति, आवणातो घरे ण किंति तंदुकादि घारेति । अगारीए विंता—जदि एयस्स अक्मरहितो मित्रो वा अन्नो वा पदोसादिअवेकाए आगमिस्सित तो किं दाहं ! । तओ अप्पणो बुद्धिपुक्वगेण विणयस्स अजाणतो णेह-तंदुकादियाण थोवयोवं फेडेति । कालेण बहु- धुस्तकं । अन्नया तस्स मित्रो पदोसकाले आगतो । आवणं आरिक्सयमया गंतुं न सकति । विणयस्स विंता जाता, विसन्नो 'कहमेतस्स भन्तं दाहामि !' ति । अगारी विणयस्स मणो- कातं मार्व जाणिता भणति—मा विसन्नो स्तर्कारेहि, सन्न्यं से करेमि । तीए अन्नमंगादिणा ण्हाकेंत्रं विसिद्धमहारं भुंजाविज्ञो । बुद्दो मित्रो पमाए पुणो जेसेठं गतो । विणिन्नो वि बुद्दो भारियं अणह- अब्हे ते परिमियं देमि, कतो एतं ! ति । तीए सन्न्यं कहियं । बुद्देण विणएण 'एसा धर्रवितिय' ति सन्न्यो घरमारे समिप्पओ ॥

अथासरार्थः — परिमितमक्तपदाने सति स्नेहादेर्मध्यादगारी स्तोकस्तोकमपहरति । प्राचूर्ण-10 कस्य च विकाले आगमनम्, ततो गृहपतिर्विषणाः । तथा तस्याश्चासना कृता । ततः प्राचूर्ण-कस्य भक्त-पानदानमकारि ॥ ५२९३ ॥

एवं पीईवड्डी, विवरीयऽण्णेण होइ दिट्ठंतो ।

कोगुत्तरे विसेसा, असंचया जेण समणा तु ॥ ५२९४ ॥ एवं कियमाणे तयोः झुह्दोः परस्परं मीतिइद्विरुपत्रायते । विपरीतधान्येन मकारेण 18 हृद्दानो भवति—तत्र परिमित्तभक्तमध्यादगारी स्तोककार्क गाष्ट्रति ततः झुह्दादेः प्राष्टुण-कस्य केटच्छेदो भवति । एवं यदि गृहस्या अप्यनागतं चिन्तयन्ति ततः क्वश्चित्रमञ्जैः साष्ट्रभिः सुत्रमानागतं चिन्तनीयम् । अप च — लोकोत्तरे येन असक्षयाः श्रमणास्त्रेन कारणेन विदेशेचतः क्षेत्रं रक्षणीयम् ॥ ५२९४ ॥

जणलावो परगामे, हिंडित्ताऽऽणेंति वसहि इह गामे । देजह बालादीणं, कारणजाते य सलमं त ॥ ५२९५ ॥

जनस्यात्मीयात्मीयगृहेषु ग्राममध्ये वा मिलितस्यालागः—प्रवादो भवति — जमी साघवः परमामे हिण्डित्वा भिक्षामिहानवस्ति ततः केवलं वसितिरेवेह मामे अमीवाम् । एवं क्षुरवा गृहएतयः स्वस्तामेह्य आदिद्यान्ति—ये वालावयोऽत्र हिण्डन्ते तीवामादरण सविदोषं मयच्छत । एवं-विषायां विनायां प्रामूर्णकादिकारणजाते यदि देशकालेऽदेशकाले वा हिण्डन्ते तदाऽपि सुलसं 26 मवति ॥ ५२९५ ॥

पाहुणविसेसदाणे, णिजर कित्ती य इहर विवरीयं । पुटिंव चमडणसिग्गा, न देंति संतं पि कजेसु ॥ ५२९६ ॥

माधूर्णकस्य 'विदोषण' आदरेण भक्त-पाने दीयमाने परळोके निर्भरा इहळोके न कीर्ति-भैवति, चशब्दात् भीतिष्टद्धिः परस्यरोपकारिता च भवति । 'इतरथा' प्राष्ट्रणकस्याकियमाणे एत-३० देव विपरीतं मवति, निर्जरादिकं न भवतीत्यर्थः । कथं पुनस्तद् दानं न भवति ! इत्याह— पूर्वं चमदनया—दिने दिने प्रविचाद्धिः साधुभिः सिग्गानि—परिआन्तानि स्यापनाकुळानि 'सदिष' गृहे विद्यमानमपि घृतादिकं द्रव्यं प्राधूर्णकादिकार्येषु उत्यन्नेषु न प्रयच्छन्ति । एवं गुण-दोषान् विज्ञाय क्षेत्रं प्रयक्षेत्र रक्षणीयसिति प्रकाः ॥ ५२९६ ॥ अयं जापरस्तत्र गुणी भवति— कोरीइ य दिइंतो, गच्छे वायामीं तहिँ च पतिरिकं ।

केइ पुण तत्थ भुंजण, आणेमाणे भणिय दोसा ॥ ५२९७ ॥

बहिमीमे भिक्षाटने कियमाणे प्रमूतं तुग्ध-दप्यादिकं प्रायोग्धं प्राप्यते, तथा चात्र बद्धां क्ष्यान्तो भवति । अपि च गच्छे एपैच सामाचारी गणपरमणिता—यद् बहिमीमे तरुणै- भिक्षायामटनीयम् । व्यापामश्च मोहचिकित्सातिभित्तं तैः इतो भवति । 'तत्र' बहिमीमे चन्छः व्याद् इह च मामे ''पहरिकं'' एकान्तं भवति, मुक्किलिलां । यद्वा ''पहरिकं'' ति पचुरं मक्तपानं तत्रावाप्यते । केचित् पुनराचार्यदेशीया तुवते—'तत्रेव' विभागेमे मोजनं कर्त्तव्यम्, यतो ये पृत्रंमानयतो भार-वेदनादयो दोषा भणितास्ते एवं परिहता भवन्ति । एतत् परमत- । पत्रत्व तराकरियते ॥ ५२९० ॥ अथ वदरीष्ट्रणात्माह—

गामऽन्मासे बदरी, नीसंदकङ्कला य खुआ य । पक्काऽऽमाऽलस चेडा, खायंतियरे गता दूरं ॥ ५२९८ ॥ सिग्वतरं ते आता, तेसिऽण्णेसिं च दिति सयमेव । खायंति एव इहर्ड, आय-परसहावहा तरुणा ॥ ५२९९ ॥

कस्सापि प्रामस्य 'अस्यासे' प्रस्यासचे चदरी । सा प्रामनिस्यन्दपानीयेन संवर्षिता ततः कडुकफला संवृता । अन्यच सा स्वभावत एव कुब्बा ततः सुखारोहा । तस्यां च कानिचित् फलानि पकानि कानिचिद्गामानि, अथवा 'पकाऽऽम' ति मन्दपकानि । तत्र ये अरुसाः 'चेटकाः' बालकासे ता वदर्रे सुखारोहामारुस कडुकान्यपि वदराणि भक्षपनित, तान्यपि सहर्यनत्या न पर्याप्तानि भवन्ति । 'इतरे नाम' अनलसाः –उत्साहवन्ते । अलक्सास्त्र इस्मम्पदवीं गताः, कत्या न पर्याप्तानि भवन्ति । 'परिपकानि वदराणि यथेन्छ लाहनित ॥ ५२९८ ॥

ततो यावत् तेऽल्मास्तस्यां कटुकवद्याँ क्रिड्यमाना आसते तावत् 'ते' हूरगामिनो बाल्का आस्तनः पर्योग्तं कृत्वा वदरपोहल्कमाराकान्ताः शीष्रतरमागताः 'तेषाम्' अलसानाम् 'अन्येषां च' गुहे श्वितानां स्वजनानां वदराणि पर्यास्या ददति, स्वयमेव च मक्षयन्ति । एवम् 'इहापि' गच्छवासे तरुणा मिक्षयो वीर्यसम्पन्ना उत्साहवन्तो बाह्यमामे हिण्डमाना 25 आस्तनः परेषां च-बाल-बृद्धादीनां सुन्यावहा भवन्ति ॥५२९९॥ कथम् ' इति चेद् उच्यते—

खीर-दहीमादीण य, लंभो सिग्धतर पढम पहरिके।

उग्ममदोसा विजदा, भवंति अणुकंपिया चितरे ॥ ५२०० ॥
यथा तेऽलसाक्षेटकालया वाल-वृद्धादयोऽपि कुकावदरीकरूपे तसिन् मूल्यामे प्रत्यह्यद्वेप्रयमानतया चिरमपि हिण्डमानाः कोद्रव-क्रुरादिकमेव लभन्ते, तदपि न पर्याप्तम् । ये तु
अतरुणा बहिमोमे गच्छन्ति तेऽनलसचेटककरुपाः, ततः क्षीर-दश्यादीना प्रायोग्यद्वत्याणां
लभक्षेपां विद्यामे भवति, जीवतरं च ते स्वमाने आगच्छन्ति । 'पद्दम' ति प्रथमालिकां
च स्वयं तुर्वति, बाह्यदिभ्यः प्रथमतरं वा समागच्छन्ति । 'पद्दिकं' ति प्रचुरं सक्त-पानयु-

१ °स्तहणो ताटी • मो • डे • ॥

त्पादयन्ति । उद्गमदोषाश्च 'विजदाः' परित्यका भवन्ति । 'इतरे च' बाळादयोऽनुकस्पिता भवन्ति ॥ ५३०० ॥ अमुमेवार्थं सविशेषमाह---

एवं उग्गमदोसा, विजढा पहरिक्षया अणोमाणं।

मोहतिगिच्छा य कता. विरियायारी य अणुचिण्णो ॥ ५३०१ ॥ 'एवं' बहिर्मामे गच्छद्भिस्तः 'उद्धमदोषाः' आधाकमीदयः परित्यक्ता भवन्ति । "पहरिक्षय" ठ ति प्रचरस्य भक्त-पानस्य लाभो भवति । 'अनपमानं' खपश्चापमानं न भवति । 'मोहचिकित्सा च' परिश्रमा-ssतप-वैयावृत्यादिभिर्मोहस्य निग्रहः कृतो भवति । वीर्याचारश्च 'अनुचीर्णः' अनुष्ठितो भवति ॥ ५३०१ ॥ अथ परः प्राह---

> उजाणतो परेणं. उवातिणंतिम पुन्व जे भणिता । भारादीया दोसा. ते चेव इहं त सविसेसा ॥ ५३०२ ॥

नन शोभनमिदम-यद अर्धयोजनं गम्यते, किन्त तेषां भरितभाराणामाचार्यसकाशमाग-च्छतां ये पूर्वमुद्यानात परेण 'उपानाययति' अतिकामयति भारादयो दोषा भणितास्त एवेह सविशोषा भवन्ति ॥ ५३०२ ॥ ततः किं कर्तव्यम् ! इत्याह---

> तम्हात ण गंतव्यं, तहिँ भोत्तव्यं ण वा वि भोत्तव्यं। इहरा भे ते दोसा, इति उदिते चोदगं भणति ॥ ५३०३ ॥

तसादाचार्यसमीपे भक्त-पानेन गृहीतेन न गन्तव्यं किन्त्र 'तत्रैव' बहिर्मामे भोक्तव्यम् . एवं भारादयो दोषाः परिहता भवन्ति । ''न वा वि भोत्तव्वं'' ति वाशव्दः पक्षान्तरद्योतकः. अथ भवन्तो भणिप्यन्ति--- नैव बहिर्झामे भोक्तव्यम् , तत एवमितरथा "भे" भवतां 'त एव' भारादयो दोषाः । एवं 'उदिते' भणिते सति सूरिनोंदकं भणति—यदि तत्र समुद्विशन्ति ततो मासलघु, भवतोऽप्येवं भणतो मासलघु, तैश्च तत्र प्रायोग्यं समुद्धिशद्धिराचार्यादयः ४० परित्यक्ता मन्तव्याः, तेषां प्रायोग्यमन्तरेण परितापनादिसम्भवात ॥ ५३०३ ॥

आह किमिवाचार्यमन्तरेण न सिध्यति यदेवं तदर्थं प्रायोग्यमानीयते ? इत्याह---

जइ एयविष्पद्वणाः तव-नियमगुणा भवे णिरवसेसा । आहारमाइयाणं, को नाम कहं पि क्रव्वेजा ॥ ५३०४ ॥

यदि एतेन-आचार्येण विश्वहीणाः-एनमन्तरेणेत्यर्थः तपो नियमगुणा निरवशेषा भवेयुः 25 तत आचार्यप्रायोग्याणामाहारादीनामन्वेषणे को नाम कथामपि कवीत है. न कश्चित । इदमन्न हृदयम्-सर्वोऽपि तपो-नियमादिकः प्रयासोऽसाकं संसारनिस्तरणार्थम् ते च तपःप्रमतयो गुणा गुरूपदेशमन्तरेण न सम्यगवगम्यन्ते, न वा निरवशेषा अपि यथावदनुष्ठातुं शक्यन्ते, अतः संसारनिस्तरणार्थमाचार्याणां प्रायोग्यानयनादिना कर्तव्यमेव वैयावत्यमिति ॥ ५३०० ॥ अपि च----

> जित ताव लोइय गुरुस्स लहुओं सागारिओ पुढविमादी। आणयणे परिहरिया, पढमा आपुच्छ जतगाए ॥ ५३०५ ॥

30

यदि ताबक्षीकिका अपि यो गुरु:-पिता ज्येष्ठवन्सुर्वा कुटुन्वं घारयित तिसालमुक्ते न मुक्कते, यश्चोत्कृष्टं शास्योदनादिकं तत् तस्य प्रयच्छन्तिः, ततः किं पुनर्यस्य प्रभावेन संसारो निस्तियेते तस्य प्रायोग्यमदस्या एवमेव मुज्यते ! । यस्तु मुक्के तस्य मासलकु । वसतेरभावाश्च तम मुक्कानात् सागारिको यदि पदयति तदा चतुर्वस्य, आजादवस्य दोषाः । अस्यण्डिले च सम्रद्धिशतां व्यविद्याति स्वायाना वाजावने तु सर्वस्यते दोषाः परिहृता भवन्ति, अतो गुरुसमीपमानेत-स्वया । द्वितीयपदे प्रथमालिकां कुर्वन्तो गुरुसपृष्टक्य गच्छन्ति । यतनया च यथा संस्तृष्टं न भवति तथा प्रथमालिका कर्तव्या ॥ ५३०५॥

चोदगनयणं अप्पाऽणुकंषिओ ते य मे परिचत्ता । आयरिए अणुकंषा, परलोए इह पसंसणया ॥ ५३०६ ॥

७ 'नोदकवचनं नाम' परः प्रेरयति—यावत् ते ततो प्रामात् प्रत्यागच्छन्ति तावत् तृष्णा-क्षुचाक्कान्ता अतीव परिताप्यन्ते, एवं प्रसापयद्भिभवद्भिरात्मा अनुकस्पितः 'ते च' साघवः परित्यक्ता भवन्ति । गुरुराह—ननु मुःत्र ! त एवानुकस्पिताः, कथम् ? इत्याह—"आयरिए" इत्यादि, यद् आचायवैयानुत्ये नियुक्ता एपा पारळीकिकी तेषामनुकम्पाः इह्छोकेऽपि तेऽनु-कस्पिताः, यतो बहुम्यः साञ्च-साध्योजनेम्यः प्रशंसामासादयन्ति ॥ ५३०६॥ परः प्राह—

एवं पि परिचत्ता, काले समए य असहुपुरिसे य।

्कालो गिंम्हो उ भवे, खमओ वा पढम्-बितिएहिं ॥ ५३०७ ॥

यतस्ते चुसुक्षित-तृषिता भाराकान्नाः श्रीत-वाना-ऽऽतपैरिमहताः पन्थानं बहन्ति, यूयं तु
श्रीतरूख्यायां तिष्ठथ, तत एवमपि ते परित्यकाः । सुरिराह—त्यामपि कालं क्षपकमसहिष्णुपुरुषं च प्रतीत्य प्रथमालिकाकरणमनुज्ञातम् ।तत्र कालः—प्रीप्मत्वक्षपत्तिस्तिन् प्रथमालिकां
२० इत्ता पानकं पियन्ति, अपको वा प्रथम-द्वितीयपरीयहाभ्यामतीव वाधितः प्रथमालिकां करोति,
प्रयमसिष्टण्यापि जुसुक्षातः प्रथमालिकां कुर्योद् ॥ ५३०७ ॥ अत्र परः प्राह—

जइ एवं संसद्घं, अप्यत्ते दोसियाइणं गहणं।

लंबण भिक्ला दुविहा, जहण्णमुक्तीस तिय पणए ॥ ५३०८ ॥

यथेवमसी बहिरेव मथमालिकों करोति ततो भक्तं संख्ष्टं भवति, संख्ष्टं च गुर्वादीनां 28 दीवमानेऽभक्तिः कृता भवति । गुरुराह — अमाते देश-काले दोषाआदेर्महणं कृत्वा येषु वा कुलेषु प्रमाते वेखा तीषु पर्वेख प्रथमालिकां कुर्वेन्ति, भाजनस्य च करूपं कुर्वेन्ति । प्रथमालिकामाणं च द्विषा — लग्नतो भिक्षातश्च । तत्र जवन्येन त्रयः 'लम्बनाः' कवलातिस्रक्ष भिक्षाः, उलक्तंतः पञ्च लम्बनाः पञ्च वा भिक्षाः । होषं सर्वमिष मध्यमं प्रमाणम् ॥ ५३०८ ॥ अय तैः कृत्र कि महीतव्यम् द इति निरूपयनि —

एगत्थ होइ भन्तं, वितियम्मि पिडम्गहे द्वं होति । गुरुमादीपाउम्मं, मन्तर्ष बितिए य संसन्तं ॥ ५२०९ ॥ साधुद्वयस्य द्वौ पतिमहो द्वौ च मात्रको भवतः । तत्रैकसिन् प्रतिमहे भक्तं महीतन्यम्,

१ गिंभो उ तामा॰ ॥ २ °सिणादिणं तामा॰ ॥

द्वितीये च 'द्वरं' पानकं भवति । तथैकस्मिन् मात्रके आचार्यादीनां प्रायोग्यं गृक्षते, द्वितीये द्व संसक्तं भक्तं वा पानकं वा प्रत्युपेक्षते । यदि शुद्धं ततः प्रतिब्रहे प्रक्षिप्यते ॥ ५३०९ ॥

जित रिको तो दवमत्तगम्मि पढमालियाएँ गहणं तु । संसत्त गहण दवदक्षमे य तत्थेव जं पंतं ॥ ५३१० ॥

यदि रिकोऽसी द्रवमात्रकः ततस्त्रत्र पथमालिकाया महणं कर्तस्यम्, एवं संस्रष्टं न 3 भवति । अथवा तस्मित् द्रवमात्रके संतक्तं द्रवं गृहीतम्, द्रवं वा तत्र क्षेत्रे दुर्छमं ततः 'तत्रैव' भक्तभतिमहे यत् मान्तं तद् एकेन हस्तेनाक्रृष्य अन्यस्मिन् हस्ते क्रस्वा समुद्दिशति, एवं संस्रष्टं न भवति ॥ ५३ १० ॥

विइयपदं तत्थेवा, सेसं अहवा वि होइ सन्वं पि।

तम्हा गंतच्यं आणणं, व जित वि पुद्वो तह वि सुद्धो ॥ ५२११ ॥ 1) द्वितीयपदमत्रोच्यते — अतीव बुभुक्षितासत्रत्रैवातमः संविभागं मुझते, शेषं सर्वमप्यान-यन्ति, अथवा तत्रैव सर्वमास-परसंविभागं मुझते । यत एष एवंविधो विधिस्तासाद् विधिना गन्तस्यं विधिना जानेतन्यं विधिना तत्रेव भोक्तन्यम् । एवं सर्वत्र विधिं कुर्वन् यद्यपि दोषै: स्प्रदो भवति तथापि गुद्धः ॥ ५११ ॥

कथं पुनः सर्वमसर्वं वा भिक्षाचर्यागतेन भोक्तव्यम् ? इत्याह-

15

अंतरपछीगहितं, पढमागहियं व भ्रंजए सब्वं।

संखंडि ध्वलंभे वा. जंगहियं दोसिणं वा वि ॥ ५३१२ ॥

यद् अन्तरपश्चिकार्यां गृहीतं प्रथमपौरुपीगृहीतं वा तत् सर्वमिष भुक्के । यत्र वा जानन्ति सङ्ख्यां धुवो लाभो भविता तत्र यत् पूर्वं गृहीतं तत् सर्वमिष भोक्तव्यम् । यद् वा दोषात्रं गृहीतं तदशेषमि भोक्तव्यम् ॥ ५३१२ ॥

दरहिंडिएन भागं, भरियं भुत्तं पुणो नि हिंडिजा। कालो वाऽतिकमई, भुंजेजा अंतरा सन्वं ॥ ५३१३ ॥

अथवा 'दरहिण्डिते' अभैपर्विटत एव भाजनं सूतं ततोऽस्वसागारिके तत् पर्यातं सुक्वा पुनरिष भिक्षां हिण्डेत । अथवा यावद् आचार्यान्तिके आगच्छन्ति तावत् काळोऽतिकामति, चतुर्वेषीरुषी रूगति सूर्यो वाऽस्तमेतीत्यर्थः, ततः सर्वेमिष 'अन्तरा' तत्रैव सुङ्कीत ॥५३१३॥ 25

परमद्धजोयणातो, उजाग परेण जे भणिय दोसा । आह्बुनातिणानिए, ते चेत्रुस्सम्ग-अवनाता ॥ ५३१४ ॥

अवार्षयोजनात् परेण अतिकामयति तदा ये उद्यानात् परतोऽतिकामणे दोषाः पूर्वं मिल तास एव द्रष्टच्याः । अत्र ''आहम्ब'' कदाचिदनामोगादिनाऽतिकासितं ततस्तावेवोत्सर्गा-ऽपवादौ, उत्सर्गतस्तद् न भोक्तव्यम् अपवादतः पुनरसंसरणे मोक्तव्यमिति मावः॥ ५३१॥ ३०

॥ काल-क्षेत्रातिकान्तप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ °यां-मूलमामाद्घेततीयगब्यूतिभाविन्यां गृही° कां॰ ॥

अ ने पणी य प्रकृत म्

सूत्रम्---

निमांथेण य माहाबइकुलं पिंडवायपिडयाए अणु-प्यिब्देणं अन्नतरे अचित्ते अणेसिणिज्ञे पाण-भोयणे पिडग्गाहिए सिया, अत्थि या इत्थ केइ सेहतराए अणुबद्वावियए कप्पद्व से तस्स दाउं अणुप्पदाउं वा; निथ्य या इत्थ केइ सेहतराए अणुबद्वावियए तं नो अप्पणा भुंजेजा, नो अन्नेसिं दावए, एगंते बहुफासुए पएसे पिडलेहिता पमिजना परिट्ववे-यदवे सिया १८॥

अस्य सम्बन्धमाह---

आहार एव पगतो, तस्स उ गहणम्मि विणया सोही । आहच पुण असुद्धे, अचित्त गहिए इमं मुत्तं ॥ ५२१५ ॥

आहार एवानन्तरस्ते प्रकृतः । 'तस्य च' आहारस्य प्रहणे द्योधिर्वर्णिता, यथा शुद्ध आहारो 15 महीतच्यः तथा भणितमिति भावः । ''आहच'' कदाचित् पुनरशुद्धो अचित्त आहारो गृहीतो भवेत् तत्र को विधिः ! इत्यस्यां जिज्ञासायामिदं सुत्रमारभ्यते ॥ ५३१५ ॥

> अहवण सचित्तदन्त्रं, पिडिसिद्धं दन्त्रमादिपिडिसेहे । इह पुण अचित्तदन्त्वं, वारेति अणेसियं जोगो ॥ ५३१६ ॥

अँथवा पूर्वतरसूत्रेषु "तओ नो कप्पंति पद्याविचल्'' (स्० ४) हत्यादिषु सचिचद्रव्यं २० 'इच्यादिमतिषेचेन' द्रत्यं-पण्डकादिकं तदाश्रित्य मतिषेघो द्रव्यमतिषेघस्तेन, आदिशब्दाद् "दुहे मृदे" इत्यादिषु च भावमतिषेचेन मतिषिद्धस्। 'इह पुनः' प्रकृतसूत्रेवेऽचिचद्रव्यमनेषणीयं वारायति । एष 'योगः' सम्बन्धः ॥ ५३१६ ॥

अनेनायातस्यास्य व्यास्या—िनर्धन्येन च गृहपतिकुळं पिण्डपातमतिज्ञयाऽनुमिष्टेम ''अज्ञतरे'' चि उद्गमोत्पादनैषणादोषाणामन्यतरेण दोषेण दृष्टम् 'अनेषणीयम्' अगुद्धम् ₂₅'अचित्तं' निर्जीवं पान-भोजनमनाभोगेन प्रतिगृहीतं स्यात् , तचोत्कृष्टं न यतस्ततः परित्यक्तुं इाक्यते, अस्ति चात्र कथित् 'दीक्षतरकः' लघुतरः 'अनुपस्यापितकः' अनारोपितमहावतः

१ धाऽनन्तरस्वे अणि कं ।। २ 'गुद्धः-अनेपणीयः परम् अचित्तः-प्राशुकः एवं-विश्व चाहा' कं ।। २ ''अहवण' 'ति अकण्डमव्ययमध्वार्थे। अध्वा कं ।। ४ 'युवे 'अचित्रहव्यम्' आहारकपम् 'अनेषितम्' अनेपणी' कं ।। ५ च 'अत्र' विवक्षितनि-देश्यसन्तराख्यमध्ये कश्चि' कं ।।

कस्पते ''से'' 'तस्य' निर्भन्यस्य 'तस्ते' शैक्षाय वातुमनुपदातुं वा । तत्र वातुं मधनतः, 'अनुप-वातुं' तेनान्यस्मिनेपणीये दत्ते सति पश्चात् प्रवातुम् । अथ नास्त्यत्र कोऽपि शैक्षतरकोऽनुप-स्मापितकस्ततस्तद् नैव आस्पना सुझीत न वाऽन्येषी दचात् किन्तु एकान्ते बहुपाशुके प्रदेशे प्रस्तुपेक्ष्य ममुज्य च परिष्ठापियतस्य स्यादिति सुनार्थः ॥ अथ निर्कृतिकविस्तरः—

अम्नतरऽपेसिणिजं, आउद्विय गिण्हणे तु जं जत्थ । 5

अणमोग गहित जतणा, अजतण दोसा हमे होंति ॥ ५२१७ ॥

'अन्यतरत्' उद्गमदीनामेकतरदोषदुष्टननेपणीयमाकृष्टिक्या यो गृहाति । आकृष्टिका नाम—
स्थमेक भोक्ष्ये होकस्य वा दास्याप्ति । एनवुपेत्य महणे येन दोषेणाद्युद्धं तमापचिते, यख्व
यत्र दोषे प्रायक्षितं तत् तस्य भवति । अथानागोगोनानेपणीयं गृहीतं ततो यतन्या शैक्षस्य
दातस्यम् । यदि अयतन्या ददाति तत हमे दोषा भवन्ति ॥ ५२१० ॥ 1

मा सञ्जमेयं मम देहमन्नं, उक्कोसएणं व अलाहि मज्ज्ञं ।

किं ना मर्म दिज्ञति सन्वसेषं, इचेन दुत्तो तु भंगाति कोई ॥ ५३१८ ॥ तेन अनेपणीयमिति कृत्ना शैक्षम्य दत्तम्, स च शैक्षो तृथात्—मा सर्वमेतत् 'अकं' भक्तं मम दत्त, अथोत्कृष्टमिति कृत्ना मे दीयते तत्रोत्कृष्टेन भक्तेन ममारूम्, किं वा सर्वमे-तद् मम दीयते ? इति । एवं शैक्षेणीक्तः कश्चिद् भणति ॥ ५३१८ ॥

एतं तुन्भं अम्हं, न कप्पति चउगुरुं च आणादी । संका व आभिओग्गे, एगेण व इच्छियं होजा ॥ ५३१९ ॥

'एतत् तव कस्तते, अस्माकं तु न कस्पते' एवं मणतश्चतुर्गुरुकम् आज्ञादयश्च दोषाः । शक्का च तस्य श्रीक्षस्य आभियोगः-कार्मणं तद्विषया भवति । 'एकेन वा' केनचित् शैक्षेण तद् दीयमानमीप्सितं भवेत् तस्य च म्कानत्वे यथाभावेन जाते सित द्वितीयशैक्ष उद्घादं 20 कुर्योत् ॥ ५३१९ ॥ इदमेव भावयति—

कम्मोदय गेलने, दृह्ण गती करेज उड्ढाई।

एगस्स वा वि दिण्णे, िगलाण विस्तिज्ञण उड्डाही ॥ ५३२० ॥
कर्मोदयाद् यथाभावेनैव म्लानस्वे जाते सति स चिन्तयेत्—एतैः 'मा वतादयं प्रतिभज्यताम्' इति इत्वा ममाभियोग्यं दत्तम् । एवं 'इड्डा' ज्ञात्वा स सूयो गृहवासं गतः सन् 25
उड्डाहं कुर्यात्—एतैः कार्मणं नम दत्तमिति । एकस्य वा दत्ते सति यदाँ ग्लानत्वं जातं तदा
द्वितीयः श्रेक्षो व्रतं विमित्वा मभूतजनसमक्षस्चाह्यं कुर्यात् ॥ ५३२० ॥

किं पुनश्चिन्तयित्वा स वतं वमति ! इत्याह-

मा पडिगच्छिति दिण्णं, से कम्मण तेण एस आगछो । जाव ण दिखति अम्ह वि, ह णु दाणि पलामि ता तुरियं ॥ ५३२१ ॥

१ °चां साधूनां "दावप" त्ति आर्षत्वाद् द्या" कं॰ ॥ २ हतोऽप्रे कं॰ शती के पुनस्ते ? इस्तत आह्न स्वतरणं नेषावे ॥ ३ हतोऽप्रे कं॰ शती किस् ? इत्यत आह्न इत्यनतरणं नर्गते ॥ ४ °द्या "गिळाण" ति भावप्रधानत्वाद् निर्देशस्य ग्छा" कं॰ ॥

30

मी प्रतिगमिष्यतीति बुद्धा कार्मणमस्य दत्तं तेनायं ''आगक्षो" म्लानः सङ्गातः, अती यावदस्माकमपि कार्मणं न दीयते तावत् स्वरितमिदौनीमहमपि पर्लाये ॥ ५३२१ ॥

अथवा कश्चिदिदं ब्रयात--

भत्तेण में ण कड़ां, कहुं भिक्खं गती व भीक्खामि।

अर्ष्ण व देह मज्झं, इय अजते उज्झिणिगदीसा ॥ ५३२२ ॥ भक्तेन 'भे' मम न कार्यम्, करुये वा भिक्षां गतो वा भोक्ष्मे, अन्यद्वा भक्तं मधं पय-च्छत । ''इय'' एवमयतनया दीयमाने 'उज्झिनिका' पारिष्ठापनिका भवेत । तस्यां च दोषाः

कीटिका-मक्षिकादिविराधनारूपा मन्तव्याः ॥ ५३२२ ॥

अथवा एकस्य ग्छानत्वे जातेऽपरश्चिन्तयेत्— ह णु ताव असंदेहं, एस मओ हं तु ताव जीवामि ।

र चु तार अतर्र, इत नजा र चु तार जारान । वग्घा ह चरंति इमे. मिगचम्मगसंवता पावा ॥ ५३२३ ॥

> अभिओगपरज्झस्स हु, को धम्मो किं व तेण णियमेणं। अहियकरगाहीण व. अभिजोएंताण को धम्मो ॥ ५३२४ ॥

अभियोगेन-कार्मणेन "परञ्जस्त" ति परवशिकृतस्य मम को नाम धर्मो भविष्यति ?, किं वा तेन नियमेन मम कार्यन् ?, तथा अधिककृत्याहिणामिवार्मीयामप्येवमभियोजयतां को 20 घर्मः ? न कश्चिदित्यर्थः । एवं विचिन्त्य गृहवासं भृयोऽपि कुर्यात् ॥ पश्चित्र ॥

यो ग्लानीभूयोत्पन्नजितः स प्रवजन्तमित्यं विपरिणमयेत---

किच्छाहि जीवितो हं, जित मैरिउं इच्छसी तिहं वच ।

एस तु भणामि भाउग !, विसकुंभा ते महुपिहाणा ॥ ५३२५ ॥

'कुच्छ्राद्' अतिदुःसेनाहं ताबद् जीवितः, अतो यदि त्वमिष मर्तुमिच्छिति तदा 'तत्र' 25 तेषां साधुनामन्तिके तत्र , नेन भवतोऽप्येषं तप्पवत् इति भावः। अपि च — हे आतः! एपोऽह्मेकान्तिहितो यत्वा भवत् भावाः। सामि ति ति विषक्तमा मधुपिधानाः सन्ति प्रस्ते जीवदयाधुपदेशकं मधुरं वचो जन्यितः, चेतसा तु विषवत् परव्यपरीपणकारिदारुणपरिणानाः इति हृदयम्। एवं विपरिणामितोऽसी प्रक्रश्यामपित्यमानः पट्कायविराधनार्दिकं यत् करोति तिलप्पं अयतनादायिनः प्रायक्षितम् ॥ ५२९५॥ किञ्च —-

वातादीणं खोमे, जहण्णकाछत्थिए विसाऽऽसंका । अवि जुजति अभविसे, णेव य संकाविसे किरिया ॥ ५३२६ ॥

१ ''बर्चमानासके वर्त्तमाना'' इति वचनात् 'मा पृष्टिगच्छार' ति मा प्रति° का॰ ॥ २ °दानीं ''इः'' इति खेवे, ''तुः'' इति वितर्के, किं पळाये १ का॰ ॥ ३ मरणं इ' तामा॰ विना ॥

तस्माधुद्धाहारदानानन्तरं वातादीनां क्षोभे 'जघन्यकालात्' तस्त्रणादेवेरिथते विवाशक्का मबति—मन्ये विवममीभिर्मम दत्तं येनैबं मे सहसैव धातुक्षोभः समजिन । एवं चिन्तयतस्त-स्वाचिरादेव मरणं भवेत् । कुतः ? इत्याह—''अवि' इत्यादि, 'अपिः' सम्भावनायाम्, सम्भाव्यते अयमर्थः—यद् अन्यस्य सर्वस्वापि विवस्य मधादिकिया युज्यते, शक्काविषस्य तु 'किषा' चिकिस्सा नैव भवति, मानसिकत्वेन तस्य मतिकर्त्तुमशक्यस्वात् । यत एते दोषा अत्र तमस्वपुनन्यस्य दुव्यति—

केह पुण साहियन्नं, अस्समणो हं ति पडिगमो होज । दायन्नं जतणाए, णाए अणुलोमणाऽऽउद्दी ॥ ५३२७ ॥

केचित पुनराचार्या धुवते— स्फुटमेव तस्य कथिवतव्यम्— भवत एवेदं करूपते; एतच न युग्यते । यत एवप्रके कदाचिदसौ ब्रूयात्—यत् श्रमणानां न करूपते तद् मम यदि करूपते 10 तत एत्यस्म 'अश्रमणः' न श्रमणे भवाभि, अश्रमणस्य च निर्थकं में शिरस्तुण्डसुण्डनम्; इति विचिन्त्य प्रतिगमनं कुशीत् । यत एत्यमते यतनया दातव्यम् । यतनया च दीयमानं यदि ज्ञातं भवति तदा वश्यमाणवचनेः 'अनुकोमना' प्रज्ञापना तथा कर्तव्या यथा तस्य 'आष्ठतिः' समाधानं भवति ॥ ५३०॥ प्रज्ञापनाविधिश्रायम्—

अभिनवधम्मो सि अभावितो सि बालो व तं सि अणुकंषो । तव चेवऽद्दा गहितं, क्षंजिजा तो परं छंदा ॥ ५३२८ ॥ कप्पो बिय सेहाणं, पुच्छमु अण्णे वि एस हु जिणाणा । सामाडयकप्पठिती, एसा सत्तं चिमं बेंति ॥ ५३२९ ॥

'अभिनवभर्गा' अधुनैव गृद्दीतप्रवज्ञ्योऽसि त्वम्, अत एव 'अभावितोऽसि' नाधापि भैक्षभोजनेन भावितः, बादश्च त्वमसि अत एव 'अनुकम्प्यः' अनुकापनीयः, तत इदमुत्कृष्ट-20 द्रव्यमगुद्धमपि तवैवार्थाय गृद्दीतम्, अतः परं 'छन्दात्' त्वच्छन्देन मुझीयाः ॥ ५२२८ ॥

अपि च — करुप एवेष शेक्षाणां यदनेषणीयमधि भोकुं करुपते, यदि भवतो न प्रत्ययस्ततः प्रच्छ 'अन्यानिष्' गीतार्थसाधून्। तेऽपि तेन पृष्टाः सन्तो बुवते —एषा 'तु' निश्चितं 'जिनाजा' तीर्थक्कतासुपदेशः, सामाधिककरुपत्य चैषेव खितिः। सूत्रं च ते साधवः 'द्वं' प्रस्तुतं ''अस्थि या इत्य के से सेहतराप' इत्यादिक्षं बुवते । भवेत् कारणं येनाकुष्टिकयाऽपि द्यात् ॥५३२०॥ ३३ कथर द्वारा —

परतित्थियपूर्यातो, पासिय विविहार्तो संखडीतो य । विष्परिणमेज सेघो, कक्लडचरियापरिस्संतो ॥ ५३३० ॥

कापि क्षेत्रे परतीर्थिकानां पूजाः-सादरिक्षण्य-मधुरमोजनादिरूपाखदुगसकैर्विधीयमाना दृद्धा विविधाश्य सङ्क्षडीरवकोक्य श्रैक्षः कर्कश्चवर्यापरिश्रान्तैः सन् विपरिणमेत ॥५३३०॥ ततः — ३० नाऊण तस्स भावं, कप्पति जतणाएं ताहे दाउं जे।

१ °ते—"साहियव्वं" ति स्फुर कं । २ °न्तः समस्तदोषविशुद्धभैक्षप्रहणनिर्विणणः स' कं ।॥

संथरमाणे देतो, लग्गइ सट्टाणपच्छित्ते ॥ ५३३१ ॥

हात्वा 'सस्य दीक्षस्य 'भावं' क्षित्य-मपुराभोजनविषयमभिषायमेषणीयालामे यतनया तस्या-नेषणीयमपि दातुं कल्वते । अय संसारतोऽपि ददाति ततः स्वस्यानपायश्चिते लगति, वेन बोषणाद्यद्वं तन्निष्पन्नं प्रायश्चितमापयत इति भावः ॥ ५२२१ ॥

सेहस्स व संबंधी, तारिसमिच्छंतें वारणा णत्थि । कक्खें व महिद्वीए. वितियं अद्वाणमादीस ॥ ५३३२ ॥

हौक्षस्य वा सम्बन्धिनः केऽपि केहांतिरेकत उत्कृष्टं मक्तमानीय द्युः, तस्य च ताहशं भोक्तमिच्छतः 'वारणा' मतिषेषो नाति । ''कक्सडे व'' ित कर्कहाम्-अवमीदर्यं तत्रा-संस्तरणेऽछुद्धं शैक्षस्य दातव्यप्, ग्रुद्धमानना भोक्तव्यम् । ''मिहङ्का' ित महद्धिकः-पाजादि-10म्मस्तितः स यावद् नाथापि भावितः तावत् प्रायोग्यमनेषणीयं दीयते । ''विह्वं अद्धाणमा-दीमु'' ित अध्वादिषु कारणेषु हितीयपदं भवति, स्वमप्यनेपणीयं भुकानाः ग्रुद्धा इति भावः । एषा पुरातनी नाया ॥ 'भ३३२ ॥ साम्यतमेनामेव विद्यणीति---

नीया व केई तु विरूवरूवं, आणेज भत्तं अणुवद्वियस्ता।

स चावि पुज्छेज जता तु थेरे, तदा ण बारेंति ण मा गुरूना ॥ ५३२३ ॥

ा निजेकाः केचिद् 'विरूपरूपं' मोदका-उद्योकवर्ति-शाल्योदनप्रभृतिकपुरुष्ट भक्तमनुषस्थितस्य शैक्षस्यार्थायानयेयुः । स च तैर्निमिन्नितो यदा 'स्विदरान्' आचार्यान् पुज्छेत्—

गृह्वाम्यहमिदम् १ न वा १ इति; तदा गुरवो ''ण'मिति 'न' शैक्षं न वारयन्ति । कुतः १

इत्याह——''मा गुरूना'' ति मा वारयतां चत्वारो गुरुकाः प्रायश्चित्तं भवेत् ॥ ५३२३ ॥

किमर्थ पुनर्न वार्यते ? इत्याह---

20

लोलुग सिषेहतो वा, अण्णहभावो व तस्स वा तेसिं।

गिण्हह तुज्भे वि बहुं, पुरिमद्वी गिव्चिगतिगा मो ॥ ५३३४ ॥ छोङ्घपतवा संज्ञातकसेहतो वा स तद् भक्तं भोक्तृमभिरुषेत् ततो यदि वार्यते तदा 'तस्व' शैक्षस्य 'तेषां वा' संज्ञातकानाम् 'अन्यथाभावः' विपरिणमनं भवेत् । संज्ञातकाश्च यदि साधूनामद्रयन्ते—बहेतद् भक्तम् अतो यूयमपि गृह्वीतः, ततो वक्तव्यम्—''गो'' इति वयं

28 पूर्वार्द्धपत्यास्यानिनो निर्विकृतिका वा ॥ ५३३४ ॥ अथ ते संज्ञातका ब्रवीरन्-

भंदक्खेण ण इच्छति, तुब्भे से देह वेह णं तुब्भे । किं वा वारेमु वयं, गिण्हत छंदेण तो बिंति ॥ ५३३५ ॥

एप युष्माभिरतुज्ञातः 'मन्दाक्षेण' रुज्जया न प्रशिद्धभिच्छति ततो यूयं तस्य प्रयच्छत, भणत वा यूयम्—गृहाणेति । तत्र हुवते—किं वा वयं वारयामः १ गृहातु स्वयमेव छन्देन ३०यदि रोचते ॥ '५३५' ॥ अथ "कक्सडे व महिङ्कीए" ति पदद्वयं व्यास्थाति—

> वीसुं बोमे घेतुं, दिंति व से संथरे व उज्झंति । भावेता विश्विमतो, दलंति जा भावितोऽणेसि ॥ ५२३६ ॥

१ 'निजकाः' रीक्षसन्कसङ्गातकाः केचिद् कां॰ ॥ २ मंतक्खेण तामा० ॥

'अवमे' बुभिन्ने यावन्तिकादिकमनेषणीयं 'विष्वक्' पृथम् गृहीस्वा वैश्वस्थार्थायाऽऽनीतं तस्यैव प्रयच्छन्ति, संस्तरन्तो वा उउश्रन्ति । यो वा ऋदिमत्यत्रजितसं 'शावयन्तः' मैक्ष-भोज-नभावनां ब्राह्यन्तो यावद् भावितो न भवति तावद् येन वा तेन वा दोषेणानेषणीयं प्रायोग्यं रुरुखा ददति । यथेवं ऋदिमस्यत्रजितं नानुवर्तयन्ति ततश्चवुर्गुरुकम् ॥ ५३३६ ॥

कुतः ? इति चेद् उच्यते---

तित्यविवर्ही य पभावणा य ओमावणा कुर्लिगीणं । एमादी तत्य गुणा, अकुव्यती भारिया चतरी ॥ ५३३७ ॥

ऋद्विमति प्रविकति तीर्थिविद्वद्विभेवति, 'यदीद्दा। अप्येतेषां सकारो प्रविकति ततो वयं द्रमकमायाः किमेर्च गृहवासमिवसामः ?' इति बुद्धाः मूर्यासः प्रवजनति भावः । प्रभावना च प्रवचनस्य भवति कुलिक्रिना चापभाजना भवति, तेषां मध्ये ईदशासृद्विमतामभावात् । 10 प्रमादयः 'तत्र' राजादिभविकते यतो गुणा भवन्ति अतस्यस्यानुवर्तनामकुवैतश्यस्वारो मारिका मासाः प्रायधित्तम् ॥ ५२३७ ॥ अथ द्वितीयपदमाह—

अद्धाणाऽसिव ओमे, रायदुद्वे असंधरेता उ । सयमवि य भ्रंजमाणा, विसुद्धभावा अपन्छिता ॥ ५३३८ ॥ अध्वा-ऽशिवा-ऽवम-राजद्विष्टेषु असंस्तरन्तः स्वयमप्यनेषणीयं विशुद्धभावा भुझाना अप्रा-16 वश्चिता मन्नव्याः॥ ५११८ ॥

॥ अनेषणीयप्रकृतं समाप्तम् ॥

कल्प स्थिताकल्प स्थित प्रकृत म्

सूत्रम्---

जे कडे कप्पट्टियाणं कप्पड़ से अकप्पट्टियाणं, नो से कप्पड़ कप्पट्टियाणं । जे कडे अकप्पट्टियाणं णो से कप्पड़ कप्पट्टियाणं कप्पड़ से अकप्पट्टियाणं । कप्पे ठिया कप्पट्टिया, अकप्पे ठिया अकप्पट्टिया १९ ॥ अस सम्बन्धाह—

अस्ते व जोगो, मिस्सियभावस्स पश्चवणहेडं । 26
अक्सेव णिण्णजो वा, जम्हा तु ठिओ अरुप्पिम ॥ ५३२९ ॥
सुत्रेणैव 'योगः' सम्बन्धः कियते—'मिश्रितभावस्य' 'किमधैमिदमगुद्धं मम दीयते !'
इत्येवं कद्धवितपरिणासस श्रेक्षस्य प्रज्ञापनाहेतोरिदं सुत्रमारभ्यते । यद्धा 'कथं श्रेक्षस्यानेवणीयं
करूपते !' इत्येवं केनाणि 'अक्षसे' पूर्वपक्षे इते 'निर्णयः' निर्वचनगनेन कियते । कथम् !
इत्याह—सस्याद् असी श्रेक्षः 'अकरुपे' सागायिकसंयमलक्षणे स्थितः ततः कर्यते तस्याने-30
पर्णायमिति ॥ ५३९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—'यद्' अधनादिकं 'कृतं' विहितं करुपस्थितानामधीय करूपते तद् अकरुपस्थितानाम्, नो तत् करुपते करुपस्थितानाम् । इहाचेळ्क्यादो दश्यविषे करुपे स्थाताले करुपस्थिता उच्यन्ते, पश्चयामधर्मप्रतिपन्ना इति भावः । ये पुनरेतस्मिन् करुपे सम्पूर्णे न स्थिताले अकरुपस्थिताः, चतुर्यामधर्मप्रतिपन्ना इत्यर्थः । ततः पश्चयामिकानुदिद्य कृतं नातुर्यामिकाना करुपत इत्युक्तं भवति । तथा यद् 'अकरुपस्थितान् चातुर्यामिकाना चातुर्यामिकाना चातुर्यामिकानामधीय कृतं नो तत् करुपते 'करुपस्थितानां' पश्चयामिकाना केन्द्र करुपते तद् 'अकरुपस्थितानां व्याद्यामिकानामधाय कृतं नो तत् करुपते पात्र व्याद्यामिकानामधाय कृतं नो अव वृद्धविचाराह—'करुपं श्वाचेक्यादी दश्चित्र स्थताः करुपस्थिताः । 'अकरुपं अस्थितकरुपस्थते स्थाता अकरुपस्थिताः । एष सूत्रार्थः ॥ अथ निर्धुक्तिवित्तरः—

कप्पठिइपरूवणता, पंचेव महन्वया चउजामा । कप्पट्रियाण पणगं, अकप्प चउजाम सेहे य ॥ ५३४० ॥

करुपक्षितेः प्रभमतः प्ररूपणा कर्तन्या । तद्यथा—पूर्व-पश्चिमसाधृनां करुपक्षितिः पश्चमहाव्रतरूपा, मध्यमसाधूनां महाविदेहसाधूनां च करुपक्षितिश्चतुर्यामलक्षणा । ततो थे करुपस्वितास्त्रेषां "पणगं" ति पश्चेव महाव्रतानि भवन्ति । अकरुपक्षितानां तु 'चरवारो यामाः'
चरवारि महाव्रतानि भवन्ति, 'गापरिपृष्टीता स्त्री सुज्यते' इति क्रस्त्रा चतुर्यव्रतं परिमहक्त
16 एवं तेषामन्तभवतीति मावः । यश्च पूर्व-पश्चिमतीर्थकरसाधूनामपि सम्बन्धी श्रेक्षः सोऽपि
सामायिकसंयत इति क्रस्त्रा चतुर्योभिकोऽकरुपस्तिश्च मन्तन्यः, यदा पुनरुपस्त्रापितो मनिष्यति
तदा करुपस्थित इति ॥ ५२४०॥ मरूपिता करुपस्तितः । इह ''जे कडे कप्पद्वियाणं''
इत्यादिनाऽऽधाकर्मं स्वितम् अतस्त्रस्रोक्षरितिमाह—

साली घय गुल गोरस, णवेसु व्छीफलेस जातेस ।

20 पुण्णह करण सञ्चा, आहाकम्मे णिमंतणता ॥ ५३४१ ॥

कस्यापि दानरुचरिभगमश्राद्धस्य वा नवः शास्त्रिन्त्यान् गृहे समायातस्ततः स चिन्तयति— 'पूर्वे यतीनामदस्ता ममासमा परिमोक्तं न युक्तः' इति परिमाच्याऽऽधाकमं कुर्यात् । प्रं इते गुडे गोरसे नवेषु वा तुम्ब्यादिवहीफलेषु जातेषु पुण्यार्थे दानरुचिः श्राद्धः ''करणं ' ति आधाकमं कृत्या साधुनां निमम्नणं कुर्यात् ॥ ४३४१ ॥

वस्य चाधाकर्मणोऽमुन्येकार्थिकपदानि —

आहा अहे य कम्मे, आताहम्मे य अत्तकम्मे य ।

तं पुण आहाकम्मं, णायव्वं कप्पते कस्स ॥ ५३४२ ॥

आधाकमं अधःकमं आत्मन्नम् आत्मकमं चेति चत्वारि नामानि । तत्र साधूनामाधयाप्रणियानेन यत् कमं-पद्कायविनाशेनाशनादिनिष्पादनं तद् आधाकमं । तथा विशुद्धसंयमउ० स्थानेन्यः प्रतिपात्य आत्मानं अविशुद्धसंयमस्यानेतु यद् अधोऽपः करोति तद् अयःकमं ।
आत्मानं-चान-दर्शन-चारित्ररूपं हन्ति-विनाशयतीति आत्मन्नम् । यत् पाचकादेः सम्बन्धि

१ "ताः किन्तु केषुचित् राज्यातरपिण्डादिषु स्थानेषु स्थिताः केषुचित् तु आयोजस्थादिषु अस्थिताःसं अकृत्यप् कः ॥

कर्म-पाकादिकक्षणं ज्ञानावरणीयादिकक्षणं वा तद् आत्मनः सम्बन्धि क्रियते अनेनेति जात्म-कर्म । तत् पुनराधाकर्मे कत्य पुरुषस्य करुपते ! न वा ! यद्वा कत्य तीर्थे कथं करुपते ! न करुपते वा ! इत्यमीभिद्वीरीक्षीतव्यम् ॥ ५३४२ ॥ तान्येव दर्शयति——

संघस्स पुरिम-पच्छिम-मन्त्रिमसमणाण चेन समणीणं। चउण्हं उनस्सयाणं, कायन्ना मग्गणा होति ॥ ५३४३ ॥

आधाकर्मकारी सामान्येन विदोषेण वा सङ्घस्योदेशं कुर्योत् । तत्र सामान्येन-अविशेषितं सङ्घद्विश्वति, विदोषेण तु पूर्वं वा मध्यमं वा पश्चिमं वा सङ्घं चेतिस प्रणियते । अमणानामप्योधतो विभागतस्य निर्देशं करोति । तत्रीवतः—अविशेषितश्रमणानाम्, विभागतः पश्चयामिकश्रमणानां वतुर्योमिकश्रमणानां वा । एवं श्रमणीनामपि वक्तस्य । तथा चतुर्णाधुमाअवाणामप्येवयेन सामान्येन विदोषेण च मार्गणा कर्तत्या भवति । तत्र चलार उपाश्रया इसे—10
पश्चयामिकानां श्रमणानागुराश्वयद्वद्विततिति एकः, पश्चयामिकानामेव श्रमणीनां द्वितीयः, एवं
चतुर्योमिक श्रमण-श्रमणीनामप्येवयेव द्वातुषाश्चयो मन्तव्यो ॥ ५२४२ ॥ इदमेव भावयति——

संघं समुद्दिसत्ता, पढमो वितिओ य समण-समणीओ ।

तितेओं उवस्सए खेळु, चउत्थओं एगपुरिसस्स ॥ ५३४४ ॥
आधाकर्मकारी प्रथमो दानश्राद्वादिः सङ्घं सामान्येन विद्योगेण वा समुद्दिस्याधाकर्म 15
करोति । द्वितीयः श्रमण-श्रमणीः प्रणिधाय करोति । चुतीय उपाश्रयानुद्दिस्य करोति । चुत्र्यं
एकपुरुसस्योदेशं इत्या करोति ॥ ५२४४ ॥ अत्र यथाकमं करूप्या-ऽकरूप्यविधिमाहः—

जित सन्वं उद्दिसिउं, संघं कारेति दोण्ह वि ण कप्पे। अहवा सन्वे समणा. समणी वा तत्थ वि तहेव॥ ५३४५॥

'यदीति' अन्युपगमे । यदि नाम ऋषमस्यामिनोऽजितस्यामिनश्च तीर्थमेकत्र मिलितं १० भवति पार्श्वसामिन-बर्दमानस्यामिनोवो तीर्थ मिलितं यदा भाष्यते तदा तत्कारूमऋहित्यायं विधिरीभीयते— सर्वमिप सङ्घं सामान्येनोहिस्य यदा आधाकर्म करोति तदा 'द्रयोरिष' पष्टमामिक-सद्युपीमिकसङ्ख्योने करूपते । अध सर्वन् अमणान् सामान्येनोहिस्ति ततः 'तत्रापि' अमणानामि सामान्येनोहिसे 'त्रयेव' सर्वमामिक सङ्घामिकानां चर्यामिकानां समान्येनोहिसे सर्वासामकरूप्यम् ॥ ५३४५ ॥

अथ विभागोद्देशे विधिमाह----

जइ पुण पुरिमं संघं, उदिसती मन्सिमस्स तो कप्पे। मन्सिमउदिहे पुण, दोण्हं पि अकप्पितं होति ॥ ५३४६ ॥

यदि पुनः पूर्वमृष्यभ्यामिसानं सङ्घ सद्विद्यति ततः 'मध्यमस्य' अजितस्वामिसङ्गस्य कह्यते । अध मध्यमं सङ्घदिशति तदा 'द्वयोरिए' पूर्व-मध्यमसङ्घयोरकस्यं मवति । ३० एवं पश्चिमतीर्थकरसम्बं सङ्घदिद्य इतं मध्यमस्य कह्यते, मध्यमस्य इतं द्वयोरिप न कस्यते ॥ ५३६६ ॥

्रमेव समणवन्गे, समणीवन्गे य पुन्वग्रुहिहे। ४० १०६

मिक्समगाणं कप्पे, तेसि कडं दोण्ह वि ण कप्पे ॥ ५३४७ ॥

एवमेड श्रमणवर्गे श्रमणीवर्गे च पूर्वेषाम्-ऋषमस्वामिसम्बन्धिनां श्रमणानां श्रमणीनां वा यद् उदिष्टम्-उद्दिश्य कृतं तद् मध्यमानां श्रमण-श्रमणीनां करुरते । 'तेषां' मध्यमानाम-श्रीय कतं 'उभयेषामपि' पूर्व-मध्यमानां साध-साध्वीनां न करूपते । एवं पश्चिम-मध्यमानामपि इ वक्तव्यम् ॥ ५३४७ ॥ अथैकपुरुषोद्देशे विधिमाह—

> पुरिमाणं एकस्स वि, कयं तु सब्बेसि पुरिम-चरिमाणं । ण वि कप्पे ठवणामेत्तर्ग त गहणं तर्हि नत्थि ॥ ५३४८ ॥

'पूर्वेषाम्' ऋषभस्यामिसत्कानामेकस्यापि पुरुषस्यायीय कृतं सर्वेषामपि पूर्व-पश्चिमानाम-करूप्यम् . पश्चिमानामप्येकस्यार्थाय् कतं सर्वेषां पूर्व-पश्चिमानामकरूप्यम् । एतम्ब 'स्वापना-10 मात्रं' महत्पणामात्रं संज्ञाविज्ञानार्थे कियते. बहुकाळान्तरितत्वेन पूर्व-पश्चिमसाधूनामेकत्रासम्भ-बात तत्र परस्परं महणं 'नास्ति' न घटते । मध्यमानां तु बदि सामान्येनैकं साधुमुद्दिश्य कृतं तत एकेन गृहीते शेषाणां करूपते । अध कमप्येकं विशेष्य कृतं ततः तस्येवाकरूप्यम् , शेषाणां सर्वेषामपि कल्प्यम्, पर्व-पश्चिमानां त सर्वेषामपि तन्न कल्पते ॥ ५३४८ ॥

अथोपाश्रयोहेशे विधिमाह--

एवम्रवस्सय पुरिमे, उद्दिष्ट ण तं तु पन्छिमा भुंजे । मज्जिम-तन्वजाणं, कप्पे उद्दिसम प्रव्वा ॥ ५३४९ ॥

एवं यदि सामान्येनोपाश्रयाणामुद्देशं करोति तदा सर्वेषामकरूप्यम् । अथ पूर्वेषाम-आध-तीर्थकरसाधनामुपाश्रयानहिशति ततस्तदर्थमहिष्टं पश्चिमा उपलक्षणस्वात पर्वे वा साधवः सर्वेऽपि न मुझते, मध्यमानां पुनः कल्पनीयम् । अथ मध्यमसाधूनामुपाश्रयान् सर्वानुहिश्य 20 करोति तत्तो मध्यमानां पूर्व-पश्चिमानां च सर्वेषामकरूप्यम् । अथ कियत एव मध्यमोपाश्रयानु-हिशाति ततः 'तद्वर्जानां' तेष-उपाश्रयेषु ये श्रमणास्तान वर्जयित्वा शेषाणां मध्यमश्रमण-श्रमणीनां कल्पते । "उद्विद्रसम पुत्र" चि पूर्वे साधवः-ऋषभस्तामिसत्का मण्यन्ते, ते 'उद्दिष्टसमाः' यं साधुमुद्दिश्य कृतं तत्तुल्याः, एकमुद्दिश्य कृतं सर्वेषामकल्पनीयमिति मावः ॥ ५३ ४९ ॥ एवं तावत् पूर्वेषां मध्यमानां च भणितम् । अथ मध्यमानां पश्चिमानां चामिषीयते---25

सच्ये समणा समणी, मिन्समगा चेव पव्छिमा चेव ।

मज्ज्ञिमग समण-समणी, पच्छिमगा समण-समणीतो ॥ ५३५० ॥ सर्वे श्रमणाः श्रमण्यो वा यदोहिश्यन्ते तदा सर्वेषामकरूप्यम् । "मज्झिमगा चेव" चि अथ मध्यमाः अमणाः अमण्यो वा उद्विष्टास्ततो मध्यमानां पश्चिमानां च सर्वेषामकल्प्यम् । ''पच्छिमा चेव'' ति पश्चिमानां श्रमण-श्रमणीनामुद्धिष्टे तेषां सर्वेषामकरूप्यम् , मध्यमानां ३० करूच्यम् । मध्यमश्रमणानास्तिष्टं मध्यमेसाध्यानां करुपते, मध्यमश्रमणीनास्तिष्टं मध्यमसाधनां करुपते । पश्चिमश्रमणानामुहिष्टे पश्चिमसाधु-साध्वीनां न करुपते, मध्यमानामुगयेनामपि कल्पते । एवं पश्चिमश्रमणीनामप्यदिष्टे वक्तव्यम् ॥ ५३५० ॥

उवस्सम् मणिय-विमाह्य, उज्जुम-जङ्गा य वंक-जङ्गा य । मज्जिमम उज्ज-पण्णा, पेच्छा सम्मायमाऽऽगमणं ॥ ५३५१ ॥

तत्र नटप्रेक्षणकदृष्टान्तं तावदाह-

नडपेच्छं दडूणं, अवस्स आलोषणा ण सा कप्पे । कउयादी सो पेच्छति. ण ते वि पुरिषाण तो सब्वे ॥ ५३५२ ॥

कश्चित् प्रथमतीर्थकरसाञ्चिभिक्षां पर्यटन् नटस्य 'प्रेक्षां' प्रेक्षणकं दृष्ट्या कियन्तमपि कारुमव-20 होक्य समागतः, स च ऋजुत्वेनावश्यमाचार्याणामाङोचयति, यथा—नटो नृत्यन् मया विको-कितः । आचार्येरुक्तम्—'सा' नटावजोकना साधूनां कर्तुं न करुपते । ततः 'यथाऽऽदिशनित भगवन्तस्यवैद्यं ह्यापियाय यूपीऽपि भिक्षामटन् कैपीकादिकमसी प्रेक्षते । क्योको नाम— वेषपरावर्तकारी नटविशोषः । आदिशब्दान् नर्तकीपभृतिपरिष्ठः । ततस्त्यैवाङोक्ति भावनित्य नित्रकृत्या । तस्त्येवाङोक्ति स्वयोकः, एव च 25 मया क्योको दृष्टः । पूष्टं यावन्यानं परिष्ठ्यटेन वचसा वार्यन्ते तावन्यानमेवैते वर्जयन्ति. न

'तेऽपि' क्योकादयो न करूपन्ते द्रष्टुं तदा सर्वानाप परिदरन्ति, अतः पूर्वेषां साधूनां सर्वेऽपि नदावयो न करूपन्ते द्रष्टुमिति मध्यममेबोपदेष्टन्तम् ॥ ५३५२ ॥ प्रमेव उम्ममादी, एकेक निवारि एतरे मिण्हे ।

पनः सामध्योंक्तमपरस्य ताइक्षस्य प्रतिषेधं प्रतिपद्यन्ते । यदा त भण्यते "न ते वि" वि

सब्वे वि व कप्पंति, ति वास्ति जिज्ञयं वजे ॥ ५३५३ ॥

१ °वां गणित-विमाजितानामेबाकरूयम् । तृतीय° कां ।। २ कां प्रती 'कयोक'स्थने सर्वत्रावि 'कासक' रति पाले वर्तते ॥

'एवमेव' नरमेक्षणोक्तेव प्रकारेण पूर्वतीर्धकरसाधुर्यदि एकैक्सुद्वमादिदोषं निवार्यते ततो स्मेवाथाकर्मादिकं दोषं निवारितस्तमेव वर्जयति 'इतरांखु' पूतिकर्म-कीतकृतादीन् गृहाति, न वर्जयतीत्यर्थः । यदा तु 'सर्वेऽपि' उद्गमदोषा न करुपन्ते इति वारितो भवति तदा सर्वानपि यावज्ञीवं वर्जयति ॥ ५३५३ ॥ अथ संज्ञातकागमनपदं व्याचष्टे—

सण्णायगा वि उज्जनमेण कस्स कत तुज्झमेयं ति । मम उदिद्र ण कप्पह, कीतं अण्णस्स वा पगरे ॥ ५३५४ ॥

प्रथमतीर्थकरतीर्थे यदा साधुः संज्ञातककुछं गच्छति तदा ते संज्ञातकाः किषिदाभकमीदिकं इत्या साधुना 'कस्यार्थाय युष्मामिरिदं इतस्ं हि ष्टष्टाः सन्त ऋयुक्ते कथयन्ति—
युष्मदर्थमेतद् इति । ततः साधुर्भणति—ममिद्धिमक्तं न कल्पते । एवसुकः स गृही क्रीत10कृतं अन्यद्वा दोषजातं कृत्या दयात्, 'उद्दिष्टमेवानुना प्रतिषिद्धं न क्रीतादिकम्' इति बुद्धा ।
अथवाऽन्यस्य साधोरर्थयाशाकर्म प्रकुर्योत्, 'ममोद्दिष्टं न कल्पते इति भणता तेनात्मन
एवाशाकर्म प्रतिषिद्धम् नान्येषार्' इति बुद्धा ॥ ५२५४ ॥

सञ्बजईण निसिद्धा, मा अणुमण्ण ति उग्ममा मे सि । इति कथिते पुरिमाणं, सब्वे सब्वेसि ण करेंति ॥ ५३५५ ॥

16 यदा तु तेवां गुहिणामंत्रऽभिश्रीयते—सर्वेऽप्युद्धमदीषाः सर्वेषां यतीनां 'निषिद्धाः' न कस्पन्ते, मा मृद् ''नो') अस्माकं ''सिं'' ति तेवां दोषाणां अनुमतिदोष इति कृत्वा । तत एवं कथिते सिति ते गृहिणः सर्वेषामपि साधूनां सर्वोनप्युद्धमदोषान् न कुर्वेन्ति । एवं पूरेंयां तीर्थे ये दानश्राद्धादय उद्धमदोषकारिणसेऽपि ऋजु-जडा इति भावः ॥ ५३५५ ॥

अब ऋजु-जडपदच्यारूयानमाह---

उज्जुचणं में आलोयणाएँ जङ्कचणं में जं भुजो । तज्जातिए ण याणति, गिही वि अन्नस्स अनं वा ॥ ५३५६ ॥

ऋजुत्वं ''से'' 'तस्य' प्रथमतीर्थंकरसाधोरेवं मस्तव्यम्—यद् एकान्तेऽप्यकृत्यं कृत्वा गुरूणामबदयमाक्षेत्रयति । यत् पुनर्भृयस्तव्यातीयान् दोषान् न जानाति न च वर्तयति तेन तस्य जदत्वं द्रष्टव्यम् । गृहिणोऽपि यद् एकस्य निवारितं तद् अन्यस्य निमित्तं कुर्वन्ति 'अन्यं 26 वा' क्रीतकृतादिकं दोषं कुर्वन्ति एतत् तेषां जदत्वम् । यत् तु प्रष्टाः सन्तः परिस्फुटं सद्भावं कृषयन्ति एतत् तेषां ऋजुत्वम् ॥ ५३५६ ॥ अय मध्यमानामृजुन्यज्ञतां सावयति—

उञ्जनणं सें आलीयणाऍ पण्णा उ सेसवञ्जणया । सण्णायमा वि दोसे, ण करॅतऽण्णे ण यऽण्णेसि ॥ ५३५७ ॥

'रहस्यिप यत् प्रतिसेवितं तद् अवश्यमाकोचयितव्यम्' इत्याकोचनया मध्यमतीर्भइरसाभू-30 नामृजुलं मन्तव्यम् , यत् पुनः शेषाणां—तज्जातीयानामधीनां स्वयमस्यूच ते वर्जनां कुर्वन्ति ततः प्रज्ञा तेषां प्रतिपत्तव्या । ते हि 'नटावकोकनं कर्तुं न करुपते' इत्युक्ताः प्राञ्जतया स्वचैतिस् परिभावयन्ति — यथा एतद् नटावकोकनं 'राग-श्रेषनिबन्धनत्य। परिहर्तव्यमेषः इति इत्वा परिह्रियते तथा क्योक-नर्तवयादिदर्शनमपि रागद्वेषनिबन्धनत्या परिहर्तव्यमेषः इति विचिन्त्य तथैव कुर्वन्ति ।

संज्ञातका अपि तेषाष् 'इदसुहिष्टमक्तं मम न करूपते' इत्युक्ताक्षिन्तयन्ति — मयैतत्यायं टोपो-ऽकरूपनीयखाषाऽन्येऽपि तज्जातीयाः सर्वेऽप्यकरूपनीयाः, यथा चैतस्य ते अकरूपनीयाखाया सर्वेषामपि साधुनां न करूपन्ते । एवं विचित्त्य 'अन्यात्' उद्गमदोषात् न कुर्वेन्ति, अन्येषां च साधुनां हेतोर्ने कुर्वेन्ति ॥ ५३५७ ॥ अथ वक्त-जडक्याख्यानमाह—

वंका उण साहंती, पुट्टा उमणंति उण्ड-कंटादी।

पाहुणम् सद्भु ऊसव, गिहिणो वि व वाउलंतेवं ॥ ५३५८ ॥

पश्चिमतीर्थकरसाथवो कात्वेन किमप्यकृत्यं प्रतिसेव्यापि 'न कथयन्ति' नालोचयन्ति, जडतया च जानन्तोऽजानन्तो वा मृयस्त्रेचेवापराधपदे पवर्तन्ते । नटावलोकनं कुर्बाणाश्च दृष्टास्त्रतो गुरुसिः पृष्टाः —िकिम्पर्ती वेलां स्थिताः ! । ततो भणन्ति — उण्णेनाभितापिता इक्षादिच्छायायां विश्रामं गृहीतवन्तः, कण्टको वा त्यम्र आसीत् स तत्र स्थितैरपनीतः, आदि-10 शब्दाद् सम्यदप्येवंवियमुत्तरं कुर्वन्तिति । गृहिणोऽपि आधाकमांदी कृते पृष्टा भणन्ति — माधुणका आगतासदर्थमितस्वयस्कृतात् , जसाकं वा ईदरो शास्योवत् से भकेऽस श्रद्धा सम्यवित, उत्सवो वा अवासुकोऽस्माकम् । एवं गृहिणोऽपि कक-जडतया साभूत् 'व्याकुळयन्ति' व्यानोहयन्ति, सद्वावं नास्त्र्यानीत्यर्थः । एतं न कारणेन चाद्ययीमिक-पश्चयामिकानामाधाकर्म- महण विरोणः कृत हित प्रकमः ॥ ५२५८॥ अथ द्वितीयपदमाह—

आयरिए अभिसेगे, भिक्सुम्मि गिलाणए य भयणा उ । तिक्सुत्तऽडिव पवेसे, चउपरियद्वे तओ गहणं ॥ ५३५९ ॥

आचार्या-ऽभिषेक-भिक्षणामेकतरः सर्वे वा ग्लागा अवेषुः तत्र सर्वेषामि योग्यप्रद्वमादिदोषग्रुद्धं महीतव्यम् । अरूभ्यमाने पद्मकपरिहाण्या यतित्वा चतुर्गुरुकं यदा प्राप्तं भवति
तदाऽऽधाकर्मणः 'भवना' सेवना भवति । अथवा भवना नाम-आचार्यव्याभिषेकस्य गीतार्थ-२०
भिक्षोश्च येन दोषेणाग्रुद्धमानीतं तत् परिस्फुटसेन कप्तन्ते । यः पुनरगीतार्थोऽपरिणामको वा
तस्य न निवेषते । अशिवादिभिर्वा कार्योरत्वीम्—अध्वानं प्रवेष्टुमभिरुषनित तत्र प्रयमसेव
ग्रुद्धोऽध्यकरुषः 'किक्कत्यः' जीत् वाराम् गवेष्यने, यदा न रूभ्यते तता चतुर्थे परिवर्ते पश्चकपरिहाण्या आधाकर्मिकस्य महणं करोति ॥ ५३५९ ॥ अध्वनिर्गतानां चार्य विधः—

चउरो चउत्थभत्ते, आयंबिल एगठाण पुरिमहुं । णिव्यीयग दायव्वं, सर्य च पुव्योग्गई कुझा ॥ ५३६० ॥

आचार्यः स्वयमेव चतुःकस्याणकं प्रायश्चित्तं गृह्वाति, तत्र नत्वारि चतुर्धमकानि चत्वार्या-चाम्कानि चत्वारि 'एकस्थानानि' एकाशनकानीत्वर्थः चत्वारि पूर्वोद्धानि चत्वारि निर्वृतिकानि (निर्विकृतिकानि) च भवन्ति । ततः शेषा अप्यपरिणामकमत्वयनिमित्तं चतुःकस्याणकं प्रतिपथन्ते । योऽपरिणामकस्तस्य पश्चकस्याणकं दातन्यम्, तत्र चतुर्धमकौदीनि प्रत्येकं 30 पञ्च पञ्च भवन्ति । स्वयं चाचार्यः पूर्वेमेव प्रायश्चित्तस्यानप्रहणं कुर्योद् येनं शेषाः सुत्वेनेव

१ वडी-सप्तम्योरर्षे प्रस्पेनदाद् आचा°कां०॥ २ °च्या चतुर्गुरुकं प्राप्तः सन् आधा°कां०॥ ३ °का-८ऽचास्कादीनि पर्योक्तानि पञ्च स्थानानि प्रवन्ति का०॥ ४ °न रीक्षाः स॰ का०॥

मितपचन्ते ॥ ५३६० ॥ आह—यत् पूर्वं प्रतिषिद्धं तत् किमेवं भूबोऽनुज्ञायते ! अनुज्ञातं चेत् ततः किमर्थं प्रायक्षिणं दीयते ! इस्याह—

> काल-सरीरावेक्खं, जगस्सभावं जिणा वियाणिता। तह तह दिसंति धम्मं, झिजति कम्मं जहा अखिलं॥ ५३६१॥

५ 'काल-शरीरापेक्षं' कालस्य शरीरस्य च यादशः परिणामो बळं वा तदनुरूपं जगतः — मनुष्यलोकस्य स्वभावं विज्ञाय 'जिनाः' तीर्थंकरास्त्रथा तथा विधि-प्रतिवेशकरण प्रकारेण धर्मसुपदिशन्ति यथा असिलमपि कर्म क्षीयते । यश्चानुज्ञातेऽपि प्रायक्षित्रदानं तद् अनवस्था-प्रमञ्जारणार्थम ॥ ५२६१ ॥

॥ कल्पस्थिता-ऽकल्पस्थितप्रकृतं समाप्तम् ॥

गणान्त रोपसम्पत्प्रकृतम्

सूत्रम्--

10

15

20

भिक्स् य गणाओ अवक्रम्म इच्छेजा अन्नं गणं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छिता आयरियं वा उवज्झायं वा पवित्तं वा थेरं वा गणिं वा गणहरं वा गणावच्छेहयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए; कप्पइ से आपुच्छिता आयरियं वा जाव गणावच्छेहयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए । ते य से वियरेजा एवं से कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए । ते य से वियरेजा एवं से कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए २०॥

एंनमभेतनमधि सूत्राष्ट्रकश्चचारणीयम् ॥ अथास्य सूत्रनवकस्यं कः सम्बन्धः ! इत्याह— कप्पातो न अकप्पं, होज अकप्पा न संकमो कप्पं । गणि गच्छे न तदुभए, चुतम्मि अह श्चत्तसंबंधो ॥ ५३६२ ॥

पूर्वत्वे कस्पस्थिता अकस्पस्थिताओकाः तियां च 'कस्पात्' स्थितकस्पाद् 'अकस्ये' अस्थितकस्पाद 'अकस्ये' अस्थितकस्पाद 'अकस्ये' अस्थितकस्पात् 'कस्ये' स्थितकस्पे सङ्गमणं

१ "एवं त्रीणि स्त्राणि उचारयितव्याले ॥ संबंधो—कप्पाती॰ गाहा।" हति सूर्णी । "एवं त्रिषि पुत्ताणि उचारेयव्याणि ॥ संबन्धः—कप्पती व॰ गाहा।" हति विशोषसूर्णी ॥ २ 'स्य सम्बन्धं वृश्येवति — कप्पातो सं०॥ ३ 'त्, यथा ऋषमस्वामितीर्याविजितनायतीर्थं सङ्कासतः, 'अकस्पा' को०॥

मवेत्, अषवा 'राणी' खाचार्य उपाध्यायो वा तस्य गच्छे सृत्रा-ऽर्थ-तदुभयस्मिर् 'च्युते' विस्छृते सति गच्छान्तरे सङ्क्षमणं भवेत् ं, अतस्तद्विधिरनेनाभिषीयते । एव स्तृत्रसम्बन्धः ॥ ५३६२ ॥

अनेत सम्बन्धेनाशातस्यास्यं ज्यास्त्रा—'भिक्षुः' सामान्यसाषुः चश्चस्दाद् निर्मन्यो च गणाद् 'अवकम्य' निर्गस्य 'इच्छेन्' अभिरुमेद्द अन्यं गणप्रुपसम्पद्य विहर्तुम् । नो ''से'' तस्य भिक्षोः करूपतेऽनाष्ट्रच्छ्याऽऽज्ञार्यं वा जपाय्यायं वा प्रवर्तकं वा स्ववितं वा गणिनं वा गणपरं व वा गणावच्छेदकं वा अन्यं गणप्रुपसम्पद्य विहर्तुम् । करूपते ''से'' तस्य भिक्षोराचार्यं वा यावकरणाद् उपाध्यायं वा प्रवितं वा स्ववितं वा गणिनं वा गणपरं वा गणावच्छेदकं वाऽऽष्टच्छान्यं गणप्रुपसम्पद्य विहर्तुम् । 'ते च' आचार्यादय आपृष्टाः सन्तरस्यान्यगणगमनं 'वितरेतुः' अनुजानीदुः तत एवं तस्य करूपते अन्य गणपुष्तसम्पद्य विहर्तुम् । ते च तस्य न वितरेतुः ततो नो कर्यते तस्यान्यं गणपुष्तसम्पद्य विहर्तुम् । ते च तस्य न वितरेतुः ततो नो कर्यते तस्यान्यं गणपुष्तसम्पद्य विहर्तुम् । ते च तस्य न वितरेतुः ततो नो कर्यते तस्यान्यं गणपुष्तसम्पद्य विहर्तुम् । ते च तस्य न वितरेतुः ततो नो कर्यते तस्यान्यं गणपुष्तसम्पद्य विहर्तुम् । ते च तस्य न

तिद्वाणे अवक्रमणं, णाणहा दंसणे चरिनहा । आपुन्छिऊण गर्मणं, मीतो त नियत्तते कोती १ ॥ ५३६३ ॥ चिंततो २ वहगादी ३, संखडि ४ पिसुमादि ५ अपडिसेहे य ६ । परिसिक्के सत्तमण् ७. गरुपेसविष्ण य ८ सुद्धे य ॥ ५३६४ ॥

स्मानं कारणिनित्यकोऽर्धः, ततिस्निभः स्वानीः—कारणिरिच्छाद् अपक्रमणं भवति — ज्ञानार्थे 18 दर्शनार्थं चारित्रार्थं च । अय निकारणमन्यं गणप्रप्तमन्ययो ततस्यद्वर्ग्धरकं आज्ञादयस्य दोषाः । कारणेऽपि यदि गुरुमनाष्ट्रच्छ्य गच्छति ततस्यद्वर्ग्धरकम्, तस्माद् आष्ट्रच्छ्य गन्त-व्यम् । तत्र ज्ञानार्थं तावद् अभिधीयते—यावद् आचार्यसकाशे श्रुतमस्ति तावद् अशेषमपि केनापि शिप्येणाधीतम्, अस्ति च तस्यापरस्वापि श्रुतस्य प्रहणे शक्तिस्तौऽधिकश्रुतप्रहणार्थ-माचार्यमाष्ट्रच्छति । आचार्येणापि स विसर्जयितव्यः । तस्वैवमाष्ट्रच्छत गच्छत इसेऽतिचारा २० भवन्ति ते परिहर्तव्याः। तत्र कश्चित् तेषाणाचार्याणां कर्कश्चवर्षो श्रुखा मीतः सन् निवर्तते १॥

तथा 'कि वजामि ! मा वा !' इति चिन्तयन् वजित २ । विजकायां वा मितवन्यं करोति, आदिशब्दाद् दानश्राद्धादिषु दीभौ गोचरवर्यों करोति, अमासं वा देशकार्छ प्रतीक्षते ३ । 'संस्वित्रे'' ित सङ्कुष्यां प्रतिकथ्यते ४ । ''सिद्युगाइ'' ित विशुक्त-मद्कुणादिभयाद् निवर्तते अन्यत्र वा गच्छे गच्छिति ५ । ''अपाडिसेह'' ित किथ्यदाचार्यस्तं परममेषाविनमन्यत्र 26 गच्छन्तं श्रुल्या परिस्कुटवच्या तं 'अपाडिसेह'' वि किथ्यदाचार्यस्तं न्यापारयित —तिसक्षागतं व्यापारयित —तिसक्षागतं व्यापारयित —तिसक्षागतं व्यापारयित —तिसक्षागतं व्यापारयित —तिसक्षायतं व्यापारयित चत्रतिक्षायातं व्यापारयित व्यापारयित चत्रतिक्षायात्रयातं व्यापारयित चत्रतिक्षायाः व्यापारयित व्यापारयित व्यापारयित चत्रतिक्षायाः व्यापारयित व्यापारयित व्यापारयित व्यापारयित व्यापारयित व्यापारयित व्यापारयित व्यापारयित विषयित व्यापारयित व्यापारयित विषयित विषयित्व विषयित विषयित्व वि

१ 'त्, वथा पार्थनाथतीर्थात् वर्धमानस्वामितीर्थं सङ्कामतः; अथवा कं०॥ २ 'त्, उपकक्षणमित्रम्, तेन भिक्षोरपूर्वेत्वार्थप्रदण्डेतुकमपि गणान्तरसङ्क्रमणं अवेतः, अत' कं०॥ ३ 'त्य सुजनवकस्य भण्यात् प्रथमसङ्ख्य तावव् व्याव्या कं०॥ ४ 'यणं, कितेर य निमातो कोची॥ ५२६१३ ॥ कोचो १ 'सितितो २ वष्ट्' साभ०॥

विए य' कि तत्र सम्प्राप्तो व्रवीति—ष्वहमाचार्वैः श्रुताध्ययनिमित्तं युष्मदन्तिके पेषितः ८। एतेषु भीतादिष्मष्टस्वपि पदेषु वध्यमाणनीत्या मायश्चित्तम् । यस्तु भीतादिदोषविमग्रकः समागतो व्रवीति—'अहमाचार्यविकार्वितो युष्मदन्तिके समायातः' इति सः 'शुद्धः' न प्राय-श्चित्तमाकु ॥ ५३६३ ॥ ५३६४ ॥ भीतादिपदेषु पायश्चित्तमाहः—

पणगं च भिण्णमासो, मासो लहुगो व संखडी गुरुगा ।
पिसुमादी मासलह, चउरो लहुगा अपिडसेहे ॥ ५३६५ ॥
परिसिक्षे चउलहुगा, गुरुपेसवियम्मि मासियं लहुगं ।
सेहेण समं गुरुगा, परिसिक्षे पविसमाणस्स ॥ ५३६६ ॥
पंडिसेहगस्स लहुगा, परिसिक्षे छ च चरिमओ सुद्दो ।
तेसिं पि होति गुरुगा, जं चाऽऽमब्बं ण तं लमती ॥ ५३६७॥।

भीतस्य निवर्तमानस्य पञ्चकम् । चिन्तयतो भिजमासः । व्रजिकादिषु प्रतिबच्यमानस्य मासरुषु । सङ्ग्रक्यां चतुर्गुरुकाः । पिशुकादिभयाजिवर्तमानस्य मासरुषु । अपतिषेषकस्य पार्थे निव्रतक्ष्रात्वारे रुषकाः ॥ ५३६५ ॥

पर्यद्वत आचार्यस्य सकारो तिष्ठतश्चातुरुंघुकाः । 'गुरुभिः प्रेषितोऽद्दम्' इति भणने रुपुगा-15 सिकम् । शैक्षण समं पर्यद्वतो गच्छे प्रविशतश्चातुर्गुरुकाः । गृहीतोषकरणस्य तत्र प्रविशत उपधिनिष्पन्नम् ॥ ५२६६ ॥

'प्रतिषेधकस्य' प्रतिषेषकस्य कृवैतक्षतुरुष्ठि । पर्षदं मोरूयतः षद् रुषुकाः । 'वरमः' भीतादिदोषरहितः स शुद्धः । 'तेषामि' प्रतिषेषकादीनामाचार्याणां तं स्वगच्छे प्रवेशयतां चत्वारो गुरुकाः । यद्य सचिषमचित्तं वा वाचनाचार्यस्यामाव्यं तत् ते किश्चिदिप न रूभन्ते, 20 यः पूर्वमिमधारितस्तस्येवाचार्यस्य तदामाज्यमिति भावः ॥ ५.२६७ ॥"

पूर्वमभिषारितस्तस्येवाचायस्य तदाभाव्यमिति भावः ॥ ५३६७ ॥ अथ भीतादिपदानां क्रमेण व्याख्यानसाह—

व भातादिष्दाना कमण व्याल्यानमाह—-संसाहगस्स सोउं, पडिपंथिगमादिगस्स वा भीओ । आयरणा तत्थ खरा. सयं व णाउं पडिणियत्तो ॥ ५३६८॥

संसाघको नाम-बोलापकः प्रष्ठतः कुतश्चिदागतो वा सायुष्तन्मुलेन श्वता, प्रतिपन्धिकः-26 सम्मुखीनः साच्वादिखदादेवी ग्रुलात् श्वत्वा, स्वयं वा 'ज्ञात्वा' स्मृत्वा । किष् ! इत्याह— 'आचरणा' चर्यो 'तत्र' तस्याचार्थस्य गच्छे 'स्वरा' कर्कज्ञा । एवं श्वत्वा ज्ञात्वा वा मीतः सन् यः प्रतिनिष्टुषत्तस्य पृष्ट्यकं भवतीति दोषः ॥ ५३६८ ॥ अथ चिन्तयन्निति पदं व्याचष्टे—

पुट्वं चितेयव्वं, णिगगतों चितेति किं णु हु करेमि । वश्वामि नियत्तामि व. तिर्हं व अण्णत्थ वा गच्छे ॥ ५३६९ ॥

(पूर्वमेन' यावन निर्मेन्यते ताविबन्तवितव्यम् । यस्तु निर्मेतविधन्तवि——विः करोमि ! क्रजामि निवर्ते वा !, यहा तत्र वाऽन्यत्र वा गच्छे गच्छामि ! इति, सः मासरुषु प्राविधितं १ 'यं गुरुपं ताला॰ ॥ २ अप्यडिसेपे छहुना ताला॰ ॥ ३ एतदनन्तरम् प्रस्थाप्रम्—३०००

इति कां • ॥ ४ ° अर्क प्रायक्रिक्तमिति प्रक्रमः ॥ ५३६८ ॥ व्याख्यातं भीतपद्म् । अथ कां • ॥

25

प्रामोति इति प्रकमः ॥ ५३६९ ॥ त्रजिका-सङ्घर्डोद्वारद्वयमाह---उन्वत्तरामप्पत्ते, लहुओ खुदुस्स क्षंत्रणे लहुगा ।

णीतह सुवर्णे रुहुओ, संसिंड गुरुगा य जं चडण्णं ॥ ५३७० ॥

मिजिकां शुला मागोद्धतिनं करोति जमाधां वा वेळां प्रतीक्षते छष्ट्रमासः । जब खदं-प्रमृतं तत्र मुक्के ततकादुर्छेषु । प्रतुरं शुन्वा अजीर्णभयेन 'निख्छं' पकामं खिपिति छष्टुमासः । ६ सङ्क्ष्णामपासकारं प्रतीक्षमाणस्य प्रमृतं गृहतो वा चतुर्पुरुकाः । ''जं चडकं' ति यख हरोन हस्तसङ्कर्म पादेन पादस्थाकमणं शीर्षेण शीर्षस्थाकुट्टनसित्थादिकमन्यदिष सङ्क्ष्ण्यां भवति तिरुप्यतं प्रायधितस् ॥ ५३०० ॥ अथ प्रतिथेषकद्वारमाह—

> अग्रुगत्य अप्रुमों वचित, मेहावी तस्स कड्डणद्दाए । पंथ ग्गामे व पहे, वसधीय व कोइ वावारे ॥ ५३७१ ॥ अभिलावसुद्ध पुच्छा, रोलेणं मा हु मे विणासेआ । इति कड्वंते लहुगा, जित सेहड्डा ततो गुरुगा ॥ ५३७२ ॥

कश्चिदाचार्यो विशुद्धस्त्रार्थः स्फुटविकटन्यज्ञनाभिलारी, तेन च खुतस् — अयुक्ताचार्या-न्तिकटमुको मेघाची साधुरकुकधुत्ताध्ययनार्थं नजति । तोऽसी 'मा मामतिकस्यान्यत्र गमद्' इति कृत्वा तस्याकर्षणार्थम् 'अथ' अनन्तरं शिष्यान् प्रतीच्छकां क्यापायति । कः !15 द्याह— "पंथ गामो व पहे" त्य यत्र पि आमे स मिक्षां करिष्यति, स्थेन व समेच्यति, येन वा पथा समागमिष्यति, यसां वा वसती स्थायति तेषु स्थानेषु गस्या यूप्यमिक्षप्रधुद्धं परिवर्त्तयन्तिस्त्रत्व। यदा स आगतो भवति तदा यदि असी पृच्छेत्—केन कारणेन यूप्यसिद्धा-गताः !; ततो भवद्विक्तक्यम् — असाकं वाचनाचार्या अभिजायगुद्धं पाठयन्ति, यदि अभिजायः कथिवदस्यथा क्रियते ततो महदर्गोतिकं ते कुवैन्ति, मणन्ति च—अत्रोपात्रये बहुनां रोले-20 माभकर्षणं कृतेत्रश्चर्त्वचुक्ताः । अथ तेन आगच्छता शैक्षः कोऽपि रूक्यः तदर्थम्—'पच वैश्वो मे सूयाद्' इति कृत्वा आकर्षति ततश्चर्गुरुकाः ॥ ५२७१ ॥ ५२७२। ॥ ५२०२।

पैवं बहिरावर्ज्य किं करोति ? अत आह— ⊳

अक्खर-वंजणसुद्धं, मं पुच्छह तम्मि आगए संते । घोसेहि य परिसुद्धं, पुच्छह णिउणे य सुत्तत्वे ॥ ५३७३ ॥

स आचारी: शिष्यान् मतीच्छकान् वा भणति—यदा वुष्माकमिम्लापशुद्धगुणनया रिक्षतः स उपाश्रयमागच्छिति तदा तिस्त्वागते अक्षर-व्यक्षनशुद्धं सूत्रं मां प्रच्छत । अक्षराणि मती-तानि, व्यक्षनशब्देन अर्थाभिव्यक्षकत्वाद् अत्र पदसुच्यते । तैरव्यरैव्यंक्षनैश्च शुद्धं तथा 'घोषेश्च' उदाचादिमिः परिशुद्धं सूत्रं पठनीयम्, निपुणीश्च सूत्राथीन् मां तदानीं प्रच्छत । ३० एवमनया भक्क्या तमन्यत्र गच्छे गच्छन्तं मितिषेधयति ॥ ५३७३॥

१ °व्यति, वाशान्त्वाद् यस्य प्रामस्य मध्येन कां०॥ २ ल ार्ष्ट एताविक्वान्तर्गतस्य वतार्ण कां० एव वर्तते ॥

20

गतं प्रतिषेधकद्वारम् । अथ परिसिछद्वारमाह---

पाउयमपाउया घट्ट महु लोय खुर विविधवेसहरा।

परिसिष्टस्स तु परिसा, थलिए व ण किंचि वारेति ॥ ५३७४ ॥

यः परिसिष्ठ आचार्यः स संविद्याया असंविद्यायाश्च पर्षदः सङ्गहं करोति, ततसस्य 5 साधवः केचित् माइताः, केचिदमाइताः, केचिद् 'षृष्टाः' फेनादिना घृष्टजङ्काः, केचिद् 'षृष्टाः' तैलेन मृष्टकेशा मृष्टशरीरा वा, अपरे लोचल्लाखिकेशाः, अन्ये क्षुरखुण्डिताः, प्वमादिविवि-धवेषपरा तस्यै पर्षत् । स्वली-देवद्रोणी तस्यामिवालो न किश्चिदपि वारयति ॥ ५३७४ ॥

तत्थ पवेसे लहुगा, सिचते चउगुरुं च आणादी ।

उवहीनिप्फणां पि य, अचित्तै चित्ते य गिण्हंते ॥ ५३७५ ॥

१० 'तत्र' पर्वद्वतो गच्छे प्रवेशं कुर्वतस्तस्य चतुर्छत् । अथ सचिचेन शैक्षेण सार्दै प्रविशति सतक्षतुर्पुरव आज्ञादयश्च दोषाः । अथाचिचेन वस्तादिना सह प्रविशति तत उपिनिष्पन्तर्म् । मिश्रे संयोगप्रायश्चित्त् । तथा सचिचा-ऽचित ददतो गृद्धतश्चैवमेव प्रायश्चित्तम् ॥ ५२७५ ॥ अथ्यपिगुकादिद्वारं गृरुपेषितद्वारं चाह—

दिकुण-पिसुगादि तहिं, सोतुं णाउं व सण्णिवत्तंते ।

अमुगसुतत्थनिमित्तं, तुज्झिम्म गुरूहिँ पेसविओ ॥ ५३७६ ॥

दिङ्कण-पिशुक-दंश-मशकादीन् शरीरोपद्रवकारिणस्त्रत्र श्रुत्या ज्ञात्या वा सन्त्रिवर्तमानस्य मासल्खु । (अन्थामम्—२००० । सर्वेग्रन्थामम्—२६८२५) तथा 'अमुकश्चतार्थनिमित्तं गुरुमिर्युज्यदन्तिके प्रेषितोऽह्म्' इति भणतो मासल्खु ॥ ५३७६ ॥

आह-एवं भणतः को नाम दोषः ! सरिराह-

आणाऍ जिमिंदाणं, ण हु बलियतरा उ आयरियआणा ।

जिणआणाएँ परिभवी, एवं गव्बी अविणतो य ॥ ५३७७ ॥

जिनेन्द्रेरेव भगवद्धरुक्तम्, यथा—निर्दोषे विधिना सूत्रार्थानिमित्तं यः समागतस्तस्य सूत्रार्थो दातव्यो । न च जिनेन्द्राणामाज्ञायाः सकाशादाचार्याणामाज्ञा वढीयस्ता । अपि च—'एवम्' आचार्यानुष्टमा श्रुते दीयमाने जिनाज्ञायाः परिभवो भवति, तथा भेषपत उप23 सम्प्रधमानस्य प्रतीच्छतश्च त्रयाणामपि गर्वो भवति, तीर्थकृतं श्रुतस्य चाविनयः कृतो भवति, ततः 'गुरुभिः भेषितोऽह्न्य' इति न वक्तव्यम् । यद्व भौतादिदोषविमञ्चकोऽभिधारिताचार्य-स्यान्तिके आयातः स गुद्धः ॥ ५३०० ॥ यस्तु प्रतिपेषकादौनां पार्थे तिष्ठति तत्र विधिमाह—
अस्रं अभिधारेतं, अप्पदिसेक परिसिक्षमन्तं वा ।

पविसंतें कुलादिगुरू, सिचनादी व से हार्ज ॥ ५३७८ ॥ ते दोऽववालभिना, अभिधारेअंतें देंति तं थेरा ।

१ °स्य शिष्यपर्पत्, किंबहुना? स्व^०को०॥ २ °वासी वस्तुभूतमबस्तुभूतं न कि॰ को०॥ ३ अवित्ते देति य गिण्हान्त तामा०॥ ४ °म्। अथ मिश्रेण सह प्रविशति ततो मिश्रे संयोगप्रायक्षित्तम्। तथा अवित्तं सवित्तं च दवतो गृहतस्तस्यावार्यस्य प्रवसेष को०॥

20

घडुण विचालणं ति य, पुच्छा विष्फालणेगद्वा ॥ ५३७९ ॥

यः पुनस्न्यमाचार्यमभिषार्थ अवितिषकं वा पर्यद्वन्तं वाऽन्यं वा प्रविवाति, तस्य पार्थे उपसम्पद्यत इत्यर्थः, तं यदि 'कुळादिगुरवः' कुळस्विरा गणस्विताः सङ्घस्यविरा वा जानी- युस्ततो यत् तेनाचित्तं समित्तं वा तस्याचार्यस्योगनीतं तत् तस्य सकाशाद् इत्वा तौ 'द्वाविर' आचार्य-प्रतीच्छको स्विता उपाडमन्ते—कस्माद् त्वया अयमास्यपार्थे स्वापितः ! कस्माद् वा वित्तमन्यभिष्ये अत्र स्वतः !; एवन् 'उपाडम्य' तं प्रतिच्छकं घट्टयित्वा 'तत् सचिचादिकं सेर्वमिधारितस्याचार्येस्य 'ददति' प्रयच्छन्ति, तदन्तिकं प्रेषयन्तीत्यर्थः। अथ घट्टयित्वीतं कोऽर्थः ! इत्याह—घट्टनित वा विचारणेति वा पृच्छेति वा विस्मान्तेति वा पृच्छोते वा विस्मान्तेति वा पृच्छोते वा विस्मान्तेति वा पृच्छोते

घट्टेंच सिंचनं, एसा आरोबणा उ अविहीते । बितियपदमसंविग्गे, जयणाएँ कयम्म तो सद्धो ॥ ५३८० ॥

तं प्रतीच्छकं 'बद्दिवला' 'कमिभावं भवार प्रस्थित आसीत्?' इति पृष्ट्रा सचिवादिकं तस्याभिधारितस्य पार्श्वे स्वविराः भेषयन्तीति गम्यते । ''एसा आरोबणा उ अविद्यीए'' चि या पूर्वे प्रतिचेषकस्यं पर्वम्मीकनं वा कुर्वेत आरोषणा भणिता सा अविधिनिष्पन्ना मन्तन्या । विधिना तु कारणे कुर्वाणस्य न प्रायक्षित्तम्, तथा बाह—''बिद्दयप्य'' इत्यादि, यमसाव-15 भिधारयति स आचार्योऽसंबिक्सत्यति द्वित्तपपदे यतन्या प्रतिचेषकस्यं कुर्योत् । का पुनर्यतना ! इति चेद् उच्यते—प्रथं साधुमिस्तं भाणयति—मा तत्र व्रज्ञ । पश्चात्तासम्ताऽपि भणेत्, पृत्योक्तेन वा विष्यादिक्यापारणप्रयोगेण वारयेत् । एवं यतन्या प्रतिचेषकस्यं कृतेऽपि 'ग्रुद्धः' निर्दोषः ॥ ५३८० ॥ असर्ववार्थमाह—

अभिधारेंतो पासत्थमादिणो तं च जित सुतं अत्थि । जे अ पडिसेहदोसा. ते कुन्वंतो वि णिहोसो ॥ ५३८१ ॥

यान् अभिधारयन्त्रसौ त्रजति ते आचार्याः पार्श्वस्थादिदोषदृष्टाः, यच ध्रुतमसावभिक्षति तद् यदि तस्य प्रतिधवन्यापार्याद्यस्तान् कुर्वन्ना 'दोषाः' शिष्यज्यापारणाद्यस्तान् कुर्वन्नाप निर्दोषस्ता मन्तन्यः ॥ ५३८१ ॥

जं पुण सिचत्ताती, तं तेसिं देति ण वि सयं गेण्हे । 25 वितियऽचित्त ण पेसे, जावहयं वा असंथरणे ॥ ५३८२ ॥

यत् पुनः सचिचादिकं प्रतीच्छकेनागच्छता उच्चं तत् 'तिषाम्' अभिधारिताचार्याणां ददाति न पुनः स्वयं गृह्णति । द्वितीयपदे यद् बस्णादिकमचिचं तद् अशिवादिभिः कारणैः स्वयमस्-भमानो न प्रेषयेदपि । अथवा याबदुष्युज्यते ताबद् गृहीत्वा रोषं तेषां समीपे प्रेषयेत् । असं-स्तरणे वा सर्वेमिण गृह्णीबात् । सचिचमप्यसुना कारणेन न प्रेषयेत् ॥ ५३८२ ॥ ७०

नाऊण य बोच्छेयं, पुष्वगए कालियाणुओगे य । सयमेव दिसावंधं, करेख तेसिं न पेसेखा ॥ ५३८३ ॥ यस्तेन श्रैक्ष आनीतः स परनमेशानी, तस्य च गच्छे नास्ति कोऽव्याचार्यपदयोग्यः, यख तस्य पूर्वगतं कालिकश्चतं वा समित तस्यापरो प्रद्यीता न प्राप्यते, ततस्ययोर्क्यच्छेदं झात्वा स्वयमेव तस्यासीयं दिग्रन्यं कुर्यात् , न 'तेषां' प्रागमिषारितानां पार्थे प्रेषयेत् ॥ ५३८३ ॥ अश्च पर्षद्वते। अपनावमाह —

असहातो परिसिक्षत्तर्ण पि कुजा उ मंद्धम्मेस् । पुष्प व काल-ऽद्वाणे. सिचाती वि गेण्डेजा ॥ ५३८४ ॥

'असहायः' एकाकी स आचार्यस्ततः संविद्यमसंविद्यं वा सहायं गृह्वीयात् । शिष्या वा मन्दभर्माणी गुरूणां व्यापारं न वहन्ति ततो यं वा तं वा सहायं गृह्वानः पर्यहृत्त्वमि कुर्यात् । श्राद्वा वा मन्दभर्माणी न वस्न-पात्रादि प्रयच्छन्ति ततो छिङ्गसम्पन्नं शिष्यं यं वा तं वा परि-10 गृह्वीयात् । दुर्मिक्षादिकं वा काख्मध्वानं वा प्राप्य ये उपब्रहकारिणः शिष्यास्तान् सङ्गृहीयात् । एवं पर्यद्वत्त्वं कुर्वेन् प्रतीच्छकस्य सच्चित्रादिकं तत्र प्रेपयेत्, पूर्वोक्तकारणे वा सङ्गाते खयमपि

गृहीयात् ॥ ५३८४ ॥ अथ योऽसौ मतीच्छको गच्छति तस्वापवादमाह— कालगयं सोऊणं, असिवादी तस्थ अंतरा वा वि ।

परिसेक्ष्य पडिसेहं, सुद्धो अण्णं व विसमाणो ॥ ५३८५ ॥

15 यमाचार्यमिमिधार्य त्रजति तं कारुगतं श्रुत्वा, यद्वा यत्र गन्तुकामसत्त अन्तरा वा अदि-वादीनि श्रुत्वा पर्षद्वतः प्रतिवेधकस्य वा अन्यस्य वा पार्धे प्रविशन् शुद्धः ॥ ५२८५ ॥

दतद् व्यविशोषितमुक्तम् । अथात्रैवाऽऽभाव्या-ऽनाभाव्यविशेषं विभणिषुराह—

वसंतो वि य दुविहो, वत्तमवत्तस्य मग्गणा होति।

वत्तिम खेत्तवज्ञं, अन्त्रतें अणिपओ जाव ॥ ५३८६ ॥

20 यः प्रतीच्छको ब्रजित सोऽपि च द्विविधः—व्यक्तोऽव्यक्तश्च । तथोः सहायः किं दातव्ये ! न वा ! इति मार्गणा कर्तव्या । तत्र व्यक्तस्य यः सचित्तादिखाभः 'क्षेत्रवर्जः' परक्षेत्रं मुक्तवा मबित स सर्वोऽप्यभिधारिताचार्थस्याभवित । यः पुनरव्यक्तः स सहायेर्योकद्वापि तस्याचार्य-स्मार्थितो न भवित तावत् परक्षेत्रं मुक्तवा यत् ते सहाया छभन्ते तत् पूर्वाचार्यस्वैवाभवित ईति सङ्गह्माथासमासार्थः ॥ ५३८६ ॥ अधैनामेव विवृणोति—

सुतअब्बत्तों अगीतो, बएण जो सोलसण्ह आरेणं । तब्बिबरीओ बत्तो. बत्तमबत्ते य चडमंगो ॥ ५३८७ ॥

अध्यक्तो द्विधा—श्रुतेन वयसा च । तत्र श्रुतेनाध्यकोऽगीतार्थः, वयसाऽब्यक्तसु बोड-श्रानां वर्षाणामशीम् वर्तमानः, तद्विपरीतो ध्यक्त उच्यते । अत्र च व्यक्तः-उद्यकास्यां चतुर्मक्षी भवति—श्रुतेनाप्यव्यको वयसाऽप्यव्यकः १ श्रुतेनाव्यको वयसा व्यक्तः २ श्रुतेन ४० व्यक्तो वयसाऽव्यक्तः ३ श्रुतेन व्यक्तो वयसाऽपि व्यक्तः ४ ॥ ५३८७ ॥

अस्य च सहायाः किं दीवन्ते ! उत न दीवन्ते ! इत्याह-

वत्तस्स वि दायन्त्रा, पहुष्पमाणा सहाय कियु इयरे।

25

भैवति॥ ५३८९॥

खेचविवजं अचंतिएसु जं रूब्मति पुरिश्वे॥ ५३८८ ॥

आवार्येण पूर्वमाणेषु साधुषु व्यक्तसापि सहाया दातव्याः किं पुतः 'इतरस' अव्यक्तस्य !, तस्य मुतरां दातव्या इति भावः । ते च सहाया द्विषा—आस्यन्तिका अन्तास्यन्तिकाश्य । आस्यन्तिका नाम—वे तेन सार्व तत्रैवासितुकामाः, ये द्व तं तत्र मुक्त्या प्रतिनिवर्तिष्यन्ते ते अनास्यन्तिकाः । तत्रास्यन्तिकेषु सहायेषु यद् व्यक्तः 'क्षेत्रविष्यं' परक्षेत्रं मुक्ता सविचादिकं 5 रूमते तत् ''पुरिक्षं" ति यस्याऽऽवार्यस्यामिमुलं क्रजति स पुरोवर्ती भण्यते, अभिवारित इस्वर्षः, तस्य सर्वमपि सविचादिकमामवित । परक्षेत्रं द्व रुव्वरं क्षेत्रकस्यामाम्यस् ॥५१८८॥

जह षेउं एतुमणा, जं ते मग्गिल्लें वित्त पुरिमस्सं । नियमऽन्वत्त सहाया, णेत णियत्तंति जं सो ये ॥ ५३८९ ॥

अथ ते सहायास्त्रं तत्र नीत्वा आगन्तुक्तमाः, अनात्यन्तिका इत्यथः, ततो यत् ते सहाया 10 लगन्ते तत् प्रवेमि "ममिष्ठं" वि यत्य सकाशात् प्रस्तिताः तत्यात्मीसस्याचार्यसागवति । "वि पुरिमस्त" वि यत् पुनः स व्यक्तः स्वयद्वत्पादयति तत् 'पुरिमस्त" अभिषारितसागवति । यः पुनःव्यक्तस्य नियमेनैव सहावा दीयन्ते, ते च सहाया यदि आत्यन्तिकास्या वद् असी ते च लगन्ते तद् अभिषारितसागव्यम् । अथ तं तत्र नीत्वा निवर्तन्ते ततो स्व् असी ते च लगन्ते तद् अभिषारितसागव्यम् । अथ तं तत्र नीत्वा निवर्तन्ते ततो स्व् असी ते च परक्षेत्रं गुक्तवा लगन्ते तत् सर्वं पूर्वाचांस्वामवति यावद् अषाऽप्यसी नार्वितो 18

वितियं अपहुचंते, न देख वा तस्स सो सहाए तु । वहगादिअपडिवज्झंतगस्स उवही विसुद्धो उ ॥ ५३९० ॥

द्वितीयपदमत्र भवति—अपूर्वमाणेषु साधुषु सहायान् साधून् तस्याचार्यो न दखादापि । स चाल्मना खुतेन वयसा च ब्यक्तः, तस्य च ब्रजिकादावपतिवध्यमानस्योपधिविशुद्धो भवति, 20 नोषद्रन्यते । अध ब्रजिकादिषु प्रतिवध्यते तत उपयेरूपयातो भवति ॥ ५३९० ॥

एगे तू वचंते, उग्गहवज्जं तु लभति सचित्तं । वचंत गिलाणे अंतरा तु तहिँ मम्मणा होइ ॥ ५३९१ ॥

यो व्यक्त एकाकी व्रवति स यदि अन्यव्याचार्यस्य योऽवबहरूद्धार्वितेऽनवबहस्नेत्रे यत् किश्चिद् रुमते तत् सचिचमिभार्यमाणस्याभवति । ''वचंत'' इत्यादि, योऽसी ज्ञानार्थं व्यक्ति स हो त्रीन् 25 बाऽऽचार्थान् कदाचिद् अभिचारवेत् 'तेषां मध्ये यो मे अभिरोचिष्यते तस्यान्तिके उपसप्यदं प्रहीच्यामि' इति द्वत्वा । स चान्तरा स्त्रानो जातः, तैश्चाचार्यैः श्रुतस्, यथा—अस्यानिभ-धार्य साधुरागच्छन् पत्रि म्हानो जात इति; तत्रेयमामान्या-आगत्वामार्यणा मस्ति ॥५३९१॥

१ °स्स । जे अर्थत सहाया, तथो निवसंति तामा ॥ १ वा का । का अती टीकाउपेत-त्याउद्यापेन, रसलां दिणमी १ ॥ १ °त्ते, लगुरुसमीपे मत्युकामा इत्यर्थः, ततो वद् असी बाहाम्यात् ते च का ४ ४ मवति । ततः परं यद्यापितस्त्यामान्यम् । परस्ते ते तु रूप्यं सर्वत्र अंत्रिकस्रोते ॥ ५३८९ ॥ अयवाऽत्रेव द्वितीयपदमाह—वितियं का ॥ ५ पर्याते ॥ ॥ ५३९० ॥ तत्य च सहायरहितस्य कत्रत नामान्या-उनामान्यविधिमाह—वर्गे का ॥

आयरिय दोण्णि आगत, एके एके वऽणागए गुरुगा । ण य लभती सम्बन्तं, कालगते विष्यरिणए वा ॥ ५३९२ ॥

यंदि ती द्वाविष आचार्यावागती ततो यत् तेन रूकं तद् उमयोरिष साधारणम् । अवैक-स्वारागतः 'एकक्ष' द्वितीयो नागतः ततोऽनागतस्य चतुर्गुरु, यच सचित्रमचितं वा तदसौ धन रूकं स्वते, यसं गवेषिवनुमागतस्तस्य सबैमामबित । एवं व्यादिसङ्ग्याकेष्याचार्येष्वभिषारितेषु भावनीयम् । अथासो रूगः कारूगतस्तराऽपि यो गवेषियतुमागच्छति तस्वैवामबित, नैतरे- वाम् । अथासो विश्वति विश्वति विश्वति विश्वति स्विवादिकमिषा-वेषाणे कर्ष्या विश्वति विश्वति विश्वति विश्वति स्वार्था । अथासो विश्वति विश्वति विश्वति विश्वति विश्वति स्वार्था । अथासो विश्वति विश्वति विश्वति विश्वति । विश्वति विश्वति स्वार्था । विश्वति विश्वति विश्वति । विश्वति विश्वति । विश्वति । विश्वति विश्वति । विश्वति ।

पंथ सहाय समत्थो, धम्मं सोऊण पन्वयामि ति ।

खेते य बाहि परिणयें. वाताहर्डे मग्गणा इणमी ॥ ५३९३ ॥

योऽसी ज्ञानार्थं प्रस्थितस्तस्य पथि गच्छतः कश्चित् मिथ्यादृष्टिः 'वाताहृतः' अ वैतिना-ऽऽहृत इव वाताहृतः, आकस्सिक हत्यर्थः, ⊳ समर्थः सहायो मिठितः, स च तस्य पार्थे धर्म धुत्वा 'प्रकामि' इति परिणामगुप्पतवान् । स च परिणामः साधुपरिगृहीते क्षेत्रे जातो 15 भवेत्, 'क्षेत्रात् वा चिंहः' इन्द्रस्यानादौ वा अपरिगृहीते वा क्षेत्रे, ततस्त्रत्र वाताहृते प्रविखिद्धं परिणते इयं मार्गणा भवति ॥ ५३९३ ॥

खेत्तम्मि खेत्तियस्सा, खेत्तवहिं परिणए पुरिष्ठस्स ।

अंतर परिणय विष्परिणए य णेगा उ मर्ग्गणता ॥ ५३९४ ॥

साबुपरिग्रहीते क्षेत्रे प्रनज्यापरिणतः क्षेत्रिकस्याभवति । क्षेत्राद् बहिः परिणतस्तु ''पुरि-20 इस्स'' चि तस्पैव सापोराभवति । अथान्तराऽन्तरा स प्रनज्यायां परिणतो विपरिणतश्च भवति ततः क्षेत्रेऽक्षेत्रे च धर्मकथिकस्य राग-द्वेषौ प्रतीत्यानेका मार्गणा । तव्यथा—व्यदि धर्मकथी ऋजुतया कथयति तदा क्षेत्रे परिणतः क्षेत्रिकस्याभवति, अक्षेत्रे परिणतो धर्मकथिकस्य । अथ विपरिणते गरोगण न कथ्यति, यदा क्षेत्राक्षिगतेते भविष्यति तदा कथ्यविष्यामि थेन मे आमवति । एवं क्षेत्रनिर्णतस्य कथिते यदि परिणतः तदा क्षेत्रिकस्याभवतीत्येवं 20 विभाषा कर्तव्या ॥ ५३९८ ॥

वीसञ्जियम्मि एवं, अविसञ्जिष् चउलहं च आणादी।

तेर्सि पि डुंति रुडुंगा, अविधि विद्या हमा होइ ॥ ५३९५ ॥ एवमेष विधिर्गुरुणा विसर्जिते शिष्ये मन्तन्यः । अद्याविसर्जितो गच्छति तदा शिष्यस्य प्रतीच्छकस्य च चतुर्ङेषु । अथ विसर्जितो क्षितीयं वारमगष्टच्छ्य गच्छति तदा मासरुषु ३० आज्ञादयस्य दोषाः । येषामणि समीपेऽसौ गच्छति तेषामध्यविधिनिर्गतं तं प्रतीच्छतां स्वन्ति

१ तस्य ग्लानीभूतस्य प्रतिचरणाय यदि कं ।। २ °स्तत्रापि हे ।। ३ व्ययाचैय विद्योगन्तरमाह इखनतरणं कं ।। ४ °णते, तहियं पुण मम्पाणा तामा ।। ५ ४ ⊳ एतद-नर्गतः पाठः कं • एवं वर्षति ।।

चत्वारो रुघवः, सचित्तादिकं चामार्व्यं न रुमन्ते । एषोऽविधिरुक्तः, विधिः पुनरयं वक्ष्य-माणो भवति ॥ ५३९५ ॥ स पुनराचार्यं पन्निः कारणैर्न विसर्जवति—

> परिवार-पूयहेर्ड, अविसर्जते ममसदोसा वा । अणुलोमेण गमेजा, दुक्खं खु विद्वंचिउं गुरुणो ॥ ५३९६ ॥

आत्मनः परिवारिनिमित्तं न विसर्जेयति, बहुमित्तीं परिवारितः पूजनीयो भविष्यामि, 'मम 5 शिष्योऽन्यस्य पार्थं गच्छति' इति ममत्वदोषाद्वा न विसर्जेयति, प्वमविसर्जयन्तं गुरुष् 'अनु-होन्ना' अनुक्कहैर्वेचोभिः 'गमयेत्' प्रज्ञापयेत् । कुतः शहर्त्वाह—'दुःखं' दुष्करं 'खुः' अवधारणे गुरूत् विमोक्तुम् , परमोपकारकारित्वाद् न ते यतस्ततो विमोक्तं शक्या इति भावः । ततः प्रथमत एव विधिना गुरूताष्ट्रच्छव गन्तव्यम् ॥ ५६९६ ॥

कः पुनर्विधिः ! इति चेद् उच्यते---

नाणिम तिण्णि पक्ता, आयरि-उज्झाय-सेसगाणं च । एकेक पंच दिवसे, अहवा पक्तेण एकेकं ॥ ५३९७ ॥

ज्ञानार्थं गच्छता ्र औषार्थोपाध्याय-शेषसाधूनां रू त्रीन् पक्षान् आष्टच्छा कर्तव्या । तत्र प्रथममाचार्थं पद्म दिवसानाष्ट्रच्छित्, यदि न विसर्जयित तत उपाध्यायं पद्म दिवसानाष्ट्रच्छित्, यदि सीऽपि न विसर्जयित तदा शेषाः साधवः पद्म दिवसान् प्रष्टव्याः, एप एकः पद्मो गतः; 15 ततो द्वितायं पक्षमेवमेवायार्थेपाध्याय-शेषसाधून् प्रत्येक्तमेककं पद्मितिदेवसैः प्रच्छितं; इती-यमि पक्षमेवमेव पुच्छितं, एवं त्रायः पद्मा भवन्ति । अथवा ्र पेक्षणैकैकं प्रच्छित् । विसर्क्त । विसर्क्त । विसर्वितः रूप्ति प्रस्ति । विसर्वितः पद्मित्रायार्थे एकं पक्षमामच्छिनीयः, तत उपाध्यायोऽप्येकं पक्षम्, एवं वा त्रयः पक्षाः । एवमिष यदि न विसर्वयन्ति ततोऽविसर्वित एवं गच्छिति ॥ ५३९७ ॥

एयविहिमागतं त्, पढिच्छ अपढिच्छणे भवे लहुगा । अहवा हमेहिँ आगर्ते. एगादि पडिच्छती गुरुगा ॥ ५३९८ ॥

अहवा इसाह आगत, एगादि पाडच्छता गुरुगा ॥ ५२९८ ॥ एतेन विधिना आगतं प्रतीच्छकं प्रतीच्छेत् । अप्रतीच्छतश्चुरुंधुका भवेषुः । अथामी-भिरेकादिभिः कारणरागतं प्रतीच्छति ततश्चुर्गुरुकाः ॥ ५३९८ ॥

तान्येव पकादीनि कारणान्याह---

एगे अपरिणते या, अप्पाहारे य घेरए । गिलाणे बहुरोगे य, मंदधम्मे य पाहुडे ॥ ५३९९ ॥

एकाकिनमाचार्यं मुत्तवा सं समागतः। अथवा तस्याचार्थस्य पार्थे ये तिष्ठन्ति ते 'अप्रि-णताः' आहार-बद्ध-पात्र-शय्वा-स्वण्डिङानामकस्पिकाः तैः सिहतमाचार्यं मुक्तवा आगतः। अथवा स आचार्यः 'अरुगाधारः' तमेव एष्ट्रा स्त्रा-ऽर्थवाचनां ददाति। स्वितरो वा स आचार्यः, 50 बह्वा तदीये गच्छे कोऽपि साधुः स्वविरस्तस्य स एव वैयान्नत्यकर्ता। स्कानो वा बहुरोगी वा स आचार्यः। 'स्वानः' अधुनोत्मकरोगः, 'बहुरोगी नामै' चिरकालं बहुभिवी रोगैरिमिमूतः।

१-२ · एतिवहान्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥ ३ °म' प्रभूतकाळरोगेण बहुसि' कां॰ ॥

अथवा शिष्यास्तरः मन्द्धर्माणस्तर्येव गुणेन सामाचारीमनुषास्ययितः । एवंविषमाचार्वे **परित्य-**ज्यागतः । "याहुदे" चि गुरुणा समं 'माभुतं' कलहं कृतवा समागतः; अथवा 'माभुतका-रिणः' जासङ्क्षदिकासस्य विज्यासत्येव गुणेन नासङ्कृडयन्ति ॥ ५३९९ ॥

एयारिसं विओसजा, विष्पवासी ण कष्पती ।

अथ 'ज्ञानार्थं त्रीन् पक्षानाप्रच्छनीयम्' (गा० ५३९७) इत्यत्रापवादमाह---

प्रतीच्छकं प्रतीच्छतश्चवर्रुष् ॥ ५४०० ॥

बिइयपद्मसंविग्गे, संविग्गे चेव कारणागाढे ।

नाऊण तस्सभावं, कप्पति गमणं अगापुच्छा ॥ ५४०१ ॥

हितीयपदमत्र भवति — आचार्यादिष्वसंविधीमृतेषु न पृच्छेदिष । संविधेष्विष वा किश्चि-दागार्ट-चारित्रविनाशनकारणं स्त्रीपमृतिकमात्मनः समुत्पन्नं ततोऽनाष्ट्रच्छयाऽपि गच्छति । तेषां बा-गुरूणां स्वमावं ज्ञात्वा-'नेते पृष्टाः सन्तः कथमपि विसर्जयन्ति' इति मत्वा अना-पृच्छवाषि गमनं करपते ॥ ५४०१ ॥ अथाविसर्जितेन न गन्तव्यमित्यपवदति—

अज्झयणं वोच्छिजति, तस्स य गहणिम्म अत्थि सामत्थं ।

ण वि वियरंति चिरेण वि, एतेणऽविसिक्तितो गच्छे ॥ ५४०२ ॥ किमप्यथ्ययनं व्यवच्छियते, तस्य च तद्वद्रणे सामध्येमित, न च गुरविधरेणापि 'वितर्तन्त' गन्तुमनुष्रानते, एतेन कारणेनाविसर्वितोऽपि गच्छेत् ॥ ५४०२ ॥

'अविधिना आगत आचार्येण न प्रतीच्छनीयः' इत्यस्मापनादमाह— नाऊण य नोच्छेदं, पुन्तमते कालियाणुओगे य ।

अविहि-अणापुच्छाऽऽगत, सुत्तत्थविजाणओ वाए ॥ ५४०३ ॥

पूर्वगते कालिकश्चते वा व्यवच्छेदं ज्ञात्या अविधिना—त्रिकारिद्रातिवन्येनागतमना-प्रच्छ्यागतं वा सूत्रार्थज्ञायको बाचयेत्, न कश्चिद्दोषः ॥ ५९०३ ॥ यस्तेन प्रतीच्छकेन ज्ञैक्षस्त्रस्मानिभारितस्मानामान्य भानीतः स न महीतव्यः' इत्यववदति—

णाऊण य बोच्छेदं, युव्बमते कालियाणुओंगे य ।

30 सुत्तरयजाणगस्सा, कारणजाते दिसावंघो ॥ ५४०४ ॥
पूर्वगते कालिकछते वा व्यवच्छेदं ज्ञाला सुत्रार्थज्ञावकेनं कारणजाते अनामान्यसाप
आस्मीयो दिग्कमः कर्तव्यः । शाह—क्रिमयेमतिनद्वो न वाच्यते १ उच्यते—अनिवदः

१ °न सूरिणा 'कारणजाते' पुषालम्बनेऽनामाव्यस्यापि शिष्यस्य आत्मी° को॰ ॥

सक्तेव कदासिद् गच्छेत् पूर्वाचार्वेण वा नीयेत, काळदोषेण वा ममत्वीमावमालम्ब्य वास-विष्यन्ति इति दिखन्योऽनुज्ञातः ॥ ५९०४ ॥ इदमेव सविशेषमाह—

ससहायअवरोणं, खेरो वि उवडियं तु सवित्रं । दलियं णाउं वंधति. उभयममत्तद्रया तं वा ॥ ५४०५ ॥

एवं शैक्षः प्रतीच्छको वा कारणे शिष्यतया निवद्धः सन् यदा निर्मातो भक्ति तदा---आयरिए कालगते, परियद्धः तं मणं च सो चेव !

चोएति य अपढंते, इमा उ तिहँ मुमाणा होइ ॥ ५४०६ ॥ अवार्ये कारुगते सति गच्छरा निबद्धाचार्यक च व्यवहारी अध्यते —स सबमेव तं १० गणं परिवर्तविति । स च गच्छो यदि श्रुतं न पठति ततस्तमपठन्तं नोदयति । वदि नोदिता अपि ते गच्छसाधवी न पठिन तत इयमामबद्धावहारमार्गणा मवति ॥ ५४०६ ॥

साहारणं तु पढमे, वितिए खित्तम्मि ततिय सुइ-दुक्खे । अणहिजंते सीसे. सेसे एकारस विभागा ॥ ५४०७ ॥

कालमतस्याचार्यस्य प्रथमे वर्षे सचिचाहिकं साधारणय्, यदती प्रतीच्छकाचार्य उत्सवस्यक्ति अ तत् तस्यैवाभवति यद् इतरे गच्छसाधव उत्पादयन्ति तत् तेषामेवाभवतीति भावः । द्वितीवे वर्षे यत् क्षेत्रोपसम्पन्नो लमते तत् तेऽपठन्तो लमन्ते । तृतीये वर्षे यत् सुस-दुःसोपसम्पन्नो लमते तत् ते लमन्ते । चतुर्षे वर्षे कालमतावार्यक्षित्र्या अन्योक्तमा न विश्विक्षमन्ते । शेषा सम-येऽभीयते तेशमधीयानानां वश्यमाणा एकादश विभागा स्वन्ति ॥ ५४०७ ॥

शिष्यः ष्ट्रञ्छति—क्षेत्रोपसम्पनः सुस-दुःसोपसम्पन्ने वा किं उमेते ! सूदिसह— खेत्तीवसंपयाए, वावीसं संयुवा य भित्ता य ।

सह-दुक्त विचवजा, चउत्थए नालबहाई ॥ ५४०८ ॥

क्षेत्रोपसम्पदा उपसम्पत्तः 'झर्निकातिष्' अकतर-परम्परावछीवद्वार् माता-पित्रादीन् जनात् स्थाते, 'संख्तानि व' पूर्व-क्ष्मात्वेत्तवसम्बद्धानि प्रयोत-बायुरादीनि 'विद्याणि व' सङ्कात-कादीनि स्मते, रद्याभाषितानि तु न स्मते । सुल-दुःलोपसम्पत्तत्तु एतस्नेव निकानकीनि १० स्मते । जदुर्वेत्तु—पञ्चविपोपसम्पत्तममाण्यात् सुद्रोणसम्पत्तः स केवक्कवेव द्वाविद्यतिना-स्मत्तानि रुपते, व्यवं च प्रश्क्षेनोक्तः । क्षेत्रोपसम्पत्त-पुलतुःक्षोणकानकवोर्येव् आमाध्यपुक्तं

१ "अते ! इसकि तावव् क्यं व जाबीयहे। ख्रिं सं० ह

तत् ते शिष्या अनुभीयाना द्वितीये तृतीये च वर्षे यथाकमं रूमन्ते, चतुर्थे वर्षे सर्वमप्या-चार्यस्याभवति न तेषास्य ॥ ५४०८ ॥

ये तु शिष्या अधीयते तेषां विधिरूच्यते—तस्य कालगतानार्यस्य न्दुर्विषो गणो भवेत्—शिष्याः शिष्यकाः प्रतीच्छकाः प्रतीच्छकाश्चेति । एतेषां पूर्वेहिष्ट-पश्चादुहिष्टयोः ४ पेतस्तरसङ्क्या एकादश गमा भवन्ति । पूर्वेहिष्टं नाम—यत् तेनानार्येण जीवता तेषां श्चतम्र-हिष्टम्, यत् पुनस्तेन प्रतीच्छकानार्येणोदिष्टं तत् पश्चाद्रहिष्टम् । तत्र विधिमाहः—

पुव्बुद्दिष्ठे तस्सा, पच्छुद्दिष्ठे पवाययंतस्स ।

संवच्छरम्मि पढमे. पहिच्छए जं त सचित्तं ॥ ५४०९ ॥

यद् आचार्येण जीवता प्रतीच्छकस्य पूचेशुद्धिं तदेव पठत् प्रथमे वर्षे यत् सन्तिचमचित्तं 10 वा स रुभते तत् 'तस्य' काळगताचार्यस्याभवति, एष एको विभागः । अथ पश्चादुद्धिः ततः प्रथमसंबस्तरे यत् सचितादिकं रुभते तत् सर्व 'प्रवाचयतः' प्रतीच्छकाचार्यस्याभवति, एष द्वितीयो विभागः ॥ ५४०९ ॥

पुन्वं पच्छुहिंद्दु, पिडच्छए जं तु होइ सिबर्च । संवच्छरम्मि बितिए, तं सन्वं पवाययंतस्स ॥ ५४१० ॥ १६ प्रतीच्छकः पूर्वोहिष्टं पश्चादुहिष्टं वा पठतु यत् तस्य सिवत्तादिकं तद् द्वितीये वर्षे सर्व-मिष प्रवाचयतो भवति, एष तृतीयो विभागः ॥ ५४१० ॥ अथं शिष्यस्याभिषीयते —

> पुरुवं पच्छिहिहे, सीसम्मि य जं तु होइ सिचत्तं । संवच्छरम्मि पढमे, के सन्वं गुरुस्स आभवइ ॥ ५४११ ॥

शिव्यस्य कालगताचार्येण वा उद्दिष्टं भवेत् प्रतीच्छकाचार्येण वा तदाऽसी पठन् यत् 20 सचितादिकं रूमते तत् सर्वे प्रथमे संवस्मरे 'गुरोः' कालगताचार्यस्थाभवति, एष चतुर्थो विभागः ॥ ५०११॥

> षुरुवुद्दिहं तस्सा, पच्छुदिहं पवाययंतस्स । संबच्छरम्मि बितिए, सीसम्मि उ जं तु सचित्तं ॥ ५४१२ ॥

शिष्यस्य पूर्वोद्दिष्टमचीयानस्य द्वितीये वर्षे सचिचादिकं कारुगताचार्यस्यामवति, पश्चमो 26 विमागः । पक्षाटुद्दिष्टं पठतः शिष्यस्य सचिचादिकं प्रवाचयत आमार्व्यं भवति, पष्टो विमागः ॥ ५४१२ ॥

पुर्वं पच्छुहिंद्वे, सीसम्मि य जं तु होइ सिचर्चं। संबच्छरम्मि ततिए. तं सच्वं पवाययंतस्य ॥ ५४१३ ॥

पूर्वोहिष्टं पश्चादुहिष्टं वा पठित शिष्ये सचित्तादिकं तृतीये वर्षे सर्वमापि प्रवाचयत आम-30 वति, ससमी विभागः ॥ ५९१३ ॥

पुज्युदिष्टे तस्सा, पञ्छिदिष्टे पनाययंतस्स । संवच्छरस्मि पढमे, सिस्सिणिए जं तु सिचर्च ॥ ५४१४ ॥ शिष्यिकायां पूर्वोदिष्टं पठन्त्यां सचिचादिकं 'तस्य' काळगताचार्यस्य प्रथमे वर्षे आभाज्यम्,

अष्टमो विभागः । पश्चादुिह्मधीयानायं प्रवाचयत आभाज्यम् , नवमो विभागः ॥ ५४१४ ॥ पुरुवं पञ्छुदिङ्के, सिस्सिणिए जंतु होह सिचर्त ।

संबच्छरम्मि बीए, तं सब्बं पवाययंतस्स ॥ ५४१५ ॥

पूर्वोहिष्टं पश्चातुद्दिष्टं वा पठन्त्यां शिष्यिकायां सिचतादिळाभो द्वितीये वर्षे मवाचयत आमवति, दशमो विभागः ॥ ५२१५ ॥

पुरुवं पच्छुिहिहे, पिंडिच्छिमा जं तु होति सिंबतं । संवच्छरम्मि पढमे, तं सन्वं पत्राययंतस्य ॥ ५४१६ ॥

पूर्वोहिष्टं पश्चातुहिष्टं चा पठन्त्यां प्रतीच्छिकायां प्रथम एव संवत्सरे सर्वेमणि प्रवाचयत आभवति, एव एकाद्शो विभागः॥ ५४१६॥ एव एक आदेश उक्तः। अथ द्वितीयमाह—

> संबच्छराइँ तिश्वि उ, सीसम्मि पढिच्छए उ तद्दिवसं । एवं कले गणे या. संबच्छर संघें छम्मासा ॥ ५४१७ ॥

पतीच्छकावार्धनोषां कुळसको गणमकः सङ्घसको वा भवेत्। तत्र यदि कुळसकः तदा त्रीन् संवस्मान् विष्याणां वाच्यमानानां सचिवादिकं न गृह्णाति, ये पुनः प्रतीच्छकान्मेषां वाच्यमानानां यसिकाव दिने आचार्यः कालगतसहिवसमेव गृह्णाति। एवमेककुळसक्के विधिरुक्तः। अथ चासी गणसक्तताः संवस्तरं शिष्याणां सचिवादिकं नापहरति। यस्तु 15 कुळसको गणसको गणमको वा न भवित स नियमात् सङ्घसकः, स च षण्मासान् शिष्याणां सचि-चादिकं न गृह्णाति। तेन च मतीच्छकाचार्येण तत्र गच्छे वर्षत्रयमवद्यं स्थातव्यम्, एरतः प्रतिरेख्छ। । ५४१०।

तत्थेव य निम्माए, अणिग्गए णिग्गए इमा मेरा । सकुले तिन्नि तियाई, गणे दुर्ग बच्छरं संघे ॥ ५४१८ ॥

सकुले तिचि तियाई, गणे दुर्ग वच्छारं संघे ॥ ५४१८ ॥

'तैनेव' मतीच्छकावार्थसमीप तिसन् अनिगेते यदि कोऽपि गच्छे निर्मातस्त्रदा सुन्दरम् ।
अध न निर्मातः स च वर्षत्रयात् पतो निर्गतः ते वा गच्छीयाः 'एय साम्यतमस्राकं सचिवादिकं हरति' इति कृत्वा ततो निर्मतास्त्र इयं 'मयोदा' मामाचारी—''सकुले' स्वकृते स्वकित्वकृत्य सम्वयं कृत्या कुरुस्य कुरुस्य त्रस्त्र वा उपतिष्ठःते, ततः कुलं तेषां
वाचनाचार्य ददाति वारकेण वा वाचयित । कियन्तं कालम् ! इत्याह—''तिकि तियाई'' ति कृत्र प्रवक्तिः स्वकित्त नव मवन्ति, ततो नव वर्षाणि वाचयतीरपुक्तं भवितः यदि एतावता निर्मातासदाः
सुन्दरम्, अधैकोऽपि न निर्मातस्तेतः 'कुलं सचिचादिकं एक्कति' इति कृत्वा गणप्रपतिष्ठन्ते,
गणोऽपि द्वे वर्षे पाठयति, न च सचिचादिकं हरतिः यवेवमप्यनिर्मातास्तः सक्कुपतिष्ठन्ते,
सक्किशि वाचनाचार्य ददाति, स च संवस्तरं पाठयतिः , पदं द्वादश वर्षाणि भवन्ति । यथेवर्षकोऽपि विमीतस्तदाः सुन्दरम्, अध न निर्मातस्तः पुनरिष कुलादिषु कुलादिस्विरेषु वा अठ
तेचेक कर्मणोपतिष्ठन्ते, ताचन्तमेव कालं कुलादीनि यधाकमं पाठयतिः, न च सचिचादिकं
इरित. एवरेतान्यपि द्वादश वर्षाणि भवन्ति । पर्वद्वादशस्त्र भ्रावितानि जाता वर्षणां चत-

१ एवमनेन विधिना 'तत्रैय' कां॰॥ २ 'स्ततो वर्षनवकादुर्भ 'कुलं कां॰॥

30

विंत्रतिः । यदि प्तावता कालेनेकोऽपि निर्मात्स्तदा विहरन्तु, अव न निर्मातस्त्रको प्रयोऽपि कुळ-गण-सङ्खेषु तथैवीपतिकृत्ते, तेऽपि तथैवं पाठवन्ति । एतास्यपि द्वादश वर्षाणि चतुर्विशत्या मील्यन्ते जाता पट्विंशत् । यथैवं पट्विंशता वैंपेरकोऽपि निर्मातस्त्रतो विहरन्तु ॥ ५४१८॥ अधैकोऽपि न निर्मातः, कृषत् ! इति चेद् उच्यते—

ओमादिकारणेहि व, दुम्मेहचेण वा न निम्माओ । काऊण कुलसमायं. कुल थेरे वा उबद्रंति ॥ ५५१९ ॥

अवमा-ऽशिवादिभिः कारणैरनवरतमपरापरमामेषु पर्यटतां दुर्मेशस्त्रया वा नैकोऽपि निर्मा-तस्त्रतः कुरुसमवायं कृरवा [कुरुं] कुरुख्विरान् वा सर्वेऽप्युपतिग्रन्ते ततसीरूपसम्पर्द माह-यितव्याः ॥ ५४१९ ॥ कुत्र पुराः ! इति नेद्र उच्यते—

> पन्वज्ञएगपिक्षय, उवसंपय पंचहा सए ठाणे । छत्तीसाऽतिकंते, उवसंपय पत्तवादाए ॥ ५४२० ॥

यः प्रकाशया एकपाक्षिकस्तस्य पार्श्वे उपसम्पदं तान् कुरुष्यविरा प्राह्येयुः । सा च उप-सम्पत् पद्यथा वस्यगाणनीत्या भवति । तस्यां चोपसम्पदि पद्मिश्रद्वर्षात्तकमे पातायां "सए ठाणि" चि विभक्तिस्वत्ययात् 'त्वकम्' आत्मीयं म्यानम् 'उपादाय' गृहीत्या तैरुपसम्पत्तव्यम् १४॥ ५४२० ॥ इदमेव भावयति—

> गुरुसन्त्रिलओ सन्द्रंतिओ व गुरुगुरु गुरुस्स वा णत् । अहवा कुलिचतो ऊ, पन्वजाएगपन्सीओ ॥ ५४२१ ॥

'गुरुसिन्मरुकः' गुरुणां सहाध्यायी पितृज्यसानीयः, 'सन्झिन्तिकः' आत्मनः सम्बन्धारी भातृस्थानीयः, 'गुरुगुरुः' पितामहस्थानीयो गुरुः, गुरोः सम्बन्धी 'नसा' पश्चिष्य आत्मनी २० भातृत्यस्थानीयः, एते प्रवत्यया एकपाक्षिका उच्यन्ते । अथवा 'कुरुसत्कः' समानकुरुोद्धवः सोऽपि प्रवज्यवैकपाक्षिकः । एतेषां समीपे यथाकमस्यपस्पत्तव्यस् ॥ ५७२२ ॥'

> पन्वजाऍ सुएण य, चडमंगुवसंपया कमेणं तु । पुन्वाहियवीसरिए, पढमासह ततियमंगे उ ॥ ५४२२ ॥

हहैकपाक्षिकः प्रवज्यया झतेन च भवति । तत्र प्रवायेकपाक्षिकोऽनानतसुक्तः, श्वतेकपा20 क्षिकः—येन सहैकवाचिनिकं त्रत्रम् । अत्र चतुर्भक्षी—प्रवाययेकपाक्षिकः श्वतेन च १ प्रवज्यथा न श्वतेन र श्वतेन न प्रवच्या ३ न प्रवच्या न श्वतेन ४ । एतेषु चाद्यान क्रयेणोप्रवस्यत् प्रतिपच्या । "पट्या" हत्यादि, प्रयमतः प्रथमभक्ते उपसम्पद्यसम्, तदसावे तृतीये
भक्ते । कुतः ! हत्याह— यतः पूर्वाचीतं श्वतं विस्तृतं सत् तेषु खुर्वनेवोज्ज्वाजयिद्धं श्वन्यते,
श्वतैकपाक्षिकत्यात् ॥ ५४२२ ॥ अथ पश्चविषाद्यसम्पदमाह—

सुब सुर-दुक्खे खेचे, मार्ग विणजीवसंपयाए य । वाबीस संश्व वयंस दिष्टमद्वे व सन्वे य ॥ ५४२३ ॥ श्वतोपंसम्पत् १ सुरू-दुःसोपसम्बत् २ स्नेतोपसम्पत् १ मार्गोपसम्पत् ४ विन्योपसम्पत् ५,

१ 'च द्वादश वर्षाणि पाड' कां० ॥ २ अप्रैच विशेषमाह इस्ट्रारणं कां० ॥

एवमेषा पश्चिषा उपसम्पत् । प्तायु पश्चलप्याभवव्यवहारमाइ—"कावीस" इत्यादि, श्वतोपसम्पदि द्वाविंग्रतिर्गोलकद्वानि रूम्यन्ते । तथाया—माता १ पिता २ श्राता ३ भगिनी १ पुत्रो ५ दृहिता ६, मातुर्मोता ७ मातुः पिता ८ मातुर्मोता ९ त्यातुर्भेगिनी १०, एवं पितुर्माता ११ पिता १२ श्राता १३ भगिनी १४, श्रातुः पुत्रो १५ दुहिता १६, भगिन्याः पुत्रः १७ पुत्रिका १८, पुत्रस्य पुत्रः १० पुत्रिका २०, दुहितुः पुत्रः २१ पुत्रिका २२ वेति । ह्यानि द्वाविंग्रतिरिष् श्रुतोपसम्पदं प्रतिपत्रसामवन्ति । द्वस्त-दुःसोपसम्पत्रसत्तु पत्रां द्वाविंग्रतिन सम्याध्य पूर्वसंस्तुत-प्रधारसंस्तुतान् प्रभीत-खगुरादीन् रूमते । क्षेत्रोपसम्पत्रसत्तु पतान् सर्वोत्ति। न्यस्याध्य स्त्रते । मार्गोपसम्पत्रसत्तु पतान् सर्वोत्ति। न्यस्याध्य स्त्रते । मार्गोपसम्पत्रस्य पतान् सर्वोत्ति। स्त्रते । मार्गोपसम्पत्रपत्र पतान् सर्वोत्ति। स्त्रते । वित्रयोपसम्पत्रस्य प्रतिपत्रसतु (सर्वोतिष्ठ) स्त्रते । वित्रयोपसम्पत्रस्य प्रतिपत्रसतु (सर्वोत्ति) ज्ञात-इष्टा-प्रदृष्टान् रूमते, नव-रम् —वित्याहस्य वित्यं प्रयक्षे ॥ ५४२३ ॥

आह — सार्थार्मेकवात्सरुपारावनार्वं सर्वेणापि सर्वस्य श्रुताध्यापनादि कर्तव्यं ततः किमर्थे प्रथमं प्रवज्या-कुळादिभिरासक्तरेषुपसम्पद्यते ? इत्याह — 20

सन्वस्स वि कायन्वं, निच्छयओ किं कुलं व अकुलं वा । कालसभावसमन्ते, गारव-लजाहिं काहिंति ॥ ५४२४ ॥

निश्चयतः सर्वेण सर्वेष्याप्यविद्रोषेण श्वतवाचनादिकमात्मनो विपुरुतरां निर्वरामभिरुपता कर्तव्यप्, किं कुरुमकुरुं वा इत्यादिविचारणया १; परं दृष्यमारुश्चणो यः कारुस्यस्य यः स्वभावः—अनुभावस्तेन 'आस्मीयोऽयम्' इत्यादिकं यद् ममत्तम्, यच्च गुर्वोदिविषयं गीरवं—26 बहुमानबुद्धिः, या च तदीया रुज्जा, एतैः श्रेरिताः सुस्त्रेनैव करिष्यन्तीति कृत्वा प्रथमं प्रवच्या-दिभिरासवातरेष्ट्रपसम्पद्यत इति ॥५२२॥ गतं ज्ञानार्थं गमनम् । अथ दर्शनार्थं गमनमाह—

कालिय पुन्वगए वा, णिम्माओ जति य अत्थि से सत्ती । दंसणदीवगहेउं, गुन्छह अहवा हमेहिं त ॥ ५४२५ ॥

कालिकश्चते पूर्वगते वा यद् वा यसित् काले श्चतं प्रवाति तसित् सूत्रेकार्थेन च यदा 30 निर्मातो भवति, यदि च तस्य भ्रदण-भारणशक्तिस्तयाविचा समस्ति तत्रो वर्शनदीपकानि— सम्यद्धर्शनोज्ज्वालनकारीणि यानि सम्मत्यादीनि शास्त्राणि तेषां हेतोरन्यं गणं गच्छति ॥ ५१२५ ॥ अथवा एभिः कारणैर्गच्छेन्—

भिक्खुगा जिह देसे, बोडिय-थलि-णिण्हएहिं संसम्मी । तेसि पणावणं असहमार्णे वीसञ्जिए गमणं ॥ ५४२६ ॥

यत्र देशे 'भिक्षुकाः' बौद्धा बोटिका वा निहवा वा बहबतेषां तत्र स्वस्ती तत्र ये आचार्याः स्वितातीः सार्द्धमाचार्याणां संसर्गः प्रीतिरित्ययैः; ते च भिक्षुकादयः स्वसिद्धान्तं प्रज्ञापयन्ति, ज्ञस चालार्थो ताहिष्णयेन तर्कप्रयापनीणतया वा तूरणीकत्तिवृद्धितं, तां च तदीयां प्रजापनाससह-मातः किस्त्र विनेयश्चित्तवरित—अन्यं गणं गरता दर्शनप्रभावकानि शास्त्राणि पटामि येना-मृत्न निरुत्तरात् करोगि । एवं विचित्त्य स तथेव गुरूताष्ट्रच्छ्य तीर्वशार्वते गच्छिति ॥ ५०१६ ॥ इदगेव भावपति—

लोए वि अ परिवादो, भिन्खुगमादी य गाढ चमहिति । विष्परिणमंति सेहा, ओमामिजंति सद्वा य ॥ ५४२७ ॥

मिक्षकादीनां स्वित् द्वान्तं शिर उद्धाव्य प्ररूपयतामपि यदा सूरयो न किमपि श्रृयते ततो होकेऽपि च परिवादो जातः—एते ओदनमुण्डा न किमपि जानते, अभी तु सौगताः सर्वम-बचुप्पन्ते । एवं ते मिक्षुकादयः परिवादं श्रुत्वा गादनरं नैनडाप्तनं नतद्वपित्, श्रेक्षाश्च विपरिणमन्ति, श्राद्धाश्च रक्तप्रदेगास्त्रपत्राज्यन्ते—एते श्रेतिमश्चने बटर्राहारोमणयश्चाङ्का-15 रिणः, यस्त्रित सामप्ये ततोऽस्माकसूत्तरं मध्यन्त । अथवा तः मिश्रुकादिभिः स्विक्ताया-माचार्थस्यापि वण्टको निवद्धो वर्तते, भाग इत्यर्थः ॥ ५९२ ०॥ ततः—

रमगिद्धो व थलीए, परतित्थियतज्ञणं असहमाणो । गमणं बहुस्सुतत्तं, आगमणं वादिपरिमा उ ॥ ५४२८ ॥

स आचार्यस्तस्यां स्विल्कायां 'रमगृद्धः' विषय-मधुगहारत्य्यः मामग्र्यं सत्यिप न किथि-20 दुनरं प्रयच्छिति । एवमादिकां परतीर्थिकतर्जनामसहमानः शिष्य आचार्यं विधिना पृष्टा 'निर्मतः' अन्यगणमान कृतवान्, तत्र च तर्कशाक्षाणि श्रुत्वा चहुश्चतस्वं तत्य सङ्गज्ञे, ततो भूयः सगच्छे आगमनम्, आगतेन च पृर्वमाचार्य दृष्टव्याः, ततोऽन्यस्यां वसतो स्वित्वा या तत्र वाद्मभिक्तिश्चल पर्यत् तां परिचितां कृत्वा राजो महाजनस्य च पुरतः परतीर्थिकान् निष्पिष्टमक्षव्याकरणान् करोति ॥ पश्चर ट ॥'

वायपरायणक्कविया, जित पिडसेहंति साहु लट्टं च । अह चिरणुगओ अम्हं, मा से पवत्तं परिहवेह ॥ ५४२९ ॥

बादे पराजयेन कृषिताः सन्तो यदि ते भिक्षुकादय आचार्यस्य तं वण्टं प्रतिवेधयन्ति ततः 'साधु' सुन्दरं 'रुष्टं च' अमीष्टं जातमिति । अथ तत्र कोऽषि सूचात् —पतस्य को दोषः ! चिरमनुगत एषोऽस्माकम्, मा पूर्वमृष्ट्चं दातस्यमस्य परिहापयत ॥ ५४२९ ॥

30 ततः को विधिः ! इत्याह—

काऊण य प्पणामं, छेदसुतस्सा दलाह पडिपुच्छं। अण्णत्य बसहि जग्गण, तेसिं च णिवेदणं काउं॥ ५४३०॥ गुरोः पदकमरूस प्रणामं कृत्वा वक्तव्यम् — छेदश्चतस्य प्रतिष्ठच्छां मम प्रयच्छत । अत्र वागीतार्थाः श्रूष्यत्ति ततोऽन्यस्यां वसतो गच्छावः । पवसुकोऽपि यदि तस्या वसतेने निर्म-च्छिति तत्राख्यानिकादिकथापनेन चिरं रात्रौ गुरवो जागरणं कारापणीयाः, 'तेषां च' अगी-तार्थानाम् 'वयमाचार्यमेवं नेप्यामः, भवद्विकारो न कर्तव्यः' इति निवेदनं कृत्वा गन्तव्यम् ॥ ५४३० ॥ इतमेव व्याचष्टे —

सहं च हेतुसत्थं, अहिजओ छेदसुत्त णहं मे ।

एत्थ य मा असुतत्था, सुणिज तो अण्णहि वसिमो ॥ ५४३१ ॥

'शब्दशीसम्' ऐन्द्रादिकं 'हेतुशांकं' सम्मत्यादिकम् एवमादिकं शास्त्रमधीयानस्य 'छेदस्कं' निज्ञीधादिकं स्वतीऽर्धवन्तदुमयती वा मम नष्टं तस्य प्रतिषुच्छां मे प्रयच्छत । 'अत्र च' वसती 'अञ्चतार्थाः' शैक्षा खपरिणामका वा मा श्रृणुयुः, ततोऽन्यस्यां वसती वसामः । 11) एवमन्यव्ययदेशेन निष्काशयति ॥ ५४२१ ॥

अथ तस्या वसतेः क्षेत्राद्वा निर्गन्तुं नेच्छति ततोऽयं विधिः---

खित्ताऽऽरिक्खिणिवेयण, इयरे पुन्वं तु गाहिया समणा। जग्गविओ सो अ चिरं, जह णिजंतो ण चेतेती ॥ ५४३२ ॥

आरक्षिकः' दाण्डपाशिकसास्य निवेदनं कियते—"स्तिष्ठ" ति अस्पाकं क्षिप्तिष्ठिः साधुः 10 समस्ति तं वयस्थरात्रे वैद्यसकाशं नेप्यामः, स यदि नीयमानः 'हिषेठहं हिषेठहम्' इत्यारटेत् ततो युष्माभिनं किमि भणनीयम् । 'इतरे' अगीतार्थाः अमणाः पूर्वमेव माहिताः कर्तेच्याः—वयमाचार्यमेवं नेप्यामः, मा बोलं कुरुष्यम् । स चाचार्यश्चिरमारुयायिकाः कथापयित्वा जागरितः सन् यदा निभेरं सुप्तो भवति तदा नीयते यथा नीयमानो न किश्चित् चेतयति ॥ ५४३२ ॥

निण्हयसंसम्मीए, बहुसी भण्णंतुवेह सी कुणइ।

तुह कि ति वस परिणम्, गता-ऽऽगते णीणियो विहिणा ॥ ५४३३॥ अथ तिह्वानां संसम्बंऽऽचायों न निर्णेच्छति, बहुत्रो भण्यमानोऽप्युपेक्षां कुरुते, अथवा ब्रूयान—थवहं निह्वसंसर्गं करोसि ततो भवतः कि दुःखयति ! ब्रज त्वं यत्र यन्तव्यम् । एवं परिणामं गुरूणां ज्ञात्वा शिष्येण 'गता-ऽऽगतेन' अन्यं गणं गत्वा शाह्याण्यपीत्व सूय आगतेन तिह्वान् पराजित्याचार्यः 'विधिना' अनन्तरोक्तेन निष्काशितः कर्तव्यः ॥५४३३॥ ३ऽ

एसा विही विसज्जिएं, अविसज्जिएं रुहुन दोस आणादी। तेसिं पि इंति रुहुना, अविहि विही सा हमा होह॥ ५४३४॥

पष विधितुंरुण। विसर्जिते शिष्ये मन्तस्यः । अविसर्जितस्य तु गच्छतस्युरुषु दोषाध्या-ज्ञादयः। 'तेषामपि' मतीच्छतां चतुरुषुकाः। एपोऽविधिरुकोऽतो विधिना गन्तस्यम्॥५६३॥ स चार्य विधिमेवति—

> दंसणनिते पक्खो, आयरि-उज्झाय-सेसगाणं च । एकेक पंच दिवसे, अहवा पक्खेण सन्वे वि ॥ ५४३५ ॥

१ °शास्त्रं च' पेन्द्रादिकं व्याकरणं 'हेतुशास्त्रं' सम्मत्यादिकं प्रमाणशास्त्रमधी° कं ।।

दर्शनमभावकाणां शासाणामर्थाय निर्मच्छत एकं पक्षमाचार्योपध्याय-देषसाधूनां आप-च्छनकालो अवति । तथया—आचार्यः पञ्च दिक्तानाष्ट्रच्छाते, यदि न विसर्वयति तत उप-ज्यायोऽपि पञ्च दिवसान्, रोषसाधयोऽपि पञ्च दिवसान् । अथवा पक्षेण सर्वेऽपि ष्टच्छान्ते । किन्तुकं मवति !—दिने दिने सर्वेऽपि ष्टच्छान्ते यावत् पक्षः पूर्णं इति ॥ ५४३५ ॥

एतविहिआगतं तू., पिडच्छ अपिडच्छणे मने छहुगा । अहवा हमेहिं आगत, एगागि(दि) पिडच्छणे गुरुगा ॥ ५४३६ ॥ एगे अपिएए या, अप्पाहारे य थेरए । गिलाणे बहुरोगी य, मंदघरमे य पाहुडे ॥ ५४३७ ॥ एतारिसं विजोसज्ज, विप्यवासो न कप्पर्ह ॥ ५४३८ ॥ सीस-पिडच्छा-ऽऽपरिए, पायच्छिजं विहिजई ॥ ५४३८ ॥ विह्यपदमसंविग्गे, संविग्गे चेव कारणागाढे । नाऊण तस्समावं, होह उ गमणं अणापुच्छा ॥ ५४३९ ॥

गाधाचतुष्टयमेपि गतार्थस् (गा० ५३९८-५४०१) ॥ ५४३६ ॥ ५४३७ ॥ ॥ ५४३८ ॥ ५४३९ ॥ गतं दर्जनार्थं गमनस् । अथ चारित्रार्थमाह—

॥ ५४३८ ॥ ५४३९ ॥ गर्त दर्शनाथै गमनम् । अथ चारित्राथेमाह—— 15 चरित्तद्व देसे दुविहा, एसणदोसा य इत्थिदोसा य ।

गच्छिमिय सीर्यते, आयससुत्येहिं दोसेहिं॥ ५४४०॥ चारित्रार्थं गमनं द्विया—देशदोवैरात्मसमुत्यदोवैधः। देशदोवा द्विवियाः—एषणादोषाः स्रोदोषाधः। आत्मसमुत्या अपि द्विया—गुरुदोषा गच्छरोषाध्यं। तत्र गच्छो यदि 'आत्मस-मुत्येः' वक्रवाल्सामावारीवितयकरणलक्षणेदोवैः सीदेत् तत्र पक्षमापुच्छत्रास्ते, तत उर्ध्वं २० गच्छीतः॥ ५४४०॥ इदमेव व्याचष्टे—

जहियं एसणदोसा, पुरकम्माई ण तत्थ गंतव्वं ।

उदगपउरो व देसो, जहिं व चरिनाइसंकिष्णो ॥ ५४४१ ॥ यत्र देशे पुरःकर्मादय एषणादोषा भवेषुः तत्र न गन्तन्त्रयम् । यो वा उदकप्रचुरो देशः सिन्धुविषयवद् यो वा चरिकादिभिः—परिमाजिका-कापालिकी-तचनिकादिभिर्वदुमोहाभिरा-28 कीणों विषयस्तत्रापि न गन्तन्यम् ॥५४२१॥ अथाशिबादिभिः कारणैस्तत्र गता भवेषुस्ततः—

असिवाईहिं गता पुण, तकअसमाणिया तओ णिति ।

आयरियमर्णिते पुण, आपुष्टिङ अप्यणा णिति ॥ ५४४२ ॥ अक्षिव-दुर्भिश्व-परनकादिमिः कारणेखन्न गता अपि "तकज्ञसमणिय" वि प्राकृते पूर्वापर-निपातस्थातम्रत्यात् समापिततत्कार्याः, संयमक्षेत्रे यदाऽशिवादीनि स्किटिज्ञानि मकन्तीति भावः,

१ भिष ज्ञानद्वारे व्यास्थातार्श्वमिति नेह भूषो व्यास्थायते ॥५४३६-३८-३८-३८-४८॥ गतं वं। । २ व्या । गुरुरोपाः-गुरोक्कारिक शिक्ष ठीमकाविकस्थान्, गच्छरोपाः-गच्छस्य मनसीसकाविकस्याः । तक गच्छो वं। ॥३ व्यक्ति । गुरोस्य सीहतो विशिष्टकिमियास्यतं ॥५४८॥ इतः वं। ॥

20

30

तदा 'तता' असंयमक्षेत्राद् 'निर्यन्ति' निर्गच्छन्ति । यद्याचार्थाः केनापि प्रतिवन्त्रेन सीदन्तो न निर्गच्छेयुः ततो ये एको द्वौ बहवोऽसीदन्तत्ते गुरुमाष्ट्रच्छय आस्पना निर्गच्छन्ति ॥५४४२॥ तत्र चार्य विषिः—-

दो मार्से एसणाए, इत्थि वजेज अह दिवसाई।

गच्छिम्म होइ पक्लो, आयसग्रत्थेगदिवसं तु ॥ ५४४३ ॥

एपणायामशुष्यमानायां यतनयाऽनेषणीयमपि गृहन् ही मासी गुरुमाष्ट्रच्छन् मतीक्षते । अथ श्ली—शस्यातरीमभृतिका उपसर्गयति आत्मनश्च हटं वित्तं ततीऽष्टी दिवसान् गुरुमाष्ट्रच्छ्य ततस्तत् क्षेत्रं वर्जयेत् । यत्र च गच्छः सीदिति तत्र पक्षमाष्ट्रच्छ्य गन्तव्यम् । अथ श्लियां स्वयमच्युपपनस्तत् ईट्हो आत्मसमुखे आगाडदोषे एकदिवसमाष्ट्रच्छ्य गच्छिते ॥ ५४९३ ॥'

सेजायरिमाइ सएउम्रए व आउत्थ दोस उमए वा । आपच्छइ समिद्रियं, सण्णाइगतं व तत्तो उ ॥ ५८४४ ॥

अथासना शस्यातथाँदी स्त्रियां 'फिझकायां वा' प्रातिवेशिमक्यीमतीवाध्युपपन्नः, 'उभयं वा' परस्परमध्युपपन्नं तती यद्याचार्यः सिन्निहेतसदा तमाधुच्छ्य गच्छति । स्रथासन्निहितः संज्ञाभूरयादौ गत आचार्यस्तदा तत एवानाधुच्छया गच्छति, अपरं वा सन्निहितसाधुं भणति — मम वचनेन गुरूणामाप्रच्छनं तिचेदनीयस् ॥ ५४४४॥ ॥

एयविहिमागयं त्, पडिच्छ अपडिच्छणे भने लहुगा । अहवा हमेहिं आगय, एगागि(दि) पडिच्छणे गुरुगा ॥ ५४४५ ॥ एगे अपरिणए या, अप्पाहारे य थेरए । गिलाणे बहुरोगी ग, मंदमस्मे य पाहुडे ॥ ५४४६ ॥ एयारिसं विओतस्त, विप्यवासो ण कप्पई ॥ स्विभन्न स्वाप्यक्रित विओतस्त, विष्यवासो ण कप्पई ॥ स्विभन्न स्वाप्यक्र ॥ ५४४७ ॥ सीम-पडिच्डा-ऽऽयरिए, पायन्छिनं विदिक्तई ॥ ५४४७ ॥

गाधात्रयसि गतार्थम् (गा० ५३९८-५४००) ॥ ५४४५ ॥ ५४४६ ॥ ५४४७ ॥ भवेत् कारणं येन न पृच्छेत्---

> विइयपदमसंविग्गे, संविग्गे चेव कारणागाढे । नाऊण तस्स भावं, अप्पर्णो भावं अणापुच्छा ॥ ५४४८ ॥

नाजण परस नाव, अपणा नाव अणापुरुका ॥ ५८४८ ॥ दित्रीयपदमनोच्यते—आचार्यदिरसंविम्रो मवेत्, स्वथ्व संविम्नः परम् अहिदद्यादिक-मागाटकारणपवकन्वय न प्रच्छेत्, 'तस्य वा' गुरोः 'भावं' 'धुचिर्षणापि न विसर्वयति' इति कक्षणं जात्वा, आत्मीयं च 'भावप्' 'अह्नसिह तिष्ठलवस्य विनन्यामि' इति ज्ञात्वाऽनाप्रच्छया-ऽपि न्नेनत् ॥ ५४४८ ॥ अस्य गुरोः चारिने सीदतो विभिमाह —

> सेजायरकप्पद्वी, चरित्तठवणाएँ अभिगया खरिया । सारूविओ गिहत्यो, सो वि उवाएण हायब्वो ॥ ५४४९ ॥

१ इदमेबान्स्यपर्व आवयति इत्वन्तरणं को ॥ २ °क्ष्वामात्मसमुत्रधदोषवान् जातः, स्वयमेव तस्यामञ्जुरपन्न इत्यर्थः, 'डमवं' को ॥ १९ १८२

20

25

श्रव्यातस्य कैल्पसिकायां आचार्येण चारित्रस्य स्थापना कृता, तां प्रतिसेवैत इति भावः, तस्यां चारित्रस्यापनायां आतायाम्, द्यक्षरिका वा काचिद् 'अभिगता' जीवाधियागोपेता स्राविकेत्यर्थः तास्यामाचार्येऽध्युपकाः, स च चारित्रवर्षिते। वेषधारी भवेत्, साक्तिषको वा गृहस्यो वा उपरुक्षणत्वात् सिद्धपुत्रको वा । तत्र प्रणिडतिशराः शुक्रवातःपरिचायी कष्टामने । प्रानोऽप्रायेको भिक्षां द्विण्डमानः सास्त्रिक उच्यते । यस्तु सुण्डः सिश्चाको वा समार्थकः स सिद्धपुत्रकः । एवमेणामन्यतर उपायेन हर्तव्यः । कथम् १ इति चेत् उच्यते—पूर्वं ताव्यु सुर्वो भण्यन्ते—वयं युप्पद्विरहिता अनाथा अतः प्रसीद गच्छामोऽपरं क्षेत्रम् । एवसुके यदि नेच्छन्ति ततो यस्यां स प्रतिबद्धः सा प्रज्ञाप्यते—एव बहुनां साधूनामाथारः, एतेन विना गच्छस्य ज्ञानादीनां परिहाणिः, अतो मा नरकादिकं संसारमायनो वर्षय । यदि सा 10स्थिता ततः युन्दरम् । अथ न तिष्ठति ततो विद्या-मन्नादिभिरावर्त्यते । तदमावे केवियकः ॥१९४८।। सत्रय—

गणावच्छेइए य गणादवक्कम्म इच्छेजा अवर्ण गणं उवसंपिजनाणं विहरित्तप्, कप्पति गणावच्छेइयस्स गणावच्छेइयनं णिक्खिवित्ता अवर्ण गणं उवसंप-जित्ताणं विहरित्तप्। णो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव अन्नं गणं उपसंपिजित्ताणं विह-रित्तप्; कप्पइ से आउच्छित्ता आयरियं वा जाव विहरित्तप्। ते य से वितरंति एवं से कप्पइ जाव विहरित्तप्; ते य से णो वितरंति एवं से णो कप्पइ जाव विहरित्तप् २१ ॥

आयरिय-उनज्झाए य गणाओ अवक्रम्म इच्छेजा अझं गणं उनसंपजित्ताणं निहरित्तए, कप्पर्ट् आय-रिय-उनज्झायस्स आयरिय-उनज्झायत्तं णिक्षित्वित्ता अणणं गणं उनसंपजित्ताणं निहरित्तए। णो से कप्पर्ट् अणापुच्छित्ता आयरियं ना जान अझं गणं उनसं-पजित्ताणं निहरित्तए; कप्पति से आपुच्छिता जान

१ 'कस्पस्थिकायां' दुष्टितरि आचा' कां॰ ॥ २ विमानेन चारित्रं तटे स्थापितमिति माथः, कां॰ ॥ ३ एतदनन्तरं ग्रन्थात्रम्—३५०० इति कां॰ ॥

विहरित्तए। ते य से वितरंति एवं से कप्पति अस्नं गणं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए; ते य से णो वियरंति एवं से णो कप्पति अस्नं गणं उवसंप-ज्जिताणं विहरित्तए २२॥

अस्य दुत्रद्भयस्य व्याख्या प्राग्वत् । नवरम्—गणावच्छेदिकत्वमाचार्योपाध्यायत्वं च निक्षिप्य ६ गन्तव्यमिति विशेषः ॥ अथ भाष्यम्—

> एमेव गणावच्छे, गणि-आयरिए वि होइ एमेव । नवरं पुण नाणत्तं, ते नियमा हंति वत्ता उ ॥ ५४५० ॥

'एतमेव' मिश्चवद् गणावच्छेदिकस्य ज्ञान-दर्शन-बारित्रार्थमन्यं गणं गच्छतो विभिद्रेष्टव्यः। गणिन:--उपाध्यायस्याचार्यस्य चैवमेव विभिः। नवरं पुत्रारिदं नानाश्वम्---नियमात् 'ते' 10 गणावच्छेदिकादयो व्यक्ता एव भवन्ति नात्यक्ताः॥ ५९५०॥

> एसेव गमो नियमा, निग्गंथीणं पि होइ नायन्वो । नाणद्र जो उ नेई. सचिच ण अप्पिणे जाव ॥ ५४५१ ॥

'एप एव' भिक्षसूत्रीको गमी निर्मन्यीनामप्यपरं गणमुपसम्पद्यमानानां ज्ञातव्यः । नव-रम्—नियमेनैव ताः ससहायाः । यः पुनः ज्ञानार्थे ता आर्थिका नयति स यावदद्यापि न 18 वाचनाचार्यसार्थयति तावत् सचिचादिकं तस्येवाभवति । अर्थितामु पुनर्वाचनाचार्यस्याभाव्यम् ॥ ५४५१ ॥ कः पुनस्ता नयति ? इत्याह्—

> पंचण्हं एगयरे, उग्गहवज्ञं तु लभित सचित्रं। आपुच्छ अद्व पक्ते, इत्थीसत्थेण संविग्गो ॥ ५४५२ ॥

'पञ्चानाथ्' आचार्योपाध्याय-प्रवर्तक स्थाविर-गणावच्छेदकानामेकतरः संयतीनियति । तत्र 20 सिचितादिकं परक्षेत्रावमहवर्जं स एव उसते । निर्मर्था च ज्ञानार्थं मनन्ती अष्टी पक्षानाष्ट-च्छित—तत्राचार्यमेकं पक्षमाष्ट्रच्छित, यदि न विसर्जयित तत उपाध्यायं वृषमं गच्छं चैव-मेव पृच्छिति; संयतीवर्गेऽपि प्रवर्तिनी-गणावच्छेदिका-ऽभिषका-शेषसाध्यीर्यमाक्रममेकैकं पक्ष-माष्ट्रच्छित । ताश्च स्नीसार्थन समं संविमेन परिणतवयसा साधुना नेतन्याः ॥ ५४५२ ॥

सूत्रम्---

25

भिक्स्त्रू य गणाओ अवक्कम्म इच्छेजा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नो से कप्पड़ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव अन्नं गणं संभोगवडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए: कप्पड

१ °क्ताः, ततो योऽव्यक्तस्य विधिष्कः सोऽत्र न भवतीति भावः ॥ कां० ॥

स आपुच्छिता आयरियं था जाव विहरित्तए । ते य से वियरंति एवं से कप्पइ जाव विहरित्तए; ते य से नो वियरेजा एवं से नो कप्पइ जाव विहरि-त्तप् । जस्थुत्तरियं धम्मविणयं छभेजा एवं से कप्पइ अक्नं गणं संभोगपिडियाप् उवसंपिजित्ताणं विहरि-त्तपः, जस्थुत्तरियं धम्मविणयं नो छभेजा एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं जाव विहरित्तप् २३॥

अस्स ध्यास्या प्राग्तत् । नवरम् — सम्मोगः — एकमण्डस्यां समुद्देशनादिरूपः तत्पत्ययं — तिन्निमिषम् । "जल्युचरियं" इत्यादि, 'यत्र' गच्छे उत्तरं — मधानतरं 'धर्मविनयं' सारणा-10 बारणादिरूपां धार्मिकी शिक्षां रुमेत एवं "से" तस्य करपते अन्यं गणसुपसम्पद्य विहर्तुम् । यत्रीचरं धर्मविनयं नो रुमेत एवं "से" तस्य नो करपते उपसम्पद्य विहर्तुमिति सूत्रार्थः ॥ अथ माध्यस् —

. संमोगो वि हु तिहिँ कारणेहिँ नाणह दंसण चरिचे । संक्रमणे चउभंगो, पढमो गच्छम्मि सीयंते ॥ ५४५३ ॥

16 सम्मोगोऽपि त्रिभिः कारणैरिप्यते । तथया—ज्ञानार्थं दर्शनार्थं चारित्रार्थं च । तत्र ज्ञानार्थं दर्शनार्थं चारित्रार्थं च । तत्र ज्ञानार्थं दर्शनार्थं वास्त्रार्थं स्वयोपसम्पदं प्रतिशक्तास्मन् प्रत्यार्थदानादो सीदित गणान्तरसङ्कमणे स एवं तिथिकं: पूर्वसूत्रं मणितः । चारित्रार्थं तु यस्योपसम्पत्तस्त्र चरण-करणिकयायां सीदित चतुर्भंक्षं भवति—गच्छः सीदित नावर्थः १ आचार्यः सीदित न गच्छः २ गच्छोऽप्याचा-व्याऽपित्रं सीदित च गच्छो नाप्याचार्यं ४ हैति । अत्र प्रथमो भङ्गो गच्छे सीदित मन्तव्यः । 20 तत्र च गुरुणा स्वयं चा गच्छस्य नीदना कर्तव्या ॥ ५४५६ ॥

कथं पनः स गच्छः सीदेत ! इत्याह-

पिंडलेह दियतुअद्रुण, निक्खिन आदाण विणय सञ्झाए। आलोग-ठनण-भत्तदु-भास-पडल-सेजातराईसु ॥ ५४५४ ॥

ते गच्छसापवः प्रख्येसणां काले न कुर्वन्ति, न्यूना-ऽतिरिक्तादिदोपैविंपर्यासेन ना मत्यु25 पेक्षन्ते, गुरु-म्लानादीनां वा न प्रख्येसन्ते । निष्कारणे दिवा स्वावर्तयन्ति । दण्डकादिकं
निक्षियन्त आददतो वा न प्रख्येसन्ते, न वा प्रमाजेयन्ति, दुष्प्रसुपेक्षितं दुष्प्रमाजितं
वा कुर्वन्ति । यथाई विनयं न प्रयुक्तते । स्वाध्याये—सूत्रशैरूपीमर्थपौरुणीं वा न कुर्वन्ति,
अकालेऽस्वाध्याये वा कुर्वन्ति । पाक्षिकादिषु आलोचनां न प्रयच्छन्ति, अथवा 'आलोय'
वि ''दाणदिसियमासणया' (ओषनि० गा० ५६३) हत्यादिकं सप्तविषमालोकं न प्रयुक्तते,

१ इति । चतुर्थो सङ्गः शुद्ध एव । आरोषु त्रिषु भङ्गेषु विधिरच्यते—तत्र प्रथमो कां ॥

सङ्कर्षी वा आळोकन्ते । स्वापनाकुळानि न स्वापयन्ति । 'भक्तार्थ' मण्डक्यां स**रहरेवां न** कुर्वन्ति । गृहस्वभाषामिमीषन्ते, सावयं वा भाषन्ते । परज्केषु आनीतं ञुक्तते । श्रय्या-तरिपण्डं ञुक्तते । आदिमहणेन जद्रमाषशुद्धं गृहन्ति ॥ ५४५४ ॥

एतेषु गच्छस्य सीदतो विधिमाह---

चोयावेइ य गुरुणा, विसीयमाणं गणं सयं वा वि । आयरियं सीयंतं, सयं गणेणं च चोयावे ॥ ५४५५ ॥

प्रथमभङ्गे सामाचार्यं विषीदन्तं गच्छं गुरुणा नोदयति, श्रथम स्वयमेव नोदयति । द्विती-यभङ्गे आचार्यं सीदन्तं स्वयं वा गणेन वा नोदयति ॥ ५४५५ ॥

दुन्नि वि विसीयमाणे, सर्यं व जे वा तर्हि न सीयंति ।

ठाणं ठाणाऽस्रस्त उ, अणुलोमाईहिं चोष्टति ॥ ५४५६ ॥
तृतीयभन्ने गच्छा-ऽऽचार्यी द्वाविष सीवन्ती स्वयंति ने वाद्यति, वे चा तत्र न सीवन्ति
तेर्नोदयति, कि बहुना : स्थानं स्थानम् 'आसाय' प्राप्यानुस्तेमादिभिवेचीभिनोंदयति । स्विप्तक्तं
भवति :— आचार्योपध्यायादिकं निसुक्तुस्तातिकं चा पुरुष्टवत् ज्ञाला यस्य यादशी नोदनाः
योग्यायो वा सरसाध्यो प्रदक्षाध्यः ऋरोऽकरो वा यथा नोदनां प्रसाति तं तथा नोदनेत ॥ २५५६॥ भ

भणमाणें भणाविते, अयाणमाणिम्म पम्खें उक्कोसो ।
लखाएँ पंच तिकि व, तुह किं ति व परिणय विवेगो ॥ ५४५७ ॥
गच्छमाचार्यसभ्यं वा सीदन्तं खर्य भणन् अन्येश्व भाणपत्रास्ते । यत्र न जानाति एते
भण्यमाना आर्प नोद्यमं करिप्यन्ति तत्रोत्कर्षतः पक्षमेकं तिष्ठति । गुरुं पुनः सीदन्तं क्रज्या
गीरवेण वा जानलिप पद्य त्रीन् वा दिवसानभणलि शुद्धः । अय नोद्यमाने गच्छो गुरुरुभयं वा भणेत्—तव किं दुःख्यति ! यदि वयं सीदामलाई वयमेव दुर्गति गिम्प्यामः । 140
प्वंविधे भावे तेषां परिणते तेषां 'विवेकः' परित्यागो विधेयः । तत्रश्चान्यं गणं सङ्कामति ।
तत्र चतुर्भत्री — संविमः संविमं गणं सङ्कामति १ संविमोऽसंविमम् २ असंविमः संविमं स्वे असंविमोऽसंविमम् २ असंविमः संविमं स्वे असंविमोऽसंविमम् २ ॥ ५९५७ ॥ तत्र प्रथमो भङ्गस्तावद्यको —

संविग्गविद्याराओ, संविग्गा दुखि एक अवयरे ।
आलोइयिम सुद्धो, तिविद्योविद्यमगणा नवरि ॥ ५५५८ ॥
संविद्यविद्यार्थ, गच्छात् संविद्यो ही 'कम्यती' गीतार्थ-प्रांतार्थ संविद्ये गच्छे सम्गच्छेताम्, स च गीतार्थोऽगीतार्थे वा यतो दिवसात् संविद्येभ्यः स्मिटेतः तिद्विनादस्थ सर्वेमप्यालोचयति, आलोदिने च ग्रद्धः । नवस्य-विविधेयेः न्यसङ्गादिक्सस्य सर्वेमप्यालोचयति

कर्तव्या ॥ ५८५८ ॥ इदमेव व्याच्छे--

गीयमगीतो गीते, अप्पडिबद्धे न होइ उबधातो । 50 अविगीयस्स वि एवं, जेण गुता ओइनिञ्जूची ॥ ५४५९ ॥ स संविभो गीतार्थो वा स्यादगीतार्थो वा । यदि गीतार्थो बनिकादिष व्यप्तिबद्ध व्यायातः

१ अथ त्रिष्वपि भन्नेषु साधारणं विधिमाह इत्यवतरणं को० ॥

30

तत उपर्षेरुपधातो न भवति, न प्रायक्षितम् । 'अविगीतस्य' अगीतार्थस्यापि येन जषन्यत औषनिर्युक्तिः श्रुता तस्यापि 'एवमेव' अप्रतिबध्यमानस्य नोपषिरुपहन्यते ॥ ५४५९ ॥'

> गीयाण विमिस्साण व, दुण्ह वयंताण वहयमाईसु । पडिवज्ज्ञंताणं पि ह, उवहि ण हम्मे ण वाऽऽरुवणा ॥ ५४६० ॥

५ 'द्वयोः' गीतावयेगोतार्थितिमध्योवां बंजतोविजिकादिषु मतिवच्यमानयोरप्युपिनोण्हत्यते, न वा 'आरोपणा' प्रायक्षित्तं भवति । एवमेकोऽनेके वा विधिना सनागता व्यतभृति गणाद् निर्मतास्तत आरम्यालोचनां ददति ॥ ५८६० ॥ अय त्रिविधोपिधमार्गणासाह—

> आगंतुमहागडयं, वत्थव्वअहाकडस्स असईए । मेलिति मज्झिमेहिं, मा गारवकारणमगीए ॥ ५४६१ ॥

10 तस्य गीतार्थस्यागीतार्थस्य वा त्रिविध उपधिभेवेत्। तद्यथा—यथाक्रतोऽरूपपिकर्मा सपिर-कर्मा च । वास्तव्यानामप्येवमेव त्रिविध उपधिभेवित । तत्र यथाक्रतो यथाक्रतेन सह मीरुयते, अरूपपिकर्मा अरूपपिकर्मा अरूपपिकर्मा अरूपपिकर्मा अरूपपिकर्मा अर्थान्त्रत्वानां यथाक्रते नास्ति तत आगन्तुकस्य यथाक्रतं वास्तव्यमेः—अरूपपिकर्मामः सह मीरुयन्ति । किं कारणम् १ इति चेद् अत आह—मा सोऽमीलितः सत्त्रगीतार्थस्य 'मदीय उपधिरुत्तमसम्भोगिकोऽतोऽह-16मेव सत्तर्दरः इत्येवं गौरवकारणं भविदिति ॥ '५९६१ ॥

गीयत्थें ण मेलिजह, जो पुण गीओ वि गारवं कुणह । तस्सवही मेलिजह, अहिकरण अपचओ इहरा ॥ ५४६२ ॥

गीतार्थों यदि अगीरवी ततस्वदीयो यथाकृतः प्रतिमहो वास्तव्ययथाकृताभावेऽस्वपिरिकर्मभः सह न मीस्यते किन्तु उत्तमसम्भोगिकः क्रियते । यस्तु गीतार्थोऽपि गौरवं करोति तस्य यथा20 कृतो वास्तव्यास्वपिरिकर्मभिः सह मीस्यते । क्रिं कारणम् १ इति चेद् अत आह— "इहर" चि यदि यथाकृतपिरिमोगेन परिभुज्यते तदा केनाप्यज्ञानना अस्पपरिकर्मणा समं मेलित दृद्धा सावार्थः अधिकरण्यं असङ्ग्रह कृषीन्, क्रिमधै मदीय उत्कृष्टोपिरस्गुद्धेन सह मीलितः १ इति । अत्रस्ययो वा शक्षाणां भवेत्, अयमेतेषां सकाशादुखततरविहारी येनोपिषप्रकृष्टपिर-भोगेन परिभुक्के, एते तु हीनतरा इति ॥ ५०६२ ॥

> एवं खलु संविग्गे, संविग्गे संक्षमं करेमाणे । संविग्गमसंविग्गे, असंविग्गे यावि संविग्गे ॥ ५५६३ ॥

एवं सञ्ज संविमस्य संविमेषु सङ्गमं कुर्वाणस्य विधिरुक्तः । अत्र संविमस्यासंविमेषु सङ्गामतोऽसंविमस्य वा संविमेषु सङ्गामतो विधिरुच्यते ॥ ५४६३ ॥

तत्र संविग्नस्यासंविग्नसङ्गमणे तावदिमे दोषाः---

सीहगुहं वग्वगुहं, उदहिं व पलित्तगं व जो पविसे । असिवं ओमोयरियं, धुवं सें अप्पा परिचत्तो ॥ ५४६४ ॥

१ एवमेकाकिनो विधिरुक्तः । अथ द्वयोर्जनयोर्विधिमाह १व्यवतरणं कां॰ ॥ २ 'व्रजनोः' संविधं गणे समागुरुक्तोर्वजि॰ कां॰ ॥

सिंहगुद्दां व्याष्ठगुद्दां 'उदिषिं वा' समुद्रं प्रदीसं वा नगरादिकं यः प्रविश्वति, अशिवमन-मौदर्यं वा यत्र देशे तत्र यः प्रविश्वति तेन ध्रुवमात्मा परित्यक्तः ॥ ५४६४ ॥

चरण-करणप्पहीणे, पासत्थे जो उ पविसए समणी ।

जतमाणए पजहिउं, सो ठाणे परिचयइ तिण्णि ॥ ५४६५ ॥

एवं सिंहगुहादिखानीगेषु चरण-करणबहीणेषु पार्श्वसेषु यः श्रमणः 'वतमानान्' संविद्यान् 5 'महाय' परित्यज्य मविशति स मन्दधर्मा 'त्रीणि खानानि' ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपणि परित्य-जति । अपि च—सिंहगुहादिभवेशे एकभविकं मरणं प्राप्तीति, पार्श्वसेषु पुनः प्रविशनने-कानि मरणानि प्राप्तीति ॥ ५४६५ ॥

एमेव अहाछंदे, कुसील-ओसन्न-नीय-संसत्ते ।

जं तिकि परिचयई, नाणं तह दंसण चरित्तं ॥ ५४६६ ॥ 10 'एवमेव' पार्श्वसवद् यथाच्छन्देषु कुशीला-उवसक-नित्यवासि-संसक्तेषु च प्रविशेतो मन्त-व्यम् । यच त्रीणि स्थानानि परित्यवतीरपुक्तं तद् ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेति द्रष्टव्यम् ॥ ५४६६ ॥ गतो दितीयमञ्जः । अथ जतीयमञ्जमानः—

पंचण्हं एगयरे, संविग्गे संकमं करेमाणे।

आलोइए विवेगी, दोसु असंविग्गें सच्छंदो ॥ ५४६७ ॥

पार्श्वस्था-ऽत्रसन्त-कुशील-संसक्त-यथांच्छन्दानामेकतरः संविभेषु सङ्गमं कुर्वन् प्रथममालोचनां ददाति, तत आलोचितेऽविद्युद्धोपयोवैवेकं करोति । स च यदि चारित्रार्थमुपसम्पद्यते ततः प्रतीच्छनीयः । यस्तु 'द्वयोः' ज्ञान-दर्शनयोर्श्यायासंविम उपसम्पद्यते तत्य 'खच्छन्दः' स्वामित्रायः, नासौ प्रतीच्छनीय इति भावः । अथवा ''दोष्ठ असंविमोः' चि 'असंविमोऽ-संविभेषु सङ्कामति' इति रूपे द्विषाऽप्यसंविभे चतुर्थभङ्गे 'खच्छन्दः' सेच्छा, अवस्तुभृतत्वाद् 20 न कोऽपि तत्र विधिरिति भावः ॥ ५४६७ ॥

पंचेगतरे गीए, आरुभियवते जयंतए तम्म ।

जं उवहिं उप्पाप, संभोइत सेसम्रज्यंति ॥ ५४६८ ॥

तेषां पञ्चानां—पार्श्वस्थादीनामेकतर आगच्छन् यदि गीतार्थस्तातः स्वयमेव महात्रतान्युचार्या-रोपितत्रतो यतमानः -त्रजिकादावप्रतिबध्यमानो मार्गे यग्रुपिधमुत्पादयति स साम्मोगिकः, 25 "सेसमुख्यति" ति यः प्राक्तनः पार्श्वस्थोपिधरगुद्धस्तं परिष्ठापयन्ति । यः पुनरगीतार्थस्तस्य त्रतानि गुरवः प्रयच्छन्ति, उपिश्व्य तस्य चिरन्तनोऽभिनवोत्पादितो वा सर्वोऽपि परिस्वध्यते ॥ ५४६८ ॥ तेषु वायमाकोचनाविधिः—

पासत्थाईग्रंडिएॅ, आलोयण होइ दिवस्वपभिइं तु । संविग्गपुराणे पुण, जप्यभिई चेव ओसण्णो ॥ ५४६९ ॥

१ पर्व पार्श्वस्थेषु सङ्कामतो भणितम् । अथ यथाच्छन्दादिषु सङ्कामत इदमेवातिदि-शकाह इव्यतरणं कां० ॥ २ 'शतो दोषज्ञालं च विशेषतरं मन्त' कां० ॥ ३ तृतीयभङ्ग पव विधिशेषमाह इव्यतरणं कां० ॥

15

20

25

वः पार्श्वसादिभित्व युण्डतः—प्रवाजितसस्य दीक्षादिनादारम्य आलोचना भवति । यस्तु पूर्वं संविष्ठाः प्रकात् पार्श्वस्यो जातः तस्य संविष्ठपुराणस्य यसमृति अवसन्तो जातस्त्रिहिनादारम्या-ऽऽक्रोचना भवति ॥ ५९६९ ॥

सूत्रम्---

गणावच्छेइए य गणादवक्रम्म इच्छेजा असं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जिताणं विहरित्तए, णो से क-प्पति गणावच्छेइयत्तं अणिक्खिवत्ता संभोगपडियाए जाव विहरित्तए: कप्पति से गणावच्छेडअत्तं णिविखः वित्ता जाव विहरित्तए । णो से कप्पइ अणापुच्छिता आयरियं वा जाव विहरित्तए: कप्पति से आप-च्छिता आयरियं वा जाव विहरित्तए। ते य से वितरंति एवं से कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए जाव विहरित्तए: ते य से नो वितरंति एवं से णो कप्पइ जाव विहरित्तए। जत्थुत्तरियं धम्मविणयं लभेजा एवं से कप्पति अन्नं गणं सं० जाव विहरि-त्तपः; जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो लभेजा एवं से णो कप्पति जाव विहरित्तए २४॥ आयरिय-उवज्झाए य गणादवक्कम्म इच्छेजा अन्नं गणं संभोगपडियाए जाव विहरित्तए, णो से कप्पति आयरिय-उवज्झायत्तं अणिकिस्तवित्ता अण्णं गणं सं० जाव विहरित्तए: कप्पति से आयरिय-उवज्झा-यत्तं णिक्खिवित्ता जाव विहरित्तए । णो से कप्पड अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव विहरित्तए: कप्पति से आप्रिक्कित्ता आयरियं वा जाव विहरित्तए। ते य से वितरंति एवं से कप्पति जाव विहरित्तए:

१ 'तः स पुराणसंविद्यः, गाथायां व्यस्यत्सेन पूर्वापरनिपातः प्राकृतस्वात्, तस्य

15

20

ते य से णो वितरंति एवं से णो कप्पति जाव विहरित्तए। जत्थुत्तरियं धम्मविणयं छभेजा एवं से कप्पइ जाव विहरित्तए; जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो छभेजा एवं से णो कप्पति जाव विहरित्तए २५॥

अस्य सुन्नद्वयस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ अथ भाष्यम्---

एमेव गणावच्छे, गणि-आयरिए वि होइ एमेव । णवरं पुण णाणत्तं, एते नियमेण गीया उ ॥ ५४७० ॥

एवमेव गणावच्छेदिकस्य तथा गणिनः-उपाध्यायस्याचार्यस्य च सूत्रं मन्तस्यम् । नवरं पुनरत्र नानात्वम्—एते नियमतो गीतार्था भवन्ति नागीतर्थाः ॥ ५४७० ॥

सूत्रम्---

भिक्खू य इच्छिजा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए। ते य से वियरिजा एवं से कप्पइ अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए। ते य से नो वियरेजा एवं से नो कप्पइ अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; ते य से नो वियरेजा एवं से नो कप्पइ अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए। जां से कप्पइ तेसिं कारणं अदीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पति से तेसिं कारणं दीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए। उवज्झायं उद्दिसावित्तए २६॥

अस्य व्याख्या मान्तत् । नवरम् — अन्यम् 'आचार्योगध्यायमुद्देश्वितुम्' आचार्यश्चीण-ध्यायश्चाचार्योगध्यायम् , समाहारद्वन्द्वः, यद्वा आचार्ययुक्त उपाध्याय आचार्योगध्यायः, शाकपार्थिववद् मध्यपदलोगी समासः, आचार्योगध्यायात्रित्यश्चः, तावन्यातुदेशस्तिनारमन 25 इच्छेत् । ततो नो कस्पते अनाष्ट्रच्छयाचार्ये वा यावद् गणावच्छेदिकं वा इत्यादि माग्वद् द्रष्ट्यम् । तथा न कस्पते 'तेमान्य' आचार्योदीनां कारणम् 'अदीपसित्वा' अनिवेस अन्यमा-

2)

25

चार्योपाध्यायम् 'उद्देशयितुष्' आत्मनो गुरुतया व्यवस्थापयितुष् । ⊲ कारणं दीपयित्वा तु करुपते । ⊳ एव सुत्रार्थः ॥ अथ भाष्यम्—

> सुत्तम्मि कड्वियम्मी, आयरि-उज्झाय उदिसाविति । तिण्डटद उहिसिजा, णाणे तह दंसण चरित्ते ॥ ५४७१ ॥

ातण्ड्रञ्च उद्दासञ्जा, गाण तह दसण चारण ॥ ४८०८ ॥ ५ 'सूत्रे' सूत्रार्घे 'आकृष्टे' उक्ते सति निर्युक्तिदिस्तर उच्यते—आचार्योपाध्यायमभिनव-सुद्देशयन् त्रयाणामधोयोद्दिरोत् । तदाथा—ज्ञानार्थे दर्शनार्थे चारित्रार्थे चेति ॥ ५४७९ ॥ र्

नाणे महकप्पसुतं, सिस्सत्ता केइ उवगए देयं।

तस्सऽद्व उदिसिजा, सा खलु सेच्छा ण जिणआणा ॥ ५४७२ ॥

ज्ञाने ताबदिभिषीयते—केपाधिदाचार्याणां कुले गणे वा महाकरपश्चतमस्ति, तैश्च गण-10 संस्थितिः कृता—योऽस्माकं शिप्यतयोपगच्छति तस्येव महाकरपश्चतं देयं नान्यस्य । तत्र चोस्सातो नोपसम्पद्यस्य, यदि अन्यत्र नास्ति तदा 'तस्य' महाकरपश्चतस्यार्थिय तमप्याचा-र्यमुद्दिरोत्, उद्दिश्य चाषीते तस्मिन् पूर्वाचार्याणामेवान्तिकं गच्छेत्, न तत्र तिष्ठेत् । कृतः ? इत्याह—सा सद्ध तेपामाचार्याणां सेच्छा, 'न जिनाज्ञा' न हि जिनेरिदं मणितम्—शिष्य-तयोपगतस्य श्चतं दात्यमिति ॥ ५९०९ ॥ अथ दर्शनार्थमाह—

> विजा-मंत-निमित्ते, हेऊसत्थद्व दंसणद्वाए । चरित्तद्वा प्रव्यगमो, अहव इसे द्वंति आएसा ॥ ५४७३ ॥

ारिष्ठा पुरस्ताना अवस्था हुन्ति । १८०६ ।। विद्यानम्बर्गिनियार्थं रहुआस्त्राणां त्यं गोविस्त्तिचेक्कियम्तिनामधीय यद् अन्य आचार्य उद्दिस्यते तद् दर्शनार्थं मन्तदयं । चारित्रार्थं पुरस्देशनं 'पूर्वः' प्रामुक्त एव गमो भवति । अथवा तत्रेते 'आदेशाः' प्रकारा भवन्ति ॥ ५९०६ ॥

आयरिय-उत्रज्झाए, ओसण्लोहाविते व कालगते।

ओसण्ण छन्त्रिहे खलु, वत्तमवत्तरस मग्गणया ॥ ५४७४ ॥

आचार्य उपाध्यायो वा अवसमः सञ्जातः 'श्ववधावितो वा' गृहस्थीम् वः कारुगतो वा । यदि अवसनस्ततः पद्मविधो भवेत्—पार्धस्योऽवमग्रः कुशीरः संसक्तो नित्यवासी यथाच्छन्दश्चेति । यथा तस्य शिष्य आचार्यपदयोग्यः स स्वकोऽब्यक्तो वा भवेत् तत्रेयं मार्गणा ॥ ५९०४ ॥

वत्ते खलु गीयत्थे, अञ्चत्ते वएण अहव अगीयत्थे ।

बित्तच्छ सार पेमण, अहवाऽऽसण्णे सयं गमणं ॥ ५४७५ ॥
अंत्र चत्वारो भक्तः—तत्र वयसा व्यक्तः शोडशवार्षिकः श्रुतेन च व्यक्तो गीतार्थः, एष
प्रथमे भक्तः । वयसा व्यक्तः श्रुतेनाव्यकः, एषोऽर्थतो द्वितीयः । वयसाऽव्यक्तः श्रुतेन व्यक्तः, अयमयेतस्तृतीयः । "अत्रवे वएण अहव अगीयित्य" ति चतुर्यो भक्तो गृहीतः, स चायम्— 30 वयसाऽप्यव्यक्तः श्रुतेन चाव्यक्त इति ४ । अत्र प्रथमे भक्ते द्विषाऽपि व्यक्तस्य 'इच्छा' अन्यमाचार्यश्रुहिशति वा न वा । यात्रशोहिशति तावत् तमवसन्नीभूतमाचार्ये दूरस्यं सार्यिद्धं

१ <ा ≥ तत्रकातर्यतः पठः भा॰ एव वत्तते ॥ २ तत्र कानार्थे ताबवाहः इत्यवतरणं को॰ ॥ ३ वयसा श्रुतेन चाव्यको [व्यको चा] भवतीति अत्र चत्वा॰ को॰ ॥

साधुसङ्घाटकं प्रेषयति । अधासने स आचार्यस्ततः स्वयमेन गस्ता नोदयति ॥ ५२७५ ॥ नोदनायां नैवं कारुपरिमाणम् —

> एगाह पणग पक्से, चउमासे वरिस जत्थ वा मिलह । चोएह चोयवेह व. फेच्छेतें सर्व त बहावे ॥ ५४७६ ॥

'एकाई नाम' दिने दिने गत्या नोदयति, एकान्तरितं वा । तथा 'पञ्चाह' पञ्चानां दिन-ष् सानामन्ते, एवं पक्षे चतुर्मासे वर्षान्ते वा 'पत्र वा' समवसरणादौ मिरुति तत्र स्वयमेव नोदयति, अपरैवा स्वाच्छीय-परगच्छीयैनोंदनां कारयति । यदि सर्वधाऽपि नेच्छति ततः स्वयमेव तं गणं वर्तापयति ॥ ५५७६ ॥

उदिसइ व अकृदिसं, पयावणद्वा न संगहहाए।

जह णाम गारवेण वि, मुएज णिच्छे सर्य टाई ॥ ५४७७ ॥ 10 अथवा स उभयव्यकः 'अन्यां दिशम्' अपरमाचार्यमुद्दिशति तच तस्यावसन्नाचार्यस्य 'भतापनार्थम्' उनेजनार्थं न पुनर्गणस्य सङ्गरोपमहनिमित्तम् । स च तत्र गस्या भणति — अहमन्यमाचार्यमुद्दिशति यदि यूपितः सानाद् नोपरमण्ये । ततः स चिन्तयेत् —अहो ! अमी मिर्य जीवत्यि अपरमाचार्यं प्रतिवन्ते, मुझामि पार्थस्यताम् । यदि नागैवं गौरवेणामि पार्थस्यतं मुता ततः सुन्दरम् , अथ सर्वया नेच्छत्युपरन्तुं ततः स्वयमेव गच्छाधियत्ये तिष्ठति ।ऽ ॥ ५४७७ ॥ गतः अथमे मङ्गः । अथ वित्रीयमाह —

सुअवत्तो वतवत्तो, भणइ गणं ते ण सारितुं सत्तो । सारेहि सगणमेयं, अण्णं व वयामों आयरियं ॥ ५४७८ ॥

यः श्रुतेन व्यक्तो वयसा पुनरव्यक्तः स खयं गच्छं वर्तापयितुमसमर्थः तमाचार्यं भणति — अहमपाष्ठवयस्वेन खदीयं गणं सारयितुं न शक्तः, अतः सारय खगणमेनम् , अहं पुनरन्यस्य २० शिप्यो भविष्यामि, अथवा अहमेते वाऽन्यमाचार्यं व्रजामः, उद्दिशाम इत्यर्थः ॥ ५४७८ ॥

आयरिय-उवज्झायं, निच्छंते अप्पणा य असमत्ये ।

तिगसंवच्छरमद्धं, कुल गण संघे दिसावंघो ॥ ५४७९ ॥

एवंभणित आचार्य उपाध्यायो वा यदि नेच्छति संयमे स्थातुम्, स चात्मना गणं वर्ता-पयितुमसमर्थः, ततः कुरुसत्कमाचार्यस्याध्यायं वा उद्दिशति । तत्र त्रीणि वर्षाणि तिष्ठति, तं 25 चाचार्यं सारयति । ततः 'त्रयाणां वर्षाणां परतः सचिचादिकं कुरुाचार्यो हरति' इति कृत्वा गणाचार्यमुद्दिशति । तत्र संवत्सरं स्थित्वा सङ्घाचार्यस्य दिग्वन्यं भतिषयः 'वर्षार्द्वं' पण्मासान् तत्र तिष्ठति ॥ ५४७९ ॥ कुरुाद् गणं गणाच सङ्घं सङ्कामनाचार्यमिदं भणति—

सिचतादि हरंती, कुलं पि नेच्छामों जं कुलं तुब्मं।

वचामी अकागणं, संघं व तुमं जद्द न ठासि ॥ ५४८० ॥ यत् खदीयं कुळं तदीया आचार्या असाकं वर्षत्रयादुर्द्धं सचिवादिकं हरन्ति अतः कुळमपि नेच्छामः, यदि त्वमिदानीयपि न तिष्ठसि ततो वयं गणं सङ्घं वा ब्रजामः ॥ ५४८० ॥

एवं पि अठायंते, ताहे त् अद्धपंचमे बरिसे।

सबमेव घरेइ गणं, अणुलोमेणं च सारेइ ॥ ५४८१ ॥

एवमद्भंपन्नमेवेषें: पूर्वाचार्यो नोयनाभिः प्रतापितोऽपि यदि न तिष्ठति तत एतावता कालेन स श्रुतव्यक्ती वयसाऽपि व्यक्तो जात इति कृत्वा स्वयमेव गणं धारयति । यत्र च पूर्वाचार्ये पद्मति तत्र अनुरुप्तिवचनैदायेव सारयति ॥ ५१८८१ ॥

अहव जह अत्थि थेरा, सत्ता परियद्विऊण तं गच्छं । दहओवचसरिसगो, तस्स उ गमओ सुणेयच्वो ॥ ५४८२ ॥

अथवा यदि तस्य श्रुतव्यक्तस्य स्यावरात्वं गच्छं परिवर्तीयतुं शक्ताः सन्ति ततः कुरू-गण-सङ्केषु नोपतिष्ठते किन्तु स स्वयं सूत्रार्थौ शिष्याणां ददाति, स्वविरास्तु गच्छं परिवर्तै-यन्ति । एवं च द्विधाव्यक्तसद्दशस्य गमो ज्ञातन्त्र्यो भवति ॥ ५४८२ ॥

10 गतो द्वितीयभन्नः । अथ तृतीयभन्नमाह---

वत्तवओ उ अमीओ, जइ थेरा तत्थ केइ गीयत्था । तेसंतिगे पढंतो. चोएड स असड अण्णत्थ ॥ ५४८३ ॥

स्रो वससा व्यक्तः परमगीतार्थः, तस्य च गच्छे यदि केऽपि स्यविरा गीतार्थाः सन्ति ततः 'तेषा' स्वविराणामन्तिके पठन् गच्छमपि परिवर्तयति, अवसमाचार्यं चान्तराऽन्तरा नोद-15 यति । तेषां गीतार्थस्यविराणाममावे गणं गृहीत्याऽन्यत्रोपसम्पयते ॥ ५४८३ ॥

गतस्तृतीयो भक्तः । अथ चतुर्थभक्तमाह--

जो पुण उभयअवचो, बद्दावग असइ सो उ उद्दिसई। सब्बे वि उद्दिसंता, मोनूणं उद्दिसंति इमे ॥ ५४८४॥

यः पुनः उमयथा—श्रुतेन वयसा चाञ्यक्तात्स्य यदि स्वितगः पाठियतारो विद्यन्ते अपरे 20 च गच्छवर्तापकात्ततोऽसावपि नाम्यमुहिशति । स्वितराणामभावे स नियमाद्रन्यमाचार्यमुहि-शति । 'सर्वेऽपि' भक्रचतुष्टयवर्तिनोऽप्यन्यमाचार्यमुहियन्तोऽपून् सुचवा उहिरान्ति ॥ ५२८४ ॥

तद्यथा---

संविग्गमगीयत्थं, असंविग्गं सल् तहेव गीयत्थं । असंविग्गमगीयत्थं, उदिसमाणस्य चउगुरुगा ॥ ५४८५ ॥ मित्रमगीतार्थं असंविग्गं गीतार्थं असंविग्गगीतार्थं चेति त्रीनप्याचार्यत्वेनोहिशतश्चर्तुः रुकाः । एते च यथाकमं कालेन तपसा तद्ययेन च गुरुकाः कर्तव्याः ॥ ५४८५ ॥

अत्रैव प्रायश्चित्तवृद्धिमाह—

सत्तरत्तं तवी होइ, तओ छेओ पहावई।

छेदेण छिष्णपरियाए, तओ मूरुं तओ दुगं ॥ ५४८६ ॥ ९० एतानयोग्यानुहिस्यानावर्तमानस्य मधमं ससरात्रं दिने दिने चतुर्गुरु, द्वितीयं ससरात्रं षद्-रुद्ध, तृतीयं वद्गरु, चतुर्थं चतुर्गुरुकच्छेदः, पश्चमं वद्यरुद्धकः, वहं वद्गरुकः, तैत एकदिवसे

१ तत पर्व क्रिचन्वारिंशता दिवसैगंतैक्षयश्चत्वारिंशदिवसे मूलम् , चतुश्चत्वारिंशऽन-वस्थाप्यम् , पञ्चचत्वारिंशे दिवसे पाराञ्चिकम् । अथवा वहलञ्चकतपो° कं॰ ॥

15

मुल्य, हितीयेऽनवस्थाप्यम्, तृतीये पाराश्चिकम् । अथवा यहुरुकतपोऽनन्तरं प्रथमत एव ससरात्रं यहुरुकच्छिदः, तंतः मूला-ऽनवस्थाप्य-पाराश्चिकानि प्राग्वत् । यद्वाः तपोऽनन्तरं वैष-कादिच्छिदः सस सस दिनानि भवति, शेषं पूर्ववत् । एवं प्रायश्चित्तं विज्ञाय संविधो गीतार्थं उद्देष्टव्यः ॥ ५४८६ ॥ तत्रापि विशेषमाह—

छहाणविरहियं वा, संविग्गं वा वि वयह गीयत्थं । चउरो य अणुग्धाया, तत्थ वि आणाहणो दोसा ॥ ५४८७ ॥

विद्वाः स्थानैवेश्यमाणैविरहितमपि संविधं गीतार्थं यदि 'सदोवं' काविकादिदोवसहितं 'वदति' काविकन उहिशति तदा चलारोऽनुद्धाताः । तत्राप्याज्ञातयो दोवाः ॥ ५४८७ ॥

इदमेव व्याचष्टे---

छहाणा जा नियगो, तन्त्रिय काहियाइता चउरो । ते वि य उद्दिसमाणे, छहाणस्याण जे दोसा ॥ ५४८८ ॥ 'यहस्यानानि नाम' पार्थस्थाऽवसनः इत्रीकः संसक्ता यथाच्छन्दो नित्यवासी चेति, एतैः पश्चित्रंवरित्त ये काथिकायः काथिक-पार्थिक-मामाक-संप्रसारकाय्या चरारासानप्यदिश-तस्त एव दोषा ये प्रस्थानेषु-पार्थस्थादिय गानानां-प्रविद्यानां स्वनित ॥ ५४८८ ॥

एष सर्वेऽप्यवसन्ने आचार्ये विधिरुक्तः । अथावधावित-कालगतयोर्विधिमाह-

ओहाविय कालगते, जाधिच्छा ताहि उदिसावेह । अन्वचे तिविहे वी, णियमा पुण संगहद्वाए ॥ ५४८९ ॥

अवधाविते कारुगते वा गुरी 'त्रिविधेऽपि' प्रथमसङ्गर्को सङ्गर्यदेषि योऽव्यक्तः स यदा इच्छा भवति तदाऽन्यमाचार्यमुदेशयति । अथवा 'त्रिविधेऽपि' कुरुसको गणसको सङ्गसको च आचार्योपाध्याये आस्मत उदेशं कारयति । स चार्यकत्ताद् नियमात् सङ्ग्रहीपमहार्थमेवो- 20 हिशति ॥ ५९८९ ॥ आचार्यं ग्राहीयतमवसम्रं वा यदा पश्यति तदेष्यं भणति—

ओहाविय ओसके, भणह अणाहा वर्य विणा तुज्झे । कम सीसमसागरिए, दुप्पडियरगं जतो तिण्हं ॥ ५४९० ॥

कम सासमसागारण, दुर्भाडयरंग जता तिर्ण्ह । १८६० ।। अवधावितस्यासस्त्रस्य वा गुरोः 'कायोः' पादयोः शीर्षमसागारिक प्रदेशे इत्त्वा मणति—मगवन्! अनाथा वयं युष्णान् विना, अतः प्रसीद, सृषः संयमे स्नित्वा सनानाइ श्रीकृत डिम्मकृत्यानसात् । शिल्यः पृष्णिति—तस्य गृहीभृतस्य अचारित्रिणो वा चरणयोः कथं शिरो विधीयते ! गुरुराह—'दुष्णतिकरं' दुःखेन प्रतिकर्तु शक्यं यतस्याणाम्, तद्या—माता-पित्रोः स्वामिनो धर्माचार्यस्य व । यदुक्तम्—''तिष्टं दुष्पडियारं समणा-उसो !—अम्मा-पियस्स मष्टिस्स धम्मायरियस्स य" (स्वानोक्ने स्वा० ३ ०० १) इत्यादि । तत एवमवसक्तेऽवधाविते वा गुरो विनयो विधीयते ॥ ५९९० ॥ किष्ट—

जो जेण जम्मि ठाणम्मि ठाविओ दंसणे व चरमे वा ।

१ ततः सप्तरात्रचतुष्ट्यानस्तरं मूहा कि। । २ पञ्चक-दशक-पञ्चदशकादिच्छेदाः सप्त सप्त दिनानि भवस्ति, शे को ।। १ वडी-सप्तस्योर्स्य प्रस्यमेदाद् अव को ।।

सो तं तत्रो चुतं तिम्म चेव काउं मवे निरिणो ॥ ५४९९ ॥ यः 'येन' आचार्यादिना यस्मिन् स्थाने स्थापितः, तद्यथा — दर्शने वा चरणे वा, 'सः' शिष्यः 'तं' गुरुं 'ततः' दर्शनात् चरणाहा च्युतं 'तत्रैव' दर्शने चरणे वा 'कृत्वा' स्थापित्वा 'निर्फ्रणः' ऋणमुको भवति, कृतमञ्जुषकार इत्यर्थः ॥ ५४९९ ॥

अथ "कप्पइ तेसिं कारणं दीवित्ता" इत्यादिस्त्रावयवं व्याचष्टे—

तीसु वि दीवियकञा, विसञ्जिता जइ य तत्थ तं णित्य ।
'त्रिष्विप' ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु वजन्तो भिक्षुप्रभृतयः 'दीपितकार्याः' पूर्वोक्तविषिना निवे-दितस्वप्रयोजना गुरुणा विसर्जिता गच्छन्ति । यदि च 'तत्र' गच्छे 'तद्' अवसम्रतादिकं कारणं नास्ति तत उपसम्पर्यते, नान्यथेति ॥

10 सूत्रम्---

15

20

25

गणावच्छेइए य इच्छिजा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तपः, नो से कप्पइ गणावच्छेइयत्तं अनि-क्षित्वित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तपः; कप्पइ से गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता अन्नं आय-रिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तपः। नो से कप्पइ अणा-पुच्छिता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तपः; कप्पइ से आपु-च्छिता जाव उद्दिसावित्तपः। नो से कप्पति तेसिं कारणं अदीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसा-वित्तपः; कप्पइ से तेसिं कारणं दीवित्ता अन्नं जाव उद्दिसावित्तपः २७॥

आयरिय-उवज्झाए इच्छिजा अन्नं आयरिय-उव-ज्झायं उद्दिसावित्तए, नो से कप्पइ आयरिय-उव-ज्झायत्तं अनिक्खिवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावित्तए; कप्पइ से आयरिय-उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावि-त्तए। णो से कप्पति अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं

उहिसाबित्तपः; कप्पति से आपुच्छिता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अस्रं आयरिय-उवज्झायं उहिसाबित्तपः। ते य से वितरंति एवं से कप्पति जाव उहिसाबित्तपः; ते य से णो वियरंति एवं से नो कप्पइ जाव उहिसाबित्तपः। णो से कप्पइ तेसिं कारणं अदीवित्ता अन्नं आयरिय-उवज्झायं उहिसावित्तपः; कप्पइ से तेसिं कारणं दीवित्ता जाव उहिसावित्तपः २८॥

सुत्रद्वयस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ अथ भाष्यम्---

णिक्स्विय वयंति दुवे, भिक्सू किं दाणि णिक्स्वित् ॥ ५४९२ ॥ १० "निक्स्विय वयंति दुवे" इत्यादि पश्चाद्धेम् । 'द्वौ' गणावच्छेदिक आचार्योपाध्यायश्च ययाकमं गणावच्छेदिकत्वमाचार्योपाध्यायत्वं च निक्षित्य वजतः । यस्तु भिक्षुः स किमिदानीं निक्षिपतु : गणामावाद् न किमपि तस्य निक्षेपणीयमस्ति, अत एव सूत्रे तस्य निक्षेपणं नोकमिति भावः ॥ ५४९२ ॥ अथ गणावच्छेदिका-ऽऽचीर्ययोगीणनिक्षेपणे विधिमाह—

दुण्हऽह्वाए दुण्ह वि, निक्सिववणं होइ उजापंतेसु । सीअंतेसु अ सगणो, वचइ मा ते विणासिजा ॥ ५४९३ ॥

'द्वयोः' ज्ञान-दर्शनवोरर्थाय गच्छतोः 'द्वयोरिय' गणावच्छदिका-ऽऽवैशियोः स्वगणस्य निक्षेपणं ये 'उद्यच्छन्तः' संविद्या आचार्यासेषु भवति । अत्र सीदन्तते ततः 'सगणः' स्वैगणं गृहीत्वा मजति न पुनतेषामन्तिके निश्चिपति । कुतः ! इत्याह्—मा 'ते' शिण्यासत्र सुक्ता विनदयेषुः ॥ ५९९३ ॥ इदमेव भावयति—

वत्तमिम जो गमो खलु, गणवच्छे सो गमो उ आयरिए । निक्खिवणें तमिम चत्ता, जम्रदिसे तमिन ते पच्छा ॥ ५४९४ ॥

यो गम उभयव्यक्ते भिक्षाबुक्तः स एवं गणावच्छेदिके आर्चीयें च मन्तव्यः। नव्हरम् — गणिनिक्षेपं कृत्वा तौ आत्मद्वितीयौ आत्मवृतीयौ वा नवतः। तत्र स्वगच्छ एव यः संविम्रो गीवार्थं आचार्यादिस्त्रत्रात्मीयसाधून् निश्चिपति तः ते 28 साधवः परित्यक्ता मन्तव्याः, तस्माद् न निश्चेपणीयाः किन्तु येन तेन प्रकारेणात्मता सह नेतव्याः। ततो यमाचार्यं स गणावच्छेदिक आर्चार्यं वा उद्दिशति तस्मिन् 'तान्' आत्मीय-साधून् पक्षाद् निश्चिपति, यथा अहं गुम्माकं विष्यस्या इमेऽपि गुम्मदीयाः शिष्या इति

१ °चार्योपाष्याययोर्ग° कां॰॥ २ °चार्योपाष्याययोः स्त्र' कां॰॥ २ स्तर्कीयगण-सहित एव ब्रज° कां॰॥ ४ °चार्योपाष्याये च म° कां॰॥ ५ °चार्योपाष्यायो वा कां॰॥

मावः ॥ ५४९४ ॥ इदमेवाह---

जह अप्पनं तहा ते, तेण पहुष्पंतें ते ण चेत्तव्या । अपहृष्पंते गिण्हह, संघाडं ग्रुत्त सन्वे वा ॥ ५४९५ ॥

यथा आत्मानं तथा तानिष साधून् निवेदयति । 'तेनाषि' आचार्येण पूर्यमाणेषु साधुषु 'ते'
5 मतीच्छकाचार्यसाधवो न महीतन्त्राः, तस्यैव तान् प्रत्यवंगति । अथ वास्तव्याचार्यस्य साधवो
न पूर्यन्ते तत एकं सङ्घाटकं तस्य प्रयच्छति, तं ग्रुक्तवा शेवानात्मना ग्रुहाति । अथ वास्तव्याचार्यः सर्वश्रेवासहायस्ततः सर्वानिषि ग्रुहाति ॥ ५४९५ ॥

सहु असहुस्स वि तेण वि, वेपावचाइ सन्व कायन्वं। ते तेसि अणाएसा, वावारेउं न कप्पंति ॥ ५४९६ ॥

10 'तेनापि' मतीच्छकाचार्यादिना तत्याचार्यस्य सहिष्णोरसहिष्णोर्चा वैयाबुत्यादिकं सर्वमपि कर्तव्यम् । 'तेऽपि' साधवः 'तेषां' आचार्याणामादेशमन्तरेण व्यापारयित्तं न करूपन्ते ॥ ५४९६ ॥

॥ गणान्तरोपसम्पत्पकृतं समाप्तम् ॥

विष्वस्म वन प्रकृत स्

सूत्रम्--

15

20

भिक्स् य रातो वा वियाले वा आहच वीसुं भिजा, तं च सरीरगं केइ वेधावचकरे भिक्स् इच्छिजा एगंते बहुफासुए पएसे परिटृविचए, अस्थि यौई थ केइ सागारियसंतिए उवगरणजाए अचित्ते परिहर-णारिहे, कप्पइ से सागारिकडं गहाय तं सरीरगं एगंते बहुफासुए पएसे परिटृविचा तस्थेव उवनि-क्सिवियव्वे सिया २९॥

अस्य सम्बन्धमाह---

तिहिँ कारणेहिँ अभं, आयरियं उहिसिज तिहँ दुण्णि । मुत्तुं तहए पगयं, वीसुंभणसुत्तजोगोऽयं ॥ ५४९७ ॥

25 'त्रिभिः कार्णैः' अवसलतादिभिरत्यमाचार्यसृद्दिरोदिलुक्तम् (गा० ५१७४)। तन्नाथै 'है' अवसला-ऽवधावितल्लयो मुक्तम् 'तृतीयेन' कालगतरूपेण कारणेन प्रकृतम्, तिवृषयो विधिरनेनामिधीयत इति भावः। एष विध्वरम्बनसृत्रस्य 'योगः' सम्बन्धः॥ ५५९७॥ अवद्या संजमजीविय, भवनगढणजीवियाउ विगय वा।

१ अहर्ग तह पते, तामा । ॥ २ अत्र "आई" इसक्यं वाक्यालङ्कारे ॥ ३ विस्संभण तामा । ॥ अ प्रकारकारेण सम्बन्धमान इस्वतरणं को ।॥

अण्णुहेसी चुत्तो, इमं तु सुत्तं भवसाए ॥ ५४९८ ॥ अथवा संयमजीविताद भवमहणजीविताद्वा विगतेऽन्यस्याचार्यस्य उहेशः पूर्वसूत्रे उक्तः ॥

इदं त सूत्रं भवजीवितपरित्यागविषयमारभ्यते ॥ ५४९८ ॥

अतेन सम्बन्धनायातस्यास्य व्याख्या— भिक्षः चश्चन्दाद् आचार्योपाध्यायो वा रात्रो वा विकाले वा ''आह्व्य'' कदाचिद् 'विष्यम् भवेतं' जीव-शरीरयोः प्रथमावमाप्रुगात्, भ्रियत ५ ह्याथें । तच्च शरीरकं 'किश्चर्' वैयाकुरकरो भिक्षरिच्छेत् 'एकान्ते' विविक्तं 'बहुमाशुके' कीरिकादिसक्वरहिते प्रदेशे परिष्ठापयित्तम् । अस्ति चाल किश्चित् सागारिकसकं 'अचित्यं' निर्जीवं 'परिहरणाहं' परिमोगयोग्यमुल्यात्तम् , बहुनकाष्ट्रमित्यथं । कल्पते ''से'' तस्य भिक्षोक्षत्त काछं 'सागारिककहं ' 'सागारिकसकं सरकमितं नास्याक्षम्' इत्येवं गृहीदा तत् वारारिमकान्वे बहुमाशुके प्रदेशे परिष्ठापयित्ययं । तच्च परिष्ठाप्य वर्ते गृहीतं तत् काछं तत्रे-10 वोपनिलेसक्यं स्वादिति सुत्रार्थः ॥ सम्यति निर्मुक्तिविक्तरः—

पुन्ति दन्नोलोयण, नियमा गच्छे उवक्रमनिमित्तं । भत्तपरिण्ण गिलाणे, पुन्तुग्गहों थंडिलस्सेव ॥ ५४९९ ॥

यत्र साधवी मासकस्यं वर्षावारां वा कर्जुकामास्तत्र पूर्वमेव सिष्ठन्तः द्रव्यस्य-बहनकाष्ठा-देरवलोकनं नियमाद् गच्छवासिनः कुर्वन्ति । किमैर्थम् ! इत्याह—उपक्रमः—मरणं तत् 15 कस्यापि संयतस्य भवेदित्येवमर्थम् । तच मरणं कदाचिद् भक्तपरिज्ञावतो भवेत् , कदाचित् तु ग्लानस्य, उपलक्षणमिदम् , तेनाशुकारेण वा मरणं भवेत् , ततः पूर्वमेव महास्यण्डिलस्य बहनकाष्टादेश्च 'अवग्रहः' प्रस्युपेक्षणं विधेयम् ॥ ५४९९ ॥ अथ द्वारगाथात्रयमाह—

> पडिलेहणा दिसा णंतए य काले दिया व राओ य । जगगण-चंघण-छेघण, एयं तु विहिं तिहें कुआ ॥ ५५०० ॥ कुसपडिमाह णियत्तण, मत्तग सीसे तणाइँ उवगरणे । काउस्सग्ग पदाहिण, अब्धुद्वाणे य वाहरणे ॥ ५५०१ ॥ काउस्सग्गे सज्झाहए य खमणस्स मग्गणा होइ । बोसिरणे ओलोयण, सुभा-उसुगगइ-निमित्तहा ॥ ५५०२ ॥

वहनकाष्ट्रस्य स्विध्डलस्य च प्रथमत एव प्रत्युपेसणं विधेयम् । "दिस" ि दिस्मानो १० निरूपणीयः । "णंतए य" ित ओपसिहकानन्तकं मृताच्छादनार्थं गच्छे सदैव धारणीयम् ; जातिप्रधानश्चायं निर्देशः, ततो जवन्यतोऽपि त्रीणि वस्त्राणि धारणीयानि । "काले दिया व राओ अ" ित दिवा रात्रो वा कालगते विवादो न विधेयः । रात्रो च स्वाप्यमाने सृतके जागरणं कन्यनं छेदनं च कर्तव्यम् । एवं विधि तत्र कुर्यात् ॥

तथा नक्षत्रं विकोक्य कुशमतिमाया एकत्या द्वयोवां करणमकरणं वा । ''नियत्तिणे' ति ३० येन मथमतो गताः न तेनैव पथा निवर्तनीयम् । मात्रके पानकं गृहीस्वा पुरत एकेन साधुना

र 'त्' विष्कम्ममाप्तु' को । ''आहब' कवाई 'वींछ' प्रथम् 'सेजा' मनेवुः, प्रथक् शरीराजीको नियत हवार्यः'' इति चूर्णो विद्रोणचूर्णी च ॥ २ कि.म् ? इ' मो० के ॥

15

20

गन्तव्यम् । यसां दिशि प्रामस्ततः शीर्षं कर्तव्यम् । गृणानि समानि प्रस्तरणीयानि । 'उप-करणं' रजोहरणादिकं तस्य पार्श्वे धारणीयम् । अविधिपरिष्ठापनायाः कायोत्सर्गः स्वण्डिके स्वितैनं कर्तव्यः । निवर्तमानैः प्रादक्षिण्यं न विषेयम् । शवस्य चाभ्युरधाने वसत्यादिकं परि-त्यजनीयम् । यस्य च संयतस्य 'क्याहरणं' नामग्रहणं स करोति तस्य कोचः कर्तव्यः ॥

उम्हरकाशमातैः कायोत्सर्गो विधेयः । खाध्यायकस्य क्षपणस्य च मार्गणा कर्तव्या । उच्चारादिमात्रकाणां व्युत्सर्वनं कर्तव्यम् । अपरेऽहि तस्वावकोकनं शुभा-ऽशुभगतिज्ञानार्षे निमित्तप्रहणार्थं च विधेयमिति द्वारगाथात्रयसमासार्थः ॥ ५५०० ॥ ५५०१ ॥ ५५०२ ॥ अधैतदेव विवरीषराह—

> जं दव्वं घणमसिणं, वावारजढं च चिट्ठए बलियं। वेणुमय दारुगं वा, तं वहणट्टा पलोयंति ॥ ५५०३ ॥

यद् द्रव्यं वेणुनयं दारुकं वा धनमञ्चणं 'ब्यापारसुक्तम्' अवहमानकं 'बळीयः' हदतरं सागारिकस्य गृहे तिष्ठति तत् कालगतस्य वहनार्थं प्रथममेव प्रकोकयन्ति, महास्थण्डिकं च प्रत्योक्षणीयम् ॥ ५५०३ ॥ अथ न प्रत्युरेक्षन्ते तत हमे दोषाः—

अत्थंडिलम्मि काया, पत्रयणघाओ य होइ आसण्णे । छङ्गावण गहणाई, परुग्गहे तेण पेहिजा ॥ ५५०४ ॥

अस्मिण्डले परिष्ठाप्यत् यह् कायान् विराधयति । प्रवचनपातश्च प्रामादेरासके परिष्ठाप्यतो भवति । परावमहे च परिष्ठाप्यतः छदीपनं भवेत् । छदीपनं नाम-ते बळादिप साधु-पार्श्वादन्यत्र तं शवं परित्याजयेयुः । महणा-ऽऽकर्षणादयो दोषा भवेयुः । ततो महास्मण्डिक-मवस्यं प्रागेष मृत्युपेक्षेत ॥ ५५०४ ॥ गतं प्रत्युपेक्षणाद्वारम् । अथं विस्त्वासमाह—

दिस अवरदिक्लणा दिक्लणा य अवरा य दिक्लणापुन्ना ।

अवरुत्तरा य पुन्ना, उत्तर पुन्नुत्तरा चेव ॥ ५५०५ ॥ मधमम् 'अपरदक्षिणा' निर्फती दिग् निरीक्षणीया, तदमाने दक्षिणा, तस्या अमानेऽपरा, तदमान्ती 'दक्षिणपूर्वा' आभेयी, तदरामे 'अपरोत्तरा' नायनी, तस्या अमाने पूर्वा, तदमाने उत्तरा, तदमाने उत्तरपूर्वा ॥ ५५०५ ॥

सम्प्रति प्रथमायां दिशि सत्यां शेषदिश्च परिष्ठापने दोषानाह—

समाही य भत्त-पाणे, उवकरणें तुमंतुमा य कलहो य । मेदो गेलकं वा, चरिमा पुण कह्नए अण्णं ॥ ५५०६ ॥

प्रथमायां दिशि शक्स्य परिष्ठापने प्रञ्जराज-पान-कक्षराभवः समाधिर्भवति । तस्यां सत्यां यदि दक्षिणस्यां परिष्ठापयन्ति तदा भक्त-पानं न रूमन्ते, अपरस्याग्रपकरणं न प्राप्तुवन्ति, अदक्षिणपूर्वस्यां द्वमन्द्वमा परस्यरं साधूनां भवति, अपरोत्तरस्यां करूहः संयत-मृहक्षा-ज्यती-विकै: समं भवति, पूर्वस्यां गणमेदश्यारित्रमेदो वा भवेत्, उत्तरस्यां म्ह्यान्त्वम्, 'बरमा' पूर्वोत्तरा सा कृतमृतकपरिष्ठापना अन्यं साधुमाकर्षति, गारयतीत्वर्षः ॥ ५५०६ ॥

आसम मज्म द्रे, वाघातद्वा तु थंडिले तिभि ।

खेतुदय-इरिय-पाणा, णिविङ्गमदी व नाघाए ॥ ५५०७ ॥ मचमायामि दिखि मीणि स्वण्डिकानि मत्युपेक्षणीयानि—मामादेरासके मध्ये दूरे च । किमर्च पुराक्षीण मत्युपेक्ष्यन्ते ! इत्याह—व्याधातार्थम्, व्याधातः कदाचिद् भवेदित्यर्थः । स चायम्—क्षेत्रं तत्र मदेशे इष्टम्, उदकेन वा भावितम्, हरितकायो वा जातः, त्रस-माणिभिर्वा संसक्तं समजनि, मामो वा निविष्टः, आदिमरुणेन सार्यो वा आवासितः । एव-5 मादिको स्याधातो यदि आसक्तसण्डिके भवति तदा मध्ये परिष्ठापयन्ति, तत्राणि व्याधाते दूरे परिष्ठापयन्ति । अत्र मथमायां दिखि विष्मानायां द्वितीयायां तृतीयायां वा मत्युपेक्षन्ते तत्रसञ्जूर्णुरुकाः ॥ ५५०७॥ एते च दोषाः—

एसणपेक्षण जोगाण व हाणी मिण्ण मासकप्यो वा । भत्तोवधीअभावे, इति दोसा तेण पढमिम्म ॥ ५५०८ ॥

भक्त-पानाकामाद् उपचेरकामाच एषणामेरणं कुर्युः । अधैषणां न मेरचेयुः ततः 'बोगानार' कावस्यकल्यापाराणां हानिः । अपरं वा क्षेत्रं गच्छतां मासकस्पो भिन्नो भवेत् । एतमादयो दोषा भक्तोषच्योरमावे भवन्ति ततः प्रथमे दिग्मागे महास्यण्डिङं प्रस्तुपेक्षणीयम् ॥ ५५०८॥

एमेव सेसियासु वि, तुमंतुमा कलह मेद मरणं वा । जं पावंति सविद्विया, गणाहिबो पाविहिति तं तु ॥ ५५०९ ॥

वधा दितीयायां च तीयायां च दोषा उका एवमेव 'दोषास्ति' वतुष्यीदिषु यत् तुमन्दु-माक्तर्णं करूर्दं गणभेदं मरणं वा सुविहिताः प्रासुवन्ति तद् गणापिषः सर्वमिष प्राप्तति । अथ प्रथमायां व्यापातस्ततो द्वितीयायामिष प्रसुपेक्षणीयम् । तस्यां च स एव भक्त-पानजाय-रूक्षणो गुणो भवति यः प्रथमायामुक्तः । अथ द्वितीयस्यां विष्यमानायां तृतीयायां प्रसुपेक्षन्ते ततः स एव प्रागुको दोषः, एवमप्तमं दिशं यावद् नेतत्यम् । अथ द्वितीयस्यां व्यापातस्तत-20 रहतीयस्यां प्रसुपेक्षणीयम्, तस्यां च स एव गुणो भवति । एवमुक्तोचरदिश्वपि भावनीयम् ॥ ५५०० ॥ गतं दिखास्य । अथ णन्तकहारमाइ—

वित्थारा-SSयामेणं, जं वत्थं लब्मती समितिरेगं। चोक्ख सुतिगं च सेतं, उवकमद्रा घरेतव्वं ॥ ५५१० ॥

विद्यारेणायामेन च यद् वैक्षप्रमाणमर्द्धवृतीयहत्तादिकं तृतीयोदेशके मणितं ततो यद् 26 वक्षं समितिरेकं रुम्यते । कथम्मृतम् १ ''चोक्खं'' धविरुतं 'शुचिकं नाम' सुगन्धि 'क्षेतं' पाण्डुरम् । प्वंविषं जीवितोपक्रमार्थं गच्छे धारयितव्यम् ॥ ५५१० ॥

गणनाप्रमाणेन तु तानि त्रीणि भवन्ति, तद्यथा---

अत्थुरणहा एगं, बिझ्यं छोद्धमुवर्रि घणं बंधे । उक्कोसयरं उर्वारं, बंधादीछादणहाए ॥ ५५११ ॥

१ बसस्य ममाणं यथाकममर्भवृतीयहस्तचतुष्टयस्रक्षणं तृतीयोहे° कां ।।

ष्रतीबोज्जवलं बन्धादिच्छादनार्थं ततुपरि स्थापनीयम् । एवं जवन्यतक्षीणि वक्काणि महीत-व्यानि । उत्कर्यतस्तु गच्छं ज्ञात्वा बहुन्यपि गृक्षन्ते ॥ ५५११ ॥

एतेसि अगाहंणे, चउगुरु दिवसम्मि विष्णिया दोसा । रसि च पडिच्छंते. गुरुगा उद्दाणमादीया ॥ ५५१२ ॥

५ 'एतेशम्' एवंविधानां त्रयाणां वस्ताणाममहँणे चतुर्गुरु मायश्चित्तम् । मिलनबस्तामहते च तस्तिन् दिवसतो नीयमाने 'दोषाः' अवर्णवादावया वर्णिताः । अवैतदोषमयाद् 'रात्री परिष्ठापिकचामि' इति बुद्धा मृतकं मतीक्षापयित ततश्चतुर्गुरुका उत्थानादयश्च दोषाः ॥ ५५१२ ॥ कथं पुनरवर्णवादादयो दोषाः श्वरताह—

उज्झाइए अवण्णो, दुविह णियत्ती य महरुवसणाणं।

10 तम्हा तु अहत कसिणं, घरेंति पन्खस्स पिंडलेहा ॥ ५५१३ ॥

"उज्ज्ञाह्नए" मिलनकुचेले तसिन् नीयमानेऽवर्णो भवति — अहो ! अमी वराका सृता अपि शोमां न रूमन्ते । मिलनवस्त्राणां च दर्शने द्विविधा निवृत्तिभवति, सम्यस्त्रं प्रवत्या च प्रहित्तुकामाः प्रतिनिवर्तन्ते । शुचि-श्रेतवस्त्रदर्शने तु लोकः प्रशंसति — अहो ! शोमनो धर्म इति । यत एवं तस्याद् 'अहतम्' अपरिशुक्तं 'कृत्सं' प्रमाणतः प्रतिपृणै वस्त्रिकं घार-15 णीवम् । पक्षस्य चान्ते तस्य प्रस्युपेक्षणा कर्तव्या, दिवसे दिवसे प्रत्युपेक्षमाणं हि मिलनी-मवेत् ॥ ५५१३ ॥ गतं णन्तकद्वारम् । अथ "दिवा रात्रो वा कालगतः" इति द्वारमाह—

आसुकार गिलाणे, पचक्खाए व आणुपुर्वीए ।

दिवसस्स व रत्तीइ व, एगतरे होजऽवकमणं ॥ ५५१४ ॥

आशु-शोधं सजीवस्य निर्जीवीकरणमाशुकारः, तत्कारणत्वाट् अहि-विष-विश्विकादयोऽ-20 प्याशुकारा उच्यन्ते, तैः 'अपक्रमणं' मरणं कस्यापि भनेत् । 'स्लानत्वेन वा' मान्येन कोऽपि भ्रियेत । 'आनुपूर्व्यो वा' शरीरपरिकर्मणाक्रमेणं भक्ते प्रत्यास्थाते सति कश्चित् कार्ल्यम् गच्छेत् । एवं दिवस-रजन्योरेकतरस्मिन् कार्ले जीवितादपक्रमणं भनेत् ॥ ५५१४ ॥

एव य कालगयम्मि, मुणिणा सत्त-ऽत्थगहितसारेणं । न विसातो गंतव्यो, कातव्य विधीय वोसिरणं ॥ ५५१५ ॥

'य्वम्' एतेन प्रकारेण काल्यते सति साथी सूत्रा-ऽर्थगृहीतसारेण द्वनिना न विषादो
गन्तव्यः, किन्तु कर्तव्यं तस्य काल्यतस्य विधिना ब्युत्सर्जनम्॥५५१५॥कथम् ? हत्याह—

आयरिओ गीतो वा, जो व कडाई तहिं भवे साह ।

कायन्त्रो अखिलविही, न तु सोग भया न सीतेजा ॥ ५५१६ ॥ यस्त्रप्राचार्योऽपरो वा गीतार्थो यो वा अगीतार्थोऽपि 'क्वतादिः' ईडरो कार्ये क्वतकरणः 30 ब्रादिशब्दाद् धैर्यादिगुणोपेतः साधुर्भवति तेनासिकोऽपि विधिः कर्तन्यः, न पुनः शोकाद् भयाद्वा तत्र 'सीदेत्' यथोक्तविधितयाने ममादं क्रयीत् ॥ ५५१६ ॥

१°हणे, गुस्ना दिव° तामा॰॥ २°हणे उपलक्षणत्वाद् अधारणे च चतु° सं०॥ ३°ण संलेखनापरस्सरं भक्ते बं॰॥

किमारुम्ब्य शोक-भये न कर्त्तव्ये ! इत्याह----

सन्वे वि मरणधम्मा, संसारी तेण कासि मा सोगं।

जं चडप्पणो वि होहिति, किं तत्थ सयं परगपिम ॥ ५५१७ ॥ सर्वेडिप संसारिणो जीवा मरणधर्माण इत्यालम्ब्य शोकं मा काषीः । यच मरणमास्मतोऽिष कालक्रमेण भविष्यति तत्र 'परगते' परत्य सङ्गाति किं नाम भयं विधीयते ? न किश्चिदित्यर्थः है ॥ ५५१७ ॥ गतं 'दिवा रात्री वा" इति द्वासम् । अथ जागरण-नन्यन-च्छेदनद्वासमाह—

जं वेलं कालगतो. निकारण कारणे भर्वे निरोधो ।

जरगण बंघण छेदण, एतं तु विहिं तहिं कुआ ॥ ५५१८ ॥ दिवा रजन्यां वी यसां वेठायां काठगतस्त्रस्यामेव वेठायां निष्काशनीयः । एवं निष्कारणे उक्तम् । कारणे तु निरोधोऽपि भवेत् । निरोधो नाम-कियन्तमपि कार्रं प्रतीक्षाप्यते । तत्र 10 च जागरणं कन्यनं छेदनं 'एतम्' एवमादिकं विधिं वक्ष्यसाणनीत्या क्रयीत् ॥ ५५१८ ॥

कैः पुनः कारणैः स प्रतीक्षाप्यते ? इत्याह-

हिम-तेण-सावयभया, पिहिता दारा मेंहाणिणादी वा ।

ठवणा नियमा व तर्हि, आयरिय महातवस्सी वा ॥ ५५१९ ॥
रात्री दुरिषसहं हिमं पतित, स्तेमभयात् धापदभयाद्वा न निर्मन्तुं शक्यते । नगरद्वाराणि 16
वा तदानीं मिहितानि । 'महानिनादो वा' महाजनज्ञातः स तत्र प्राप्ते नगरे वा । 'स्वापना वा'
तत्र प्रामादौ ईद्द्दी व्यवस्था, यथा — रात्री मृतकं न निष्काशनीयम् । 'निजका वा' संज्ञातकास्त्रत्र सन्तित ते भणन्ति — अस्थाकमनाष्ट्रक्वया न निष्काशनीयः । जावार्यो वा स तत्र
नागरेऽतीव कोकविस्थातः । 'महातपस्ती वा' प्रमृतकालपालितानशनो मासादिक्षयको वा ।
एतैः कारणे र जन्यां प्रतीक्षाप्यते ॥ ५५१९॥ दिवा पुनरिभः कारणेः प्रतीक्षापयेत — 20

णंतक असती राया, वऽतीति संतेषुरो पुरवती तु ।

णीति व जणणिवहेणं, दार निरुद्धाणि णिसि तेणं ॥ ५५२० ॥
'णन्तकानां' शुनि-क्षेतवस्राणामभावे दिवा न निष्काश्यते । राजा वा सान्तःपुरः पुरवतिवी नगरम् 'अतियाति' प्रविशति 'जननिवहेन वा' महता भट-भोजिकादिश्चन्देन नगराद्
निर्गेच्छति ततो द्वाराणि निरुद्धानि, तेन निशि निष्काश्यते । प्वं दिवाऽपि प्रतीक्षापणं 26
भवेत् ॥ ५५२० ॥ अत्र चायं विधिः—

बातेण अणकंते, अभिणवसुकस्त हत्थ-पादे उ । कुन्वंतऽहापणिहिते, सुह-णयणाणं च संपुडणं ॥ ५५२१ ॥

बातेन बावव् अधापि शरीरकम् आकारतं-स्वब्धं न भवति तावव् अभिनवजीवितमुक्तस्य इस्त-पादान् 'यथाप्रणिहितान्' प्रगुणतया रुम्बमानान् कुर्वन्ति, मुख-नयनानां च 'सम्पुटनं' ३० सम्मीङनं कुर्वन्ति ॥ ५५२१ ॥ जागरणादिविधिमाह—

१ वा "जं बेलें" ति विभक्तिव्यत्ययाद् यस्यां कं । ॥ २ महाणणातो वा तामा । "महाणि-णादो व ति महायणणादो वा तो" इति सूर्णी विद्योषसूर्वी च ॥

15

जितणिहुवायकुसला, ओरस्सवली य सत्तजुत्ता य । कतकरण अप्पमादी, अमीरुगा जागरंति तर्हि ॥ ५५२२ ॥

जितनिद्रा उपायकुरार्जः 'औरसब्टिनः' महापराक्रमाः 'सत्त्वपुक्ताः' चैर्यसम्पन्नाः कृत-करणा अपमादिनोऽमीरुकाश्च ये साधवस्ते तत्र तदानीं जामति ॥ ५५२२ ॥

जागरणद्वाएँ तर्हि, अभेसि वा वि तत्थ घम्मकहा । मुत्तं घम्मकहं वा, मधुरिगिरो उन्तसहेणं ॥ ५५२३ ॥ जागरणार्थं तत्र तैरत्योत्यं 'अत्येषां वा' आद्वादीनां धर्मकथा कर्तव्यौ । सयं वा स्वं 'धर्मकथां वा' धर्मप्रतिनद्वामास्थायिकां मधुरिगर उन्तशब्देन गुणयन्ति ॥ ५५२३ ॥ अब क्श्यन-च्छेदनपदे व्यास्थाति—

> कर-पायंगुहे दोरेण बंघिउं पुत्तीए मुहं छाए । अक्खयदेहे खणणं, अंगुलिविचे ण बाहिरतो ॥ ५५२४ ॥

'कर-पादाङ्ग्रहम्' कराङ्ग्रहस्य पादाङ्ग्रहस्यं च दवरकेण बद्धा सुल्पोतिकया सुलं छाद-येत्, एतत् बन्मनसुच्यते । तथा अक्षतदेहे तस्मित् ''अंगुजीविषे" अङ्ग्रहीमध्ये चीरैके 'सननम्' ईवरकालनं क्रियते न बाह्मतः, एतत् छेदनं मन्तस्थम् ॥ ५५२४ ॥

> अण्णाहद्वसरीरे, पंता वा देवतऽत्य उद्वेखा । परिणामि डम्बहत्येण बुज्झ मा गुज्झगा ! सुज्झ ॥ ५५२५ ॥

एबमि कियमाणे यदि 'अन्याजिष्टशरीरः' सामान्येन व्यन्तराधिष्टितदेहः 'प्रान्ता वा' प्रत्यनीका काचिद् देवता 'अत्र' अवसरे तत्कत्वेवरमनुपविद्योजिष्ठेत् ततः 'परिणामिनीं' कायिकी "डब्बहरवेणं" ति वागहस्तेन गृहीत्वा तत् कडेवरं सेचनीयम्। इदं च वक्कव्यम्— 20 बुष्यस्त बुध्यस्त गुद्धक ! 'मा मुख' मा भगदीः, संसारकाद् मा उत्तिष्टेति सावः ॥ ५५२५॥

विचासेज रसेज व, भीमं वा अद्वहास मुंचेजा।

अभिएण सुविहिएणं, कायन्व विहीय वोसिरणं ॥ ५५२६ ॥

अन्याधिष्ठतं तत् कडेवरें 'विजासयेत्' विकरारुरूपं दर्शयित्वा भाषयेद् 'रसेद्वा' आराटिं मुखेद् 'भीमं वा' रोमहर्षजनकं अहहासं मुखेत् तथापि तत्राभीतेन मुजिहितेन 'विधिना' 26 पूर्वोक्तेन वक्ष्यमाणेन च व्यत्सर्जनं कर्तज्यम् ॥ ५५२६ ॥

गतं जागरणादिद्वारम् । अथ कुशप्रतिमाद्वारमाह---

दोण्णि य दिवड्डखेत्ते, दब्भमया पुर्त्तगऽत्थ कायव्वा ।

समस्वेत्तिम्म य एको, अबहु अभिए ण कायच्वी ॥ ५५२७ ॥ काट्याते सति संयते नक्षत्रं विलोक्यते । यदि न विलोक्यति ततश्रवर्गुरः । ततो नक्षत्रे 30 विलोकिते यदि सार्द्धक्षेत्रं तदानीं नक्षत्रम् , सार्द्धक्षेत्रं नाम-पश्चचलारिकान्यहर्तमोम्मं सार्द्ध-दिनभोग्यमिति यावत् , तदा दर्भमयौ द्वी पुत्रको कर्तव्यो । यदि न करोति तदाऽपरं साध-

१ °ला इति द्वयमि प्रकटार्थम्, 'औं कां ॥ २ एत्तनत्तरे कां व्रन्थाप्रम्—४००० इति वर्तते ॥ ३ °रकप्रदेशे 'खं कां ॥ ४ °क्तछऽतथ ताभा ॥

द्वसगकर्षति । तानि च साद्धेक्षेत्राणि नक्षत्राणि षद् भवन्ति, तद्यथा—उराराक्षरगुन्य उरारा-षाडा उराराभद्रपदाः पुनर्वस् रोहिणी विशासा चेति । अथ समक्षेत्रं-त्रिशन्युहर्तभौग्यं यदा नक्षत्रं तत एकः पुराठकः कर्तन्यः 'एम ते द्वितीयः' इति च वक्तव्यम् । अकरणेऽपरमेक-माकर्षति । समक्षेत्राणि चायूनि पद्यदश—अधिनी हृष्टिका प्रगिशरः पुण्यो मधाः पूर्वा-फालपुन्यो हर्वाक्षत्रा अनुराधा मृत्वं पूर्वाषादाः अवणो धनिष्ठाः पूर्वमद्रपदा रेवती चेति । । अथापार्द्वक्षेत्रं-पद्यदश्चपूर्तभोग्यं तत् नक्षत्रम् अमीचिर्वा तत एकोऽपि पुराठको न कर्तन्यः । अथाद्वेक्षत्राणे चायूनि पर्—शतमिष्ण् भरणी आर्द्रो अक्षेपा खातिज्येषा चेति ॥ ५५९० ॥ अथ निवर्तनद्वारमाठ—

> थंडिलवाघाएणं, अहवा वि अतिच्छिए अणाभोगा । भमिऊण उवागच्छे, तेणेव पहेण न नियत्ते ॥ ५५२८ ॥

तत्र नीयमाने खण्डिकस्पोदक-हरितादिनिर्म्यापातो भनेत्, अनाभोगेन वा खण्डिकमति-कान्तं भनेत्, ततः 'अमित्वा' प्रदक्षिणामकुर्वाणा उपागच्छेयुः, तेनैव पथा न निवर्तेस्त् ॥ ५५२८ ॥ जइ तेणेव मग्गेण नियर्जति तो असमायारी, कयाइ उद्देजा, सो य जओ चेव उद्दह्र तओ चेव पहाबह, तस्य जओ गामो ततो धाविज्ञा (आव० पारि० निर्यु० गा० ४७ हारि० टीका पत्र ६३५–२) तत एवं कर्जव्यस्—

वाघायस्मि ठवेउं, पुन्वं व अपेहियस्मि शंढिल्ले ।

तह पोति जहा सें कमा, ण होंति गामस्त पिडहुत्ता ॥ ५५२९ ॥ स्वं^{ति}डरूस व्यापाते पूर्वे वा स्वण्डिरुं न असुपेक्षितं ततस्वत् सृतकमेकान्ते स्वापिस्ता स्वण्डिरुं च मत्युपेक्ष्य तथा अमयित्वा नयति यथा तस्य 'कमी' पादौ मामं प्रति अभिग्रस्तौ न भवतः ॥ ५५२९ ॥ अथ मात्रकद्वारमाह—

> सुत्त-ऽत्थतदुभयविऊ, पुरतो घेत्तृण पाणग इसे य । गच्छति जइ सागरियं. परिद्ववेऊण आयमणं ॥ ५५३० ॥

सूत्रा-ऽर्थ-तदुनयवेदी मात्रकेऽसंसृष्टधानकं 'कुशांक्ष' दर्भान् 'समच्छेदान्' परस्परमसम्बद्धान् हस्त्रचुरङ्कुळभाणान् गृहीत्वा प्रष्ठतोऽनेपेक्षमाणः 'पुरतः' अमतः स्विण्डकामिमुक्तो गच्छति । दर्भाणाममाने वृण्णीने केशराणि वा गृष्टते । यदि सागारिकं ततः शवं परिष्ठाप्य 25 'आवमनं हस्त-गदशोचादिकं कर्तव्यम् । आवमनम्बर्णेनेदं ज्ञागयति—यथा यथा मवचनो-क्वाहो न मचति तथा तथा अपरमपि विधेयम् ॥ ५५३० ॥ अथ शीर्षद्वारमाह—

त तथा तथा अपरमाप विधयम् ॥ ५५३० ॥ अथ शाषद्वारमाह— जत्तो दिसाऍ गामो, तत्तो सीसं तु होइ कायव्वं ।

उद्वेतरक्खणद्वा, अमंगलं लोगगरिहा य ॥ ५५३१ ॥

यस्यां दिशि प्रामस्ततः शीर्षे शक्स प्रतिश्रयाद् नीयमानस्य परिष्ठाप्यमानस्य च कर्त-३० व्यम् । किमर्थम् ? इत्याह—उचिष्ठतो रक्षणार्थम् , यदि नाम कथश्चिद्चिष्ठते तथापि प्रति-

१ पूर्वप्रतपुरेक्षितस्य स्विण्डलस्य व्याचातेऽथवा पूर्वे स्विण्डलं न प्रत्युपेक्षितं विस्सृ तमिस्वर्षः ततस्तव् सृत्र° का॰ ॥ २ °ऽनवलोकमानः 'पु° का॰ ॥

अवाभिमुलं नामच्छतीति भावः । अपि च—यत्मां दिशि मामलदिभमुलं पादयोः कियमा-णयोरमक्कलं भवति, लोकश्च गर्हां कुर्यात्—अही ! अमी श्रमणका एतदिष न जानन्ति शद् मामाभिमुलं शवं न कियते ॥ ५५११ ॥ अथ तृणादिद्वारमाह—

> कुसमुद्विएण एकेणं, अन्बोच्छिण्णाऍ तत्थ घाराए । संथार संथरिजा. सन्वत्थ समो य कायन्वो ॥ ५५३२ ॥

सथार सथारआ, सब्दत्य समा य कायन्त्रा । ५५२२ ॥
 यदा स्विव्हलं प्रमार्जितं भवति तदा कुश्चपृष्टिनैकेनाव्यविद्यलया धारया संखारकं
 संखतेत, स च सर्वत्र समः कर्तव्यः ॥ ५५३२ ॥ विषमे एते दोषाः—

। सबन समः कतव्यः ॥ ५५२५ ॥ विषम ५त दावाः— विसमा जति होज तणा, उर्वारं मज्ज्ञे तहेव हेट्टा य । मरणं गेलज्ञं वा. तिण्हं पि उ णिहिसे तत्थ ॥ ५५३३ ॥

10 'विषमाणि' तृणानि यदि तस्मिन् संतारके उपिर वा मध्ये वाऽघस्ताद्वा भवेषुः तदा त्रयाणामि मरणं ग्लान्त्वं वा निर्दिशेत् ॥ ५.४.३ ॥ केषां त्रयाणान् १ इत्याह—

उवरिं आयरियाणं, मज्झे वसभाण हेट्रि भिक्खणं ।

तिण्हं पि रक्खणहा, सञ्वत्थ समा य कायच्वा ॥ ५५२४ ॥ उपरि विषमेषु तृणेषु आचार्याणां मध्ये वृषमाणामध्ताद् मिश्चूगां मरणं म्हानस्वं वा १६मवेत्, अतस्रयाणामपि रक्षणार्थं सर्वत्र समानि तृणानि कर्तव्यानि ॥ ५५३४ ॥

जत्थ य नित्थ तिणाई, चुण्णेहिं तत्थ केसरेहिं वा। कायव्योऽत्थ ककारो, हेद्र तकारं च वंधेजा ॥ ५५३५ ॥

यत्र तृणानि न सन्ति तत्र चूर्णैर्वा नागरकेशरैर्वाऽज्यवच्छित्रया धारया ककारः कर्तव्यः तस्याधसात् तकारं च बधीयात् , क इत्यर्थः । चूर्णानां केशराणां चामावे प्रतेषकादिमिरिष २०क्रियते ॥ ५५३५ ॥ अथोपकरणदारमाहः—

> चिधद्वा उवगरणं, दोसा तु भवे अचिधकरणम्मि । मिच्छत्त सो व राया, क्रणति गामाण वहकरणं ॥ ५५३६ ॥

परिद्याप्यमाने चिह्नार्थं यथाजातसुपकरणं पार्श्वं स्वापनीयम् । तवाधा—राजोहरणं मुलयो-तिका चोळपट्टकः । यदि एतद् न स्वापयन्ति ततश्रवर्गुरुः । आज्ञादयश्च दोषाः चिह्नस्याकरणे 25 भवन्ति । 'स वा' काळगतो मिथ्यात्वं गच्छेत् । राजा वा जनपरपराया तं ज्ञात्वा 'कश्चिद् मनुष्योऽमीभिरपद्रावितः' इति बुद्धा कृषितः मत्यासकवर्तिनां द्विच्यादीनां स्नामाणां वैधं कर्यात् ॥ ५५३६ ॥ अथैतदेव मावयति—

उवगरणमहाजाते, अकरणें उज्जेणिभिक्खुदिट्टंतो । लिंगं अपेच्छमाणो, काले वहरं तु पाडेनि ॥ ५५३७ ॥

अयाजातमुपकरणं यदि तस्य पार्श्वे न कुर्वन्ति ततोऽत्यो देवलोकगतः मयुक्तावधिः 'बहरम-नेन गृहलिक्षेन परलिक्षेन वा देवो जातः' इति सिध्यात्वं गच्छेत् । उद्ययिनीसिखुरद्दान्त-श्चात्र भवति, स चावइयकटीकातो मन्तव्यः (आव० हारि० टीका पत्र ८१३-१) । यस्य १ 'भीभिरेतद्वामवास्तव्यैरप' कां०॥ २ वधकरणं कुर्यात्, विनाहासिख्ये ॥ कां०॥

वा मामस्य पार्श्वे परिष्ठापितः तत्र तत्पार्श्वे लिक्कमपद्मन् लोको राजानं विज्ञपयेत्। स च 'केनाप्यपद्मावितोऽयम्' इति मत्वा कालेन प्रतिवैरं पातयति, वैरं निर्यातयतीति भावः ॥ ५५३७॥ कायोस्सर्गद्वारमाह—

उद्वाणाई दोसा, इवंति तस्येच काउसम्गम्मि । आगम्ब्रुवस्तयं गुरुसमीव अविहीय उस्सम्गो ॥ ५५३८ ॥ 5 'तत्रैब' परिष्ठापनमूमिकायां काबोस्सर्गे क्रियमाणे उत्थानादयो दोषा भवन्ति, अत उपा-अयमागम्य गुरुसमीपेऽविषिपरिष्ठापनिकायाः कायोस्सर्गः कर्तव्यः ॥ ५५३८ ॥

शदक्षिण्यद्वारमाह— जो जहियं सो तत्तो, णियत्तइ पयाहिणं न कायव्वं । उद्वाणादी दोसा, विराहणा बाल-बुक्वाणं ॥ ५५३९ ॥

उद्वाणादा दासा, ावराहणा नाल्यकुष्टाणा । २२२४ ॥ दावं परिद्वाप्य यो अत्र भवति स ततो निवतंते, प्रादक्षिण्यं न कर्तव्यम् । यदि कुर्वन्ति तत उत्थानादयो दोषा बाल-बृद्धानां च विराधना भवति॥ ५५३९ ॥ अधारयुत्थानद्वारमाह—

जह पुण अणीणिओ वा, णीणिजंतो विविचित्रो वा वि । उद्देश समाहद्दी, तत्थ हमा मम्पणा होति ॥ ५५४० ॥ यदि पुनः स कारुगतोऽनिकाशितो वा निष्कास्यमानो वा 'विविक्तो वा' परिष्ठापितो १६ व्यन्तरसमाविष्ट उत्तिक्षेत्र ततस्त्रेत्रयं मार्गणा भवति ॥ ५५४० ॥

वसिंह निवेसण साही, गाममज्झे य गामदारे य । अंतर उजाणंतर, णिसीहिया उद्दिते वोच्छं ॥ ५५४१ ॥

बसती वा स उचिष्ठेत्, 'निवेशने वैं।' पाटके 'साहिकायां वा' गृहपिक्करपायां प्राममध्ये वा प्रामद्वारे वा प्रामोधानयोरन्तरा वा उद्याने वा उद्यान-नैपेधिक्योरन्तरा वा 'नैपेधिक्यां वा' 20 श्रवपरिग्रापनमृत्याम्, एतेषु उत्थिते यो विधितां वक्ष्यामि ॥ ५५४२ ॥

प्रतिज्ञातमेव करोति---

उवस्सय निवेसण साही, गामद्धे दारें गामो मोत्तव्वो । मंडल कंड देसे, णिसीहियाए य रखं तु ॥ ५५४२ ॥

तत् कडेबरे नीयमानं यदि वसताबुणिष्ठति तत उपाश्रयों मोक्तव्यः । अत्र निवेद्यने उत्ति-20 ष्ठति ततो निवेद्यनं मोक्तव्या । साहिकायामुख्यते साहिका मोक्तव्या । शामक्षये दिखते आगार्धः गोक्तव्या । शामक्षये दिखते आगार्धः गोक्तव्या । शामक्षये वास्तरा यदि उपिष्ठति तदा विषयमण्डलं मोक्तव्या । उद्यानं चलके देशक्षयं मण्डलाद् वृह्दत्तरं परितमक्तव्याम् । उद्यानं योविष्ठते विष्ठति देशः परित्तवंव्यः । नैषेषिवयामुस्यितं राज्यं परित्यक्तव्याम् । अधानस्य नैषेषिवयामुस्यितं राज्यं परित्यक्तवंव्यः । मेष्पष्टिवयामुस्यितं राज्यं परित्यक्तियाम् । ५५५२ ।। एवं तावकीयमानस्योत्यानि विषिठकः । परिष्ठापिते व तस्तिन् १० गीतार्था एकस्मिन् पार्थं ग्रह्मतं प्रतिकृतेन्तः स्वाविष्ठते एक्तवं वाष्ट्राविष्ठते तत्र वाष्ट्र विषिठकः ।

वर्चते जो उ कमो, कलेवरपवेसणस्मि वोचत्थो।

१ काले कियत्यपि गतेऽचसरं लब्ध्वा वैरं पा° कं । २ वा' उपाश्रयवद्यवाट° कं • #

णवरं पुण णाणत्तं, गामदारम्मि बोद्धव्वं ॥ ५५४३ ॥

'क्रवता' निर्मच्छतां कडेबरस्योत्याने यः कमो भणितः स एव विपर्यस्तः कडेबरस्य परि-ष्ठापितस्य भूषः प्रवेशने विश्लेषः । नवरं पुनरत्र नानात्वं प्रामद्वारे बोद्धव्यप् , तत्र वैपरीत्यं न भवति किन्त तक्यतैविति भावः । तथा चात्र ब्रद्धसम्प्रदायः —

भवति किन्तु तुल्यतैवेति भावः । तथा चात्र शृद्धसम्प्रदायः—

निसीहियाए परिदृतिओ जह उद्देचा तस्थेव पिडजा ताहे उबस्सओ मोचबो । निसीहियाए उज्जाणस्स य अंतरा पडह निवेसणं मोचबं । उज्जाणे पडह साही मोचबा । उज्जाणस्स य गामस्स थ अंतरा पडह गामद्धं मोचबं । गामहिर पडह गामी मोचबो । गामगञ्जे पडह मंडळं मोचबं । साहीए पडह देसखंडं मोचबं । निवेसणे पडह देसो मोचबो । वसहीए पडह रुजं मोचबं ।।

10 अत्र निर्गमने प्रवेशने च मामद्वारात्थाने मामत्याग एवोक्त इति मामद्वारे तुरूयतैव न वैषरीत्यम् ॥ ५५४३ ॥ अथ परिष्ठापितो व्यादिवारान् वसति प्रविशति ततोऽयं विधिः—

विद्यं वसहिमतिते, तगं च अण्णं च मुचते रजं। तिप्यभिति तिनेव उ. मुयंति रजाडँ पविसंते ॥ ५५४४ ॥

निर्युदो यदि द्वितीयं बारं वसर्ति प्रविश्वति तदा तचान्यच राज्यं युच्यते, राज्यद्वय-15 मित्यर्थः । अथ 'त्रिममृतीन' त्रीन् चतुरो बहुशो वा वारान् वसर्ति प्रविश्वति तदा श्रीण्येव राज्यानि मुर्चति ॥ ५५४८ ॥

> असिवाई बहिया कारणेहिं, तत्थेव वसंति जस्स जो उ तवो । अभिगहिया-ऽणभिगहितो, मा तस्स उ जोगपरिवृही ॥ ५५४५ ॥

यदि बहिरशिबादिभिः कारणैर्न निर्मच्छन्ति तनस्त्रत्रैव वसतां यस्य यत् तपोऽभिगृहीत१० मनभिगृहीतं वा तेन तस्य ष्टद्धिः कर्तव्या, सा च योगपरिवृद्धिरभिषीयते । किमुक्तं
भवति !—ये नमस्कारमत्वाख्यायिनस्ते पौरुषीं कुवीन्ति, पौरुषींअध्याख्यायिनः पूर्वाद्धै कुवा
शक्तौ सत्यामाचाम्छं पारयन्ति, शक्तिरभावे निर्विकृतिकमेकासनकं यावद् द्यासनकमपि ।
यदाह चर्णिकृत्त—

सइ सामत्ये आयेविलं पारिति, असइ निज्वीयं एकासणयं, असमस्या सर्वाइयं पि ति । एवं पूर्वार्द्धमत्याख्यानिनश्चतुर्थम्, चतुर्थमत्याख्यातारः षष्ठम्, षष्ठपत्याख्यायिनोऽष्टमम्, एवं विस्तरेण विभाषा कर्तन्या ॥ ५५४५ ॥

एवं योगपरिवृद्धिं कुर्वनामिप यदि कदाचिदुत्थाय आगच्छेत् तदाऽयं विधिः— अण्णाइद्वसरीरे, पंता वा देवतऽस्थ उदिङ्का ।

काईय उन्बहत्थेण, भणेज मा गुज्झया ! मुज्झा ॥ ५५४६ ॥

गैतार्था (गा० ५५२५) ॥ ५५४६ ॥ अथ व्याहरणद्वारमाह—

गिण्हइ णामं एगस्स दोण्ह अहवा वि होज सन्वेसिं।

१ °ञ्चति नाधिकानीति ॥ ५५४४ ॥ अथाशिवादिकारणं भणित्वा बहिर्न निर्गच्छन्ति ततोऽयं विधिः—असि° को० ॥ २ व्याख्यातार्था को० ॥

खिप्पं तु लोयकरणं, परिण्ण गणमेद नारसमं ॥ ५५४७ ॥
पकत्य द्वयोः सर्वेषां वा साधुनामसी नाम गुड़ाति 'मनेत्' कदाचिदप्येवं तदा तेषां
लोवः कर्तव्यः । "परिण्ण" पि प्रत्याख्यानं-तथः, तच 'द्वादशम्' उपवासमञ्चकरूपं ते
कारापणीयाः । अष द्वादशं कर्तुं कश्चिदसिहण्णुनं शक्तोति ततो दशममध्मं षष्टं चतुर्थे वा
काराप्यते । गणमेदश्च क्रियते, गच्छाक्षिगंत्य ते प्रथम् भवन्तीति भावः ॥ ५५५७ ॥
अथ काथोसर्गदासग्रह—

चेइषठवस्सए वा, हायंतीतो धृतीओं तो बिति । सारवर्ण वसहीए, करेति सन्वं वसहिपालो ॥ ५५४८ ॥ अविधिपरिद्ववणाए. काउस्सम्मो य गुरुसमीवस्मि ।

भंगल-संतिनिभिनं, युओ तुओ अजित्सतीणं ॥ ५५४९ ॥
चेल्यगृहे उपाश्रये वा परिहीयमानाः स्तुतीस्ततः 'त्रुवते' भणन्ति । यावच तेऽवापि
नागच्छित तावद् वसतिपाछो वसतेः 'सारवणं' प्रमार्जनं तदादिकं सवैभिष कृत्यं करोति ।
अविधिपरिष्ठापनानिमिनं च गुरुसमीपे कायोत्सरीः कर्तव्यः । ततो मङ्गल्यर्थं शान्तिनिमिनं
चाऽतिनतानिकन्नजो भणनीयः ।

अत्र चूर्णि:—ते साहुणो चेह्यघरे वा उबस्सए बा ठिया होज्जा । जह चेहयघरे तो 15 परिहायंतीहिं छुईहिं चेट्याइं वंदिता आयरियसगासे इरियावहियं पडिक्रमिउं अविहिपरि- हाविणयाए काउस्समां करिंति। ताहे मंगरू-संतिनिमित्तं अजियसंतिश्वओं । तओ अने वि दो थए हायंते कर्न्नुति । उबस्सए वि एवं चेव चेहयवंदणवर्जा॥

चित्रेषचृणिः पुनिरत्यम् — तओ आगम्म चेहयधरं गच्छित । चेहयाणि बंदिचा संति-निमित्तं अजितसंतिथओ परियष्टिञ्जह तिन्नि वा थुईओ परिहायंतीओ कङ्क्रिज्ञित । तओ 20 आगंतुं आयरियसगासे अविहिपरिद्वावणियाए काउस्सम्मो कीरह ॥ ५५४८ ॥ ५५४९ ॥ (अन्यामम् —४००० । सर्वप्रं० ३७८२५)

अथ क्षपण-स्वाध्यायमार्गणाद्वारमाह---

समणे य असज्झाए, रातिणिय महाणिणाय णितए वा ।
सेसेसु णरिव स्वमणं, णेव असज्झाइयं होइ ॥ ५५५० ॥

यदि 'राबिकः' आचार्थादिः अपरो वा 'महानिनादः' ठोकविश्वतः कारुगतो भवति, 'निजका
वा' संज्ञातकास्त्रत त्यांचाः सन्ति ते महतीमधृतिं कुर्वन्ति, तत एतेषु क्षपणमस्वाध्यायिकं च
कर्तन्य । 'रोषेषु' साञ्चषु कारुगतेषु क्षपणमस्वाध्यायिकं च न भवति ॥ ५५५० ॥

व्यस्तर्भनद्वारमाह-—

उचार-पासवण-खेलमत्तमा य अत्थरण क्रस-पलालादी।

१ प्रन्थाप्रम्—४००० ॥ छ ॥ कत्यवृत्तितृतीयसंडं समाप्तम् ॥ छ ॥ प्रन्थाप्रं एवं समप्र १२५४० ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ शुभं भवतु कल्याणमस्तु ॥ लेखकपाठकयोः । लिपितं ॥ छ ॥ ॥ श्री ॥ छ ॥ श्री ॥ ॥ ४ ॥ छ ॥ श्री ॥ ओ० ॥ संथारया बहुविधा, उज्झंति अगण्णगेलुके ॥ ५५५१ ॥

यानि तस्योचार-प्रश्नवण-खेळमात्रकाणि ये चात्तरणार्थे कुरा-पर्कारुदिमया बहुविधाः संस्तारकास्वान् सर्वानपि उज्झन्ति "अणलगोळल" चि यदान्यस्य म्हानस्यं नास्ति, अधापरोऽपि स्हानः कश्चिदस्ति ततस्तदर्भे तानि मात्रकादीनि त्रियन्त इति भावः ॥ ५५५१ ॥

> अहिगरणं मा होहिति, करेड संशारगं विकरणं तु । सन्तुवहि विगिचंती, जो छेवडतस्स छित्तो वि ॥ ५५५२ ॥

''क्टेबर्झो' अशिवगृहीतः स यदि मृतः तदा येन संसारकेण स नीतः तं विकरणं कुर्वन्ति, सण्डलः कृत्वा परिष्ठापयन्तीत्वर्धः । कृतः ! इत्याहः—अधिकरणं गृहस्थेन गृहीते प्रान्तदेवतया वा पुनरप्यानीते भवेत् तद् मा भूदिति कृत्वा विकरणीिकयते । यथा तदीय 10 उपधिरपरो वा तेन स्वयुषा छुससं सर्वमणि परिष्ठापयन्ति ॥ ५५५२ ॥

असिवम्मि णत्थि खमणं, जोगविवद्वी य णेव उस्सम्मी । उबयोगढं तलितं, णेव अहाजायकरणं तु ॥ ५५५३ ॥

अक्षिचे मृतस्य क्षपणं न कर्तस्यम्, योगबुद्धिस्तु क्षियते । न नाविधिपरिष्ठापनाथाः कायोत्सर्गः क्षियते । उपयोगाद्धां चान्तर्द्धक्तमानां तोलयित्वा यथाजातं तस्य नेव कर्तस्यम् । 1० क्षिमुक्तं भवति ?—अधिवम्रुतस्य समीपे यथाजातं न स्वाप्यते, अतो देवलोकं गनो यावदुप्युक्तो भवति तावत् तदीर्यं वपुः प्रतिश्रय एव प्रतीक्षाप्यते येन प्रतिश्रयस्थितं सं वपुद्धश्चा 'संयतोऽहममृत्वम्' इति जानीते ॥ ५५५३ ॥ अथावलोकनद्वारमाह्—

अवरज्जुगस्स य ततो, सुत्त-ऽत्थविसारपृहिं थेरेहिं । अवरोषण कायन्वा, सुप्ता-ऽसुभगती-निमित्रहा ॥ ५५५४ ॥ ततोऽस्य कारुगतस 'अपरेखः' द्वितीये दिवसे सत्रा-ऽर्धविकारदैः स्वविरेः रामा-ऽर्धान-

ण तताऽस्य कार्णगतस्य अपरेषुः हिताय दिवसं सूत्रान्ऽयावशारदः स्या गति-निमित्तज्ञानार्थमवलोकनं कर्तव्यम् ॥ ५५५८ ॥ केथम् १ हत्याह—

जं दिसि विगैद्धितो खलु, देहेणं अक्खुएण संचिक्खे । तं दिसि सिवं वरंती, मुत्त-ऽत्यविसारया धीरा ॥ ५५५५ ॥ यसां दिशि स शिवादिभिराकर्षितोऽक्षतेन देहेन सन्तिष्ठेत् तस्यां दिशि सूत्रा-ऽर्थविशास्द। २० धीरा: 'वेशवं' सुभिक्षं सुखबिहारं च वदन्ति ॥ ५५५५ ॥

> जति दिवसे संचिक्खति, तति वरिसे धातगं च खेमं च । विवरीए विवरीतं, अकड्डिए सन्वहिं उदितं ॥ ५५५६ ॥

'यति' यावतो दिवसान् यस्यां दिशि अक्षतदेहस्तिष्ठति 'तति' तावन्ति वर्शाणि तस्यां दिशि प्रातं च क्षेमं च भवति । < प्रातं नाम-द्युमिक्षम् , क्षेमं तु⊸परचकाषुपष्ठवाभावः । ⊳ 80 अथ क्षतदेहः सङ्गतः ततः 'विपरीते' क्षतदेहे विपरीतं मन्तस्यम् , यस्यां दिशि क्षतदेहो

१ तत्र गतिः ग्रुभा-ऽग्रुभसस्या पश्चादिभधास्यते, निमित्तं ग्रुभा-ऽग्रुभं तावदाह स्व-वतरणं क्रं । ॥ २ °गहियं सत्यु, सरीरमं अक्खतं तु सं° ताना । ॥ ३ शिवं वदन्ति । श्चिवं नाम—सुसिक्षं सुखविद्यारं चेति ॥ ५५५५॥ क्रां ०॥ ४ ৺ ▷ एतदन्तरीतः पाऽः क्रो ० एव वर्तते ॥

नीतस्तत्वां दुर्भिक्षादिकं भवतीति भावः । अव नान्यत्राहृष्टः किन्तु तन्नैवाश्वविद्याहितं ततः सर्वत्र 'इदितं' द्यभिक्षं सुलविद्यारं च द्रष्टव्यम् ॥ ५५५६॥ एतत् निमृष् कस्य सुववे ! हस्याह—

खमगस्साऽऽयरियस्सा, दीइपरिण्णस्स वा निमिषं तू । सेसे तघऽण्णघा वा. ववहारवसा इमा य गती ॥ ५५५७ ॥

सस तपडण्याचा ना, वयहारवसा इमा य यता ॥ भभ्भक्ष ॥ स्वयक्तस्य कावावस्य वा 'दीर्थपरिज्ञानतो ना' प्रमुतकाल्यालिज्ञानकालेलं निश्चेषं सदी-ऽ तव्यम् । 'रोगे' एतव्यतिरिक्तं तथा चाऽन्यशा चा भवेत्, न कोऽपि निस्यः । व्यवहार-वज्ञाचेयं गंतिः प्रतिपत्तव्या ॥ ५५५७ ॥

> थलकरणे वेमाणितों, जोतिसिओ वाणमंतर सवस्मि । गङ्गाएँ मवणवासी, एस गती से समासेणं ॥ ५५५८ ॥

यदि तस्य द्वारीरकं खले कृतं—शिवादिभिरारोषितं तदा वैमानिकः सङ्गात इति यन्तव्यम् । 10 समयूमागे नीतस्य ज्योतिष्केषु व्यन्तरेषु वा उपपातो होयः । गर्तायां नीते अवववासिषु यत इति अर्वमन्तव्यम् । एम गतिः समासेन तस्याभिहिता ॥ ५५५८ ॥

व्याख्यातास्तिस्रोऽपि द्वारगाथाः । अथात्रैव प्रायश्चित्तमाह-

एकेकस्मि उठाणे, हुंति विवचासकारणे गुरुगा।

आणाहणो य दोसा, विराहणा संजमा-ऽऽयाए ॥ ५५५९ ॥ एवाँ प्रत्येक्षणादीनामेकै रुस्तिः, स्थाने विषयीसं कुर्वता सत्यारो सुरुकाः, व्याह्मस्यश्च दोषाः, संयमा-ऽऽस्मविराधना च द्रष्टच्या ॥ ५५५९ ॥

> एतेण सुत्त न गतं, सुत्तनिवातो तु दृष्य सामारे । उद्गवणिम वि सहगा, स्त्रहर्षे सहगा अतियक्षे व ॥ ५५६० ॥

यद् एतद् द्वास्कदम्बक्तमनतरं व्याख्यातव् एतेन सूत्रं न गतं किन्तु सासाधारिकापनार्षं १० सर्वमेतद्क्तम् । किं पुनसार्षंत्र सूत्रे प्रकृतम् ! इत्याह—स्वानिपतः पुनः सामाधिकस्थके वहनकाष्ठव्यणे द्वव्ये भवति । रात्रो कालगते यदि यहनकाष्ठानुकापनाय सामाधिकस्थवित तदा चतुरुंचु अरहष्ट्रयोजनादयस्य दोषाः तसान्नोत्याधनीयः किन्तु स्वि एकोऽपि कश्चिद् वैयावृत्यकरः समर्थसाद् वोद्धं ततः काष्ठं न गृह्यते । अधासमर्थस्ततो यावन्तः शकुवन्ति सावन्तः तेन काष्ठेन वहित् । अथ वहनकाष्ठं तत्रेव परिष्ठाप्यागच्छन्ति तदास्य चतुर्कत्रे, अप-१० रण च गृहतिऽधिकरणम्, सागाधिको वा तत् अपश्चन्त्र (यतेः शब्बद्धन्त्रं वीस्या तन्त्रेव यदिन्यक्तम् । दि स्वान्तम् इति सस्या महिष्टः व्यवच्छेद-करकमर्दादिकं कुवीत् , तसावानेवश्वस् । यदि पुनरानीय तेन गृहीतिवैव अतिगमनं—मवेशं कुवैन्ति तदाऽपि सञ्जञ्जेषु ॥ ५५६० ॥ एते च वीधाः—

पापाः— मिन्छचऽदिश्वदाणं, समलावच्यो हगुंछितं चैव ।

१ गतिः ग्रुभा-ऽशुनस्करपा प्रति' कं०॥ २ 'वगन्त' मै० के०॥ ३ 'वगं महास्यविहल-प्रत्युचेसणा-विग्नागमह-जस्तकपारणादीनां द्वाविहातेः स्वानामसिकै का०॥ ४ 'वति। कथम् १ हसाह—"उट्टबनस्मि वि'' हस्याहि, रात्री कं०॥

दिय रातों आसितावण, बोच्छेओ होति बसहीए ॥ ५५६१ ॥

सागारिकसत् काष्ठं प्रवेश्यमानं दृश् मिथ्यात्वं गच्छेत्, एते भणन्ति — अस्माकमदत्त-स्मादानं न करपते; यथैतदलीकं तथा अन्यद्रप्यलीकमेव । अथवा ब्र्यात् — समला अमी, अस्मिसत्वस्कानामप्पुपरिवर्तितः; एवनवर्णो भूयात् । 'जुपुप्सतं वा' जुपुप्सां स क्रुयीत् — ३ म्हत्कमूद्वा मम गृहमानयन्ति । ततो दिवा रात्रो वा साधूनां ''आसियावणं' निष्काशनं क्रुयीत्, सतस्य व्यवच्छेदं 'नातः परं ददाभि' इत्येकस्यानेकेषां वा क्रुयीत् ॥ ५/५६१ ॥ यत परे दोषा अतोऽद्यं विधिः—

अइगमणं एगेणं, अण्णाएँ पतिद्ववेंति तत्थेव ।

णाए अणुरुनेमण तस्स वयण बितियं उद्घाण असिवे वा ॥ ५५६२ ॥

एकेन साधुना भवमम् 'अतिगमनं' भवेशनं कार्यम्, यदि सागारिको नावाप्युत्तिष्ठते तत

एवमज्ञाते काष्ठमानीय यतो गृहीतं तत्रैव मतिष्ठापयन्ति । अथ सागारिक उथ्यितस्ततस्त्रामो

निवेषते—यूर्य प्रयुत्ता इति कृत्वा नास्सामिरुत्यापिताः, रात्रो सायुः कारुगतः युग्नदीयकाष्ठेन निष्काशितः, साम्यतं तदानीयतां उत परिष्ठाप्यताम् । एवमुक्ते यद् असी भणित
तत् ममाणम् । अथ तैः पूर्वमज्ञायमानैः स्थापितं सागारिकेण च पश्चात् कथमि ज्ञातं ततः

10 कुपितस्तानुन्नोमनं विषेत्रम् । अथ प्रज्ञाप्यमानस्यपि तस्य वस्थमाणं वयनं भवित तदा गुरुषः।

स साधुर्निष्काशनीय इति रोषः । द्वितीयपेदै उथ्यितोऽसी मामः अशिवगृहीतो वाऽसी ततसन्नैव परिष्ठापयेत्, न सागारिकस्य प्रत्यपंथेत्॥ ५५६ ॥ अथ सागारिकवचनं दर्शयित—

जह नीयमणापुच्छा, आणिजति किं पुणो घरं मज्झ । दगुणो एसऽवराघो. ण एस पाणालओ भगवं ! ॥ ५५६३ ॥

20 यदि अस्ताकमनाष्ट्रच्या नीतं ततः किमर्थमिदानीं पुनरिष मदीयगृहमानीयते १ एप द्विगु-णोऽपराधः, न चैप भगवन् ! मदीय आवासः पाणानां—मातङ्गानामारूयो यदेवं मृतकोपकरण-मत्रानीतम् ॥ ५५६३ ॥ एवमुके गुरुभिवैक्तव्यन्—

किमियं सिद्धम्मि गुरू, पुरतो तस्सेव णिच्छुमति तं तू । अविजाणंताण कयं, अम्ह वि अण्णे वि णं वेंति ॥ ५५६४ ॥

किमिदं इसान्तजातमभूत् ! । ततः शेषसाधुमिः शस्यातरेण वा गुरूणां शिष्टम् — अमुकेन साधुना अनाष्ट्रच्छया काछं नीतम् । ततो गुरवः 'तस्येव' शस्यातरस्य पुरतः 'तं' साधुं 'किम-नाष्ट्रच्छया नयसि !' इति निर्मर्त्य कैतवेन निष्काशयन्ति । अन्येऽपि साथवः ''ण''मिति तं शस्यातरं शुवते — असाकमप्यविज्ञानतामेवमसुना कृतम्, अन्यथा ज्ञानन्तो वयमपि कर्तुं न दश्च इति ॥ ५५६ ॥

वारेति अणिच्छुमणं, इहरा अण्णाएं ठाति वसहीए । मम णीतो णिच्छुमई, कइतव कलहेण वा वितिओ ॥ ५५६५ ॥ यदि सागारिकः 'वारयति' 'मा निष्काशयत, तैवं मूयः करिच्यति' इति ततः 'अनिष्का-

१ °पदमत्र भवति, कथम् ? इति अत आह—''उट्टाण'' त्ति उत्थि° कां॰ ॥

15

- - 90

शनं' न निष्काश्यते । 'इतरथा' अवारयति सागारिकेऽन्यस्यां वसतौ तिष्ठति । द्वितीयश्च साधुः 'कैतवेन' मानुस्थानेन भणति—मम निजको यदि निष्काश्यते ततोऽहमपि गच्छामि । सागारिकेण वा समं कोऽपि कळ्हयति ततः सोऽपि निष्काश्यते, स च तस्य द्वितीयो भवति ॥५५६५॥

॥ विष्वरभवनप्रकृतं समाप्तम् ॥

अधिकरण प्रकृत म

सूत्रम्---

भिक्स् य अहिकरणं कहु तं अहिगरणं अविओसविज्ञा नो से कप्पइ गाहावइकुळं भत्ताए वा पाणाए
वा निक्खमित्तए वा पविस्तित्तए वा, बिह्या वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तिए वा, गामाणुगामं वा दृइजित्तए, गणातो वा
गणं संकमित्तए, वासावासं वा वरथए। जरथेव
अप्पणो आयरिय-उवज्झायंपासेज्ञा बहुस्सुयं बब्भागमं तस्संतिए आलोइज्ञा पिडक्कमिज्ञा निंदिज्ञा
गरिहज्ञा विउद्देज्ञा विसोहेज्ञा अकरणयाए अब्भुदुज्ञा आहारिहं तवोकम्मं पायन्छितं पिडवज्ञेज्ञा।
से य सुएण पद्विए आईअव्वे सिया, से य
सुएणं पद्वविए नो आदिइतव्वे सिया, से य
सुएणं पद्वविष्माणे नो आइयइ से निज्नृहियव्वे
सिया ३०॥

अस्य सम्बन्धमाह---

केण कयं कीस कयं, णिच्छुम्भऊ एस किं इहाणेती।
एसादि गिहीतुदितो, करेज़ कलहं असहमाणो ॥ ५५६६ ॥
केनेदं बहनकाष्ठानयनं कृतस् ! कसाद्वा कृतस् ! निष्कास्यतामेषः, किमधैमिहानयति !;
एवमादिभिवेचोभिर्गृहिणा तुदितः-व्यथितः कश्चिदसहमानः कल्हं कुर्यात्। अत इदमधि- 28
कम्याद्यसारम्यते ॥ ५५६६ ॥

१ °के उपकरणं सकीयं गृहीत्वाऽन्य° कां ग

करेण सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या--'भिश्चः' प्रागुक्तः, चशब्दाद् उपाध्यायादिपरिप्रहः, **'अधिकरणं' कवहं करवा मो कर**पते तस्य तद्धिकरणमञ्यवशमय्य गृहपतिकुलं मक्ताय वा कानाय वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्टुं वा, ⊲ वैहिविचारमूमी वा विहारमूमी वा निष्क्रमितुं वा प्रवेष्ट्रं वा. ⊳ प्रामानग्रामं वा 'द्रोतुं' विहर्तम् , गणाद्वा गणं सङ्कमित्रम् , वर्षावासं वा b बस्तुम् । किन्तु यत्रैवात्मन आचार्योपाण्यायं पश्चेत् ; कथन्भृतम् ? 'बहुश्रुतं' छेदग्रन्थादिकुश्रुलं 'बह्नागमम' अर्थतः प्रभुतागमम् : तत्र तस्यान्तिके 'आक्रोचयेत' खापराधं वचसा प्रकटयेत . 'मतिकामेव' मिध्यादष्कृतं तद्विषये दचात्, 'निन्चाद' आत्मसाक्षिकं जुगुप्सेत, 'गर्हेत' गुरु-साक्षिकं निन्धात । इह च निन्दनं गईणं वा तात्त्रिकं तदा भवति यदा तत्करणतः प्रति-निवर्तते तत आह--'व्यावर्तेत' तस्मादपराधपदाद् निवर्तेत । व्यावृत्तावपि कृतात् पापात् 10तदा मुच्यते **यहा**ऽऽत्मनो विशोधिर्भवति तत आह—आत्मानं 'विशोधयेत' पापमलस्फेटनतो निर्मलीकुर्यात् । विद्युद्धिः पुनरपुनः करणतामासुपपधते ततस्तामेवाह--- अकरणता-अकरणीयता तया अभ्यतिष्ठेत । पुनरकरणतया अभ्यत्थानेऽपि विशोधिः शायश्चित्तपतिपत्त्या भवति तत आह-- 'यथाहै' यथायोग्यं तपःकर्म प्रायश्चित्तं प्रतिपद्येत । 'तच्च' प्रायश्चित्तमा चार्येण 'श्रुतेन' श्रुतानसारेण यदि 'प्रस्थापितं' प्रदत्तं तदा 'आदातव्वं' प्राह्मं 'स्याद' भवेत , अथ 15 श्रुतेन न प्र**सापितं तदा नादातस्य** स्थात्, 'स च' आहोचको यदि श्रुतेन प्रसाप्यमानमपि तत प्रायश्चित्तं 'नाबदाति' न प्रतिपद्मते ततः सः 'निर्यष्ठितव्यः' 'अन्यत्र शोधिं करुष्य' इति निषेधनीयः स्यादिति सत्रार्थः ॥ अथ भाष्यविस्तरः---

अचियत्तकुलपवेसे, अतिभूमि अणेसणिजपिडसेहे । अवहारऽमंगळुत्तर, सभावअचियत्त मिच्छते ॥ ५५६७ ॥

कथमधिकरणमुख्यसम् ! इत्यस्यां जिज्ञासायामिभिषीयते — कार्सिश्चित् कुले साथवः प्रवि-शन्तोऽप्रीतिकराः त्रशाजानतामनाभौगाद्वा मवेशे स गृहयतिराकोशोद्धा हःन्याद्वा, साधुरप्यसह-मानः प्रत्याकोशेत् ततोऽधिकरणमुख्यते । एवमतिपूर्ति प्रविष्ठः, अनेपणीयभिक्षाया वा प्रति-षेषे, श्रेक्षत्व वा संज्ञातकत्यापदारे, यात्रामित्यत्य वा गृहिणः साधुं दृष्टाऽमक्रकमिति तिपचे, समयविचारेण ना मुखुषरं दातुमसमर्थे गृहस्ये, स्वागेवेन वा काऽपि साथी 'अचियते' अनिष्ठे अहहे, अभिमहिमिथ्याहर्षेशं सामान्यतः साथी अवकोकिते अधिकरणमुख्यत्येत ॥ ५५६ ॥ ।

पडिसेधे पडिसेधो, भिक्ख वियारे विहार गामे वा । दोसा मा होज बहु, तम्हा आलोयणा सोधी ॥ ५५६८ ॥

भगविद्वः प्रतिपिद्धस्— न वर्तते साबूनामधिकरणं कर्तुष् । एवंविधे प्रतिभेषे भृयः प्रति-पेषः कियते— कदाचित् तद् अधिकरणं गृहिणा समं कृतं भवेत् , कृत्या च तस्मित् अनुर-30 शमिते निक्षायां न हिण्डनीयम् , विचारम्मी विहारम्मी वा न गन्तव्यम् , प्रामानुष्रामं वा न विहर्तव्यम् । कुतः ? हत्याह— मा 'बहवः' बन्धन-कटकमर्दादयो दोषा भवेयुः । तस्मात् तं

१ ४ २ एतक्किन्तर्गतः पाटः सा॰ एव वर्तते ॥ २ एवमेभिः प्रकारैः गृहिणा सममधिकरणे उत्पन्ने सति विधिमाह इसवतरणं कां०॥

मृहस्त्रप्रवासम्ब गुरूणामन्तिके आकोषना दातव्या । ततः शोषिः मतीच्छनीया ॥ ५५६८॥ इदमेव आवस्रति—

> अहिनरण गिहत्थेहिं, ओसार विकडुणा य आवम्लं। -आकोषण पत्थवणं, अपेसणे होति चडलहमा ॥ ५५६९ ॥

गृहसैः सममिषकाणे उत्पन्ने द्वितीयेन साधुना तस्य साबोरपसारणं कर्तव्यम् । अथ नाव-5 सरति ततः "विकष्ठणा य" वि बाही गृहीत्वाऽऽकर्षणीयः, दृदं च वक्तव्यम् —न वर्तते मम स्वया साधिकरणेन समं भिक्षामिटितुम् अतः मित्रश्रयोपिर निवर्तावहे । एवसुक्वा मित्रश्रया-गम्य गुरूणामाठोवनीयम् । ततो गुरुभिरुपशमनार्थं वृषभास्तस्य गृहसस्य मूरुं भेषणीयाः । यदि न भेषयन्ति तदा चतुर्रुषु ॥ ५५६९ ॥

> आणादिणो य दोसा, बंधण णिच्छुमण कहगमहो य । बुग्गाहण सस्थेण व. अगणुवगरणं विसं वारे ॥ ५५७० ॥

भाशात्यश्च वोषाः । स च गृहस्यो येन साधुना सहाधिकरणं जातं तस्य अनेकेषां वा साधुनां वन्धनं निष्काशनं वा कुर्यात् । 'कटकमर्दो नाम' सर्वानिष साधुन् कोऽपि व्यपरोपयेत् । स्युद्धाहणं वा लोकस्य कुर्यात्—नास्त्यमीषां दचे परलोकफलस्, यहा अमी संज्ञां व्युत्सच्य विकिरन्ति न च निर्लयमित । सहादिना वा शक्रेण साधुनाहन्यात्, अमिकायेन वा प्रतिश्चयं १६ दहेत्, उपकरणं वा अपहरेत्, विष-गरादिकं वा दद्यात्, मिश्रां वा वारयेत् ॥ ५५००॥

तच वारणमेतेषु स्थानेषु कारयेत्-

रखे देसे गामे, णिवेसण गिहें णिवारणं कुणति ।

जा तेण दिणा हाणी, कुठ गण संघे य पत्थारी ॥ ५५७१ ॥
राज्ये सकलेऽपि निनारणं कारयेत्—एतेषां भक्तसुर्गधं वसतिं वा मा दद्यात् । एवं देरो ३०
प्रामे निवेशने गृहे वा निवारणं करोति । ततो या 'तेन' भक्तादिना विना परिहाणिः तां पूपभान् अप्रेषयन् गुरुः प्रामोति । अथवा यः प्रभवति स कुठस्य गणस्य सङ्कस्य वा 'श्रस्तार्'
विसरेण विनाशं कर्यात ॥ ५५७१ ॥

ध्यस्स णित्थ दोसो, अपरिक्लियदिक्लगस्स अह दोसो । पश्च कुआ पत्थारं, अपभू वा कारवे पश्चणा ॥ ५५७२ ॥

मृहस्वश्चित्वयति—'पतस्य साधोर्नास्ति बोषः किन्तु य एनमपरीक्ष्य दीक्षितवान् तस्वायं दोषः, अतस्वतेष बासवासि' इति विचित्त्य प्रश्चः स्वयतेष मध्यारं कुर्यात् । अपश्चरिषे द्रन्यं राजकुले दस्ता प्रशुणा कारापयेत् ॥ ५५७२ ॥ यत एते वोषाः—

तम्हा खलु पहुवर्ण, पुन्वं वसमा समं च वसमेहिं । अणुकोमण पेच्छामो, णेंति अणिच्छं पि तं वसमा ॥ ५५७३ ॥

अधुक्षानण पञ्चामा, जात आधाच्छा प त वसना । परचर ।। तस्माद् वसनाणां तत्र प्रस्तापनं कृतंवस्य । ''धुम्बं'' ति येन साधुनाऽधिकरणं कृतं सं स्ववद् न सेपयन्ति सावद् वसनाः पूर्वं मजापयन्ति । किं कारणम् : उच्यते—सः गृहस्वसं इक्ष्म स्वासिन्यस्यास् । स्वय ज्ञायते 'नावृत्तिचाति' ततो दुपसैः सबं तनपि भेषयन्ति । तत्र इक्ष्म स्वासिन्यस्य । स्वय ज्ञायते 'नावृत्तिचाति' ततो दुपसैः सबं तनपि भेषयन्ति । तत्र

80

गताश्चानुक्कवचीभिः 'अनुकोमनं' प्रगुणीकरणं तस्य कुर्वन्ति । अधारी गृहस्वो मृयात्— धानयत तावत् तं करुहकारिणं येनैकवारं पश्चामः पश्चात् क्षमिष्ये न वा । ततो दृषभात्तद-भिमार्थ ज्ञात्वा तं साधुं गृहिणः समीपमानयन्ति । ध्यासी साधुर्नेच्छति ततो वकादपि वृष-भारतं तत्र नयन्ति ॥ ५५०३ ॥ ते च दृषभा हृदशगुणयुक्ताः प्रसाप्यन्ते—

तस्तंबंधि सुही वा, पगता ओयस्तिणो गहियवका । तस्तेव सुहीसहिया, गर्मेति वसभा तगं पुट्वं ॥ ५५७४ ॥

तस्य-गृहिणः संयतस्य वा सम्बन्धिनः सुहृदो वा ते भवेषुः, 'प्रगताः' लोकपसिद्धाः 'ओजस्तिनः' वलीयांसः 'गृहीतवाक्याः' आदेववचसः, ईहशा वृष्याः 'तसीय' गृहिणः सुदृद्धिः सहिताः 'तकं' गृहस्यं पूर्वै 'गमयन्ति' मजापयन्ति ॥ ५५७४ ॥ कषम् ः इत्याह—

10 सो निज्जन्मिति साहः, आधारिण तं च जज्जसि गमेतं ।

सो निच्छुन्मति साहू, आपरिए तं च जुजसि गमेतुं। नाऊण वत्थुमावं. तस्स जती णिति गिहिसहिषा ॥ ५५७५ ॥

येन साधुना त्वया सह कलहितं स साधुराचार्यैः साम्प्रतं निष्काद्यते, अस्परीयं च वचो गुरवो न सुष्टु श्रुष्वन्ति, अत आचार्यान् गमियद्वं त्वं 'युज्यते' युक्तो भवसि । एवसुक्ते बचाचार्यं गमयति क्षामयति च ततो रुष्टम् । अथ बृते—पदयामतावत् तं कल्हकारिणम् ;
16 ततो ज्ञात्वा बस्तुनः—गृहस्यस्य भावं—'किमयं हन्तुकामत्वमानाययति ! उत क्षामियतुकामः !'
एवमभिपायं ज्ञात्वा तस्य ये सुहदस्तैगृहिभिः सहिता यतयस्तं साधुं तत्र नयन्ति ॥ ५५०५॥ अषासौ गृही तीवकषायतया नोपशाम्यति ततस्तस्य साधोगेच्छस्य च रक्षणार्थमयं विधिः—

वीसुं उबस्सए वा, ठवेंति पेसंति फड्डपतिणो वा । देंति सहाते सब्बे. व गेंति गिहिते अणुवसंते ॥ ५५७६ ॥

30 'विष्वग्' अन्यसिष्धुपाश्रये तं साधुं खापयन्ति, अन्यमामे वा यः सर्यक्रपतिस्तत्वानितके प्रेषयन्ति । निर्मच्छतश्च तत्य सद्दायान् ददति । अथ मासकस्यः पूर्णस्ततः सर्वेऽपि 'निर्मन्ति' निर्मच्छन्ति ॥ ५५७६ ॥ एष गृदस्थेऽनुपन्नान्ते विकिः । अथ गृदस्थ उपशाम्यति न साधु-सदा तत्येदं प्रायक्षित्य—

अविओसियम्मि लहुगा, भिक्ख वियारे य वसहि गामे य । गणसंक्रमणे भण्णति, इहं पि तत्थेव बच्चाहि ॥ ५५७७ ॥

श्विषकरणेऽज्यवशिनते यदि भिक्षां हिण्डते, विचारमूर्गि निहारमूर्गि वा गच्छति, वसतीर्विगेत्यापरसाधुवसितं गच्छति, मामानुमामं विहरति; एतेषु सर्वेषु चतुर्वेषु । अधापरे गणं सङ्कामति ततसीरन्यगणसाधुभिर्मण्यते—इहापि मृहिणः क्रोधनाः सन्ति ततस्तित्रैव क्रज ॥ ५५७७ ॥ इत्येव द्वव्यक्तमाह—

ं इह वि गिही अविसहणा, ण य बोच्छिण्णा इहं तुह कसाया । अमेर्सि पाऽऽयासं, जणइस्ससि वच तत्थेव ॥ ५५७८ ॥

'इहापि' माने गृहिणः 'अविषहणाः' क्रोधनाः सन्ति, न चेह समागतस्य तव कवाया स्यबच्छिकाः, अतः 'अन्येषामपि' अस्मदादीनामायासं जनयिष्यसि तस्माद तत्रैव वजः ॥५५७८॥

सिट्टम्मि न संगिष्हति, संकंतम्मि उ अपेसणे रुचुगा । गुरुगा अजयणकहणे, एगतरपतोसतो जं च ॥ ५५७९ ॥

अनुषशान्ते साथै गणान्तरं सङ्कान्ते मृत्राचार्येण साधुसङ्काटकस्तव भेषणीयः । तेन च सङ्काटकेन 'शिष्टे' कथिते सित द्वितीयाचार्यो न सङ्गृद्धीयात् । अय मृत्राचार्यः सङ्काटकं न भेषयित तदा चतुर्वेषु । सङ्काटको यधयतनया कथयित ततस्त्रुर्युर्वे । अययताकथनं नाम- ६ बहुजनमध्ये गरवा भणिते—एष निर्धर्म गृहिभिः सममिषकरणं क्रस्वा समायातः, सकले- नापि गच्छेन भणितो नोपशान्तः । एवमयतनया कथिते स साधुरेकतरस्य—गृहिणः साधु-सङ्काटकस्य मृत्राचार्यस्य वा प्रदेशनो यत् करिष्यति तिभिष्यंत्र ग्रायिश्वत्तम् ॥ ५५७९ ॥

तसादयं विधिः—

उनसामितो गिहत्यो, तुमं पि खामेहि एहि नबाहि । दोसा हु अणुनसंते, ण य सुज्ज्ञति तुज्ज्ञ सामहगं ॥ ५५८० ॥

पूर्व गुरूणामेकान्ते कथियेला ततः स्वयेकान्ते स भण्यते—उपशामितः स गृहस्वः, एहि वजामः, त्वमि तं गृहस्वं क्षामय, अनुषशान्तस्वेह परत्र च बहवो दोषाः, समभावः सामायिकं तंबैवं सक्तवायत्व मवतः 'न गुद्धति' न गुद्धं मवति । एवमेकान्ते भणितो यदि नोपशान्यति ततो गणमध्येऽध्येवमेव भणनीयः ॥ ५५८० ॥ ततोऽपि कश्चिन्नोपशान्येत् १५ प्रस्तुत स्वचेतिक्षं चिन्तयेत् 'तस्य गृहिणो निमिचेनेहाध्यवकाशं न स्वभे' ततः—

तमतिमिरपडलभूतो, पावं चितेइ दीहसंसारी । पावं ववसिउकामे, पच्छिते मग्गणा होति ॥ ५५८१ ॥

कृष्णचतुर्दशीरजन्यां मालरद्रव्यामावस्तम उच्यते, तसामेव च रात्री यदा रजो-सूम-धूमिका भवति तदा तमस्तिमिरं भण्यते, यदा पुनस्तस्यामेव रजन्यां रजःप्रसृतयो मेयदुर्दिनं च 20 भवति तदा तमस्तिमिरस्टरुमिषीयते । यथा तत्रैवानकारे पुरुषः। किश्विष्ठिषे न पद्यति एवं यस्तीक-तिवतः-तीवतने कथायोदयेनान्यीयुर्तः स तमस्तिमिरस्टरुम्तो भण्यते, मृत्तस्वस्तर-दोषमार्थवाचकस्ता । एवन्यत्रकेट-परकोक्षदितमपद्यन् वीचेसंतारी तस्य गृहस्वस्तापिर 'पापय्' 'ऐस्वर्याद् जीविताद्वा अंशियप्यमि' इति रूपं चिन्तयति । एवं च पापं कर्त्तुं व्यवसिते तस्य-स्नियं प्राथिशिषे मार्गणा मवति ॥ ५५८९ ॥

नबाभि नबमाणे, चउरो रुहुगा य होंति गुरुगा य ! उम्मिष्णिम्म य छेदो, पहर्गो मूर्ल च जं जत्य ॥ ५५८२ ॥ 'मजाभि, तं गृहव्हं ध्यपरोपयाभि' इति सङ्करो चतुर्कपवः । पदमेदादारस्य पिष मजत-श्रादुर्गुरवः । यष्टि-कोष्टादिकं महर्गं मार्गयति पद्कपवः । महर्गं रूक्ये गृहीते च पहुरवः । उद्गीर्णे महारे छेदः । महारे पतिते यदि न भ्रियते ततम्बेद एव । अत्र मृतवातो सुरुम् । ३०

यच यत्र परितापनादिकं सम्भवति तत् तत्र वक्तव्यम् ॥ ५५८२ ॥ एते चापरे दोषाः—

१ 'ति तस्य साम' तामा- विना ॥ २ 'तः सन् कृत्यमकृत्यं वा न किमपि पदयति स तम' को ।॥ ३ पापं 'व्यवसित्यकामे' कर्तुमनसि तक्षि' को ।॥

तं केंद्र जिद्रवेती, बंघण णिल्ल्मण कडगमदी य । आधरिए गुच्छम्मि य, कुल गण संघे य पत्थारी ॥ ५५८३ ॥

स गृहस्यः 'सं' संयतं समार्थमागतं हृष्टा कदाचित तत्रैव 'निष्ठापयति' व्यापादस्ति, स्व वैकिश क्रमापस्ति, b. ग्राम-नगरादेशी निर्द्धाटयति, कटकमदेन वा मुद्राति, अथवा 5 'कटकमर्दः' एकस्य हारः सर्वमपि गच्छं व्यापादयति, यथा पालकः स्कन्दकाचार्यगच्छन्। अधवा बन्धम-निष्काशनादिकमानार्थस्यापरगच्छस्य वा करोति । तथा कुरुसमनामं इत्ता इकस्य बन्धमादिकं कुर्यात् , एवं गणस्य वा सङ्खस्य वा । एष प्रस्तारः ॥ ५५८३ ॥

व्यक्तकाकिनो अजल आरोपणा दोषाश्च मणिताः । अथ सहायसहितस्यारोपणामाह-

संजनगणे गिहिगणे. गामे नगरे व देस रखे य ।

अहिबति रायकलम्म य. जा जहिं आरोबणा भणिया ॥ ५५८४ ॥ 10 बहवः संबताः संबतगणः तं सहायं गृह्णाति । एवं गृहिगणं वा सहायं गृह्णाति । स च गृहिगणो ब्रामं वा नगरं वा देशो वा राज्यं वा मवेत . ब्रामादिवास्तव्यजनसमुदाय इत्यर्थः । एतेषां वा संबतादीनां येऽधिपत्तवस्तान वा सहायत्वेन गृह्णाति, अध्यद्वा राजकुरुं गृहीत्वा गच्छति, यथा कालकाचार्येण शकराजवृत्दम् । अत्र चैकाकिनो या 'यत्र' सक्करादावारीपणा 15 मणिता **सेवेहापि दष्ट**न्या ॥ ५५८२ ॥ एतदेव व्याचधे---

संजयगणी तद्वियो, गिही तु गाम पुर देस रजे वा।

एतेसिं चिय अहिवा, एगतरज्जतो उभयतो वा ॥ ५५८५ ॥ 'संयतगणः' प्रतीतः । तेषां-संयतानामधिपः तदधिपः, आचार्य इत्यर्थः । ये त गृहिणस्ते

शाम-पर-देश-राज्यवास्तव्याः एतेषामधिपतयो वा सवेयः । तत्र श्रामाधिपतिः-मोगिकादिकः. 20 पुराधिपति:-श्रेष्ठी कोष्ट्रपाली वा, देशाथिपति:-देशारक्षिको देशस्याप्रतको वा, राज्याधिपति:-महामनी राजा वा । एतेषामेकतरेणोभयेन वा यक्तो व्रजति ॥ ५५८५ ॥

तत्रेयं प्रायक्षित्रमार्गणा----

तहिँ वर्षते गुरुगा, दोसु तु छछहुग गहणे छग्गुरुगा । उगिगणि षहरणें छेदो, मूर्ल जं जत्य वा पंथे ॥ ५५८६ ॥

26 'संयतगणेन तद्धिपेन वा उभयेन वा सहाहं नजामि' इति सङ्करूपे चतुर्रूखे । पदमेदमादी कृत्वा तत्र त्रजतश्चतुर्गुरु । प्रहरणस्य मार्गणे दर्शने च द्वयोरपि बढ्ळच् । प्रहरणस्य प्रहणे वक्ररु । उद्गीर्णे शहरणे छेदः । प्रहारे दत्ते मूलम् । 'यद् वा' परितापनादिकं प्रथिव्यादिविनाशनं 'यत्र' पि प्रामे वा करोति तन्निष्पन्नमपि मन्तव्यम् । तथा गृहस्थवर्गेऽपि 'प्रामेण वा मामाविषतिना बाबदु राज्येन वा राज्याधिपतिना वा उभयेन वा सह बजामि' इति सक्रकेष au चतुर्गरः । पश्चि गच्छतः प्रहरणं च गृहतः वहल्छ । गृहीते वहरः । जेवं प्राग्यतः । एवं मिस्रोः प्राविधरमुक्तम् ॥ ५५८६ ॥

१ व्य > एतवमार्गतः माठः भा• कां• एव वर्तते ॥ २ 'शु, एतबार्याद् व्याक्यातम् । पव[°] को• ॥

एसेव गमी णियमा, गणि आयरिए य होति णीयन्त्री। नवरं पुण नाणचं, अणवहूच्यो य पारंची ॥ ५५८७ ॥

एक एव गमी नियमाद 'गणिनः' उपाध्यायस्य आचार्थस्य चशुक्रदाद गणावच्छेदिकस्य वा मन्तस्यः । नवरं यनस्त्र नानात्वम् अधस्तादेकैकपवहासेन यत्र भिक्षोर्मुछं तत्रोपाध्यास्यानव-स्थाप्यम् , आचार्यस्य पाराधिकम् ॥ ५५८७ ॥ तपोर्हं च मायश्चित्तमिरबं विशेषयितव्यस्--

भिक्खस्स दोहि लहुगा, गणवुष्के गुरुग एगमेनेणं।

उज्झाए आयरिए, दोहि वि गुरुगं च णाणत्तं ॥ ५५८८ ॥ भिक्षोरेतानि पायश्चितानि 'द्वाभ्यामपि' तपः-काळाभ्यां लखकानि, गणामच्छेदिकस्यैक-तरेण तपसा कालेन वा गुरुकाणि, उपाध्यायस्याचार्यस्य च 'द्वास्थामपि' तपः-कालास्यां गुरु-काणि । एतद 'नानास्वं' विशेषः ॥ ५५८८ ॥ 10

काऊण अकाऊण व. उवसंत उवद्वियस्य परिश्रन्तं ।

सत्तेण उ पह्रवणा, असर्ते रागी व दोसी बा ॥ ५५८९ ॥ गृहस्थस्य महारादिकमपकारं कृत्वाऽकृत्वा वा यदि उपशान्तः-निवतः प्रायश्चित्तपत्तिपत्तवर्षे भाको चनाविधानपूर्वकमपूनः करणेनोपस्थितस्तदा प्राविधतं दातव्यम् । कथम् : इस्याह---स्त्रेण प्रायश्चितं प्रसापनीयम् । अस्त्रोपदेशेन त प्रस्थापवतो रागो वा द्वेषो वा मवति, 18 प्रमतमापन्नस्य खल्पदाने रागः स्तोकमापनस्य प्रमतवाने द्वेषः ॥ ५५८९ ॥

एवं राग-द्वेषाभ्यां पायश्चित्तदाने दोषमाह---

थोवं जति आवण्णे, अतिरेगं देति तस्स तं होति । स्त्रेण उ पद्रवेणाः स्त्रमणिञ्छंते निज्जहणाः ॥ ५५९० ॥

स्तोकं प्रायक्षित्तमापनस्य यदि अतिरिक्तं ददाति ततो यावताऽधिकं तावत 'तस्य' प्राय-20 श्चित्तदातः प्रायश्चित्तम् आज्ञादयश्च दोषाः, अथोनं ददाति ततो यावता न पूर्यते तावद आत्मना प्रामीति, अतः सूत्रेणे प्रस्थापना कतैन्या । यस्तु सूत्रीक्तं प्रायम्बन्तं नेच्छति स वक्तव्यः - अन्यत्र शोधि कुरूव । एवा निर्यूहणा मण्यते ॥ ५५९० ॥

अस्या पूज पूर्वार्द्ध ज्याच हे---

जेणऽधियं ऊणं ना, बदाति तानतिअमध्यमा पाने । अहवा सत्तादेसा. पावति चत्ररो अणुग्वाता ॥ ५५९१ ॥

'येन' यावता अधिकं ऊनं वा ददाति तावद् आत्मना प्रामोति । अथवा सुत्रादेशादना-ऽतिरिक्तं वदानश्रद्धरोऽनुद्धातान् मासान् प्रामीति । तचेवं निशीश्रवशमोदेशकान्तर्गतं सूत्रम्-जे उन्बाहर अणुन्धाइयं देह जे अणुन्धाहर उन्धाहर्य देह से आवजाह चारुमासियं परि-

हारद्वाणं अणुम्बाइयं (सू० १७-१८)। ॥ ५५९१ ॥ अथ द्वितीयपदमाह— ३० बितियं उप्पाएउं. सासणपंते असज्झे पंच वि पयाई।

१ नेयब्बो तामा । ॥ २ °ण. तदाब्दोऽवधार्णे, सत्रेणैव प्रायश्चित्तस्य प्रस्थापना कर्त्तस्या. शासत्रेण। यस्त कां॰॥

15

90

25

आगार्ढे कारणम्मि, रायसंसारिए जतमा ॥ ५५९२ ॥

द्वितीयपर्वं नाम-अभिकरणग्रुत्यावयेदपि । सः 'शासनपान्तः' भवननप्रवनीकः 'असा-ष्यव्य'न यथा तथा शासित्तुं शक्यते ततस्तेन समयभिकरणग्रुत्याच शिक्षणं कर्तव्यम् । तत्र च स्वयमसमयैः संवत-माम-नार-देश-राज्यक्रमणानि पद्मापि पदानि सहायतया गृहीयाच् । 5 भागावे कारणे राजसंसारिका-राजान्तरस्थापना तापि यतनया कुर्यात् । तथाहि—यदि राजाऽतीव भवचनमान्तः अनुशिष्णादिभिरवुक्तोपयेनौपशास्यति ततस्तं राजानं स्फेटियसा साद्वेशजमन्यवंशजं वा भद्रकं राजानं स्थापने ॥ ५५९९ ॥

वश्व तं स्फेटयति स ईदशगुणयुक्तो भवति--

विजा-ओरस्सवली, तेयसलद्भी सहायलद्भी वा । उप्पादेउं सासति, अतिपंतं कालकजो वा ॥ ५५९३ ॥

यो विद्याबलेन युक्तो यथा आर्यस्वपुटः, जौरसेन वा बलेन युक्तो यथा बाहुबली, तेजो-रुकथ्या वा सलक्षिको यथा महादत्तः सम्भूतनने, सहायलक्षियुक्तो वा यथा इरिकेशबलः। ईह्होऽधिकरणमुलाध 'अतिपानसम्' अतीवभवचनशत्यनीकं शास्ति, 'कालिकाचार्य इव' यथा कालकाचार्यो गर्दमिष्ठराजानं शासितवान्। कथानकं सुप्रतीतत्वान्न लिस्वते॥ ५५९३॥

॥ अधिकरणप्रकृतं समाप्तम् ॥

प रिहारिक प्रकृत म्

सूत्रम्---

परिहारकप्पट्टियस्स णं भिक्खुस्स कप्पट्ट आयरिय-उवज्झाएणं तिहवसं एगगिहंसि पिंडवायं द्वावि-त्तप्, तेण परं णो से कप्पट्ट असणं वा पाणं वा स्वाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा। कप्पट्ट से अन्नयरं वेयाविडयं करित्तप्, तं जहा— उट्टावणं वा निसिआवणं वा तुयद्दावणं वा उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणविगिचणं वा विसोहणं वा करित्तप्। अह पुण एवं जाणिजा—िछन्नावाप्सु पंथेसु आउरे झिंझिए पिवासिए, तवस्सी दुब्बले किलंते मुच्छिज वा पवडिज वा एवं से कप्पट्ट असणं वा ४ दाउं वा अणुप्पदाउं वा ३१॥ अस्त्र सम्बन्धमाह---

पन्छिचमेव पगतं, सहुस्स परिहार एव न उ सुद्धो । तं वहतो का मेरा, परिहारियसुचसंबंधो ॥ ५५९४ ॥

प्रावधित्तरीवानन्तरस्त्रे प्रकृतव्, तच 'सिहिष्णोः' समर्थस्य प्रथमसंहननादिगुणयुक्तस्य परिहारतणोरूपमेव दातव्यम्, न पुनः शुद्धतपोरूपम्, अतः 'तत्' परिहारतणो वहतः 'ऋ व मर्योदा' का सामाचारी हिति । अस्यो जिज्ञासायामिदं परिहारिकद्वत्रमारम्यते । एच सम्बन्धः ॥ ५५९१ ॥

वीसुंमणसुत्ते वा, गीतो बलवं च तं परिद्वय्या । चोयण कलडम्मि कते. तस्स उ नियमेण परिद्वारो ॥ ५५९५ ॥

अथवा 'विषयंभवनाव्ये' प्रराणक्षेत्र गीताथैः 'वळबांब्य' प्रथमसंहननयुक्तः 'तद्' मृतर्क10 परिद्यान्य काष्ठमानयन् गृहक्षेत्र नोदितो यदि कळहं करोति तदा तस नियमेन परिहारो दातव्यः, तस्य च विधिरनेनाभिषीयते॥ ५५९५॥

> कंटगमादीसु जहा, आदिकडिक्के तहाँ जयंतस्स । अवसं छलणाऽऽलोयणा ठवणा जुत्ते य वोसग्गो ॥ ५५९६ ॥

ननु स भगवान् 'प्रमादों न कर्तन्यः' इत्युप्येदोन संयमाध्वति गच्छन् कथं परिहारकृतं प्राप्तः । इति उच्यते—यथा कण्टकाकीणें माग्ने उपयुक्तस्यापि कण्टको लगति, आदिसल्याद् विषमे वा वयोपयुक्तोऽप्यागच्छन् प्रपति, कृतमयको वा यथा नदीवेगेन द्वियते, द्वाविक्षः तीऽपि यथा सक्तेन काल्छान्, एवं कण्टकादिक्षानीयमादिकादिक्षम्—आवगाह्ननं यद् उद्गमो-प्यावनेणारूपं ज्ञानादिक्यं वा तत्र यत्नान्यान्यवस्य कस्यापि च्छलना भवति, छल्तिन अध्वादक्यान्यान्य । तत्र वा सहनना-ऽऽगमादिभिग्रीणेयुक्तः—सहित्वस्य 'स्वापना' परिहात्वरः मार्यक्ष्यवानं कर्तन्यम् । तत्र वा वां विक्षः—प्राप्तेष्व इत्य-क्षेत्र-काल-मावेष्

१ 'स्वी' चतुर्ध-पष्टा-ऽष्टम-दशम-द्वादशलक्षणं परि° कां ०॥

तस्य साधोनिर्विज्ञतपःकर्मसमापये शेषसाधूनां च भयजननार्थं सक्तलेनापि गच्छेन 'खुल्सीः' कायोत्सर्गः कर्तस्यः । तजाचार्यो मणति—"यतस्य साधुस्य निरुवसम्यानिमित्तं ठामि काउ-स्समां जाच चीसिग्रमि" तस्यसुर्मिद्यतिकावमञ्जीक्य "न्तनो आरिहंताणं" इति मणित्वा चलुर्विज्ञतिकां मुख्येनोवार्यं मणति ॥ ५५९६ ॥

यस तबं पडिवजति, ण किंचि बालवति मा ण आलवहा । अच्छवितगस्सा. वाषातो मे ण कायव्यो ॥ ५५९७ ॥

'एपः' आत्मविद्युद्धिकारकः परिहारतपः मतिपचते अतो न किश्चिद् युष्मानाक्रपति, अत्र "सत्सामीप्ये सद्वद्वा" (सि॰ है॰ ५-५-१) इति सूत्रेण भविष्यदर्षे वर्तमाना, ततो नारुष्कतीस्त्रर्थः; यूपमपि "णं" एनं माऽऽक्रपत । एव युष्मान् सूत्रा-ऽवीं इरीरोदन्तं वा न १० पृष्कति, यूपमप्येनं ना पृष्कत । एवमन्येष्वपि परिवर्तनादिष्देषु भावनीयम् । इस्थमात्मार्थ-

कित्तकस्थास्य ध्यानस्य परिहारतपसंश्च व्यावातः "भे" भवद्भिनै कर्तव्यः ॥ ५५९७ ॥ अञ्च यानि पदानि तेन साधिमश्च परस्परै परिहर्तव्यानि तानि दर्शयति —

पदानि तन साधामध्य परसर पारहतन्यानि तानि दशयात — आलावण पिंडपुच्छण, परिगङ्कदाण वंदणग मचे । पिंडसेहण संघाडग, भत्तदाण संधंजणा चेव ॥ ५५९८ ॥

५ 'आल्यनं' सम्भाषणमनेन युष्मार्क न कर्तव्य युष्माभिरप्यस्य न विधेयम् । एवं सूत्रा-ऽर्धयोः झरीरवार्ताया वा प्रतिमच्छनम्, पूर्वायीतस्य श्रुतस्य परिवर्तनम्, काल्प्यहणनिमिषं ''उद्दाणं'' ति उत्थापनम्, रात्रौ सुप्तोस्थितैवन्दनककरणम्, खेल-कायिका-संज्ञामात्रकाणां समर्पणम्, उप-करणस्य प्रस्पुपेक्षणं भिक्षा-विचारादौ गच्छतां सङ्घाटकेन भवनम्, भक्तस्य वा पानकस्य वा दानम्, एकमण्डक्ष्यां वा सम्-एकीभृय भोजैनं न कर्तव्यम् ॥ ५५९८ ॥

अथ कुर्यन्ति तत इदं मायश्चित्तम्---

संघाडगाओ जाव उ, लहुओ मासी दसण्ह उ पयाणं। लहुगा य भर्चेदाणे, संभुंजण होंतऽणुग्घाता॥ ५५९९॥

एतेषामारूपनादीनां दशानां पदानां मध्यादारूपनादारम्य यावत् सङ्घाटकपदं ताबद् अष्टानां पदानां करणे गच्छसाधूनां प्रत्येकं मासञ्जु । अध भक्तेदानं कुवैन्ति ततश्चतुर्लेजु । एकमण्डल्यां ३८ सम्भुज्ञते ततस्त्रेषामेव चत्वारोऽनुद्धाता मासाः ॥ ५५९९ ॥ परिहारकस्य हदं प्रायश्चितम्—

अडुण्हं तु पदाणं, गुरुओ परिहारियस्त मासो उ । भचपदाणे संग्रंजणे य चउरो अणुग्याया ॥ ५६०० ॥

षारिहारिकस्थाञ्चानां पदानां सङ्घाटकान्सानां करणे मासगुरु । भक्तपदानं सम्भोजनं वा कवेसस्यातारे मासा अनुदाताः ॥ ५६००॥ इमे च दोषः—

१ 'तिस्वम' के ।। २ 'तिस्वं मु' के ॥ ३ 'जनं-सम्भोजनं अवद्विरनेन खार्धे न कर्चकाति, एनोऽपि अवद्विर सार्थं न करिस्यतीति॥ ५५९८॥ अयु कं ॥ ७ 'ख-पाने कर्जाकाति, एनोऽपि अवद्विर सार्थं न करिस्यतीति॥ ५५९८॥ अयु कं ॥ ॥ ७ 'ख-पाने क्र' ॥ । १ 'क-पानं क्र' का ॥ १ 'क-पानं क्रे' के ॥

कुव्वंताजेगाणि उ, आणादि विराह्णा दुवेण्हं पि ।

देवय पमच छल्णा, अभिगरणादी य उदितिम्म ॥ ५६०१ ॥ 'प्तालि' बाल्पनादीनि कुर्वेतासाझादयो दोषाः, विराधना च 'द्वयोरिषे' पारिहारिक-गच्छसायुवर्गयोभंवति । प्रमन्दस च देवराग छल्जम् ॥ अन्वेन चा सायुना मणितः— 'किमित्वाल्यनातीनि करोषि !' एवं 'उदिते' मणिते सति अभकरणादयो दोषा अवन्ति ५ ॥ ५६०१ ॥ अथ ''कृष्यद एपागिहसि'' इत्यादि सुकं व्यास्थानयति—

विउलं व भत्त-पाणं, दहुणं साहुवजाणं चैव ।

नाऊण तस्स मार्च, संघोडं देति आयरिया ॥ ५६०२ ॥ सङ्ख्वापुत्सने वा विपुर्क मक्त-पानं साधुभिरानीतं दृष्ट्वा तिव्रिय ईपदभिकारो भनेत्, 'साधुवर्जनां च' 'साधुभिः स्बदुखरितैः परित्यकोऽइन्' हत्येनं मनशि विन्तयेत् ॥ एवं झास्ता 10 तदीयं गानमाचार्याः सङ्घाटकं ददति ॥ ५६०२ ॥ अधेदभेवं भावपतं व्याचष्टे—

भावो देहावत्था, तप्पडिबद्धो व ईसि भावो से।

अप्पातित हयतण्हो, बहति सुहं सेसपिक्टणं ॥ ५६०३ ॥ भावो नाम 'देहावस्या' देहस्य दुर्नेकता 'तत्प्रतिवद्धो वा' वियुक्तमक-पानविषय ईषद् 'भावः' अभिकाषः तस्य सञ्जातः, तत्थ्य यथाभिकपिताहारेणाप्यायितो हततृष्णभ्य सन् सुखेनैव 12 शेषं प्रायक्षितं वहतीति गत्या सङ्घाटको दीयते ॥ ५६०३ ॥

अमुमेवार्थमन्याचार्यपरिपाट्या किश्चिद् विशेषयुक्तमाह—

देहस्स तु दोबछं, भावी ईसिं व तप्पडीबंधी।

अगिलाएँ सोहिकरणेण ना वि पावं पद्दीणं से ॥ ५६०४ ॥ देहस्य दौनेल्यम् ईपद्धा मनोजाहारिनिषयमतिनन्यः, एष भाव उच्यते । यद्धा अगस्त्रस्य २० शोधिकरणेन पापं तस्य प्रक्षीणमायम् एवंविधं मावमाचार्या जानीयुः ॥ ५६०४ ॥

कथं पुनरेतद् जानन्ति ! इति उच्यते---

आगंतु एयरी वा, भावं अतिसेसिओ से जाणिजा ।

हेर्किह व से भावं, जाणिचा अणितसेसी वि ॥ ५६०५ ॥ आगन्तुकः 'इतरो वा' वास्तव्यः 'अतिशयी' नवपूर्वपरादिरविश्वानादियुक्तो वा स थ् एवंविषं भावं "से" तस्य जानीयात् । अथवा अनतिशयज्ञान्यपि वाक्षेराकारादिभिद्वेतुभिक्तस्य भावं जानीयात् ॥ ५६०५ ॥ ततः----

सक्तमहादी दिवसो, पणीयभचा व संखडी वियुक्त ।
धुवर्लभग एगघरं, तं सागकुळं असागं वा ॥ ५६०६ ॥
शक्रमहादेर्दिक्सो यवा सञ्जातस्तदा तं कापि श्राह्वगृष्टे नयन्ति, प्रणीतमक्ता वा काचिद् ३०
वियुक्त सञ्चाढिसत्त वा विसर्वयन्ति । तक 'शुवक्रिमकस्' अवस्यसम्मावनीयकाममेकसेव गृहं
विवर्त । इवं च आवक्तगृहमआवक्तगृहं वा भवेत् उभयत्रापि गुप्तः स्वयं प्रथमतो गच्छन्ति,

१ एतदनन्तरं प्रस्थाप्रम्—४५०० कां ।। २ °व निर्युक्तिगाथागतं भा° कां ।॥ १० १८७

तं च परिहारिकं हुवते—आर्थं ! समागन्तव्यमग्रुकगृहे पात्रकगुद्धाव्य त्वयेति । ततस्त्रत्र प्राप्तस्य विपुष्ठमबगाहिमारिकं मेकं दापयन्ति । अचासौ तत्र गन्तुं न शकोति ततो माजनानि गृहीत्वा सम्यमानीय गृरदो दवति ॥ ५६०६ ॥

प्तावता "कप्पट्ट आयरि-ववज्ञाएणं तद्दिवसं प्गगिदंसि पिंडवायं दवाविचर" इति ऽसुत्रं व्याख्यातं मन्तव्यम् । अत्र "तेण परं नो से कप्पर" इत्यादि सुत्रं व्याख्याति—

भत्तं वा पाणं वा, ण दिति परिहारियस्स ण करेंति । कारणें उद्ववणादी, चीयग गोणीय दिहंतो ॥ ५६०७ ॥

भक्तं वा पानकं वां ततः परं परिहारिकस्य निष्कारणे न प्रयच्छत्ति, न वा किनण्याङ-धनार्दिकं कुर्वेन्ति । 'कारणे तु' यदा उत्थानादिकं कर्तुं क्षीणदेहतया न शकोति तत उत्थाप-10 नार्दिकं कारयन्ति । अंत्र नोदकः माह—किं प्रायक्षितं राजदण्ड इवावशेन वोड्य्यं थेनेह-श्रीमस्थां प्राप्तयापि भक्त-पानमानीय न दीयते !। सुरिराह—गोदद्यान्तोऽत्र कियते —यया नवपाद्यि या गौरूत्याद्वं न शकोति तां गोप उत्थापयति अटवीं च चारिवरणार्थं नयति, या तु गन्तुं न शकोति तस्या गृहे आनीय प्रयच्छति । एवं पारिहारिकोऽपि यत् कर्तुं शकोति तत्त् कार्यते, यत् पुनरूत्यानादिकं कर्तुं न शकोति तद् अनुपारिहारिकः करोति ॥ '५६०७ ॥ कथं पुनरसी करीति ! इत्याह—

> उट्टेज निसीएजा, भिक्खं हिंडेज मंडगं पेहे । कवियपियवंघवस्स व. करेड इयरो वि तसिणीओ ॥ ५६०८ ॥

स परिहारिकस्पपा क्कान्तो बनीति—वित्तिष्टे निषीदेष भिक्षां हिण्वेषं भाण्डकं प्रस्पुरेषे-यस् ; एवयुक्तेऽनुपारिहारिक जल्पापनादिकं सर्वमणि करोति । कथस् ! हत्याह—यथा प्रिय-20 नान्यवस्य कुपितः कथिद् वन्धुर्येत् करणीयं तत् तृष्णीकः करोति, एवम् 'हतरोऽपि' अनुपा-रिहारिकः सर्वमणि तृष्णीकमावेन करोति ॥ ५६०८ ॥ अथ मिक्षाहिण्डनादौ विधिमाह—

णीणिति पवेसेति व, भिक्सगए उग्गहं तउग्गहियं।

रक्खति य रीयमाणं, उक्तिवह करे य पेहाए ॥ ५६०९ ॥

भिक्षां गतस्य पारिहारिकस्य 'अवमर्दं' प्रतिमहं तेन-पारिहारिकेण गृहीतमनुपारिहारिकः ३० पात्रबन्धाद् निष्काशयति तत्र वा मवेशयति, 'रीयमाणं च' पर्यटन्तं श्वान-गवायुपद्रवात् पपतनादेवी रक्षति, भाण्डमस्युपेक्षणायामशक्तस्य 'करी' हस्तावनुपरिहारिक उत्सिपति येन स्वयमेव प्रस्युपेक्षते ॥ '५६०९ ॥

बाह--यदि नामाञ्चकसार्हि कसादसी भिक्षाहिण्डनादिकं विधाप्यते ! इत्याह--

एवं तु असदमावी, विरियायारी य होति अणुविण्णी।

र अष्टयं दा॰ मो॰ छे॰ ॥ २ ''बोरगो मणति—भीव उट्टानेबाति १ बहुवरी से निकार होहिति । एखाउउरारेजो गोमितिहुद्धे करेति—नभा गोगी पचुनिहा जठि ण उद्दानेबाति मरति हुमार, तथा सो वि बहुद्विकते। गरेजा । रंजमामीनितं च कम्मक्सारहार निरं शक्तिकाति, जनसत्तमव्याकृता कार्यो ॥" इति बहुर्जी निद्योगयुर्जी व ॥

भयजणणं सेसाण यं, तवो य सप्पुरिसचरियं च ॥ ५६१० ॥
'यवं' यबाशकि कुर्वतस्त्रसाशठमावो भवति, नीयांचारबाशुचीर्णो मवति, 'शेषाणामि' साधूनां मयजननं कृतं भवति, तपः सन्यगगुपालितं भवति, सस्यक्तवरितं च कृतं यवति ॥ ५६१० ॥ षय ''छिनावाएस पंयेसु" इत्यादि सुत्रं न्यावरे—

छिण्णावात किलंते, ठवणा खेचस्स पालणा दोण्हं । असहुस्स मचदाणं, कारणें पंथे व पत्ते वा ॥ ५६११ ॥

छिन्नापातेऽष्विन गच्छन् परिहारिको यदि बुजुक्ष्या तृषा च क्कान्तो मामं माधुं न शकोति ततोऽनुपारिहारिको भक्त-पानं गृहीःचा तत्त्यान्तरमामे ददाति । अथवा स भगवान् अनिगृहि-तवङ-वीर्यो बहिमांने भिक्षां पर्यदिति, तत्र हिण्डित्वा तपःक्कान्तो यदा न शकोत्यागन्त्रो तत्त व्यान्त्रमसमर्थे तिक्षन्त्र केत्रस्य स्थापना कर्तव्या, मुख्यक्राय एव स हिण्डते न बहिर्मिक्षाच्यो 10 मच्छतियाग्यः। पाष्टा प्रवेष्टः विद्यारिष्टं परिहारिका-उनुपारिहारिकाः समामेऽपि हिण्डित्तं क्ष्यम् १ इत्याह—"असहस्य भजदाणं कारणे" चि यदि स पारिहारिकाः समामेऽपि हिण्डित्तं न शकोति तत्र तत्र पर्यक्रितः समु-हिश्चितं अवानुपारिहारिको हिण्डित्वा तस्य मयच्छितं अनुपारिहारिकान्त्रमण्डिताः समु-हिश्ची गच्छति गच्छत्यान्ताः साथवः प्रयच्छितः एवं द्वाविष्ट पारिती—जनुक्षियते मततः । एवं 10 स्थानिखानां यतना भणिता । सम्पति पूर्णं मासे वर्षोवसे वा प्रामानुवामं विहरतां "पंचे व यत्ते विष्टे वा प्रामे प्राप्तानां वा यतनाऽभिषीयते ॥ ५६११ ॥

उवयंति डहरगामं, पत्ता परिहारिए अपावंते । तस्तऽद्वी तं गामं, ठविंति अबेसु हिंडति ॥ ५६१२ ॥

पथि बजन्तो डहर्र-रुष्टुतरं प्रामं प्राप्ताः न्य पेरिहारिकथाचापि न प्रामोति ततस्तस्यार्षे 20 तं ग्रामं स्थापयन्ति । त्वयं तु गच्छसाधवोऽन्येषु ग्रामेषु भिक्षां हिण्डन्ते ॥ ५६१२ ॥

वेलइवाते दुरम्मि य गामे तस्स ठाविउमद्धं।

अर्द्ध अर्डति सो वि य, अद्भाडे तेहिं अिंडते वा ॥ ५६१३ ॥
अय यावत् ते गच्छन्ति तावदन्यमानेषु वेकाया अतिपातो भवति दूरे वा स मामस्ततः
'तस्तैव' मूळ्यानस्वार्द्धं > परिहारिकस्वार्थाय स्वापयित्वा द्वितीयमर्द्धं स्वयमटन्ति । यृतं तावत् १४
पि वर्तमाने पारिहारिके भणितम् । यत्र तु साववः पारिहारिकश्च समक्रमेव माप्तास्त्राप्यद्धं
मामे साथवो हिण्डन्तेऽद्धं पारिहारिकः । अय साधूनामर्द्धं पर्यटतां न पूर्वते ततस्तैः सर्वसिन्
मामे पर्यटितं पारिहारिकः पश्चात् पर्यटति ॥ ५६१३ ॥

अथ पारिहारिको यथा कारणे गच्छसाधूनां वैमावृत्यं करोति तथाऽभिवीयते-

विद्यपण कारणिम्म, गच्छे वाऽऽगाढें सो तु जगणाए । 30 अणुपरिद्यारीओं कप्यद्वितो व आगाढ संविग्गो ॥ ५६१४ ॥ द्वितीयपदे 'कारणे' कुछादिकार्ये पारिद्यारिकोऽपि साधुनां वैयाद्वयं करोति, यथा पाराधिकः

१ °ट्टा जं गा° ताभा • ॥ २ प्रिक्तान्तर्वती पाठः भा • प्रस्तक एव वर्तते, नामेष्वादर्वेष्विति ॥

20

"बच्छत महाणुभागो, जहामुद्धं गुणसवागरो सेषो ।" (गा० ५०४५) ह्यादि भणित्वा वैयावृत्यं कृतवात् । तथा गच्छे वा लागाढं कारणं समजनि ततः सोऽपि 'यतनया' वेहय-माणवा शेष्क-पानाहरणादिकं वैयावृत्यं करोति । "अणुपरिहारिय" ह्यादि पश्चार्द्यं —अष गच्छसाथवः प्रकृतिमहाशुतादीनामन्यतरमागाढयोगं प्रतिपन्ना उपाच्यायश्च म्लानः कालगतो ० वा सतोऽनुपारिहारिकः कल्पसितो वा वाचनां गच्छस्य ददाति । लव तावच्यराकौ ततः पारिहारिकोऽस वाचनां ददाति । स च ता ददानोऽपि संविम्न एव मन्तस्यः । इह मा भूत् कृष्यापि मतिः—पूर्वपृत्रेण प्रतिपिद्धं सुत्रार्थदानादिकमनेनानुज्ञातम्, एवं पूर्वपरविरुद्ध-माचरन् अस्तिविद्धं सुत्रार्थदानादिकमनेनानुज्ञातम्, एवं पूर्वपरविरुद्ध-माचरन् अस्तिविद्धं स्वार्थदानादिकमनेनानुज्ञातम्, । अष्ट गच्छस्यगाहकारणं व्याप्ये

मयण च्छेन विसोमे, देति गणे सो तिरो व अतिरो ना । तन्भाणेस सएस न. तस्स वि जोगं जणो देति ॥ ५६१५ ॥

मदनकोद्रवक्र्रण युक्तेन गच्छः सर्वोऽपि खानः जातः, छेवकप्-अशिवं तेन वा गृहीतः, भव्यनीकेन वा विषं दत्तप्, अवमीदर्ये वा न संस्तरिः, तत प्रवागावे कारणे 'सः' पारिहारिको मक्त-पानमीवधानि वा 'तद्राजनेपु' गच्छसकेपु पात्रकेषु तेवाममावे स्वमाजनेषु वा 10 गृहीस्वा तिरोहितमितिरोहितं वा 'गणे' गच्छस्म प्रचच्छति । तिरोहितं नाम-स आनीयानु-पारिहारिकस्य ददाति सोऽपि गच्छस्मपियति, अथानुपारिहारिकोऽपि ध्वनस्वतः करुपक्षितस्य ददाति सोऽपि गच्छस्मपियति । करुपस्वितस्यापि ग्लान्तरेऽतिरोहितं—स्वयमेव गच्छस्म ददाति । यच तेषां योग्यं जनो ददाति तत् तेवामयाय गृहाति, यत् तु तस्य योग्यं तद् आसमो गृहाति ॥ ५६९५ ॥

एवं ता पंथमिं, जत्थ वि य ठिया तहिं पि एमेव।

बाहि अडती डहरे, इयरे अद्बद्ध अडिते वा ॥ ५६१६ ॥

एवं तावत् पथि गच्छतामभिहितम् । यत्रापि च प्रामातौ स्वितास्त्राप्येवमेव मन्तव्यम् । मार्गे च यत्र गच्छो न प्राप्तस्त्र उहरे प्रामे पारिहारिकः प्राप्तो बहिर्घामे पर्यटति । "इतरे" ति अय वेळातिकमो दूरे वा स ग्रामः ततस्त्रत्रैव मूलग्रामेऽद्धे पारिहारिकः पर्यटति अर्द्धे गच्छ-20 साधवः, तेन वा अटिते गच्छः पर्यटति ॥ ५६१६ ॥

किं बहुना १ पक्षद्वयस्याप्ययं परमार्थ उच्यते---

कप्पडिय परिहारी, अणुपरिहारी व भत्त-पाणेणं ।

्पंथे खेर्चे व दुवे, सो वि य गच्छस्स एमेव ॥ ५६१७ ॥

पिथ वा क्षेत्रे वा द्वयोरिष वर्तमानी ग्रान्तवादी कारणे करपस्थितोऽनुपारिहारिको वा अपारिहारिकस्य भक्त-पानेनोपम्रहं करोति । सोऽपि च पारिहारिको गच्छस्यैवमेवोपम्रहं करोति ॥'५६१७॥

॥ परिहारिकप्रकृतं समाप्तम् ॥ -

25

म हा न दी प्रकृत भ्

सूत्रम्---

नो कप्पइ निगंधाण वा निगंधीण वा इसाओ पंच महण्णवाओ महानदीओ उद्दिट्टाओ गणियाओ वंजियाओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तप वा संतरित्तप वा । तं जहा—गंगा जउणा सरऊ कोसिया मही ३२॥

अस्य सम्बन्धमाह----

अद्राणमेव पगतं, तत्थ थले पुन्वविणया मेरा । जित होज तत्थ तोयं, तत्थ उ सुत्तं इमं होति ॥ ५६१८ ॥

अनन्तरसूत्रे ''छिल्नाबाएसु वंथेसु'' इति वचनाद् 'अध्या' मार्गे एव तावत् प्रकृतेः । तत्र च स्राले गच्छतां 'पूर्वबार्णता' प्रथमोद्देशके अध्वसूत्रे भणिता मर्योदा अवधारणीया । यत्र तु मार्गे तोयं भवति तद्विषयविधिपतिपादकिषदं सूत्रं भवति ॥ ५६१८ ॥

अनेन सम्बन्धनायातस्यास्य व्याख्या— 'नो कस्पन्ते' न युज्यन्ते, सूत्रे एकवचननिर्देशः प्राकृतत्वात्, निर्मन्यानां वा निर्मन्यीनां वा 'इमा.' प्रत्यक्षासत्याः पद्य 'महाणेवाः' बहुदकत्या 15 गहाणेवकल्या महासमुद्रगामिन्यो वा 'महानचः' गुरुनिम्नगाः 'उद्दिष्टाः' सामान्येनाभिहिता यथा महानच इति, गणिता यथा पश्चेति, 'व्यक्तिता' व्यक्तिकृता यथा मङ्गल्यादि, 'अन्तर' मस्ये मासस्य हिद्धलो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीं वा बाहु-जङ्कादिना सन्तरीतुं वा नावादिना । तथ्या—मङ्गा १ यम्रुन्ते सस्यः इक्तिका १ मही ५ । एप स्वाधैः ॥

अथ भाष्यकारः कानिचिद् विषमपदानि विवृणोति---

हमाउ चि सुचउत्ता, उदिह नदीउ गणिय पंचेव । गंगादि वंजिताओ, बहुओदग महण्णवातो तू ॥ ५६१९ ॥

हमा हति मत्यक्षवाचिना सर्वनामा स्त्रोका उच्यन्ते । उहिष्टा नव हति । गणिताः पद्यति । व्यक्षिता सङ्गादिभिः पदैर्व्यकोकृताः । यास्तु बहुदकास्ता महार्णवा उच्यन्ते ॥ ५६१९ ॥ कृता विषमपदच्यास्या आच्यकृता । अथ निर्प्रक्तिविस्तरः—

पंचण्हं गहणेणं, सेसा वि उ सहया महासलिला ।

तस्य पुरा बिहरिंसु य, ण य तार्तो कयाइ सुक्खंति ॥ ५६२० ॥ 'पश्चानां' गङ्कादीनां प्रहणेन होषा अपि यौः 'भहासलिकाः' यहदका अविच्छेदवाहिन्यस्ताः ् द्दिवता मन्तम्याः । स्वाद् बुद्धिः—किवर्षे गङ्कादीनां प्रहणम् ! हत्याह—"'तस्य" इत्यादि,

र °वः, गायायो नर्पुसकत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात् । तत्र कं॰ ॥ २ याः सिन्धुप्रभृतयः 'महा° का॰ ॥

15

20

वेषु विषयेषु शङ्कादयः पश्च महावधो वहन्ति तेषु पुरा साधवो विहतवन्तो न च ताः कदा-चनापि राप्यन्ति अतस्तासां महणम् ॥ ५६२०॥

> पंच परूबेतूर्णं णावासंतारिमे उ जं जत्य । उत्तरणम्मि वि छहगा, तत्थ वि आणाहणो दोसा ॥ ५६२१ ॥

विशासि महानदीः महत्य या याहती यत्र विषये ता तथा वर्णियता मस्तुतमिषातव्यम् । तथा वर्णियता मस्तुतमिषातव्यम् । तथाय्य महानदीः महत्य या याहती यत्र विषये ता तथा वर्णियता मस्तुतमिषातव्यम् । तथायत्य मामोति तिष्यपर्वे मायिक्षित्यम् । यत्रापि जङ्कादिनोत्तरणं भवति तत्रापि चतुर्केषुकाः, अपिशब्दात् सन्तरणेऽपि चतुर्केषुकाः, अपिशब्दात् सन्तरणेऽपि चतुर्केषुकाः । तत्रापि 'उत्तरणे आज्ञात्यो दोषाः, किं पुनः सन्तरणे ! इत्यपिशब्दार्यः ॥ ५६२१ ॥

तत्र सन्तरणे ताबहोषानाह---

अणुकंपा पिंडणीया, व होज बहवो उ पश्ववाया ऊ । एतेसिं णाणचं, वोच्छामि अहाणुपुन्वीए ॥ ५६२२ ॥

अमुकस्पादोषाः प्रत्यनीकदोषा बहुवो वा प्रत्यगया नावमारूढानां भवन्ति । एतेषां च 'नानात्वं' विभागं यथाऽऽनुपूर्वां वक्ष्यामि ॥ ५६२२॥ तदेवाहः—

> छुमणं जले थलातो, अण्णे नोपारिता छुमति साहू। ठवणं न पत्थिताए, दडुं णावं न आणेती ॥ ५६२३ ॥

साधुं तरणार्थिनं ज्ञात्वा नौवाणिजी नाविको वा अनुकम्पया नावं स्मळाद् जले प्रक्षिपेत्, ये वा पूर्वे नावमारोपितास्तानुदके तटे वा अवतार्थ साधून् पश्चिपेद् नावमारोपयेदित्यर्थः, सम्प-स्थितां वा नावं 'साधव उत्तरिष्यन्ति' इति कृत्वा स्थापयेत्, साधून् वा दृष्टा परकृळाद् नावमा-नयेत् ॥ ५६२३ ॥ अत्र चामी दोषाः—

नावित-साधुपदोसो, णियचणऽच्छंतमा य हरियादी । जं तेण-सावएहि च, पवहण अण्णाएँ किणणं वा ॥ ५६२४ ॥

ये बेडिकाया अवतारितास्ते नाविकस्य वा साधूनां वा उपरि प्रदेषं गच्छेयुः, यहा ते निवर्तमानाः तटे वा तिष्ठन्तो हरितादीनां विराधनामन्यद्वाऽधिकरणं यत् कुर्वन्ति, यहा स्तेन-श्वापदेभ्य उपद्रवं प्राप्नुवन्ति, अवहन्तीं वा नावं यत् प्रवाहयिष्यन्ति, अन्यस्या वा नावः क्रयणं 25 करिष्यन्ति तक्षिण्पत्नं प्रायश्चित्तम् ॥ ५६२८ ॥ परकूखद् नावानयने दृष्टान्तमाह—

मजणगतो ग्रुरुंडो, णावं दडूण अप्पणा पेति ।

कहिंगा जति अक्सेवा, तिते लहुगा मग्गणा पच्छा ॥ ५६२५ ॥ 'सज्जनगतः' स्नानं कुर्वन् मुरुण्डो राजा साधून् दृष्ट्या नावमात्मना नवति, ततो नावास्त्रदः

साधः कथिकाः कथितुं रुग्नः, यावन्तस्य तत्रावक्षकक्षेपास्तावन्ति चतुर्रुध्ति, पश्चाच सापूर्ता ३० मार्गेणा तेनान्तःपुरे धर्मकथनार्थे कृता इत्यक्षरार्थः । भावार्थस्वयम् —

पाडलिपुचे <mark>धुरुंडो</mark> रामा गंगाप नावारुदो उदगे प्हावंती अभिरमह । साहुणी परकूले पासिचा सबमेव नावं नेउं साहुणी विकमाविचा भणह—कहं कहेह जाव न उचरामी । अक्से- बणह्कहालिंद्रजुषो साहू कहेउमारदो । तेण कहिंतेण व्यक्तियो नावियं सलेह—सणियं कह्वेहि जेण एस साहू चिरं कहेह । साहण कारणे सणियं गच्छंताणं जिपया व्यवस्रवेचा तिषया चडक्हें । उत्तिष्णेण रत्ना अंतेउरे कहियं, जहा— युंदराजो कहाओ तरक्नवस्यायाः कषयन्ति साववः । अंतेउरियाणं कोउगं जायं । रायाणं विण्णवेति—जह ते साहुणो इह-माणिजिज्ज तो व्यन्हे वि सुणेज्ञामो । रत्ना गवेसिया पवेसिया साहुणो अंतेउरे ॥ ५६२५॥ ६

तत्र च प्रविद्यानामेते दोषाः---

सुक्त-ऽत्ये पिलमंथी, णेगा दोसा य णिवधरपवेसे । सङ्करण कोउएण व, सुत्ता-ऽभुत्ताण गमणादी ॥ ५६२६ ॥ सूत्रा-ऽर्थयोः परिमन्यः, स्यृतीकरणेन कौतुकेन च सुक्ता-ऽभुक्तानां मतिगमनादयोऽनेके तोषा नपग्रसमेदो भवति ॥ ५६२६ ॥

एते अनुकम्पायां दोषा उक्ताः । अथ प्रत्यनीकतायां दोषानाह--

बुरुमण सिंचण बोलण, कंबल-सबला य घाडितिनिमित्तं । अणुसद्वा कालगता, णागकुमारेसु उववण्णा ॥ ५६२७ ॥

बाहनं सेचनं बोलनं वा प्रत्मिकत साधूनां क्रियते तत्र सामान्येन दशन्तोऽसम्—सपुराधां मण्डीरयक्षयात्रायां कम्बल-श्रवली वृषमौ षाटिकन—मित्रेण जिनदासस्यानाष्ट्रच्छया बाहितो,15 तित्रिमित्तं सञ्जातवराग्यौ श्रावकेणानुशिष्टौ मक्तं प्रत्यास्याय कालगतौ नागकुमारेष्ट्रपणौ ॥ ५६२० ॥ ततस्ताभ्यां किं कृतम् ! इत्याह—

वीरवरस्स भगवतो, नावारूडस्स कासि उवसम्मं । मिच्छदिद्रि परद्वो, कंवल-सबलेहिं तारिको भगवं ॥ ५६२८ ॥

वीरवरस्य भगवतो नावाकदस्य सुदादो नागकुमार उपसर्गमकार्थात् । तेन निष्याद्यदिना ३० प्रारच्यो जले बोलयितुं कम्बल-श्रवलाभ्यां मोवितो भगवात् । कथानकमावृत्यकात्वयार-णीयम् (आव० निर्यु० गा० ४६९-७१ हारि० टीका पत्र १९९-१)। एवं नावारूढस्य साथोबोलनादिकं सम्भवतीति ॥ ५६२८ ॥ अथ वाहनादिपदानि व्याचिष्ट--

सीसगता वि ण दुक्सं, करेह मज्यं ति पवमवि वीतुं । जा छुम्भंतु सम्रुदे, श्वंचति णावं विरुग्गेतु ॥ ५६२९ ॥ 'तिह्यार्थेका इव धिरासे गता अपि मम दुःसं न कुरुय' प्यमप्युचना कश्चित् प्रत्यनीको

यदा सापनी नावं विख्यासदा नावं नदीमुखेषु मुझति येन समुद्रे प्रक्षिप्यन्ते, तत्र पतिताः क्रिस्यन्तं भियन्तो नेति कृद्धा ॥ ५६२९ ॥ गतं वाहृत्म् ॥ अय सेचनं बोहनं नाह्— सिंचति ते उनिर्ध्व वा, ते चेव जले छमेश्र उनिर्धि वा,

सिंचति ते उपिंह वा, ते चैव जरुं छुमेज उविधि वा। मरणोवधिनिष्पर्कां, अणेसिण तणादि तरपण्णं ॥ ५६३० ॥ ं नाविकोऽन्यो बा प्रत्यनीकखान् साधुतुपिं वा सिचाति, तानेव साधुतुपिं वा जरुं प्रक्षि-पैत्, बोळ्येदित्यर्थः। तत्र चास्मविराधनायां मरणनिष्पत्रस्, उपधिनारो उपधिनिष्पत्रस् ।

१ °द्ववा । उचि° दे॰ ॥

ю

80

यणानेषणीयभ्रपिषं अद्दीव्यन्ति तृषानि वा सेविष्यन्ते तक्षिष्पन्नं सर्वमपि प्राप्नोति । तरस्प्यं वा स मार्गयेत्, अदीयमाने चिरं निरूच्यात्, दीयमानेऽभिकरणम् ॥ ५६६० ॥

गताः मत्मनीकदोषाः । अथ 'बहवः प्रत्यपायाः' इति न्याच्छे---

संघट्टणाऽऽयसिचण, उवगरणे पडण संजमे दोसा ।

सावत तेणे तिण्हेगतर, विराहणा संजमा-ऽऽयाए ॥ ५६३१ ॥ त्रसादीनां सङ्कटना, जलेन वा सेचनशुपकरणस्यात्मनो बा, पतनं बा, पते सेयमे दोषाः । श्चापदक्कता स्तेनकृता वा भारमविराधना । "तिण्हेगयर" ति अनुकम्पा-मत्यनीकता-सदुभया-

दिरूपाणां अथाणामेकतरसिन् संमनविराधनाऽऽस्नविराधना च भवति । एप सङ्गहगाथास-मासार्थः ॥ ५६३१ ॥ अभैनामेच विवणीति —

> तस-उदग-वर्षे षड्डण, सिंचण लोगे अ णावि सिंचणता । बुब्भण उनधाऽऽतुभये, मगरादि सप्टदतेणा य ॥ ५६३२ ॥

जङोद्भवानां त्रसानाम् उदकस्य वा सेवाळादिरूसस्य वनस्पतेर्वा सङ्घटनं भवेत् । लोकेन नाविकेन वा साधोरुपकरणस्य वा सेवनं क्रियेत । अतिसम्बाधे वा उपधेरास्मनसद्भयस्य वा स्ताधेऽस्तावे वा जले "बुक्मणं" बोलनं भवति । मकरादयः श्वापदाः समुद्रस्तेनाश्च तत्र 15 मवेतुः ॥ ५६६२ ॥ इदमेव व्याचष्टे—

> ओहार-मगरादीया, घोरा तस्य उ सावया । सरीरोविहमादीया, णावातेणा य कत्यई ॥ ५६३३ ॥

ओहार-मकरादयः 'तत्र' नयां घोराः श्वापदा भवन्ति । ओहारः-मतस्यविशेषः, स किळ नावमधस्तेले जरूस नयति । शरीरहरा उपिष्टरा वा आदिशब्दादुगयहरा वा नौसेनाः कुत्रापि 20भवेषुः, पत्तैरास्मन उपधेवी विनाशे सिकपन्न प्रायश्चित्तत् ॥ ५६३३ ॥

अध ''तिण्हेगयर'' चि पदं व्याख्याति---

सावय तेणे उभयं, अणुकंपादी विराहणा तिण्णि । संजम आउमयं वा. उत्तर-णावत्तरंते वा ॥ ५६३४ ॥

श्चापदाः १ स्तेनाः २ श्वापदा अपि स्तेना अपि ३ एतत् त्रयम् । अथवा अनुकृष्यया १ २० प्रत्यनीकृतया २ अनुकृष्या-प्रत्यनीकृत्र्यत्या वा ३ । अथवा तिस्रो विराधनाः, तद्यया— संयमविराधना १ आत्मविराधना २ उनयविराधना वा ३ । यदि वा उदकमवतस्तः १ नावारूडस्य २ नाव उत्तरत्थेति ३ । एतेषां त्रयाणाभेकतरस्मिन् वहवः प्रत्यपाया भवन्ति ॥ ५६३१ ॥ उक्तं सन्तरणम् । अथोत्तरणमाह—

उत्तरणम्मि परुविते, उत्तरमाणस्य चउलह् होति । आणाहणो य दोसा, विराहणा संजमा-ऽऽताए ॥ ५६३५ ॥

उत्तरणं नाम-यद् नावं विना वश्यमाणैः सङ्घादिमिः मकारेल्पीभेते, तस्सिलुवरणे मरू-यिते सति इदममिथीयते—यदि जङ्कादिनाऽप्युत्तरति तदा चतुर्केषु, आञ्चादयश्च दोषाः, संयमा-ऽऽत्मविरायना च मवति ॥ ५६१५॥ तस्य चोत्तरणस्येते भेदाः—

20

30

जंघद्वा संबद्धो, संबद्धवर्षि तु लेवीं वा णामी । तेण परं लेवीवरि, तुंबोड्डव णाववजोतु ॥ ५६३६ ॥

यसित् जरु उत्तरता पादतकादारम्य जङ्घाया भाई बुडित स सङ्घटः । तस्त्रेव सङ्घटम्मे-परि यावद् नाभिरेतावद् यत्र मविश्वति स लेपः । 'ततः परं' नाभेरारस्योपिर सर्वमपि लेपो-परि भण्यते । तत्र द्विया—स्तावमस्त्रायं न । यत्र नातिका न बुडित तत् स्तावम्, यत्र तु व नातिका बुडित तद् आसावम् । तत्र तुम्बोङ्गपादिभिनौविजितेर्वेद् उत्तर्षिते तद् उत्तरणं मन्त-व्यस् । तत्रीत्तरणे एते संयमा-ऽऽस्मविराधनादोषाः ॥ ५६३६ ॥

> संघट्टणा य सिंचण, उत्रगरणे पडण संजमे दोसा। चिक्तलल खाणु कंटग, सावत भय बुष्मणे आया॥ ५६२७॥

होकेन साथोः सङ्ग्रहनं भवेत्, साधुर्वा जर्ह सङ्ग्रहवेत्, सङ्ग्रहणात् परितापनमपदावणं 10 च स्चितम्, एतेषु कायनिष्पत्रं पायश्चितम् । प्रत्यनीकः साधुमुणीं वा सिखति, सैवं वा साधुमान्मानं सिखेत, साथोरपकरणस्य जर्हे पतनम्, एते सैयमे दोषाः । तथा चिक्सके यद् निमज्जति, जरुमध्ये वा चक्षुरविषयतया स्याणुना कण्टकेन वा यद् विध्यते, मकरादिश्याकर्मम् यं वा भवति, नदीवाहेन वा वाहनम्, एषा सर्वोऽध्यात्मविराधना ॥ ५९३७॥

सत्रम--

अह पुण एवं जाणिजा—एरवइ कुणालाए जत्थ चिक्रया एगं पायं जले किचा एगं पायं थले किचा एवण्हं कप्पइ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा; एवं नो चिक्रया एवण्हं नो कप्पइ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा ३३॥

अथ पुनरेवं जानीयात्— ऐरावती नाम नदी क्रुणालाया नगर्थाः समीपे जङ्कार्द्वममाणे-नोद्रेपेन वहति तस्यामन्त्रस्यां वा यत्रैवं ''चिक्रियां'' शक्तुयात् उत्तरीद्धमिति शेषः । कथम् ! इत्याह—एकं पादं जले कृत्या एकं पादं 'स्वले' आकाशे कृत्वा, ''प्यण्ड''मिति वाक्याल-क्कारे, यत्रोत्तरीद्धं शक्तुयात् तत्र कल्पते अन्तर्मातस्य द्विकृत्वो वा शिक्कत्वो वा 'उत्तरीद्धं' लङ्क्षियेदुं 26 'सन्तरीद्धं वा' भूयः प्रत्यागन्द्वम् । यत्र पुनरेवग्रत्वरीद्धं न शक्तुयात् तत्र नो कल्पते अन्तर्मा-सस्य द्विकृत्वो वा त्रिकृत्वो वा उत्तरीद्धं वा सन्तरीद्धं वा इति स्वार्थः ॥

अथ भाष्यकृद् विषमपदानि न्याचष्टे---

एरवह जिम्ह चिक्रय, जल-थलकरणे हमं तु णाणतं । एमो जलम्मि एमो, थलम्मि हहहं श्रलाडऽमासं ॥ ५६३८ ॥

१ गाथायां संघट्टणाऽऽयसिचण इत्याकारप्रकेषेऽयसथैः ॥

25

ऐरावती नाम नदी, यसां जरू-खरूयोः पादकरणेनोचरीतुं शक्यम् । इदमेव चात्र नाना-त्वम्— यत् पृर्वसृत्रोकासु महानदीसु भाशान्तर्ही त्रीन् वा वारान् उचरीतुं न करयते, अस्यां तु करपते । यश्वात्र 'एको जरुं एकश्च पादः स्वरुं' इत्युक्तं तद् इह स्वरुमाकाशसुरुयते॥भ९३८॥

एरवइ कुणालाए, वित्थिण्णा अद्भजोअणं वहति ।

कप्पति तत्थ अपुणो, गंतुं जा वेरिसी अण्णा ॥ ५६३९

ऐरावती नदी कुणालानगर्या अद्रेऽर्द्धयोजनं विस्तीर्णा वहति, सा चोद्वेयेन जङ्घार्द्धमाणा, तत्र ऋतुचद्धे काले मासकस्ये अपूर्णे त्रिकृत्यो भिक्षाप्रहण-लेपानयनादौ कार्ये यतनया गन्तुं करुपते । या वा ईरशी अन्याऽपि नदी तस्यामपि त्रिकृत्यो गन्तुं करुपते ॥ भ६३९ ॥

कृता विषमपदव्याख्या भाष्यकृता । सम्प्रति निर्मुक्तिविस्तरः-

ैसंकम थले य णोथल, पासाणजले य वालुगजले य । सद्भद्रदग पंकमीसे, परिचऽणंते तसा चेव ॥ ५६४० ॥

नदीसुत्तरतस्वयः पन्थानः, तद्यथा—सङ्गमः १ स्वस्तं २ नोस्वस्तं ३ च । तत्र यद् एकाङ्गि-कादिना सङ्क्षमेण गम्यते सं सङ्कमः । स्वस्तं नाम—नद्याः कृषेरेण वरणेन वा यद् नदीजरूं परिहृत्य गम्यते । नोस्वस्तं चतुर्विधम्—पापाणजरूं वाटुकाजरुं गुद्धोदकं पङ्कमिश्रजरुम् । एतेषु 15 चतुर्व्विष गच्छतां यथासम्भवं परीत्ता-ऽनन्तकायास्त्रसाक्ष विराधनां प्राप्नवन्ति ॥५६४०॥ तथा—

> उदए चिक्खल्ल परित्त-ऽणंतकाइग तसे त मीसे त । अकंतमणकंते, संजोए होति अप्पवहुं ॥ ५६४१ ॥

उदके चिक्ताञ्चादिकः प्रथिवीकायः वनस्पतयश्च परीत्तकायिका अनन्तकायिका वा त्रसाश्च द्वीन्द्रियादयो भवेषुः । एते च सर्वेऽपि यथासम्भवं मिश्रा सन्तिता वा आकान्ता अना-20 कान्ता वा स्थिरा अस्थिरा वा समत्यपाया निष्मत्यपाया वा भवेषुः । एतेषु च बहवः संयोगा उपयुज्य वक्तव्याः । तेषु यत्रारूपबहुत्वं भवति, अस्पतराः संयमा-ऽऽस्मविराधनादोषा बहवश्च गुणा भवन्तीत्यर्थः, तत्र कारणे समुद्यको गन्तव्यम् ॥ ५६९१ ॥

यत्र च सङ्क्षमो भवति तत्रामी भङ्गविकल्पा भवेयः---

एगंगिय चल थिर पारिसाडि सालंब विज्ञए सभए । पडिपक्खेस त गमणं, तजातियरे व संडेवा ॥ ५६४२ ॥

सङ्कम एकाङ्गिको वा स्वादनेकाङ्गिको वा । एकाङ्गिकः—य एकेन फरुकादिना कृतः, अनेकाङ्गिकः—अनेकफरुकादिनिर्मितः । अत्रैकाङ्गिकेन गन्तस्यं नानेकाङ्गिकेन, एवं स्विरेण न च चलेन, अपरिकारिना न परिघारिना, साङ्म्बन गन्तस्यं न 'वर्षितेन' निराङ्म्बेन- तर्वाः । साङ्म्बोऽपि द्विपा साङ्म्बनेन, तर्त । त्रिक्ताः साङ्म्बेन्न । साङ्म्बेनाः । साङ्म्बेनाः । पूर्व द्विपा साङ्म्बेन- तर्त । त्रिक्ताः साङ्म्बेनां प्रवासाङ्मेनापि । तथा निर्मेन गन्तस्यं न समयेन । अत एवाह — "पिड्मक्सेस्य य गमण" ति अनेकाङ्गिक-चङ्मप्रधारि-निराङ्म-सम्बास्यानं प्रश्नानं प्रवानं ये एकाङ्गि-

१ "वंकम यहे य॰ पुरातनं गायादयम्" इति विशेषसूर्णो ॥ २ स पम्था अप्युपचारात् सङ्क° को॰ ॥ ३ °क्षा उपलक्षणत्वात् सचि॰ को॰ ॥

कादयः प्रतिपक्षास्तेषु गमनं कर्तन्यम् । अत्र पञ्चमिः पर्वेद्वर्तिशत् मङ्गाः—एकाङ्गिकः स्थिरोऽपरिशाटी सारूम्मो निर्मय इत्यादि । एषु प्रथमो भङ्गः शुद्धः शेषा अशुद्धाः, तेष्विष बहुगुणतरेषु गमनं यतना च कर्तन्या । सण्डेवका अपि सङ्गममेद एव, अत आह्—तजा-तकाः 'इतरे वा' अतजातकाः सण्डेवका भवेषुः । तत्रैव जातास्तजाताः शिळादयः, अन्यतः स्थानादानीय स्थापिता अतजाताः इष्टालकादयः । तेष्विष चला-ऽचल-ऽऽकान्ता-ऽना-६ कान्तादयो भेदाः कर्तन्याः ॥ ५६४२ ॥ उक्तः सङ्गमः । अथ स्थल्माह्—

नदिकोप्पर वरणेण व, थलप्रदयं णोथलं तु तं चउहा । उवलजल वालगजलं. सद्धमही पंकप्रदर्ग च ॥ ५६४३ ॥

नचा आकुण्टितकूर्यराकारं वलनं नदीकूर्यराच्यते । जलेगिर कगारानि मुक्वा पालिबन्धः कियते स वरण उच्यते । एताभ्यां यतुदकं परिहृत्य गम्यते तत् सौकं द्रष्टव्यम् । अथ नोस्सकं १० तत् चुर्वियम्—'उपलजलक्' अथः पाषाणा उपिर जलं १ 'वालुकाजलक्' अथे वालुका उपिर गानीयं २ 'गुद्धोदकं' अथः गुद्धा मही उपिर जलं ३ 'पक्कोदकं' अथः कर्दम उपिर जलम् १ ॥ ५६१२ ॥ पक्कोदकस्य चामृनि विधानानि—

लत्तगपहे य खुलए, तहऽद्धजंघाऍ जाणुउविर च । लेवे य लेवउविर, अकंतादी उ संजोगा ॥ ५६४४ ॥

यावन्मात्रमञ्ककंन पादो रञ्यते तावन्मात्रो यत्र पथि कर्दमः स छत्तकपथः । खुँठक-गात्रः—पादाषुण्टकप्रमाणः । अर्द्धजङ्घामात्रः—जङ्घाद्धं यावद् भवति । 'जानुपरि' जानुमात्रं यावद् भवति । 'छपः' नाभिपमाणः । तत ऊर्द्धं सर्वोऽपि छेगोपरि । एते सर्वेऽपि कर्दम-प्रकाराः । चतुर्विये नोस्थले कर्दमे चाकान्ता-जाकान्त-सभय-निर्भयादयः संयोगा यथासम्भवं वक्तव्याः । अमुना दोषेण युक्तः पन्थाः परिहर्तव्यः ॥ '५६४८ ॥

जो वि य होतऽर्कतो, हरियादि-तसेहिँ चेव परिहीणो । तेण वि तु न गंतब्वं, जत्थ अवाया हमे होंति ॥ ५६४५ ॥ योऽपि च पन्थाः 'आकान्तः' दरमिलतो हरितादिमिस्रतैश्च परिहीणो भवति तेनापि न गन्तव्यम् । यत्र अमी अपाया भवन्ति ॥ ५६४५ ॥

गिरिनदि पुण्णा वाला-ऽहि-कंटगा दूरपारमावत्ता ।

चिक्तखष्ठ केछुगाणि य, गारा सेवारु उवला य ॥ ५६४६ ॥ यत्र पिथ गिरिनदी 'पूणी' तीववेगा वहित, नकरादयो व्याला अहयो वा यत्र जलमध्ये भवन्ति, कण्टका वा पूरेणानीताः, दूरपारम् आवर्तबहुलं वा जलं भवेत्, विक्तखो वा नदीषु ताहशो यत्र पादो निमज्जति, 'कछुकाः' गाथायां नपुंतकत्वं प्राकृतत्वात् पाषाणेषु द्वीन्द्रिय-जातिविशेषा भवन्ति ते पादो हेक्यन्ति, 'गाराः' पाषाणश्चिक्तकाः, 'सेवालः' प्रसिद्धः, ३०

१ "थके णाम परिएणं गम्मइ, जहा कोप्पारीणं । णोयलं पाणियं, तं चडिवहं" इति विशेषचूर्णों ॥ २ साञ्जय मो॰ के॰ । खुलुय भा॰ । एनमंत्रिप सर्वत्र ॥ व साञ्जक° मो॰ के॰ । खुलुक° मा॰ । एनमंत्रिप्री सर्वत्र ॥ ४ तामेबाह इलवतरणं को॰ ॥

'अपसार' क्रिमामाणाः । वैभिरपावैवेजितेन पूर्व स्थलेन गन्तव्यम् , तदमावे सङ्ग्रमेण, तद-मावे नोस्सलेनापि ॥ ५६४६ ॥ तत्र चतुर्विवे नोस्यले पूर्वमनुना गन्तस्यम्—

> डबलजलेण तु पुन्नं, अकंत-निरचएण गंतन्नं । तस्सऽस्ति अपकंते, णिरचएणं तु गंतन्नं ॥ ५६४७ ॥

उपस्त्रज्ञे कर्दमो न अवति, स्विरसंहमनं च तद् मवति, अतः पूर्वं तेन ' आकान्त-निरस्यवेन' शुण्या-निष्यत्यपायेन गन्तव्यम् । तस्याभावे अनाकान्त-निरस्ययेनापि गन्तव्यम् ॥ ५६४७ ॥

एमेव सेसएसु वि, सिगतजलादीहिँ होति संजोगा। पंक महसित्थ लत्तग. खलऽद्धजंघा य जंबा य ॥ ५६४८ ॥

उषकाद् वालुका अरुपसँहनना, तत उपकजकाभावे वालुकाजलेन गन्तव्यम् । वालुकायाः 10 शुद्धपृथियो स्वरुपतरसंहनना, ततो वालुकाजलानन्तरं शुद्धोदकेन गैम्यते । तेष्विप सिकता-जलादिषु शेषपरेषु 'प्वमेव' प्राम्वद् आकान्ता-ऽनाकान्त्वादमः संयोगा भवन्ति । पङ्कलकं बहु-प्रस्यपायम्, अतः सर्वेषागुष्टजलादीनात्मावे तेन गम्यते । स व यः 'मधुसिक्षगक्कतिः' कमत-क्रमात्रेये केवलं क्रमति यो वा अलक्तकमात्रस्तेन पूर्वं गम्यते, पश्चात् खुलकमात्रण, पश्चादर्द्ध-जङ्कामात्रण, ततो जङ्कामात्रण जानप्रमाणेनीन्यर्थः ॥ ५६४८ ॥

15 यस्तु जानुप्रमाणादुपरि पद्मस्तेन न गन्तव्यम् , यत आह---

अङ्कोरुतिमत्तातो, जो खुल उन्नारं तु कहमो होति । कंटादिजडो नि य सो, अत्थाहजलं न सानायं ॥ ५६४९ ॥

'अर्द्धोरुकमात्राद्' जानुममाणादुपरि यः कर्दमो भवति सः कण्टकाद्यपायवर्जितोऽप्यस्ताय-जरुमिव गन्तुमशक्यस्वात् सापायो मन्तन्यः ॥ ५६४९ ॥

एष विधिः सर्वोऽपि सिच्चित्रप्रथिन्यामुक्तः । अथाचित्रप्रथिन्यां तमेवाह—

जत्य अचित्ता पुरवी, तहियं आउ-तरुजीवसंजोगा । जोणिपरित्त-थिरेहि य. अकंत-जिम्बएहिं च ॥ ५६५० ॥

यत्र पृथिवी अचिवा तत्राप्काश्यक्षीवानां तरुजीवानं व संयोगाः कर्तव्याः । तथ्यभा—
पृथिवी सर्वत्राप्यचित्रा तिमप्कायेन गच्छतुः किंवा वनस्पतिनाः उच्यते— अपकाये नियमाद्
28वनस्पतिरस्ति तस्मात् तेन मा गात्, वनस्पतिना गच्छतुः, तत्रापि परीचयोनिकेन खिरसंइननेन
आकान्तेन निरस्ययेन च-निष्पत्यपायेन । अत्र योडत्र मङ्गाः, तथ्यम—प्रत्येकयोनिकः
स्वर आकान्ते निःस्रत्यययः, एष प्रथमो मङ्गः, सार्यपायेन द्वितीयः, अनाकान्तेऽप्यवेमेव
द्वी विकल्पी, एमे स्वरं स्वरारं विकल्पाः रुज्याः, अस्पिऽप्येवं चस्वारः, एते प्रत्येक्षयोनिकेन्ताधी सङ्गाः स्वर्ण्यः विकल्पाः रुज्याः अन्तर्यात्रीनिकेप्रत्येवस्याः स्वर्णाः विकल्पाः स्वर्णाः क्रमाः अन्तर्यानिकेन्ताधी सङ्गाः स्वर्णाः स्वर्याः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्याः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्याः स्वर्याः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्णाः स्वर्याः स्वर्याः स्वर्यः स्वर्यः स्वर्यः स्वर्णाः स्वर्यः स

एमेव य संजोगा, उदगस्त चउव्विहेहिँ तु तसेहिं। अकंत-थिरसरीरे-णिरचएहिं तु गंतव्वं ॥ ५६५१ ॥

१ पतेर° भा• ॥ २ गन्तव्यम् , तेष्व° भा• ॥

चलुर्विभाक्षसाः—द्वीन्द्रियाश्चीन्द्रियाश्चलुरिन्द्रियाः पञ्चन्द्रियाश्चलि । एतेश्चलुर्विपैरिष त्रसै-राक्षान्तादिभिः पदेरेवमेव उदकेन सह संयोगाः कार्योः, तथया—आकान्ताः स्विरा तिःपत्य-पायाः १ आकान्ताः स्विराः सप्तत्यायाः २ एवं त्रिभिः पदेरष्टी सक्का भवन्ति, पते व द्वीन्द्रियादितु चलुर्व्यपि प्रत्येकमधावद्यौ कथ्यन्ते, जाता भक्तकानां द्वार्विद्यत्। अब सान्तर-तिरत्तदिकरुपविद्यका क्रियते तत्वस्रदुःषष्टिः संयोगा उपिष्ठन्ते । अत्र चाकान्त-स्विरशरीर- ६ निरत्ययैः सान्तरेक्षसैर्यन्तव्यं नाष्कायेन ॥ ५६५१ ॥

तेऊ-वाउविद्रूणा, एवं सेसा वि सन्वसंजीगा।

उदगस्स उ कायञ्चा, जेणऽहिगारो इहं उदए ॥ ५६५२ ॥ 'तेजो-बायुकाययोर्गमनं न सम्भवति' इति इत्वा तेजो-बायुविहीना एवं रोषा अपि संयोगसः सर्वेऽपि कर्तव्याः । तत्राप्कायस्य वनस्पतिना त्रसेश्च सह भक्का उक्ताः, अथ वनस्पति-असानां 10 द्विकसंयोगेन भक्का उच्यन्ते—किं वनस्पती गम्यताष् ? उत त्रसेषु ? उच्यते—त्रसेषु सान्त-

रेषु गन्तत्त्र्यम्, न पुनर्वनस्पती, तत्र हि नियमेन त्रता भवेषुः । आह च निश्चीयचूर्षिकृत्— पुत्रं तसेषु थिराहसु गंतत्रं, जतो वणे वि नियमा तसा अस्थि ।

पृषिव्यप्काय-वनस्पतित्रयसम्भवे कतमेन गम्यताम् ! उच्यते — पूर्वं पृषिवीकायेन, ततो वनस्पतिना, ततोऽप्कायेनापि । पृथिव्युदक-वनस्यति-त्रसत्थ्यणचतुष्कसंयोगसम्भवे कतमेन 15 गन्तव्यम् ! उच्यते — पूर्वमिचतपृथिव्यां प्रविरत्वत्रसंयु, ततः सचितपृथिव्याम्, ततो वनस्पितिना, ततोऽप्कायेनापि गम्यम् । एवमिह बहुमङ्गविद्यते बीजमात्रमिदयुक्तम् । इह च उदकपदममुख्यता ये मङ्गाः प्राप्यन्ते ते कर्तव्याः, येनेह सूत्रे उदकस्याधिकारः। शेवास्तु विनेय-व्युत्पादनार्थमभिहिताः॥ भ६५२॥ "अंतो मासस्स दुक्कुत्तो वा" इत्यादि सूत्रं व्यास्याति —

एरवइ जत्थ चिक्कय, तारिसए न उवहम्मती खेतं । पिंडसिद्धं उत्तरणं. पुण्णासति खेत्तऽणुष्णायं ॥ ५६५३ ॥

सावतात्व उपराम, प्रभाततात्व स्वयंत्रभाव स्वयंत्य स्वयंत्रभाव स्वयंत्य स्वयंत्य स्वयंत्य स्वयंत्य स्वयंत्य स्वयंत्य स्वयंत्य स

सत्त उ बासासु भवे, दगघट्टा तिकि होति उड्डब्हे ।

जे तु ण हर्णाते खेर्च, भिक्त्वायरियं व न हर्णाते ॥ ५६५४ ॥ ॥ अस्ति स्वादक्तक्ष्म वर्णाञ्च अयः सङ्घद्य ऋतुबद्धे भवन्ति एताबन्तः क्षेत्रं नोषप्तन्ति, न व। भिक्काचर्याञ्चपन्नतः॥ ५६५४ ॥

जह कारणस्मि पुण्णे, अंतो तह कारणस्मि असिवादी।

उवहिस्स गहण लिंपण, णाबीयम तं पि जतणाए ॥ ५६५५ ॥

यथा कारणे पूर्णे मासकरूपे वर्षावासे वाऽपरक्षेत्रामावे दृष्टमुतरणं तथा मासस्यान्तरप्यक्षि-वादिभिः कारणैरुपयेवी महणार्थे लेपस्यानयनार्थं वा उत्तरणीयम् । कारणे यत्र नावाऽप्युदकं तीर्यते तत्रापि यतनया सन्तरणीयम् ॥ ५६५५ ॥ तत्र चायं विधिः—

नाव थल लेवहेड्डा, लेवो वा उवरि एव लेवस्स । दोण्णी दिवड्डमेकं, अद्धं णावाएँ परिहाती ॥ ५६५६ ॥

दाण्या (दबद्भुमकः) अद्ध णावार पार्वाता । (पर्यद्र । । अत्र पूर्वार्द्ध-पशार्द्धरवानां स्थासक्ष्येन योजना — नावुत्तरराखानाद् यदि द्वे योजने वकं स्थलेन गम्यते तेन गन्तव्यं न च नीरारोढत्या, ''लेबहिट्टं' ित लेक्स्याध्माद् दक्साङ्कृदेन यदि स्थलेन गम्यते तेन गन्तव्यं न च नीरारोढत्या, ''लेबहिट्टं' ित लेक्स्याध्माद् दक्साङ्कृदेन यदि सार्द्धयोजनपरिरोण गम्यते तत्तात्र गम्यतां न च नावमित्रिरोल, एवं योजनपर्यात्ति लेक्स्याजनपर्यव्यात्ति के परिद्यायते । एवमेव लेक्सिपरिस्थातात् सार्द्धयोजनपरिहारेण स्थलेन, एक्योजनपरिरोण सार्द्धयोजनपरिहारेण सार्द्धयोजनपरिहारेण सार्वेन, एक्योजनपरिहारेण सार्वेन न सार्द्धयोजनपरिहारेण सार्वेन न सार्द्धयोजनपरिहारेण सार्द्धयोजनपरिहारेण सार्वेन न क्रियेन सार्वेन सार्वेन सार्वेन न क्रियेन सार्वेन । सार्वेन न क्रियेन सार्वेन सार्वेन सार्वेन न क्रियेन सार्वेन । सार्वेन न क्रियेन सार्वेन सार्

दो जोयणाइँ गंतुं, जहियं गम्मति थलेण तेण वए।

मा य दुरूहे नावं, तत्थावाया वह बुत्ता ॥ ५६५७ ॥ द्वे बोजने गत्वा यत्र खलेन गम्यते तेन पथा व्रजेद् मा च नावमारोहत् । यतस्तत्र बहर-२० बोऽपायाः पूर्वमेबोक्ताः । कारणे तु तत्राणि गम्यते ॥ ५६५७ ॥

तत्र सङ्गेडे गच्छतां तावद् यतनामाह-

थलसंकमणे जयणा, पलोयणा पुच्छिऊण उत्तरणं । परिपुच्छिऊण गमणं, जति पंथो तेण जतणाए ॥ ५६५८ ॥

स्थलसङ्क्षमणे यतना कार्यो, एकं पारं जले एकं च पारं स्थले कुर्यादित्यर्थः । प्रलोकना 25 नाम-लोकमुत्तरन्तं भलोकयति, यस्मिन् पार्थे जङ्घाद्वमात्रमुदकं तत्र गच्छति । अथोत्तरतो न पद्म्यति ततः प्रातिपश्चिकमन्यं वा प्रच्छति, ततो यत्र नीचतरमुदकं तत्रोत्तरणं विषेत्रम् । "परिपुच्छिङ्कण" इत्यादि, यदि तस्योदकस्य परिहारेण पन्धा विद्यते तदा तं परित्यज्य यत्तनया तेन गन्तस्यम् ॥ ५६५८ ॥ अथ स्थलपथेऽमी दोषा भवेगुः—

> समुदाणं पंथो वा, वसही वा थलपथेण जित नित्थ । सावत-तेणमयं वा, संघड्टेणं ततो गच्छे ॥ ५६५९ ॥

'समुदानं' भिक्षा तत्र नास्ति, खरूपय एव वा नास्ति, वसतिनां खरूपये यदि न समस्ति, श्चापदमयं स्तेनमयं वा तत्र नियते ततः स्थरूपयं मुक्त्वा सङ्ग्रहेन प्रथमतो गच्छेत्, तद्भावे स्रोप ॥ ५६५६ ॥ तत्रेयं यतना—

15

30

णिभये गारत्थीणं, तु मग्गतो चोलपद्दमुस्सारे । सभए अत्थग्धे वा, उत्तिण्णेसुं घणं पद्दं ॥ ५६६० ॥

यदि स साधुर्गृहिसार्थसहायसत उदकसमीप गत्वोर्द्धकाथ मुखबक्षिकयाऽधःकाथ रजोहर-णेन प्रमाञ्चोपकरणमेकतः कृत्वा यदि निर्भयं-चौरमथं नाश्चि ततो गृहस्वानां 'मार्गवः' सर्व-पक्षादुदकमवतरति । यथा थथा चोण्डमुण्डतरं जरुमवगाहते तथा तथोपर्युपरि चोल्यह्कसु- ६ सार्येद् येन न तीम्यते । अथ तत्र समयम् अस्तायं वा जरुं ततो यदा कियन्तोऽपि गृहस्वा अम्रतोऽवतीणांसदा मध्ये साधुनाऽवतरणीयम् चोलपङ्कं च 'वनं' दढं कशियात् ॥ '५६० ॥ एतेन विभिनोपीणस्य यदि चोलपङ्कोऽन्यद्वा किश्चदुषकरणजातं तीमितं तदाऽयं विभिः—

दगतीरे ता चिट्ठे, णिप्पगलो जाव चोलपट्टो तु । सभए पलंबमाणं, गच्छति काएण अफ्रसंतो ॥ ५६६१ ॥

'दक्तीरे' स्निम्पप्रियत्मामकार्यस्थणार्थं तावत् तिष्ठेत् यावत् चोरुपष्टकोऽन्यद्भोषकरणं निष्प-गरुं भवति । अथ तत्र तिष्ठतः सभयं ततः प्रगरुन्तमेव तं चोरुपष्टकं कायेनास्प्रश्नत् बाहायां प्ररुप्यमानं नयन् गच्छति ॥ ५६६१ ॥ यत्र सार्थविरहित एकाकी समुत्तरित तत्रायं विधिः—

असइ गिहि णालियाए, आणक्खेउं पुणो वि पडियरणं । एगाभोगं च करे, उत्रकरणं लेव उवरि वा ॥ ५६६२ ॥

गृहिणामभाव सर्वोपकरणमवत्राणतीर मुक्तवा नालिकां—आत्मप्रमाणात चतुरङ्ख्यातिरिकां यि गृहीत्वा नया "आणक्सेडं" अस्तावतामनुमीय परतीरात पुनरिष जले प्रतिचरणं करोति, प्रत्यागण्डतीत्यथैः; आगत्य च ततुरकरणमेकाभागं करोति, एकत्र नियम्रयतित्यथैः; तत-स्तद् गृहीत्या ने गृतिकानकण्येनोचरति । ए करे भेपोपरी वा विधिरुक्तः ॥ ५६६२ ॥ अभ गावं थैः कारणेरारोहेत तानि दर्शयति—

बिइयपय तेण सावय, भिक्खे वा कारणे व आगाढे । कज्जविह मगर छन्भण, नावोदग तं पि जतणाए ॥ ५६६३ ॥

क्ष्मुचाह भार हुण्यान, नायाचन ता पर जपजार ता तर्भर ता क्ष्मुचाह भार हुण्यान, नायाचन ता पर जपजार ता तर्भर ता दितीयपदमजोट्यते— सक-सहुद्वादिपथेषु अरिरोपिकेताः सिंहादयो वा श्वापदा भवेषुः, भेशं वा न रुभ्यते, आगादं वा कारणम्—अहिद्दष्ट-विष-विस्तृष्टिकादिकं भवेत् तत्र त्वरितमी-प्यान्यानेत्व्यानि, कुलादिकार्यं वा अक्षरेण करणीयमुपस्थितम्, उपयेरुत्वादनार्थं वा गनतव्यम्, 25 लेपे लेपोपरी वा मकरमयं ततो नावमारोहेत् । तत्र च प्रथममेवोपकरणमेकामोगं कुर्योत् । कुतः ! इत्याह— "कुल्याल्" वि क्ष्मियोगं ति क्ष्मायि । प्रविच विक्रमस्यतीति । "नावोदग तं पि जयणाए" वि यदि वल्यमियोगेन नावुदकस्यो-स्तेचापनं कार्यते तदा तदपि यतनया कर्तव्यम् ॥ ५६६३ ॥

कथं पुनरेकाभोगमुपकरणं करोति ? इत्याह--

पुरतो दुरुहणमेरातों, पिंडलेहा पुट्य पच्छ समगं वा । सीसे मन्गतों मज्झे, बितियं उवकरण जयणाए ॥ ५६६४ ॥ गृहिणां पुरत उपकरणं न प्रञ्जेक्षते, न वा पकाभोगं करोति । "दुरुहण" ति नावमारे- कुक्तमेन प्कान्तमपकम्योपकरणं प्रखुपेक्षणीयम् । "पिछळेह" ित ततोऽधःकायं रजोहरणेन उपरिकायं मुखानन्तकेन प्रमुख्य माजनान्येकत्र बद्धाति, तेषासुपरिष्ठादुपीधं सुनियिष्ठतं करोति । "पुत्र पच्छ समगं व" ित किं गृहिस्यः पूर्वमारोढव्यम् ! उत पक्षात् ! उताहो समक्षम् ! अत्रोत्तरम् — यदि प्रदूक्त नाविकादवयं यदि च िक्सा नौते दोक्ययते ततः पूर्वमारोढव्यम् ; अञ्चान्ताः ततः पूर्वे नारक्ष्यते, मा 'अमक्रक्य' रित हत्ता प्रदेशं गमन्त, तेषां प्रमानाां मावं क्रात्वा समकं पक्षाह्म आरोहणीयम् । "सीसे" ित नावः श्चिरति कृत्वा; मध्येऽपि यत्र कृत्यक्ताः मार्गताऽपि न स्थातव्यम् , निर्योगकत्त्वत्र तिष्ठत्वाः मार्गताऽपि न स्थातव्यम् , निर्योगकत्त्वत्र तिष्ठतिति कृत्वाः मध्येऽपि यत्र कृत्यक्तसानं तत्र न स्थातव्यम् , तत् मुक्ता वय् अपरं मध्ये स्थानं तत्र स्थाय् । अञ्च मध्ये नात्ति स्थानं ततः शिरति प्रष्ठतो वा यत्र ते स्थापयन्ति तत्र निरावाधे स्थीयते । साकारं भक्तं । 10 प्रद्याप्तया नमस्कारपरिताष्ठति । उत्तत्वि । स्याप्यिक्ष पूर्वमेवाक्तप्रस्तागिति तः समिक्याः निर्वाच निरावाधे स्थाने ततः प्रावणीति । यदि च तरप्रकृत्यान्तवपुष्करणं तद् यतनया दात्वयद् । अञ्च त स्थान सुखति ततो द्वितीयपदे यद् अन्तमान्तवपुषकरणं तद् यतनवा दात्वयद् । अञ्च तत्र नेच्छति निरुणद्व वा ततोऽजु-कृत्या यदि अन्तो द्वति तदा न वारणीयः ॥ '१६६६ ॥

॥ महानदीपकृतं समाप्तम् ॥

उपाश्रय प्रकृत म्

सूत्रम्--

15

20

25

से तणेसु वा तणपुंजेसु वा पठालेसु वा पठाल-पुंजेसु वा अप्पंडेसु अप्पपाणेसु अप्पवीपसु अप्पह-रिपसु अप्पुस्तेसु अप्पुत्तिंग-पणग-दगमिट्टिय-मक्कड-गसंताणपसु अहेसवणमायाए नो कप्पइ निग्ग-थाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए हेमंत-गिम्हासु वस्थए ३४॥ से तणेसु वा जाव संताणपसु उप्पिसवणमायाए कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उव-स्सए हेमंत-गिम्हासु वस्थए ३५॥ से तणेसु वा जाव संताणपसु अहेरयणीमुक्कम-उडेसु नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तह-प्यगारे उवस्सए वासावासं वस्थए ३६॥ से तणेसु वा जाव संताणएसु उप्पिरयणीमुक्कम-उडेस कप्पड निग्गंथाण य निग्गंथीण य तहप्पगारे उवस्सए वासावासं वत्थए ३७॥

अस्य सञ्चत्रष्टयस्य सम्बन्धमाह--

अद्धाणातो निरुयं, उविंति तहियं त दो इमे सुत्ता । तत्थ वि उडुम्मि पदमं, उडुम्मि दृइजाणा जेणं ॥ ५६६५ ॥ पूर्वसूत्रे 'अध्वा' जरुपथरुक्षणः प्रकृतस्तत उत्तीर्णाः 'निरुयम्' उपाश्रयमुपागच्छन्ति । तद्विषये च ऋत्वद्ध-वर्षावासयोः प्रत्येकमिमे द्वे सूत्रे आरम्येते । तत्रापि प्रथमं सूत्रद्वयमृतु-बद्धविषयं द्वितीयं वर्षावासविषयम् । कृतः ? इत्याह---ऋतुबद्धे येन कारणेन "दइज्जणा" विहारो भवति न वर्षावासे, पूर्वसूत्रे च विहारोऽधिकृतः, अतः सम्बन्धानुकोम्येन पूर्वमृतवद्ध-10

सन्नद्धयं ततो वर्षावाससन्नद्धयमिति ॥ ५६६५ ॥

अहवा अद्धाणविही, वृत्ती वसहीविहिं इमं भणई। सा वी पुन्नं बुत्ता, इह उ पमाणं दुविह काले ॥ ५६६६ ॥

अथवाऽध्विन विधिः पूर्वसूत्रे उक्तः, इमं त प्रस्तुतसूत्रे वसतिविधि भणति । साऽपि च वसतिः 'पूर्वं' प्रथमोद्देशकादिष्वनेकशः प्रोक्ता, इह तु 'द्विविधेऽपि' ऋतबद्ध-वर्षावासलक्षणे 15 काले तस्याः प्रमाणमुच्यते ॥ ५६६६ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या--अथ तृणेषु वा तृणपुञ्जेषु वा पढालेषु वा पढाल-पुञ्जेषु वा अल्पाण्डेपु अल्पपाणेषु अल्पबीजेषु अल्पहरितेषु अल्पावश्यायेषु अल्पोत्तिक्र-पनक-दकमृत्तिका-मर्कटसन्तानकेषु । इह अण्डकानि पिपीलिकादीनाम्, प्राणाः-द्वीन्द्रियादयः, बीजम्-अनङ्कारितम्, तदेवाङ्कारितोद्भिनं हरितम्, अवश्यायः-स्रोहः, उत्तिक्कः-कीटिकानगरम्, 20 पनकः-पश्चवर्णः साङ्करोऽनङ्करो वाऽनन्तवनस्पतिविशेषः, दकमृत्तिका-सन्तिनो मिश्रो वा कर्दमः, मर्कटकः-कोलिकस्तस्य सन्तानकं-जालकम् । अल्पशब्दश्चेह सर्वत्राभाववचनः, ततोऽण्डरहितेषु पाणरहितेषु इत्यादि मन्तव्यम् । ''अहेसवणमायाए'' ति 'अधःश्रवणमात्रया' श्रवणयोरधसाद यत्र छादनतणादीनि भवन्ति तथाप्रकारे उपाश्रये नो करूपते निर्मन्थानां वा निर्मन्यीनां वा हेमन्त-मीष्मेषु वस्तुम्, अष्टावृत्वबद्धमासानित्वर्थः ॥

एवं प्रतिवेधसूत्रमभिधाय प्रविश्वतज्ञविनेयानुप्रहार्थं विधिसूत्रमाह-

अथ तृणेषु वा यावदरूप० सन्तानकेषु उपरिश्रवणमात्रया युक्तेषु तथाविधोपाश्रये करूपते हेमन्त-श्रीष्मेषु वस्तुम् ॥ एवमृतुवद्धसुत्रद्वयं व्याख्यातम् । अथ वर्षावाससुत्रद्वयं व्याख्यायते---

अब रुणेषु वा रुणपुञ्जेषु वा यावदरूप० सन्तानकेषु "अधेरयणीमुक्कमउडेस्" चि अञ्ज-लिमुकुलितं बाहद्वयमुच्छितं मुकुट उच्यते स च इस्तद्वयशमाणः । यदाह बृहद्भाष्यकृत- 30

मउडो पुण दो रयणी, पमाणतो होह हू मुणेयब्बो । रिक्रिभ्यां-हस्ताभ्यां मुक्ताभ्यां-उच्छिताभ्यां यो निर्मितो मुकटः स रिक्रमकमुकटः । एता-E. 965

नत्ममाणमधस्तासुपरि च सन्नान्तरासं न प्राप्यते तेष्वधोरत्नियुक्तमुकुटेषु तृष्याविषु न करुपते वर्षावासे वस्तुम् ॥

अथ तृणेषु वा यायदस्प० सन्तानकेषु उपरिरक्षिमुक्तमुकुटेषु यथोक्तप्रमाणेषु मुकुटोपरि-वर्तिषु संस्तारके निविष्टस्य साधोरर्थवतीयहस्तावपान्तराख्युकेष्वत्यर्थः । ईष्टस्यां वसतौ करूपते

तजगहजाऽऽरण्णतजा, सामगमादी उ सहया सब्वे ।

सालीमाति पलाला, पुंजा पुण मंडवेसु कता ॥ ५६६७ ॥

लणबहणाब आरण्यकानि स्थामाकादीनि सर्वाण्यपि तृणानि सुचितानि । पद्मालमहणेन शास्यादीनि पकालानि गृहीतानि । पुञाः पुनस्तृणानां पलालानां वा उपरिमण्डपेषु कृता 10 भवन्ति । येषु हि देशेषु सरपानि तृणानि तेषु पुजरूपतया तानि मण्डपेषु सहस्रान्ते, अधस्ता-द्धमौ स्थापितानि मा विनश्येयरिति कृत्वा ॥ ५६६७ ॥

> पंजा उ जिंह देसे. अप्पष्पाणा य होति एमाटी । अप्प तिग पंच सत्त य, एतेण ण बचती सुनं ।। ५६६८ ॥

एवं यत्र देशे मण्डपेष पुत्राः कृता भवन्ति तत्र विवक्षितायां वसती ते पुत्रा अल्पमाणा 15 अल्पबीजा एवमादिविशेषणयुक्ता भवेयुः, अत्र कत्याप्येवं बुद्धिः स्यात—अल्पाः प्राणास्त्रयः पन्न सप्त वा मन्तव्याः, अत आह---न 'एतेन' परोक्तेनाभिप्रायेण सत्रं बजति, किं तर्हि ! अरूप-शब्दोऽत्राभाववाचको द्रष्टव्यः, प्राणादयस्तेषु न सन्तीति भावः ॥ ५६६८ ॥ अत्र परः पाह-

बत्तव्या उ अपाणा, बंधणुलोमेणिमं क्यं सत्तं । पाणादिमादिएसं. ठंते मदाणपच्छितं ॥ ५६६९ ॥

20 बदि अभावार्थोऽस्पराब्दस्तत एवं सुत्रालापका वक्तव्याः—''अपाणेस अवीएस अहरिएस'' इत्यादि । गुरुराह--बन्धानुरुरियेनेत्यं सत्रं कृतम ''अप्पपाणेस'' इत्यादि, एवंविधी हि पाठः सुकलितः सुखेनैवोश्वरितं शक्यते । यदि पनहीं त्रयः पञ्च वा द्वीन्द्रियादयः प्राणिन आदिशब्दादण्डादीनि वा यत्र भवन्ति तत्र तिष्टन्ति ततस्तेवां विराधनायां स्वस्थानप्रायश्चित्तं द्रष्टस्यम् ॥ ५६६९ ॥ कथं पनरस्पशस्त्रोऽभावे वर्तते ! तत आह---

थोवस्मि अभावस्मि य, विणिओगो होति अप्पसहस्स । थोवे च अप्पमाणो, अप्पासी अप्पनिहो य ॥ ५६७० ॥ निस्सत्तरस उ लोए. अभिद्वाणं होइ अप्यमत्तो ति । स्रोडचरे विसेसी. अप्पाहारी तअड्डिआ ॥ ५६७१ ॥

स्तोकेऽमाबे च अस्पश्चदस्य 'विनियोगः' व्यापारी भवति । तत्र स्तोकार्थवाचको यथा--३० अस्पमानो अस्पाशी अस्पतिहोऽयम् ॥ ५६७० ॥ अभाववाचको सथा—

यः किछ निःसच्यः पुरुषसास्य क्रोकेऽस्पसच्योऽयमित्यभिधानं भवति । क्रोकोचरेऽध्ययं विशोषः समस्ति, यथा-अन्याद्वारो भवेद अन्यं च त्यावर्तयेत् । अभावेऽपि दृश्यते, यथा-"अप्यार्थके" नीरोग इत्यर्थः ॥ ५६७१ ॥ अभ बीजादियुक्तेत्र तिष्ठता मावश्वित्रमाह---

ैविय-महियासु लहुना, हरिए लहुना व हॉलि गुरुना वा । पाणुर्विग-रएसुं, लहुना पणए गुरू चउते ॥ ५६७२ ॥ बीज-इंक्किशुकेषु श्रेणारिषु तिहतां चतुर्केषुकाः । हरितेषु मत्येकेषु चतुर्केषु, अनन्तेषु चतुर्गुरु । माणेषु-झीन्द्रगारिषु श्रोकोरककोश्चतुर्केषु । पनके चतुर्गुरुनः ॥ ५६७२ ॥ उक्तः समार्थः । अब निर्धोक्तिविक्तराः—

सवषपमाणा वसही, अधिठंते चउलहुं च आषादी।

मिञ्ज्ज अवाउड पिडिलेह वाय सार्षे य वाले य ।। ५६७६ ।। अवणप्रमाणा वसतिः कर्णेनोरभत्तात् तृषादियुक्ता या भवति तस्वावधः अवणप्रमाणा वसतिः कर्णेनोरभत्तात् तृषादियुक्ता या भवति तस्वावधः अवणप्रमाणां तिष्ठत्यश्चर्तेषु आवादस्य दोषा मिञ्चात्यं च भवति । कष्य १ इति चेत् इत्याह—येषां साध्नां सामारिकमणाइतं वैक्रियं वा तान् पिविश्तो हृष्टा लेको वृत्वात्—वहां । द्वीपञ्जाद 10 नगिति तीर्थकरेण नातुज्ञात्व, लज्जामयश्च पुरुषः विश्वोशरुक्तारः, तत् तृत्वासत्वेद्धा प्रमिष्ठति । भवित्रावानां निष्यावस्य माणे प्रवित्रावानां विश्वते । (पिडिलेह") चि उपरियास्य प्रवित्रातः सागारिकं रूप्यमानं पृष्ठतः थानो मार्जोरो वा त्रोटयत् । "वाले य" वि उपरि सीर्थ आभिक्तिरते सर्गो इश्विको वा दशेत्। यत एते दोषा अतोऽधः अवणमावायां वसतौ न 15 स्वातन्यम् । द्वितीयपदे तिष्टेश्चरिप ॥ ५६०३ ॥

सवणपमाणा वसही, खेत्ते ठायंतें बाहि वीसग्गी । पाणादिमादिएसुं, वित्थिष्णाऽऽगाढ जतणाए ॥ ५६७४ ॥

परेषु क्षेत्रेष्वशिवादीनि अवेषु: ततः क्षेत्रामावेऽघःश्रवणमात्रायामप्यक्ष्पमाणादियुक्तायां तिष्ठतामियं व्यतमा—वसतेर्वेहिरावश्यकं कुर्वेन्ति । अन्योऽपि यः 'स्युत्सर्गः' कायोत्सर्गः स 20 बिहः क्षित्रते । द्वितीयपदे समाणेषु आदिशक्दाद् बीजादिष्वपि वसती विषयानेषु तिष्ठेषुः तत्र यतनया विसीर्णायां तिष्ठन्ति । सा येष्ववकाशेषु संसक्ता ताव् क्षारेण कश्चयन्ति, कुट्यु-क्षेत्र वाहरितादिकं स्यावन्ति, दक्षमृतिका-बीजादीन्येकान्ते वृषमाः स्थापवन्ति । एवमागाढे कारणे स्थितानां वस्ता विज्ञेषा ॥ ५६०६ ॥

वेउच्य-ड्वाउडार्ण, युत्ता जयणा णिलिज कप्यो था । उवजोग जितर्ज्ञते, ह छिंदणा जामणा वा वि ॥ ५६७५ ॥

ये विकुर्धिता-ऽपाइतसागारिकासेषां प्रथमोदेशकोका यतनाऽधधारणीया । प्रविक्षस्तो विर्व-च्छन्तक्ष प्रष्ठतो निषयां करपं वा कुर्वनितें । भानादीकसुपयोगं बदाचा नित्यं निर्गच्छन्ति प्रवि-शन्ति च । बास्युसरि तृषाध्यसङ्क्ति तेषां ममार्थ्य च्छेदगं वासनं वा कुर्वनित ॥ ५६७५॥ व्यास्थातं ऋतुबद्धसुद्धस्य । अथ वंशीवाससूत्रद्वयं विद्यणोति—

अंजलिमउलिकयाओ, दोण्णि वि बाहा समुसिया मउडो । हेट्टा उवरिंच भवे, मुकं तु तओ पमाणाओ ॥ ५६७६ ॥

१ अतान्तरे प्रस्थाप्रस्—५००० कं॰॥ २ तुणेषु कं॰ विना ॥ २ उक्तो आस्पकृता सूत्रा° कं॰॥ ४ 'क्ति वेण शुरुखाः सागारिकं ण वर्षेषुरिकि । आस्वा' कं॰॥

अञ्जलिमुकुलीकृतो द्वावि बाह्न समुच्छितो सुकुट उच्यते । युक्तसुकुटं पुनः 'ततः ममा-णात्' ताबरममाणगञ्जीकृत्य संस्तारकतिविद्यसाथ उपरि च यशान्तरालं प्राप्यते ईह्दस्यापुरि-रसिमुक्तमुकुटायां बसती वर्षाकाले स्वातव्यम् ॥ ५६७६ ॥ कुतः ! इति चेद् उच्यते—

हत्थो लंबइ हत्थं, भूमीओ सप्पों हत्थग्रहेति ।

सप्पस्त य हत्यस्स य, जह हत्यो अंतरा होइ ॥ ५६७७ ॥ फलकादी संतारके ग्रस्स 'हत्तः' हत्तमेकं अघो रुम्बते, मूमितथ सेपों हत्तमुणिष्ठति, ततः सर्पस्य च हत्तस्य च यथा हत्तो अन्तरा मचति तथा कर्तन्यम् ॥ ५६७७ ॥ तथा—

माला लंबति इत्यं, सप्पो संधारए निविद्वस्स ।

सप्पस्स य सीसस्स य, जह हत्थो अंतरा होइ ॥ ५६७८ ॥ 10 संस्तारके निविष्टस गाठात् सर्गे हस्तं रुम्बते, ततः सर्गस च शीर्षस च यथा हत्तो अन्तरा भवति तथा विधेयम्, ईरवपमाण उपाश्रयो महीतन्त्र इत्यर्थः ॥ ५६७८ ॥

काउस्सम्मं तु ठिए, मालो जह हवह दोसु रयणीसु । कप्पड वासावासी, इय तणपुंजेस सब्वेस ॥ ५६७९ ॥

कायोत्सर्ग क्षितस्य मालो यदि द्वयो रक्योरपरि भवति तदा करूपते तस्यां वसतौ वर्षावासः 15 कर्तुम् । ''द्वय'' एवं सर्वेप्विष तृणपुक्षेषु विधिर्दृष्टव्यः ॥ ५६७९ ॥

उपि तु मुक्तमउडे, अहि ठंते चउलहुं च आणाई। मिच्छत्ते वालाई. बीयं आगाद संविग्गो ॥ ५६८० ॥

अत उपरिमुक्तसुकुटे पतिश्रये स्थातस्यम् । अथाधोमुक्तसुकुटे तिष्ठति ततश्चतुर्क्षेषु भाज्ञादयो मिथ्यालं व्यारादयश्च दोषाः पूर्वसूत्रोक्ता भवन्ति । द्वितीयपदमप्यागाढे कारणे २०तथेव मन्तव्यम् । तत्र च तिमृत संविद्य एव भवति ॥ ५६८० ॥ अत्रेयं यनगा—

दीहाइमाईस उ विज्ञवंधं, कुन्वंति उल्लोय कडं च पोत्ति ।

कप्पाठसईए खल्ज सेसनाणं, मुसुं जहण्योण गुरुस्स कुआ ॥ ५६८१ ॥ दीर्घजातीयादिषुं वसतौ विद्यमानेषु तेषां विद्यया वन्यं कुर्यन्ति । विद्याया अभावे उपरि-ष्टादुक्षेचं कुर्यन्ति । उक्कोचाभावे कैंटम् । कटाभावे ''पोर्षि'' ति चिलिमिलिकां सर्वसाधूना-25 मुपरि कुर्वन्ति । अथ तावन्तः करुपा न विद्यन्ते ततः शेषाणां मुक्तवा जवन्येन गुरोरुपरिष्टा-दुक्कोचं कुर्यात् ॥ ५६८१ ॥

॥ उपाश्रयविधिप्रकृतं समाप्तम् ॥ ॥ इति कल्पटीकायां चतुर्थोदेशकः समाप्तः ॥ श्रीचृर्णिकारवदनाज्ञवनोमरत्विज्ञयत्वारणक्यीवरवेशस्त्रीः । उद्देशके मम मैतिभगरी तुरीवे, टीकासिवेण ग्रस्तरत्विदं वितेने ॥

१ सर्व ऊर्द्शमवन् इत्तमेकमुत्ति° का॰ ॥ २ ° लु अधोमुक्तमुकुटायां वसती का॰ ॥ ३ 'कर्ट' वंशाविमयमुपरिषाव् वदति । कटा॰ कां० ॥ ४ मतिर्मेषुषी तुरीये मा॰ ॥



॥ श्रीमविजयानस्यत्नविष्ठेश्यो नमः॥

पूज्यश्रीभद्रबाहुस्नामिविनिर्मितस्वोपज्ञनिर्युचयुपेतं

बृहत् कल्पसूत्रम्।

श्रीसङ्घदासगणिक्षमाश्रमणसूत्रितेन लघुभाष्येण भूषितम् । तपाश्रीक्षेमकीर्त्याचार्यविहितया वृत्त्या समलङ्कृतम् ।

पञ्चम उद्देशकः ।

— ज़ ह्यापाय प्रकृत म्⇔

व्याल्यातश्रव्याहिशकः। सम्पति पश्चम आरम्यते। तस्य नेदमादिवृत्वन्तुष्टयम्—
देवे य इस्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पिडगाहिजा,
तं च निग्गंथं साइजेजा, मेहुणपिडसेवणप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्टाणं अणुग्धाइयं १॥
देवी य इस्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पिडेगाहिजा,
तं च निग्गंथं साइजेजा, मेहुणपिडसेवणप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्टाणं अणुग्धाइयं १॥
देवी य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पिडेगाहेजा,
तं च निग्गंथी साइजेजा, मेहुणपिडसेवणपत्ता
आवजइ चाउम्मासियं अणुग्धाइयं ३॥
देवे य पुरिसरूवं विउवित्ता निग्गंथिं पिडेगाहिजा,
तं च निग्गंथी साइजेजा, मेहुणपिडसेवणपत्ता
आवजइ चाउम्मासियं अणुग्धाइयं १॥
सवा निग्गंथी साइजिजा, मेहुणपिडसेवणपत्ता
आवजइ चाउम्मासियं अणुग्धाइयं १॥

अथास सूत्रचतुष्टयस कः सम्बन्धः ! इत्याह— पाएण होति विजणा, गुज्झगसंसेविया य तणपुंजा । होज मिह संपयोगी, तेस य जह पंचमे जोगी ॥ ५६८२ ॥ 10

15

प्रायेण तृणपुत्राः 'विजनाः' जनसम्पातरहिताः गुष्ठकैथ-च्यन्तरैः सेविताः-अधिष्ठता मवन्ति, ततस्तेषु तिष्ठतां तैः सह मिथः सम्ययोगोऽषि भवेत्, अत इदं सूत्रमारम्यते । 'अथ' यप पष्ठमोहेसके आधारप्रवत्तष्टमस्य सम्बन्धः ॥ ५६८२ ॥'

अवि य तिरिओवसग्गा, तत्थुदिया आपवेयणिजा य । इमिगा उ होंति दिख्वा, ते पडिलोमा इमे इवरे ॥ ५६८३ ॥

'आप च' इति सम्बन्धस्य प्रकारान्तराम्युखये । 'तत्र' इति अनन्तरस्त्रे 'तिर्यगुपसर्गाः' व्यालादिकृताः 'आत्मसंवेदनीयाध्य' वातेन कटीग्रहणादयः 'उदिताः' भाणताः, एतेषु प्रस्तु-तस्त्रेषु दिव्या उपसर्गा उच्यन्ते । उपसर्गाध्य द्विधा—'शतिकोमाः' प्रतिकृत्वः 'इतरे च' अनुकृतः । तत्र प्रतिकृताः पृषेसुँत्रोकाः, इहानुकृत्वा भण्यन्ते ॥ ५६८६ ॥'

अहवा आयावाओ, चउत्थव्यस्मिमिम प्रवयणे चेव । इमओ वंभावाओ, तस्स उ भंगम्मि कि सेसं ॥ ५६८४ ॥

अथवा चतुर्थोहेशकचरमस्त्रेन आस्मापायः प्रवचनापायध्योकः, अयं पुनः प्रस्तुतसृत्रेषुं ब्रह्म-व्रतापाय उच्यते । तस्य हि भक्ने किं नाम शेषमभग्रम् ? अतसद्धक्रो मा भूदिति प्रकृतसूत्रा-रम्भः ॥ ५६८४ ॥ अथवा चतुर्थेन प्रकारेण सम्बन्धः, तमेवाह—

सरिसाहिकारियं वा, इमं चउत्थस्य पढमसुत्तेणं । असहिगारिम्म वि पत्थुतिम्म असं पि इच्छंति ॥ ५६८५ ॥

अथवा इदं सूत्रं चतुर्षोहेशकस्य 'भयमस्त्रेण' ''तत्रो अणुग्यादया पण्णता'' इत्यादिरूपेण सॅमं सहसाभिकारिकप्, तत्राप्यनुद्धातिकाथिकार उक्त इहापि स एवाभिषीयत इति भावः । आह—चतुर्थमथमसूत्रानन्तरमपराणि भूवांति सूत्राणि गतानि तेषु चापरापरेऽधिकारास्तनः 20 कथमयं सम्बन्धो घटते : इत्याह—अन्यस्मिन्नधिकारे शस्तुतेऽपि अन्यमधिकारमिच्छन्ति सुरयः ॥ ५६८५ ॥ तथा बात्र इष्टान्तः—

जह जाहरूवघातुं, खणमाणों स्रभिज उत्तमं वयरं । तं गिण्हह न य दोसं, वयंति तहियं इमं पेवं ॥ ५६८६ ॥

यथा जातरूप-सुवर्णं तस्प भाद्यं सनमानो बदि उत्तमं वज्ञं रुभेत ततस्य गृद्धौति न 20 च तस्य वज्रं गृहतः कमपि दोषं वदन्ति । एवम् 'इदमपि' प्रस्तुतमपराधिकारे प्रस्तुतेऽपराधि-कारमृहणं मं निरुष्यते ॥ ५६८६ ॥

र हितीयप्रकारेण सम्बन्धमाह इत्यवंतरणं कां०॥ २ °ताः, इमे तु पतेषु पुनः प्रस्तुः कां०॥ ३ °स्त्रे प्रोक्ताः, इह पुनरपुः कां०॥ ४ ततीचेनाचि प्रकारेण सम्बन्धः समस्तानि (१) दर्रायति इत्यवरणं कां०॥ ५ स्त्रे नीचतरायां वसती अवनतानां प्रविशत आत्मां कां०॥ ६ °सु चतुर्पु अ° कां०॥ ७ 'स्त्रचनुष्टयार' कां०॥ ८ समम् 'इर्र' सुचचतुष्टयं सहदाधिकारिक मन्त्रच्य, ततः किं न सुद्धाधिकारिक मन्त्रच्य, ततः किं न सुद्धाधिकारिक मन्त्रच्य, ततः किं न सुद्धाति ! अवि सु पुक्कालेब, न च तस्य कां०॥

जन परः शह—मनु पानेन शुपर्ण-वजरहानोनेदशायसम्-व्यवस्तर्वेस्थः पद्मस्या-दिस्वं प्रपानतरम् । सुरिराह—वैवयः, प्राथाम्यस्त्रीभयोरप्यावेक्षिकतया गुरुस्तास् । तसहिः—

कजएण विचा बहरं, न भीवए नेव संगदशुचेह ।

न य तेण विणा कणवं, तेण र असोचा राहणं ॥ ५६८७ ॥

कनकेन चिना बज्रं 'न बाति' न बोमते न च 'सङ्ग्रं' सम्बन्धमुत्रीते, आश्रयामावात् ; 5 न च 'तेल' वज्रेण वित्ता कनकं बोमते, तेन कारणेन 'र' इति निपातः पानपूरणे उसवीर-प्यस्थोन्यं प्राधान्यस् । एवसथसनसूत्राणां कनकतुरुयानां पञ्चमोदेशकाविस्कृतस् च वज्रकुरुयस्य पापप्रतिवेशकस्यात् तुरुयमेव प्राधान्यस् ॥ ५६८७॥

अनेन सम्बन्धमनुष्ठधेनापतितसासं त्यास्या—देवध स्रीस्पं विकृत्यं विर्माणं मितपूदी-यात्, तच निर्मन्धो मैधुनमतिसेवनप्राप्तो यदि 'लादचेद्' अनुनोदवेत् तत आपचते 10 चार्यापीसकं परिहारस्थानमनद्वातिकस्य ॥

एवं द्वितीयसूत्रं देवी बीक्स्पं विकुर्व्धं निर्फ्रम्थं प्रतिगृहीबादिखाबाद मन्तव्यत् ॥ तृतीयसूत्रम्—देवी पुरुषस्य रूपं विकृत्यं निर्फ्रम्थी प्रतिगृहीबात्, तच निर्फ्रम्थी खादगेत्, मैप्रामतिसेवनमाता आपद्यते चाठमोतिकमनद्वातिकं स्वानम् ॥

एवं देवः पुरुषरूपं विकुर्व्य निर्मर्शी मतिगृहीयादित्याधाप चतुर्थसूत्रं वक्तव्यम् । एव 13 सृत्रचतुष्टयार्थः ॥ अधाधसृत्रद्वयं तावद विवरीषुराह—

देवे य इत्थिरूचं, काउं गिण्हे तहेव देवी य ।

दोसु वि य परिणयाणं, चाउम्मासा भवे गुरुगा ॥ ५६८८ ॥
देवो देवी वा स्रीरूपं इस्ता निर्भत्यं गृझीयात् । ततः किस् १ इत्याह—'इयोरिंप' देवदेवीस्त्रियोः प्रतिसेवने परिणतानां चत्वारो मासा गुरुकाः मायश्चित्तं भवेत् ॥ ५६८८ ॥ २०
व्ययत्योः सत्रयोविषयसम्भवमाह—

गच्छगय निग्गए बा, होज तगं तत्थ निग्गमो दुविहो । उवएस अणुवएसे, सच्छंदेणं इमं तत्थ ॥ ५६८९ ॥

गच्छगतस्य गच्छिनिर्गतस्य वा 'तद्' अनन्तरोक्तं बृचान्तजातं भवेत् । तत्र गच्छाद् निर्गयो द्विविष:—उपदेशेन अनुगवेशेन च । अनुपदेशः सच्छन्द इति चैकोऽर्थः । तत्र सच्छन्देन २० इदं गच्छाद् निर्गमनमभिषीयते ॥ ५६८९ ॥

सुत्तं अत्थो य बहू, नहियाई नवरि मे झरेयव्वं । गच्छम्मि य वाघायं, नाऊण इमेहिं ठाणेहिं ॥ ५६९० ॥

१ °भ्यः सुवर्णकारपेश्यः वश्चमक्याविस्तवचतुक्कं वज्जकारं प्रभा° मं । ॥ ६ भारती ण । व क्षांग तामा । ॥ १ 'वजतुक्यस्य स्व कं । ॥ ५ 'स्य स्वत्रज्ञतुक्यस्य स्वात्रवा—चेवः चार्मि वास्त्रपेपनार्थः स्वात्रवा—चेवः चार्मि वास्त्रपेपनार्थः स्वात्रवानः स्वति । ५ 'स्य । इह निर्मेश्वीद्ववहये वत् परिहारस्यानः सिति पत्रजुक्कातिकविशेषणतया नोकं तद् निर्मन्दीनां परिहारत्यो न भवति किन्तु स्वत्रवा सविति हान्तु स्व

कियद् गृष्ठीतस्त्रार्थेश्विन्तयति—स्त्रगर्थश्व गया 'बहु' प्रभृतो गृष्ठीतो, नवरमिदानीं मया पूर्वेगृष्टीतं ''श्ररेयव्वं'' ति 'सर्तव्यं' परिजितं कर्तव्यम्, गच्छे च सरणस्यामीभिः 'स्वानैः' कार्णेव्यापातं ज्ञात्वा निर्गमने मतिं करोति॥ ५६९०॥ कानि पुनस्तानि स्वानानि ! इत्याह—

धम्मकह महिद्वीए, आवास निसीहिया य आलोए।

पहित्रच्छ वादि पाहुण, महाण गिलाणे दलमभिक्खं ॥ ५६९१ ॥

स धर्मकथाळिक्सरम्बन्धता स्थान् जनः श्रोद्धमागच्छतीत धर्मकथा न्यापातः ।
'महर्द्धिकः' राजादिर्धमेश्रवणाय समायाति तस्य विदेशतः कथनीयम्, तदावर्षने स्वसामावर्जनात्। तथा महति गच्छे बहवो निर्गच्छन्त आविश्वमं क्यनीयम्, तदावर्षने स्वसामावर्जनात्। तथा महति गच्छे बहवो निर्गच्छन्त आविश्वमं कुर्वन्ति त सम्यग् निरीक्षणीयाः । चदाब्दाद् असङ्क्षडळ्यवश्यमगदी वा भूतसी वेळा लगेत् । 'आकोए''

10 वि सिक्षासिटला समागतानामन्यसाधुनामञ्जेन्यतां यदि एरावर्स्ति तत्र आकोचनाव्यापातः । तथा गच्छे बसतो बहवः मितृष्टळानिमनमागच्छन्ति तेषां मृत्युत्तराने व्यापातः । तं च
बहुश्रुतं तत्र स्थितं श्रुत्वा वादिनः समागच्छन्ति तत्त्रसं प्रचातः । तथा 'महाणि' चि 'महाजने' महति गणे बहदः मावृर्णकाः समागच्छन्ति तथा प्रचातः । तथा 'महाणि' चि 'महाजने' महति गणे बहदः मावृर्णकाः समागच्छन्ति तथा । तथा निर्मा वर्षायातः । तथा बहवा महति गणे ब्यापातो गच्छे भवतीति
सङ्गाणासमासार्थः ॥ ५६९१ ॥ साम्यतं विस्तार्थमभिष्यपुर्धमं कथाद्वारं सुगमित्यनाहत्व
महद्भिक्द्वारं व्यास्याति—तत्र यो राजा राजामात्योऽपरो वा महद्भिके धर्मश्रवणायागच्छिति
तस्यावस्यं विशेषण च धर्मः कथात्राः । परः मह—कि कारणं महद्धिकस्य विशेषतो धर्मकथा किवते । ननु भगविद्विरिक्षपुक्तम् —''जहा पुजस्स कर्यक्षे तहा पुच्छस्त कथाई''
20(आचा० श्रु १ अ० २ उ० ६) अत्रोच्यते—

कामं जहेव कत्थति, पुत्रे तह चैव कत्थई तुच्छे ।

वाउलणाय न गिण्हइ, तम्मि य रुद्धे बहु दोसा ॥ ५६९२ ॥

'कामम्' अनुमतिमदं यथेव 'पूर्णस्य' महिंद्धकास्य प्रमें: कृष्यते तथेव 'तुष्कस्य' अक्यिद्धि-कस्यापि कृष्यते, परं स महिंद्धिको त्याकुरुनातो यथातथा प्रमें कृष्यमानं सम्यम् 'न गृह्वाति' 20 न प्रतिपयते रोषं च गच्छिति, 'तिसिक्य' राजेश्वर-तरुदशदिके रुष्टे 'बहुवः' निर्विषयाज्ञापना-दयो दोषाः, अतोऽबबस्य विशेषण चा तस्य प्रमें कश्वमीयः; एवं सुत्रार्थस्यरणव्यापातः । अथवा गुरुवो महिंद्धकाय प्रमें कश्वयन्ति तदानीमिष तृष्णीकैमेवितव्यम्, मा भूत् कोखहरू-तस्यस्य सम्ययमामितिषचिरिति कृत्वा ॥ ५६ ९२ ॥

आवश्यिकी-नैवेधिकीपदे चशब्दसृचितं चार्थं ज्याचष्टे-

so आवासिगा-ऽऽसज-दुपेहिपादी, विसीयते चेव सवीरिओ वि ।

विजोसणे वा वि जसंखडाणं, आलोयणं वा वि चिरेण देती ॥ ५६९३ ॥ आवस्यकीकरणे उपल्खणत्वाद् नैपेधिकीकरणे आसज्जकरणे दुःमत्युपेक्षत-दुःममार्जनादि-करणे च 'सत्तीयोंऽपि' समयोंऽपि वः ममायबहुत्ततया विषीदति स सम्यग् निरीक्ष्य शिक्ष- णीकः। असमुकाति व साधुनामुरुचरन् तेषां खुषशमने मृवसी वेळा रूपक्षिः। मतिकमणे वा मनुस्तापुरामृहः क्रमेणाङोचवन् चिरेणाङोचनां वदाति ॥ ५६९३॥

मेरं ठवंति थेरा, सीदंते आवि साहति पवती । थिरकरण सब्रहेर्जं, तवीकिलंते य पुच्छंति ॥ ५६९४ ॥

'स्वितराः' श्राचार्या यावव् 'मर्यादा' सामाचारी स्थापयन्ति तावत् चिरीमवित । यो वा ठ कोऽपि सामाचार्यो सीदित तस्य मृद्दत्तियावद् आचार्याणां निवेचते तावत् स्वाच्यायपरिमन्यः । अभिनवश्राद्धस्य वा स्थिरीकरणार्थं यमः कथनीयः । ये च तपस्थिनो विकृष्टतपसा क्रान्ताखे 'स्रस्वतथः समस्ति भवताम् !' इति मृयोग्यः प्रष्टव्याः ॥ ५६९८ ॥

> आवासिगा निसीहिगमकरेंतें असारणे तमावजे । परलोहगं च न कयं. सहायगत्तं उवेहाए ॥ ५६९५ ॥

परहोइसं च न कपं, सहायगचं उवेहाए ॥ ५६९५ ॥ भ्राव्याद्यकी-नैषेषिक्यादिसामाचारीमकुर्वतामाचार्यः सारणां न करोति ततो यत् तद-करणे प्रायक्षिचं तद् उपेक्षमाण आचार्य आपवते । उपेक्षायां च पारकौकिकं सहाक्तवं तेषा-माचार्येण कृतं न भवति । तदकरणाच नासौ तत्त्वतक्षेषां गुरुः । तथा चोक्तय्—

अज्ञासितारं च गुरुं, मन्द्रकेहं च बान्धवस् । अदातारं च भर्तारं, जनस्थाने निवेशयेत् ॥

11 4894 # 15

30

"आहोए" ति पदं व्याख्याति—

सम्बोहो मा दोण्ह वि, वियडिजंतम्मि तेण न पहंति । पडिएच्छे पलिमंथो. असंखडं नेव वच्छक्षं ॥ ५६९६ ॥

ये भिक्षाचर्यां गतासे आगत्य यावद् आलोचयनित तावत् पूर्वागतानां परिवर्तनस्वाचातः । अथालोचयतामपि परिवर्तपन्ति तत आचार्यां आलोच्यमानं नावधारयन्ति । आलोचकोऽषि २० सम्यग् हत्तं मात्रकं स्वापारं वा तेन स्वाधेषण न स्वरति । एवं 'द्वरेषामापि सम्मोहो मा भृत्' इति क्रत्वा 'विकट्यमाने' आलोच्यमाने यल पठन्ति एप त्वाधातः । ''धिष्ठपुच्छ'' चि द्वारं व्यास्थायते—तस्वानितं ये त्यार्थमतिष्टच्छां कुर्वते तेषां मस्युप्तं ददतः साध्यायपरिमान्यः । अथ प्रस्पुप्तं न दद्वित ततस्ते रुच्योदः— 'स्वन्यस्त्यं मस्युप्तं न द्वाति ततस्ते रुच्योदः— 'स्वन्यस्त्यं मस्युप्तं न द्वाति ततस्ते स्वर्ते भवति । न च प्रतिचनमध्यच्छतं मध्यप्ति । स्वर्षिक्यस्तर्यं कृतं भवति २० ॥ ५६९६ ॥ अथ वादि-पाष्टणक-स्वरुप्तं स्वर्तने स्वर्ते । भवर्षिक्यस्तर्यं कृतं भवति २० ॥ ५६९६ ॥ अथ वादि-पाष्टणक-स्वरुप्तं स्वर्तने स्वर्तने स्वर्ता ।

चितेह वादसत्थे, वार्दि पिडयरति देति पिडवार्य ।
महर गणे पाहणगा, वीसामण पञ्जवासणया ॥ ५६९७ ॥
आलोयणा सुणिकाति, जाव य दिजह गिलाण-वालाणं ।
हिंडति चिरं असे, पाजोगुमयस्म वा जहा ॥ ५६९८ ॥
पाउग्गोसह-उञ्चलवादि जतरंति जं च वेजस्स ।
किमहिजउ स्केंडिंगिक्से, केसवितो भिक्ल-हिंडीहिं ॥ ५६९८ ॥

१ खुळिमे[°] मा॰ तामा॰ ॥

बादिनमागच्छन्तं श्रुता वादशास्त्राणि चिन्तयति । तं च बादिनं यावत् प्रतिचरति प्रति-वादं च यावत् तस्य प्रचच्छति तावद् ध्याघातः । तथा महति गणे प्राष्टुणका आगच्छेयुः तेषां विश्रामणा पर्युणसना च कर्तव्या ॥ ५६९७ ॥

आहोचना च गावत् तेषां श्रूयते, यावच ग्लान-मालानां दीयते, तथा प्राप्तणकादीनां 5 प्रायोध्यस्य उभयस्य-भक्तस्य पानकस्य चार्थाय चिरमेके पर्यटन्ति, 'अन्ये च' निवृत्ता अपि तानागच्छतो यावत परीक्षन्ते ॥ ५६९८ ॥

'अतरतः' म्हानस्य प्रायोग्यीषघादिकं यावद् जानयन्ति, उद्धर्तनादिकं वा तस्य कुर्वन्ति, वैद्यस्य वा 'यद्' मञ्जनादिकं परिकर्म कुर्वन्ति तावद् व्याघातः । संद्वक्षेत्रे वा सरस्या भिक्षया बाह्यया च हिष्ण्या निर्दे क्षेत्रितः सन् किमधीतास् ! न किह्यिदित्यर्थः ॥ ५९९९ ॥

ते गंतुमणा बाहिं , आपुच्छंती तहिं तु आयरियं । मणिया मणीत मंते !. ण ताव पजनगा तब्मे ॥ ५७०० ॥

प्तैः कारणैः 'तत्र' गच्छे व्याघातं मत्वा 'ते' गृष्ठीतसूत्रायोः साधवो बहिगेन्तुमनस आचार्षमाष्ट्रच्छन्ति । तत आचार्येण बारिता दिव्य-मानुष्य-तैरश्चोपसर्गसहने विहारे च न तावद् अधापि युर्व पर्यासाः । एवं भणितासे भणन्ति— भदन्त । युव्मकरणमसादेनेहञा १५ मिलव्यामः ॥ ५७०० ॥

> उप्पणो उवसग्गे, दिन्वे माणुस्सए तिरिक्खे य । हंदि ! असारं नाउं, माणुस्सं जीवलोगं च ॥ ५७०१ ॥

दिव्य-मानुष्य-तैरश्चान् उपसर्गान् उत्पनान् सम्यगिधसहिष्याम इत्युपस्कारः । कुतः ! इत्याह—'हन्ति' इति हेत्पृदर्शने, वयं मानुष्यं जीवठोकं चासारमेव जानीमस्ततस्तद् ज्ञात्वा २० कथप्रपसर्गान् न सहिष्यामः !॥ ५७०१ ॥

> ते निग्गया गुरुकुला, असं गामं कमेण संपत्ता । काऊण विदृरिसणं. इत्थीरूवेणवस्सग्गो ॥ ५७०२ ॥

प्रवस्ताचा ति' साथवः सच्छन्देन गुरुकुलाबु निर्मताः क्रमेणान्यं प्रामं सम्प्राप्ताः, तत्र वैकस्यां देवकुलिकायां स्थिताः । तेषां मध्ये यो सुस्यः स प्रतिश्रयपारः स्थितः, रोषा भिक्षार्थे 25 पविष्टाः । ततः कयाचित्र देवतया 'विदर्शन' विरोषेण दर्शनीयं रूपं कृत्वा स्रीक्षपेणोपसभैः इतः ॥ ५७०२ ॥ इदमेव सञ्यक्ताहः—

> पंता व णं छलिजा, नाणादिगुणा व होंतु सिं गच्छे । न नियत्तिहिंतऽछलिया, भदेयर भोग वीमंसा ॥ ५७०३ ॥

सम्यग्दृष्टिरेका देवता चिन्तयति—एते ताबद् अनुपदेशेन प्रस्तिताः अतो माऽमृत् प्रान्ता 30 देवता छरुयेद् , ज्ञानाद्यो वा गुणाः "सिं" अभीषां गच्छे वसतां भवन्तु इति कृत्वा केना-प्युपसर्गेणाच्छित्ताः सन्तो न निवर्तित्यन्ते इतिबुद्धा मद्रिका समागच्छिते । इतरा तु प्रान्ता भोगार्थिनी 'विमर्श्वं वा' परीक्षां कर्त्तुकामा छरुयेत् ॥ ५००३ ॥

१ खुलक्षे° मा॰ ॥

20

कर्य पुनः स्नीरूपेणोपसर्गयेत् ! इत्याह---

मिक्स गय सत्य चेढी, गुज्सक्सिण अम्ह साविषा कहणं । विहवारूवविउन्वण, किङ्कम्माऽऽलोयणा इणमो ॥ ५७०४ ॥

सा देवता भिक्षां गतेषु साधुर्षु साथै विकुव्ये ता देवकुलिकां परिक्षिप्यावासिता। तत्रश्रेष्टि-कारूपं विकुव्ये प्रतिश्रयमागत्य साधुं बन्दित्वा भणति — 'गोज्यविक्तणी' खामिनी मदीया । श्राविका, सा न जानाति श्रत्र साधून् स्थितान्, ततोऽई खामिन्याः कथायामि येन सा युष्पान् वन्दितुमायाति। ततः सानगिर्व वेधवारूपं विकुव्यं चेटिकाचकवाङ्यरिक्ता प्रतिश्रयमागत्य 'कृतिकर्मा' वन्दनं कृत्व पर्युपाते। ततः साधुना भणिता—कृतः श्राविका समायाता ! । ततः सा इनामाञ्जेचनां दवाति ॥ ५७०४॥

पाडलिपुत्ते जम्मं, साएतगसेद्विपुत्तमञ्जत्तं । पद्मरण चेद्वंदणछोम्मेण गुरू विसञ्जणया ॥ ५७०५ ॥ पञ्जार् असत्ता, उञ्जेणि भोगकंखिया जामि । तत्य किर गृह साभू, अवि होज परीसहजिय त्या ॥ ५७०६ ॥

पाँटलिपुत्रे नगरे मम जन्म समजिन, साकेतवास्तव्यस्य श्रेष्टिपुत्रस्य च मार्यास्यम्, पितमरणे च सङ्गाते नैत्यवन्दनच्छधना 'शुरुन्यः' श्रशुरादिन्य आत्मनो विसर्जनं कृत्वा सम्प्रति 15 प्रमत्यायामशक्ता सती उज्जयिन्यां मोगानां काङ्किका गच्छामि । 'तत्र' उज्जयिन्यां किरु इति श्र्यते—बहवः साधवः परीषहपराजिताः सन्ति, 'ध' इति निपातः पादपूरणे, असुनाऽभिमायेण निर्गताऽहम्, साम्प्रतं तु युष्मास्र इष्टेषु मदीयं मनो नामतो गन्तुं ददाति ॥ ५७०५ ॥ ५७०६ ॥ ततः—

दूरे मन्स परिजणो, जोन्वणकंडं चऽतिन्छए एवं । पेन्छह विभवं में इमं, न दाणि रूवं सलाहामि ॥ ५७०७ ॥ पडिरूवयत्थाया, किणा वि मन्सं मणिन्छियाँ तुन्मे । भ्रंजाम्र ताव मोए, दौहो कालो तव-गुणाणं ॥ ५७०८ ॥

दूरे ताबद् मदीयः परिजनः, 'यौवनकाण्डं च' तारुण्यावसर आवयोरेवमतिकामद् वर्तते, पद्मत मदीयम् 'प्नम्' एतावत्परिस्पन्दरूपं विमवम्, रूपं पुनरात्मीयं नेदानीमहं रूपे 25 प्रत्यक्षोपरुम्यमानत्वाल तद् वर्णयिद्यक्षित्रसित्यर्थः, यूपं च मम प्रतिरूपवयसायाः केनापि कारणेनात्यन्तं मनस ईप्सितास्ततो अञ्जीविह ताबद् भोगान्, तपो-गुणानां तु पाकने दीवैः पद्मादिष कालो वर्तते ॥ ५७०७ ॥ ५७०८ ॥

भणिजो आलिद्धो या, जंघा संफासणाय ऊरूपं । अवचासिजो विसको, छट्टो पुण निप्पकंषो उ ॥ ५७०९ ॥ उ एवं तया भॅणितमात्रे एव प्रथमः 'विषणाः' परामग्रः, प्रतिसेविद्धं परिणत इत्यर्थः ।

१ 'चु प्रभूतं बढीवर्रादिसार्थं कं॰ ॥ २ श्रण्वन्तु पूज्याः ! मदीयं वृत्तान्तम्—पाट° का॰ ॥ है 'या उन्मे तामा॰ ॥ ४ 'मणितमात्र एव' मिमस्रितमात्र एव प्रथु' का॰ ॥

हितीयो मणितोऽपि यदा नेच्छति तदा सुकुमारहस्तैसास्त्रष्टस्ततो विषण्णः । कृतीब आस्ट्रिटो-ऽत्यनिच्छन् जङ्कान्यां संस्कृद्दो विषणः । एवं चतुर्षं उक्तम्यां संस्कृद्दो विषण्णः । पद्मनः 'अवतासितः' क्यमोटिकया आलिङ्गितो विषणः । षष्ठः पुनः सर्वनकौरः क्षोभ्यमानोऽपि निष्पकन्यः ॥ ५५७०९ ॥ अय एष प्रायक्षित्तमाह——

बदमस्य होड मूलं. बितिए छेओ य छग्गुरुगमेव।

छहरुगा चउगुरुगा, पंचमए छट्ट सुद्धो उ ॥ ५७१० ॥

अत्र प्रथमस्य मुरुम्, द्वितीयस्य च्छेदः, तृतीयस्य पहुरु, चतुर्थस्य पहुरुषु, पश्चमस्य चतुर्गुरु, अत्र च सूत्रनिपातः । पष्टस्तु शुद्धः ॥ ५७१० ॥

सन्वेहिं पगारेहिं, छंदणमाईहिं छद्रओ सुद्धी ।

तस्स वि न होड गमणं, असमत्तमए अदिके य ॥ ५७११ ॥

सर्वेरिप प्रकारैः छन्दनीदिभिर्निष्पकम्पत्मत् षष्ठो यद्यपि ग्रुद्धसाथापि तस्याप्यसमाप्तश्चतस्य गुरुभिः 'अद्ते' अननुजाते गणाद् निर्गमनं 'न सवति' न कल्पते ॥ ५७११ ॥

यैः प्रथमादिभिः पश्चमानैर्नाभिसोढं ते भद्रिकया देवतया भणिताः — अहो ! भवद्रिः प्रतिज्ञा निर्वाहिता, गर्जित्वा निर्गतानां दृष्टा भवदीयाऽवस्था !, भयैतद् युष्पाकमनुष्ठासनाय कृतम् 10 भा भान्ता देवता छळ्यिष्यति' इति कृत्वा, ततो नावापि किमपि बिनष्टम् , गच्छत सूयोऽपि गच्छम् । यवन्नभवा सा प्रतिगतिति ॥

> एए अण्णे य बहु, दोसा अविदिण्णनिग्गमे भणिया । सुच्च गणमस्रयंतो, तेहिं समते गुणा चेमे ॥ ५७१२ ॥

एते अन्ये च बहुवो दोषाः अवितीर्णस्य-अननुज्ञातस्य गणाद् निर्गमे भणिताः । यस्तु 20 गणं न सुद्यति सै तैर्देषिर्धन्यते, गुणांश्चामून रूमते ॥ ५७१२ ॥

> नाणस्स होइ भागी, थिरयरओ दंसणे चरित्ते य । प्रका गुरुकतनासं, आनकहाए न ग्रंचंति ॥ ५७१३ ॥

'ज्ञानस्य' अपूर्वेश्वतस्य आसागी भवति, दर्शने च सम्मत्यादिशास्त्रावगाहँनादिन। चरणे च सारणादिना स्विरतरो भवति, अत एव 'धन्याः' धर्मधनं रुव्धारः क्रिप्या गुरुकुरुवासं २३ 'यावक्तस्या' यावजीवं न मञ्जनित ॥ ५७१३ ॥ किञ्च—

मीतावासी रई धम्मे, अणाययणवञ्जणा ।

निग्गहो च कसायाणं, एयं घीराण सासणं ॥ ५७१४ ॥

गच्छे 'भीतावासो भवति' आचार्यादिभवभीतैः सदैवाऽऽसितव्यस् , न क्रिमप्यकृत्वं प्रति-सेविद्यं रुप्यत इति भावः । 'धर्मे च' वैयावृत्य-खाध्वायादिरूपे शतिर्भवति, 'अनायतनस्य च' 30 सीसंसर्गप्रभृतिकृत्य वर्जनं भवति, कषायाणां चोदीर्णानां आचार्यादीनामनुशिक्ष्या 'निम्नदः'

१ 'ना-निमन्त्रणा तदादिभिः, आदिराज्दाद् आरुरेषणादिभिनिष्ण' कां- ॥ २ स गणम-प्रश्चन त्रेवेर्षेष्ट्रंच्यते, गुणांभ्र 'हमार्' वक्ष्यमणळक्षणात् रूपते ॥ ५७१२ ॥ तानेवाद— नाण' कां- ॥ ३ 'दब-प्रयचनप्रभाववादर्भन्तिता चर' कां- ॥

विष्णापनं मवति । 'श्रीराणा' तीर्षकृतामेतदेव 'शासनम्' आज्ञो, वया—गुरुकुरुवासी न मोक्कवः ॥ ५७१९ ॥ कैपि च—

> जड्मं साहुसंसर्ग्या, न विमोक्खिस मोक्खिस । उंजतो व तवे निषं. न होहिसि न होहिसि ॥ ५७१५ ॥

यदि एनां साधुतंसार्वं 'न विमोश्यसि' न परित्यक्ष्मसि ततः 'मोक्यसि' कुक्ते भविष्यसि । व यदि च 'तपसि' अनदानादौ सुलल्प्यटतया नोधतौ भविष्यसि ततौऽज्याबाधसुली न भविष्यसि ॥ ५७१५॥

> सच्छंदबत्तिया जेहिं, सम्गुणेहिं जहा जहा । अप्यणे ते परेसिं च. निर्च सुविद्विया हिया ॥ ५७१६ ॥

कैः साधुभिः खच्छन्दवर्तिता 'जढा' परित्यक्ता । कथम्मृता ! सद्धिः—कोभनेक्रांनादिमिर्नुषे: ४० 'जढा' रहिता, आत्मनः 'परेषां च' षण्णां जीवनिकायानां नित्यं ते स्रुविहिता हित्त हित्त क्रित प्रकटार्थम् ॥ ५०१६ ॥

> जेमि चाऽयं गणे वासो, सजजणाणुमजो मजो । दुहाऽवाऽऽराहियं तेहिं, निव्विकष्पसुहं सुहं ॥ ५७१७ ॥

'वेषां च' साधूनाम् 'अयम्' इत्यासम्ताऽनुम्यमानो गणे वासः 'मतः' अमिरुखितः । 13 कथम्भूतः ! सज्जताः—तीर्थकरादयस्त्रेषागनुमतः सज्जनानुमतः । 'तैः' साधुभिः 'निर्मिकस्य-सुन्नं' निरुपमसीरूवं 'सुस्वप्' इति सुत्तेनैव द्विभाऽप्याराधितम् , तद्यथा—अवष्यसुस् निर्माण-सुन्तं च । अत्र अमणसुन्तं निरुपमिरिश्वं मन्तस्यम्—

नैवास्ति राजराजस्य तत् सुलं नैव देवराजस्य । यत् सुलमिहैव साघोडोंकच्यापाररहितस्य ॥ (पत्रम० व्या० १२८) अ अभिर्वाणसम्बं त निरुपमं प्रतीतमेवेति ⊳ ॥ ५०१७ ॥

> नवधम्मस्स हि पाएण, धम्मे न रमती मती। वहए सो वि संजुची, गोरिवाविधुरं धुरं॥ ५७१८॥

र्मवर्षमं हि प्रावेण 'वर्षे' श्रुत-चारित्ररूपे न रमते मतिः, परं गच्छे बसतसाकावि वर्षे रतिभवति । तथा बाह—'सोऽपि' नवधर्मा साधुभिः संयुक्तः संयमधुरामविश्वरां वहंति । 25 गौरिव द्वितीयेन गवा संयुक्तः 'अविधुरां' अविषमा 'धुरं' शकटमारं बहति, एकस्तु वोढुं न शैकोति ॥ ५७१८ ॥

एगागिस्स हि चित्ताई, विचित्ताई खणे सणे।

१ गुरुकुळवाससीव गुणकदम्बकं दर्शयति स्ववताणं कां ॥ २ जह उज्जतो तवे वे ॥ ३ प्रा क्रिकेता तवे वे ० ॥ ३ प्रा क्रिकेता तावे वे ० ॥ ३ प्रा क्रिकेता स्वाचीः ३ प्रा क्रिकेता स्वाचीः विद्या क्रिकेता क्रिकेता

उप्पर्जित वियंते य, वसेवं सज्जवे जवे ॥ ५७१९ ॥

एकाकिनो हि 'निचानि' मनांसि 'निचित्राणि' शुमा-उशुमाध्यवसायपरिणतानि क्षणे क्षणे उराधन्ते व्ययन्ते च, यत एवमतः 'सज्जने' सुसायुजनसमृहरूपे जने बसेदिति । एते गुणा गच्छे वसतासुकाः ॥ ५७१९ ॥

एवं गच्छनिर्गतस्य प्रस्तुतस्त्रसम्भव उक्तेः । सम्प्रति गच्छान्तर्गतस्य तमाह—

अहवा अणिग्गयस्सा, भिक्स विवारे य वसहि गामे य।

जहिँ ठाणे साइजति, चउगुरु वितियम्मि एरिसगो ॥ ५७२० ॥

'अथवा' इति न केवर्ड गच्छाद् निर्गतस्य पायश्चित्तं किन्तु गच्छादनिर्गतस्यापि भिक्षाचर्यां विचारसूर्मि वा गतस्य वसतौ वा तिष्ठतो मामबहिर्च यत्र खाने देवः क्षीरूरोण निर्मन्य गृह्णाति 10 तत्र यद्यसौ स्वादयति तदा तस्यापि चर्जुर्जुर । एतावता मयमसूत्रं व्याख्यातस् । द्वितीयसूत्रेऽपि यत्र देवी क्षीरूपं विकुर्व्य निर्मन्यं गृहीयादिखुकं तत्राऽपीदश एव गमः॥ ५७२०॥

व्यथ निर्प्रन्थीसूत्रद्वयं व्याख्याति-

एसेन गमी नियमा, निग्गंशीणं पि होई नायन्तो । ननरं पुण णाणत्तं, पुन्नं हत्थी तती पुरिसो ॥ ५७२१ ॥

प्र एव पन गमो निर्मन्यीनामैपि ज्ञातच्यः निवरमत्र नानारवम्—पूर्वे ''देवी य पुरिसरूवं विउविचा निर्मार्थि पडिगाहेज्जा'' इति **स्तीग्धत्रम्**, ततः ''देवे य पुरिसरूवं' इत्यादिकं द्वितीयं पुरुषसूत्रम् । अनयोरपि सैम्भवो धर्मकथादिभिर्व्यावार्तेर्गणाद् निर्गमने तथैव मन्तव्यो यावत् ता अप्यार्थिका देवकुलिकायां खिताः ॥ ५७२१ ॥ ततः—

विगुरुन्विऊण रूवं, आगमणं डंबरेण मेंहयाए ।

20 जिण-अज-साहुभत्ती, अजपरिच्छा वि य तहेव ॥ ५७२२ ॥ सम्यहृष्टिदेवतायाः पुरुषरूपं विकुळ्यं आगमनम् । ततो महता आडण्वरेण देवकुळिकायाः पार्थं सार्थमादास्य मायया आद्वर्षे विधाय वन्दनकं विखरेण कृत्वा भणति—युष्मापिः काचित पुराणिका संयती वा विषयपराजिता हृष्टा ! युष्माकं वा यवर्थकातो मोगान् युज्ञी-महि, युज्ञानाथ्य जिनवैस्थानार्योकाणां साधूनां च भक्तिं करिष्यामस्ततो निस्तरिष्यामः । २० एवनार्योपरीकाणी तथेव मन्तव्या यथा गिर्मन्यानाङ्कतः ॥ ५७२२ ॥

अथ किमर्थ निर्मन्येषु प्रथमं देवसूत्रं निर्मन्यीषु च प्रथमं देवीसूत्रम् ? इत्याह-

वीसत्थवा सरिसए, सारुष्वं तेण होइ पढमं तु । पुरिसुत्तरिओ धम्मो, निग्गंथो तेण पढमं तु ॥ ५७२३ ॥

'सहदो' खपकजाती 'विश्वस्तता' विश्वासो भवति तेन प्रवमग्रुनयोरिष पक्षयोः सारूच्य-३० सूत्रमभिहितम् । 'पुरुषोचरो धर्मः' इति कृत्वा च प्रथमं निर्मन्यानां सूत्रद्वमग्रुकम् , ततो

१ °कः। अथ गच्छा को ।। २ 'मपि स्वब्रे प्रतत्यो अवति। नवरं पुनरत्र ना । को ।। ३ सम्बन्धो धर्म को ।। ४ महएज ताना ।। ५ °का । श्विमितानां च तासां प्रायक्षिक्तमपि तथैव द्रहव्यम् ॥ ५७२२ ॥ को ।।।

निर्मन्यीनाम् ॥ ५७२३ ॥ एतेषु विशेषतो विराधनामाह-

खिचाइ मारणं वा, धम्माओ मंसणं करे पंता । भदाए पडिनंघो, पडिगमणादी व नितीए ॥ ५७२४ ॥

या प्रान्सदेवता सा तं साधुं प्रतिसेवनापरिणतं क्षिप्तचिचादिकं कुर्यात्, मारणं धर्माद् प्रशनं वा कुर्वात । या भद्रा तस्मामसौ प्रतिबन्धं कुर्यात्, निर्गच्छन्त्यां वा तस्या प्रतिगमनादीनि स⁵ विदयीत ॥ ५७२४ ॥ अत्रेदं द्वितीयणदयः—

> वितियं अच्छित्तिकरो, बहुवन्खेवे गणम्मि पुच्छिता । सुत्त-ऽत्यक्षरणहेतुं, गीतेहिं समं स निगगच्छे ॥ ५७२५ ॥

योऽज्यविच्छितिकरो भविष्यति स सूत्रार्थी गृहीत्वा बहुव्याश्चेषे 'गणे' गच्छे गुरूनाष्ट्रच्छ्य तेवासुपदेशेन गीतार्थैः साधुभिः समं खूत्रा-ऽर्थसरणहेतोर्गणाद् निर्गच्छेत् । प्तत् द्वितीयपद-10 मत्र मन्तन्यम् ॥ ५७२५ ॥

॥ ब्रह्मापायमकृतं समाप्तम् ॥

अ घिकरण प्रकृत म्

सूत्रम्---

भिक्स्तू य अहिगरणं कहु तं अहिगरणं अविओस-वित्ता इच्छिजा अन्नं गणं उवसंपिजित्ताणं विहरित्तपः, कप्पइ तस्स पंचराइंदियं छेयं कहु, परिनिञ्वविय परिनिञ्वविय दोच्चं पि तमेव गणं पडिनिजाएअञ्बे सिया, जहा वा तस्स गणस्स पत्तियं सिया ५॥

अस्य सम्बन्धमाह---

एगागी मी गच्छसु, चोइजंते असंखडं होजा । ऊणाहिगमारुवणे, अहिगरणं क्रज संबंधो ॥ ५७२६ ॥

एकाकी मा गच्छ इसेवं नोधमानो यदा न प्रतिपचते तदाऽसङ्कृदं सवेत् । अथवा स निर्फ्रन्यो भूयो गच्छं प्रविद्यान् उन्नायामधिकायां वाऽऽरोपणायां दीयमानायामधिकरणं कुर्यात् । एव सन्बन्धः ॥ ५७२६ ॥

अनेनायातस्यास्य व्याख्या—मिश्चः चशब्दात् आचार्य उपाध्यायो बाऽषिकरणं इत्या तद-षिकरणमव्यवशमय्य इच्छेत् अन्यं गणग्रुपसम्पद्य विदर्जेस्, ततः करुपते 'तस्य' अन्यगण-सङ्कान्तस्य पक्कात्रिन्दिवं छेतं कर्जुस्, ततः 'परिनिर्वोच्य परिनिर्वोच्य' कोमळवचःसिळळसेकेन

१ मा पुच्छसु तामा॰ ॥ २ °स्य स्वगणसत्केष्वेवापरेषु स्पर्वकेषु प्रविष्टस्य पञ्च° कां• ॥

10

15

20

25

80

कषायाधिसन्तर्स सर्वसः श्रीतकीकृत्य द्वितीयमणि वारं तमेव गणं सः 'मितिनर्यातस्यः' नैतस्यः स्यात् । यथा वा तस्य गणस्य मीतिकं स्यात् तथा कर्त्तव्यस् । एष स्त्रार्थः ॥ अय माज्यविस्तः----

सचित्तऽचित्त मीसे, वजीगत परिहारिए य देसकहा। सम्ममणाउद्वंते, अधिकरण ततो सम्रुप्पञ्जे ॥ ५७२७ ॥ आभव्यमदेगाणे. गिण्हते तमेव मन्गमाणे वा । सिंचतेयरमीसे, वितहापडिवत्तितो कलहो ॥ ५७२८ ॥ विचामेलण सुत्ते, देसीभासा पवंचणे चेव । अण्णाम्म य वत्तव्वे. हीणाहिष अक्खरे चेव ॥ ५७२९ ॥ परिहारियमठविते. ठविते अणद्भाइ णिव्विसंते वा । क्रन्छितकले व पविसति, चोदितऽणाउद्गणे कलहो ॥ ५७३० ॥ देसकहापरिकहणे. एके एके व देसरागम्मि । मा कर देसकहं वा, को सि तुमं मम ति अधिकरणं ॥ ५७३१ ॥ अह-तिरिय-उड्रकरणे, बंधण णिव्यत्तणा य णिक्खिवणं । उवसम-खएण उहाँ, उदएण भवे अहेकरणं ॥ ५७३२ ॥ जो जस्स उ उवसमती, विज्यवर्ण तस्म तेण कायव्वं । (ग्रन्थाग्रम--५००० । सर्वेश्रन्थाग्रम--३८८२५) जो उ उनेहं कुजा, आवजति मासियं लहगं ॥ ५७३३ ॥ लहुओं उ उवेहाए, गुरुओं सो चेव उवहसंतस्स । उत्तयमाणे लहुगा. सहायगत्ते सरिसदोसी ॥ ५७३४ ॥ एसी वि ताव दमयत्, इसति व तस्सोमताइ ओइसणा । उत्तरटाणं मा ओसराहि जह होड उत्तयणा ॥ ५७३५ ॥ वायाए हत्थेहि व. पाएहि व दंत-लउडमादीहिं। जो कणति सहायत्तं, समाणदोसं तगं बेंति ॥ ५७३६ ॥ परपत्तिया ण किरिया, मोतु परहं च जयस आयहे। अवि य उवेहा बत्ता, गुणो वि दोसायते एवं ॥ ५७३७ ॥ जति परो पडिसेविजा, पावियं पडिसेवणं। मज्झ मोणं करेंतस्स. के अद्रे परिहायई ॥ ५७३८ ॥ षाना ! जलवासीया !. सुषेह तस-थावरा ! । सरढा जत्य भंडंति, अभावो परियत्तई ॥ ५७३९ ॥ वणसंड सरे जल-थल-खहचर वीसमण देवता कहणं। वारेह सरहवेक्खण, घाडण गयणास मुरणता ॥ ५७४० ॥ ताको मेडी अयसी, हाकी दंसक-वरित्त-नावालं ।

15

साहपदोसी संसारवडणो साहिकरणस्य ॥ ५७४१ ॥ अतिमणित अभिषते वा. तावी भेदी य जीव चरणे वा। रूवसरिसं ण सीलं. जिम्हं व मणे अयसों एवं ॥ ५७४२ ॥ अकट तालिए वा. पक्लापिक्स कलहम्मि गणमेदो । एगतर स्वयएहिं व. रायादीसिट्टें गहणादी ॥ ५७४३ ॥ वत्तकलहो उ ण पढति. अवच्छलते य दंसणे हाणी । जह कोहादिविवही, तह हाणी होइ चरणे वि ॥ ५७४४ ॥ आगाढे अहिगरणे, उबसम अवकङ्गणा य गुरुवयणं । उवसमह क्रणह झायं. छ्ड्रणया सागपत्तेहिं ॥ ५७४५ ॥ जं अजियं समीलक्षएहिं तव-नियम-बंभमहएहिं। तं टाइँ पञ्छ नाहिसि. छड्डेंतो सागपत्तेहिं ॥ ५७४६ ॥ जं अजियं चरित्तं, देखणाए वि पुन्तकोडीए। तं पि कसाइयमेत्रो, णासेइ णरी ग्रुहृत्तेणं ॥ ५७४७ ॥ आयरिओं एग न भणे, अह एग णिवारें मासियं लहुगं। राग-होसविग्रको. सीतघरसमो उ आयरिओ ॥ ५७४८ ॥ वारेति एस एतं, ममं न वारेति पक्खराएणं । बाहिरभावं गाहतरमं च मं पेक्खसी एकं ॥ ५७४९ ॥

याहरता पार्टारम च चचला एक । १००६ ।। एताः सर्वो जिप गाथा यथा प्रथमोद्देषेके (गाथाः २६९३–९७, २६८२, २६९८–९९, २७०१–५, २७०१–१, २७०६–११, २७१३–१७) व्याख्यातास्त्रवेद इष्टव्याः ॥ ५७२७–५७४९ ॥

प्रवमधिकरणं कृत्वा यः प्रज्ञापितोऽपि नोपशाम्यति स किं करोति ! इत्याह---

खर-फरुस-निद्धुराई, अघ सो भणिउं अभाणियन्वाई । निग्गमण कछसहियए, सगणे अद्वा परगणे वा ॥ ५७५० ॥

अधातौ सर-परुव-तिष्ठुराणि अभणितव्याति वचनाित भणित्वा कञ्चिषतहृदयः स्वगच्छाद् निर्भमनं करोति ततो निर्भतस्य तस्य स्वगणे परगणे च प्रत्येकमष्टौ स्पर्द्वकाित वक्ष्यमाणािन 25 भवन्ति ॥ ५७५० ॥ सर-परुव-तिष्ठुरपदािन व्याख्याति—

> उचं सरोस भणियं, हिंसग-मम्मवयणं खरं तं तू । अकोस णिरुवचारिं, तमसब्मं णिडुरं होती ॥ ५७५१ ॥

'उसं' महता सरेण सरोपं यद् भणितं हिंसकं में प्रवृत्तवनं वा तत् तु सरं मन्तव्यम् । जकारादिकं यद् आक्षोशवचनं यस्त्र 'निरुपचारि' विनयोपचाररहितं तत् परुषम् । यद् ३० 'असम्यं' समाया अयोग्यं 'कोलिकस्त्वम्' हत्यादिकं वचनं तद् निहुरं भण्यते ॥ ५७५१॥

ईदशानि भिष्णत्वा गच्छाद् निर्गतस्मावार्यः प्रायश्चित्तविभागं दर्शयितुकाम इदमाह—

१ °शके अधिकरणसूत्रे व्याख्यातास्तवैवात्रापि द्र° का॰ ॥ ॥० १९१

अष्टुऽष्टु अद्भगसा, मासा हॉतऽष्टु अष्टुसु पयारो । बासास असंबर्ग, ज बेब इयरे वि पेसंति ॥ ५७५२ ॥

स्थाणे यान्याचार्यसकानि आहीं स्पर्धकानि तेषु पक्षे व्यवापरिमन् स्पर्धने संवरतो-ऽष्टावर्द्धमासा भवन्ति, वरमणसक्ष्यप्यष्टश्च स्पर्दकेषु पक्षे पक्षे संवरतोऽष्टावर्द्धमासाः, प्वधु-६ भयेऽपि मीलिता आही मासा भवन्ति । अष्टशु च क्रतुवद्धमासेषु साष्ट्रतां 'प्रचारः' विहारो भवतीति कृत्वा अष्टमहणं क्रत्यम् । वर्षाशु चतुते मासान् तस्याधिकरणकारिणः साधोः संवरणं नास्ति, वर्षाकाण्य किंत्रकर्षा । 'इतरेऽपि' येचां स्वत्यके सङ्गान्यतंऽपि ते नायप्य वर्षाचास्य हति कृत्वा यतो गणाद्यानस्त्रात्र न प्रेषमन्ति । तत्र यानि खगणेऽष्टी स्पर्वकानि तेषु सङ्गा-नतस्य तैः स्वाध्याय-विक्षा-भोजन-मतिकमणवेद्यासु प्रसंके सारणा कर्तस्या — आर्थ । उपश्चमं 10 कुरु । यदि एवं न सारयन्ति ततो मासगुरुकम् ॥ ५०५२ ॥

तस्य पुनरनुषशान्यत इदं मायश्चित्तम्---

सगणिम पंचराइंदियाइँ दस परनणे मणुण्णेस् । अण्णेसु होइ पणरस, बीसा तु गयस्स ओसण्णे ॥ ५७५३ ॥

स्वगणस्पर्दकेषु सङ्कान्तस्यानुपशायतो दिवसे दिवसे पश्चरात्रिन्दवच्छेदः । परगणे 'मनो-15 ज्ञेषु' साम्मोगिकेषु सङ्कान्तस्य दशरात्रिन्दिवः, अन्यसाम्भोगिकेषु पश्चदशरात्रिन्दिवः । अवसन्नेषु गतस्य विश्वतिरात्रिन्दिवच्छेदः ॥ ५७५३॥

एवं भिक्षोरुक्तम् । अथोपाध्याया-ऽऽचार्ययौरुच्यते---

एमेव य होइ गणी, दसदिवसादी उ भिष्णमासंतो । पष्णस्सादी त गरू. चतस वि ठाणेस मासंतो ॥ ५७५४ ॥

१० एवमेव 'गणिनः' उपाध्यायस्वापि अधिकरणं कृत्या परमणं सङ्कान्तस्य मन्तव्यम् । नदरम्— दशरात्रिन्दिवमादौ कृत्वा भिक्रमासान्तस्तस्य 'रुंबेदः । एवमेव 'गुरोरिष' आचार्यस्य 'युतुई' स्वगण-परमणसाम्भोगिका-ऽन्यसाम्भोगिका-उवसकेषु पखदशरात्रिन्दिवादिको मासिकान्तम्रदेदः ॥ ५०५ ॥ एवत् पुरुषाणं नपादिस्यानिमागेन मायश्चिषमुक्तम् । अथेतेन्त्रेव स्वानेषु प्रक्रमिक्षगीन मायश्चिषमुक्तम् । अथेतेन्त्रेव स्वानेषु प्रक्रमिक्षगीन मायश्चिषमाह—

सगणिम पंचराईदियाईँ मिक्खुस्त तदिवस छेदी । दस होति अहोरचा, गणि आयरिए व पण्यस्त ॥ ५७५५ ॥ सगणे सङ्गानस्य भिक्षोस्विवसातास्य दिने दिने पृष्ठगत्रिविवच्छेतः । 'गणिनः' उपान

१ च्छेदः। तथया—स(स)गणस्पर्धते सङ्कान्तयोपाध्यायस व्हाराधिन्दवः, साम्भो-विकेषु सङ्कान्तस्य पञ्च व्हाराधिन्ववः, अन्यसाम्भोगिकेषु सङ्कान्तस्य विवाति]-राधिन्वनः, अवस्येषु सङ्कान्तस्य भिक्रमासिकच्छेदः। पदमेव 'ग्रुरोपि' आवार्यस्य 'वनुष्ठं' स्वायान्यर्थकः [पराणसाम्भोगिका-प्रया आस्मोगिका-प्रसस्रकस्थेषु स्वावेषु पञ्चवृत्रा स्वायान्यर्थकः [सामन्यस्थेद्रीऽस्वानस्याः॥ ५७५५॥ यतत् संव॥ ध्यायस्य वैश्वरत्निन्दिरः । सायार्थस्य पश्चरत्वरत्निन्दिरः ॥ ५७५५ ॥ अञ्चलको भिक्तसुस्सा, दसेव राहेदिया अवे छेदी । वण्यसस्य अहोरका, शक्ति आयरिष्ट अवे वीसा ॥ ५७५६ ॥

अन्यगणे सान्मोगिकेषु सङ्कान्तस्य मिक्कोवेष्ठसात्रिन्दिन्यक्षेदाः, उपाज्यायस्य पश्चदशसात्रि-न्दिनः, आचार्यस्य विवादितात्रिन्दिनः । एकनन्यसान्मोगिकेषु अवसन्तेषु न्यापुष्ठानुसारेण ३ नेयम् ॥ ५७५६ ॥ अपैवं मतिदिनं छिषमाने पर्याये पत्रेण कियन्तो मासा अभीतां ष्ठियन्ते ! इति जिज्ञासार्या छेदसङ्कनागाह—

अहाहजा मासा, पन्खे अहाह मासा हवंति वीसं तू ।
पंच उ मासा पन्खे, अहाह चचा उ मिन्सुरस ॥ ५७५७ ॥
स्वगणे सङ्कान्तस निक्षोः मतिविनं प्रधकच्छेदेन च्छियमानस्य पर्योयसं पत्रेण अर्द्धतृतीया १०
मासाभ्छियन्ते । तथाहि—पद्ये पष्टका दिनानि मवन्ति, तैः पष्ट मुण्यन्ते जाता पष्टवसतिः,
तस्या मासानयनाय किंत्रता भागे हतेऽद्धितृतीयमासा कथ्यन्ते । सगणे बाद्यो स्पर्दकानि, तेषु
पद्ये पत्रे सद्यतः पष्टकच्छेदेन विंशतिनीतारिङ्खन्ते । तथाहि—पष्टदकाहिमिप्रैणिता जातं
विंश्च शतस्य, तदिष पष्टिमिप्रीणितं जातानि वह शतानि, तेषां विंशता भागे हते विंसतिनीत्रा
कथ्यन्ते । परमुचरवाषि गुणकार-भागाहारममेगेण सबुद्या उपयुज्य मासा आनेतन्याः । १०
परगणे सङ्कान्तस्य भिन्नोदेकन च्छेदेन च्छियमानस्य पर्योयस्य पत्रेण पष्ट मासाशिष्टवर्यने,
दशकेनैव च्छेदेनाहिभः पत्रेश्वस्वार्रिशः मासाशिष्टवरने ॥ ५०५० ॥

एवं भिक्षोरुक्तम् । उपाध्यायस्य प्रनरिदम्-

पंच उ मासा पक्के, अहिंहें मासा हवेति चत्ता उ ।

अद्धऽह मास पक्के, अहिंहें सिंहें मुद्दे गणिणो ॥ ५७५८ ॥ २०
उपाध्यायसापि सगणे दशकेन च्छेटेन पहेल पक्ष मासाः, अष्टिनः पक्केश्वलारिंबद् मासाहिळचन्ते । तस्येव परगणे पक्षदगकेन च्छेटेनाद्धीष्टमासाः पहेल च्छिडान्ते । परगण प्वाष्टिनः
पक्षेः पिर्मामा गणिनक्षित्रात्ते ॥ ५७५८ ॥

अबह मास पन्स्ते, जहहिँ मासा हवंति सिंह तु । दस मासा पन्स्तेणं, जहहरप्तीती उ आयरिए ॥ ५७५९ ॥ भाचार्वस्य स्वराणे सङ्कान्तस्य पश्चदशकेन च्छेदेन च्छिपमाने पर्याये पक्षेणाद्वीष्टमासाः, अष्टभिः पत्तैः विष्टामीसान्ष्ठियन्ते । तस्तेव पराणे सङ्कान्तस्य विदोन च्छेदेन पत्तेण दश्च मासाः, अष्टभिः पत्तेरश्चीतिर्मसाच्छियन्ते ॥ ५७५९ ॥

१ दश अद्दोशामणि अवस्ति । किमुकं अवति ?—दशरात्रिन्दिवप्रमाणो विने दिने अवति च्छेदः । पदमावार्यस्य दिने दिने पश्च कां ॥ २ द्या "पक्के" चि विभक्तिः आस्तात् पक्षेण कां ॥ ३ ज्ले । तथाऽद्याः पक्षेतिंशतितासा अवस्ति, छेदनीया इत्याप्त् गम्यते । १ यान्त्र आक्ला—स्वाणेऽद्यी कां ॥ ४ न्त्रे, आवना आयुक्तनीत्या कर्षेत्रा ॥ १ व्यत्ते, आवना आयुक्तनीत्या कर्षेत्रा

एवं खगणे परगणे च सान्मोगिकेषु सङ्गान्तस्य च्छेदसङ्कलनाऽभिहिता । अन्यसान्मोगिकेषु अवसलेषु च सङ्गान्तस्य भिक्षोरुपाध्यायस्याचार्यस्य चानयैव दिशा छेदसङ्कलना कर्तव्या—

एसा विही उ निग्गऍ, सगणे चत्तारि मास उक्कोसा । चत्तारि परगणमिंग, तेण परं मूल निच्छमणं ॥ ५७६० ॥

पष विधिगंच्छात् निर्मतस्योक्तः । अत्र च स्वगणेऽष्टतु स्पर्वेकेषु पक्षे पक्षे सम्बरतभ्यत्वारो मासा उत्कर्वतो मवन्ति, परगणेऽप्येवं चत्वारो मासाः, अवरावेष्यपि चत्वारो मासाः । ततः परं यदि उपशान्तत्वतो मूलम् । अथ नोपशान्तस्वदा निष्काशनं कर्तव्यम् , लिङ्गमपहरणीय-सित्यर्थः ॥ ५७६० ॥

चोएइ राग-दोसे, सगण परगणे इमं तु नाणत्तं ।

पंतावण निच्छुभणं, पर-कुलघर घाडिए ण गया ॥ ५७६१ ॥

शिष्यः भेरयति —राग-द्वेषिणो यूयम्, यत् स्वरणे स्तोकं छेदभावश्चितं रच परगणे जु प्रभूतम्, एवं हि स्वरणे भवतां रागः परगणे द्वेषः । गुरुराह—इदं छेदनानात्वं कुर्वन्तो वर्य न राग-देषिणः । तथा चात्र दृष्टान्तः—

प्राप्त गिहिणो चउरो भजाओ । तातो य तेण सरिसे अवराहे पंताविचा 'मम गिहा-15 ओ नीह' चि निच्छूदा । तस्येगा कृष्टिइ परधरिम गया । बिह्या कुरुवरं । तर्द्या 'मकुणो प्राप्तरीरो वयंसो' चि तस्स घरं गया । चउर्थी निच्छुनंती बारमोहाए रुम्मा हम्ममाणी वि न गच्छाइ, मण्डे य—कतो बचामि ! निश्य मे अनो गइविसओ, जह वि मारेसि तहावि तुमं चैव गई सरणं ति तस्येव टिया ॥

इदमेबाह — ''पंताबण'' इत्यादि । केनापि गृहिणा चतरणां भावीणां 'प्रान्तापनं' कुट्नं २० कृत्वा गृहाद् निष्काशनं कृतम् । तत्रेका परगृहं द्वितीया कुरुगृहं तृतीया 'घाटिकः' मित्रं तद्वहं गता, चतुर्थी तु न कापि गता ॥

तुओ तुड्डेण चरायी परसामिणी क्या । तहयाए घाडियघरं जंतीए सो चेव अणुविततो, विगतरोसेण सरंदिता आणिता य । बिह्याए कुरुषरं जंतीए पिउमिहवर्ड गहियं, गाहतरं रुट्डेण अश्वेहि भणिए विगतरोसेण सरंदिता दंडिया य । पटमा 'दूरे नष्ट जि न ताए किंकि 25 पओषणं महंतेण वा पच्छितदंडेण दंडिडं आणिज्जह । एवं परद्वाणीया ओसण्णा, कुरुषर-टाणीया अन्नसंभोह्या, घाडियसमा सभोह्या, अनिग्गमे सप्रसमो सगच्छो । जाव दूरतरं ताव महंततरो दंडो भवह ॥ ॥ ५७६१ ॥ अँथ गच्छादनिर्गतस्य विधिमाह—

गच्छा अणिग्गयस्सा, अणुवसमंतस्सिमी विही होह ।

सज्झाप भिक्त भत्तद्व वासए चउर एकेके ॥ ५७६२ ॥ ³⁰ गच्छादनिर्गतस्यानुपताम्यतोऽयं विधिभैवति—सूर्योदयकाले यः स्वाध्यायः क्रियते तद-वसरे प्रथमसौ नोचते, द्वितीयं भिक्षावतरणवेख्याम्, तृतीयं भक्तार्थनाकाले, चतुर्थं पादी-

१ °कः। गाथायां स्नीलिङ्गनिर्देशः प्राकृतत्वात् । अत्र च बं०॥ २ 'साह्वोपलग्गा डे०॥ ३ पर्यं गच्छान्निर्गतस्य विधिरुक्तः। अथ गच्छा' वा०॥

पिकावस्यकनेकायाम् । एवं चतुरो वारानेकैकस्सिन् दिने नोचते ॥ ५७६२ ॥ तचाधिकरणं प्रमाते प्रतिकान्तानां साध्याथेऽप्रसापिते एवमादौ कारणे उत्यवेत—

दुप्पहिलेहियमादिसु, चोदिएँ सम्मं तु अपहिनक्ति । न वि पद्रवेति उनसम, कालों ण सुद्धो जियं ना सि ॥ ५७६३ ॥

दुष्पार्यपेक्षितं कुचैन् जादिशान्दाद् असरप्रेक्षमाणोऽसामानार्था वा प्रत्युपेक्षमाणो नोदितः । सम्यम् यदि न प्रतिपद्यते ततोऽधिकरणं भवेत् । उत्यन्ने वाधिकरणं यदि स्नाध्यायेऽप्रस्थापिते स्वयमेवोषशान्तस्ततो रहम् । अत्र नोपशान्तस्ततो यः प्रस्नापनार्थनुपतिष्ठते स वारणीयः, यदा —तिष्ठत् तावद् यावत् सर्वेऽपि मिलिजाः । तत आगतेषु सर्वेषु स्तर्यो हुवते — आर्य ! उपशान्त्र, इमे साध्यः लाध्यायं न स्मापयनित । स वद्योचतं प्रयच्छित — अवस्यं कालो न शुद्धः परिकेतं वा एवं साध्यां स्मृत्रश्चलं ततो न प्रस्मापयनित । एवं मणतो मासपुर । साध्यस्य १० सर्वेऽपि प्रस्नापयनित वाध्यायं च कुवैनित ॥ ५७६३ ॥

काले प्रतिकान्ते भिक्षावेलायां जातायामिदमाचार्या भणन्ति---

णोतरणें अभत्तद्दी, ण व वेला अभ्रंजणे ण जिण्णं सिं। ण पडिकमंति उवसमः, णिरतीयारा ण पचाह ॥ ५७६४ ॥

आर्थ ! साधवस्त्वदीयेनानुषशमनेन भिक्षां नावतरन्ति । स प्राह्—नृत्नमक्कार्थिनो न वा 15 भिक्षावेळा । एवगुक्ते सर्वेऽप्यवतरन्ति । तस्यानुषशान्तस्य द्वितीयं मासगुरु । मिक्षानिवृत्तेषु साधुषु गुरवो भणन्ति—आर्थ ! साधवो न भुक्कते । स प्राह्— नृतं साधूनां न जीर्णम् । एव- मुक्ते सर्वेऽपि समुद्दिशन्ति । तस्य पुनस्तृतीयं मासगुरु । भूबोऽपि प्रतिक्रमणवेळायां भणन्ति— आर्थ ! साधवो न प्रतिक्रामन्ति, उपश्चमं कुरु । स बष्टोत्तरं प्रत्याह—'नुः' इति विवर्के, सम्भावयाम्बद्दम्— निरतीचाराः श्रमणास्तेन न प्रतिक्रामन्ति । एवमुक्ते सर्वेऽपि प्रतिक्रामन्ति । १०६८ ॥ सम्भावयाम्बद्दम्— निरतीचाराः श्रमणास्तेन न प्रतिक्रामन्ति । एवमुक्ते सर्वेऽपि प्रतिक्रामन्ति । १०६८ ॥

अश्वम्मि वि कालम्मि, पढंत हिंडंत मंडली वासे।

तिक्षि व दोक्षि व मासा, होंति पिडकंतें गुरुगा उ ॥ ५७६५ ॥ अथान्यस्मित् कालेऽधिकरणपुरावच्य ॥ कदा १ इत्याह—५७८ती १ होना-ऽधिकादिएठने निम्सां हिण्डमानामं पण्डस्यां वा समुद्दिशतामावश्यके वो ॥ तत्र यदि द्वितीयवेळायामधिकर-२३ णमुरावकं तदा चतुर्थवेळायामनुष्यान्तस्य त्रयो गुरुमासाः, तृतीयवेळायामुसकेऽनुपशान्तस्य ह्वी गुरुमासी, एवं विभाषा कर्तन्या ॥ अथ भितकान्ते भितकान्ये करोऽपि नोपशान्त-स्वतस्यतुर्युरुकाः ॥ ५७६५ ॥

पर्व दिवसे दिवसे, चाउकारुं तु सारणा तस्स । जति वारें ण सारेती, गुरुगो गुरुगो तती वारे ॥ ५७६६ ॥ अ एवमनुपन्नान्तस्य दिवसे दिवसे 'चतुष्काङं' साध्यायप्रसापनादिसमयरूपं तस्य सारणा

१ प्राभातिकमतिकमणानन्तरं प्रतिलेखनाकाले चुप्पन्यु ' क्षां॰ ॥ २ वा तदा त्रयो वा द्वौ वा मासा भवन्ति, गुरुमासा इत्यर्थः । तत्र यदि कां॰ ॥

कर्तव्या । 'यति' साक्तो वारान् जाबार्यो न सारयति 'तति' तावतो वारान् मासगुरुकावि सवन्ति ॥ ५७६६ ॥

> एवं तु जगीतत्वे, गीतत्वे सारिए गुरू सुद्धो । जति तं गुरू ण सारे, आवसी होइ दोग्हं पि ॥ ५७६७ ॥

प्वं दिने दिने सारणाविधित्तातार्थस्य कर्तस्यः। यस्तु गीतार्थः स वर्धेकं दिनं साध्याय-भिक्षा-मकार्थना-ऽऽवश्यक्रक्कणेषु चतुर्वं स्थानेषु सारितः तदा परतत्वमसारयलपि गुरुः गुद्धः। यदि पुनः 'तत्य' अगीतार्थं गीतार्थं वा गुरुनं सारयति ततः 'द्वबोरिप' आचार्यस्यानुपन्नाम्यतस्य प्राथिधत्तस्यापिः। अन्ये प्रवते—अगीतार्थस्यानुपन्नाम्यतोऽपि नास्ति मायश्चित्तम्, यस्तु गुरुत्तगीतार्थं न नोदयति तस्य मायश्चित्तम्॥ ५७६७॥

गच्छो य दोन्नि मासे, पक्ले पक्ले इमं परिहवेति।

भत्तद्रण सज्झायं. वंदण लावं सतों परेणं ॥ ५७६८ ॥

एवमनुषशाध्यन्तं तं गच्छो ह्वो मासी सारवति, इदं पुतः पक्षे पक्षे परिहापयति । तषधा— अनुषशान्तस्य पक्षे गते गच्छत्तेन सार्द्धे भक्तार्थनं न करोति, न गृह्णति वा न वा किमणि तस्य ददातीत्यर्थः । द्वितीये पक्षे गते स्वाध्यायं तेन समं न करोति । तृतीये पक्षे गते वन्दैनं न १० करोति न वा मतीच्छति । चतुर्थोऽपि पक्षे यदा गतो भवति ततः परमास्त्रपमपि तेन सार्द्धे वर्षयन्ति ॥ ५५६८ ॥

> आयरिय चउरों मासे, संश्वंजति चउरों देह सज्झायं । वंदण लावं चचरो, तेण परं मुल निच्छहणा ॥ ५७६९ ॥

आचार्यः पुनश्चतुरो मासान् सर्वेरिषे प्रकारेस्तेन समं सम्युक्के ततः परं बतुरो मासान् 20 भक्तार्थनं वर्जयति साध्यायं द्व ददाति । ततश्चतुरो मासान् साध्यायं परिहत्य बन्दना-ऽऽलापो ददाँति । ततः परं वर्षे पूर्णे सांवरलिके प्रतिकान्ते उपशान्तस्य मूळप्, अनुपक्षान्तस्य द्व गणाद् निष्काशनं कर्तव्यम् ॥ ५७६९ ॥

> एवं बारस मासे, दोसु तवी सेसए भवे छेदी । परिहायमाण तहिवस तवी मूलं पढिकंते ॥ ५७७० ॥

प्रवं द्वादशमास्यामध्यनुपश्चाम्यतः 'द्वयोः' आदिममासयोयीवत् गच्छेन विसर्जितः ताबत् तपः प्रावधितमेव, 'रोपेषु' दशमु मासेषु पश्चरात्रिन्दिवच्छेदः यावत् सांवरसरिकं पर्व प्राप्तं भवति । पर्वुवणारात्रौ प्रतिकानतानामिकरणे उरपन्ने एव विधिरुकः । ''परिद्वावमाण तिष्कृ-वस'' ति पर्वुवणापारणकदिनादेकैकदिवसेन परिद्वीयमानेन तावत् नेयं यावत् 'तिष्ववसं' पर्वुव-णादिवस एवाधिकरणग्रसकं तत्र च तपो मूळं वा भवति' न च्छेदः । ''पिढकंते'' ति क्षथं 80 प्रतिकमणं कुर्वेतासुरपन्नं ततः सांवस्सरिकं कायोस्सर्गं कृते मूळ्येव क्षेत्रस्य ततः सांवस्सरिकं कायोस्सर्गं कृते मूळ्येव क्षेत्रस्य अवस्ति ॥ ५००० ॥

१ °न् गुरुको गुरुको मास्तो भवति ॥ ५७६६ डां०॥ २ °न्दर्न तस्य न प्रयच्छति न वा प्रती ' डां०॥ १ 'दाति। ''तेण परं'' ति बिभक्तिव्यस्यपात् ततः डां०॥ अ एतदनन्तरम् प्रम्यप्रमू—५५०० डां०॥

र्तदेव सुव्यक्तमाह-

एवं एकेकदिणे, हवेलु उवणादिणे वि एमेव !

बेह्यबंदण सारे, तम्मि वि काले तिमासगुरू ॥ ५७७१ ॥

भोद्रपद्युद्धपञ्चाचां अनुदित आदित्ये यचिकत्त्वग्रस्थते ततः पर्युवणायामप्यनुपतान्ते संवस्तरो भवति, वष्ट्यामुरूष्ये एकदिवसोनः संवस्तरः, सप्तम्यां दिवसद्धयोनः, एवमेकैकं दिनं व हापिबस्वा तावव् नेषं यावत् स्थापनादिनं—पर्युवणादिवसः। तत्र बानुदिते स्वी करूदे उपपने एवमेव नोदना कर्तव्या—मधमं साध्यायमस्यापनं कर्तुकसोः सारणीयः, तत्रक्षेत्रयन्दनार्षे मन्तुकामाः सारयेयः, तत्राप्यनुपत्तान्ते मितकमणवेकायां सारयन्ति। एवं तस्त्रिकापि पर्युवणा-काकदिवसे त्रिष्ठ साध्यायमस्यापनादिषु स्वानेषु नोदितस्यानुपत्रान्तस्य त्रीणि मासमुरुकाणि भवतिः। । । ।

पडिकंते पुण मूलं, पडिकमंते व होज अधिकरणं।

संवच्छरद्वस्तान्मे, कपम्मि मूलं न सेसाई ॥ ५७०२ ॥ पर्युपणादिने सर्वेपामधिकरणानां व्यवच्छित्तिः कर्तवेदित कृत्वा 'मतिकान्ते' समाप्ते आवद्यके यदि नोपशान्तवातो सुरुम् । ''पिडकांते न'' ति अथ मतिकमणे मारक्ये याक्त् सांवस्तरिको महाकायोस्सर्गसावदे अधिकरणे कृते सुरुमेव केवरुस् , न रोषाणि मायश्चित्तानि ॥ ५७०२ ॥ 15

संवच्छरं च रुष्टं, आयरिओ रक्लए पयनेण।

जित णाम उनसमेजा, पण्नयसतीसरिक्षरीसी ॥ ५७०३ ॥
एनमानार्यस्तं रुष्टं संवस्तरं प्रयक्षेत रक्षति । किमधेम् ? इत्याह—'बदि नाम' कथिन्द्रपञ्चान्येत । अत्र संवस्तरेणापि नोपशान्यति ततः पर्वतराजीसदृशरोगः स मन्तव्यः ॥५७७३॥
तस्त न वर्षादर्के को विभिः ? इत्याह—

अण्णे दो आयरिया. एकेकं वरिसमेत्तमेअस्स ।

तेण परं गिहि एसो. बितियपदं रायपञ्चह्य ॥ ५७७४ ॥

तं वर्षादुर्द्धं मूलावार्यसमीपाद् निर्गतमन्त्री द्वाबावार्षे क्रमेणेकैकं वर्षमेतेनैव विधिना प्रयत्नेन संरक्षतः, तन्मच्याद् येनोपशमितसस्यासी शिष्यः । 'ततः परे' वर्षत्रयादुर्द्धमेष गृही कियते, सङ्गत्यदीयं लिक्कमपहरतीत्यर्थः । द्वितीयपदे राज्यम्बजितस्य लिकं मसारदोषभयाक द्वियते । 25 पदं भिक्कोरुक्कत् ॥ ५७०९ ॥

> एमेन गणा-ऽऽयरिए, गच्छम्मि तनो उ तिथि पक्खाई । दो पक्ता आयरिए, पुच्छा य कुमारिहुंतो ॥ ५७७५ ॥

प्रभेष गणिन आचार्यस्य च मन्तन्त्रम् । नवरम्—उपाध्यायसानुपन्नाम्यतो गच्छे बसतः स्रोन् पक्षान् तपः मायश्चित्तम् , परतस्त्रेदः ; आचार्यस्यानुपन्नाम्यतो द्वी पक्षी तपः, परतस्त्रेदः । अव

१ पेरंयुगीनचतुर्धीदिनमाविष्युंपणापर्वापेक्षया पारणकदिने माद्रपद् कां ॥ २ 'द् अत्रान्तरेऽधिकरणं 'मवेत्' अत्पर्धत ततो यदि तत्क्षणादेव नोपशास्त्रत्वा सांवत्सरिके कायोत्सर्णे कृते सूत कां ॥ ३ 'अपुत्रमम' मा ॥

शिष्यः प्रच्छति— किं सहशापराघे विषमं प्रायक्षितं प्रयच्छय राग-द्वेषिणो यूयस् १ । भाषार्थः प्राह्—कुमारष्ट्यान्तोऽत्र भवति, स बोत्तरत्राभिधास्यते ॥ ५७७५ ॥

ये ते उपाध्यायस्य त्रयः पक्षास्ते दिवसीकृताः पश्चचत्वारिशद्दिवसा भवन्ति, ततः--

पणयाल दिणा गणिणो, चउहा काऊण साहिएकारा। मत्तद्रण सञ्झाए, वंदण लावे य हावेति ॥ ५७७६ ॥

गणिनः सम्बन्धिनः पञ्चन्तारिशद् दिवसाश्चतुर्धा क्रियन्ते, चतुर्भागे च साधिकाः—सपादा
एकादश्च दिवसा भवन्ति । तत्र गच्छ उपाध्यायेन सममेकादश्च दिनानि भक्तार्थनं करोति,
एवं साध्याय-वन्दना-ऽऽहापानि प्रत्येक्तमेकादश्च दिनानि यथाकमं करोति, परतस्तु परिहापयति । पञ्चन्तारिशद्विसानन्तरं चोपाध्यायस्य दशकच्छेदः । आचार्यसायैवोपाध्यायमपि
10चतिर्भिश्चतिर्भगितिर्मकार्थनादीनि परिहापयन संवत्सरं सारयति ॥ ५७७६॥

भिश्चतुभिमोसेभक्तार्थनादीनि परिहापयन् संवत्सरे सारयति ॥ ५७७६ आचार्यस्य द्वौ पक्षौ दिवसीकृतौ त्रिंशद् दिवसा भवन्ति, ततः—

तीस दिणे आयरिए, अद्धर्ट दिणे य हात्रणा तत्थ । गच्छेण चउपदेहि त. णिच्छ्रदे लग्गती छेदी ॥ ५७७७ ॥

विञ्चहित्तमाश्चनुर्भागेन विभक्ता अर्द्धोष्टमा दिवसा भवन्ति । तत्र गच्छ आचार्येण सहा-15 र्द्धाष्टमानि दिनानि भक्तार्थनं करोति, एवं स्वाध्याय-वन्दना-ऽऽड्यपानपि यथाकममद्धीष्टमे-दिवसैः प्रत्येकं हापयति । ततः परं गच्छेन चतुर्भिरपि-भक्तार्थनादिभिः पदैर्निष्काशित आचार्यः पश्चदशके च्छेदे रुगति ॥ ५७७७ ॥ ततः—

संकंतो अण्णगणं, सगणेण य विज्ञतो चतुपदेहिं।

आयरिओ पुण नवरिं, वंदण-लावेहि णं सारे ॥ ५७७८ ॥ स्वगणेन भक्तार्थनादिमिश्रदार्भः पदेर्थदा वर्षितस्तदा अन्यगणं सङ्कान्तः । स पुनरन्यगण-

 सगणन भक्ताथनादानश्रद्धाभः पदयदा वाजतस्वदा अन्यगण सङ्कानः । स पुनरन्यगण-स्थाचार्यः 'नवरं' केवलं वन्दना-ऽऽलापाभ्यां द्वाभ्यां पदाभ्यां सम्मुज्ञानः सारयित यावद् वर्षम् ॥ ५७७८ ॥

सज्झायमाइएहिं, दिणे दिणे सारणा परगणे वि । नवरं प्रण णाणत्तं, तवो गुरुस्सेतरे छेटो ॥ ५७७९ ॥

यरगणेऽपि सङ्गान्तस्याचार्थस्य स्वाध्यायादिभिः पदैदिने दिने सारणा क्रियते । नवरं परगणे सङ्गान्तस्य 'नानास्यं' विशेषः—अन्यगणसरुक्तः गुरोरसारयतस्यः प्रायश्चित्तम्, 'इतरस्य पुनः' अधिकरणकारिण आचार्थस्यानुपञ्चान्यतश्चेदः ॥ ५७७९ ॥

अत्र परः प्राह—रागद्वेषिणो पृथम्, आचार्यं सीघं छेदं प्रापयथ, उपाध्यायं बहुतरेण कालेन, निश्चं ततोऽपि चिरतरेण, एवं हि मिक्सपाध्याययोभेवतां रागः आचार्ये द्वेषः । अत्र ३० सुरिः प्रागुद्धिं कुमारदृष्टान्तमाह—

सरिसावरार्षे दंडो, जुवरण्णो भोगदरण-बंबादी । मज्ज्ञिम वंध-वहादी, अविष कषादि खिंसा वा ॥ ५७८० ॥ एगस्स रत्नो तित्रि प्रचा—जेहो मज्ज्ञिमो कणिहो य । तेडि य तिडि वि सामच्छियं—

पितरं मारिचा राजं तिहा विमनामी। तं च रत्ता नार्य। तत्त्व जेहो 'जुबराया तुर्य पमाण-मूजो कीस एवं करेसि ?' चि तत्त्स भोगहरण-वंषण-ताडणादिया सबे दंडप्पगारा कया। मिन्हमो 'एय पहाणो' चि काउं तत्त्त भोगहरणं न कर्य वंष-बह-सिंसाईया कया। कणी-यसो 'एएहि वियारिउ' चि काउं तत्त्त कण्णविवोडदंडो सिंसार्वडो य कञी न भोगहरणाईजो॥

अक्षरगमनिका—सङ्गोऽप्यपराधे युवराजस्य मोगहरण-बन्धनादिको महान् रण्डः कृतः, ऽ मध्यमस्य बन्ध-बधादिको न भोगहरणम्, अव्यक्तः—किन्छस्य कर्णामीटिकादिकः लिसा च कृता । अयमर्थोपनयः—यथा छोके तथा छोकोत्तरेऽप्युक्तृष्ट-मध्यम-जघन्येषु पुरुषवस्तुषु बृहत्तमो छष्ठुर्लेश्वतस्य यथाकमं दण्डः क्रियते ॥ ५७८० ॥

प्रमाणमूरी च पुरुषेऽिकयासु वर्तमाने एते दोषाः--

अप्पचय वीसत्थत्तणं च लोगगरहा दुरहिगम्मो । आणाए य परिमवो, मेव भयं तो तिहा दंहो ॥ ५७८१ ॥

्र होकै: सक्तायमावार्ये इष्टा ब्र्यात्— > एत एवाचार्या भणन्ति—अकवार्य चारित्रं भवति, स्वयं पुनित्यं रूप्यन्ति। एवं सर्वेषुरदेशेष्टाप्रस्वयो भवति । होपसाचुनामि कषायकरणे विश्वस्वता भवति । होको वा गर्हो कुर्योत्—मधान प्वामीषां कर्स्ट करोतीति । रोषणध्य पुरुः शिष्याणां प्रतीच्छकानां च दुरिधमां भवति । रोषणस्य चाज्ञां श्विष्याः परिभवन्ति, न ाः च भयं तेषां भवति । खतो वस्तुविशेषकरणात् विश्वा दण्डः क्वतः ॥ ५७८१ ॥

गच्छिम्म उ पद्वविए, जिम्म पर्दे स निग्गतो ततो वितियं। भिक्खु-गणा-ऽऽयरियाणं, मूठं अणवद्व पारंची ॥ ५७८२ ॥

गच्छे यसिन् पर प्रसापिते निर्गतस्ताते द्वितीयं पदं परगणे सङ्कान्तः माम्रोति । तथया—
तपित प्रसापिते वदि निर्गतस्तात्रव्छेदं प्रामोति, छेदे प्रसापिते निर्गतस्ताते मूळ्म् । एवं 20
भिक्षोत्तक्तम् । गणावच्छेदिकस्यानदस्यापे आवार्यस्य पाराधिके पर्यवस्यति । अथवा येन
भक्ताधेनादिना पदेन गण्डाद् निर्गतस्ताते द्वितीयपदमन्यगणे गतस्य मारभ्यते । यथा—
गच्छाद् भक्ताधेनपदेन निर्गतस्तात्राञ्च्यं गणं गतस्य पाणसेन समं न सुद्धे साध्यायं पुनः
करोति, पूर्वं साध्यायपदेन निर्गतस्य वन्दनकं करोति, वन्दनगदेन निर्गतस्याक्यां करोति,
आक्षापपदेन निर्गतस्य पराच्छअद्वर्भिरित पदैः परिहारं करोति । "भिक्त्युनाण-ऽऽयरियाणं" 25
इत्यादिना द्व त्रयाणामपि अन्त्यपायधिक्तानि गृष्टीतानि ॥ ५०८२ ॥ द्वितीयपदमाह्—

कारणें अणले दिश्खा, समर्ते अणुसहि तेण कलहो वा । कारणें सर्दें ठिताणं, कलहो अण्णोण्ण तेणं वा ॥ ५७८३ ॥

कारणे 'अनरुख' अयोग्यस्य दीशा दचा । समाप्ते च तस्मिन् कारणे तस्मानुशिष्टिः कियते । तथाऽप्यनिर्गेच्छता तेन समं करुदोऽपि कर्तव्यः । कारणे वा शब्दपतिबद्धायां वसतौ स्थिता-३० स्रतोऽज्योग्यं 'तेन बा' मैधुनशब्दकारिणा समं करुद्दः कियते येन शब्दो न श्रृयेत ॥५७८३॥

॥ अधिकरणप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ - प्रतिबद्धान्तर्गतः पाठः कां॰ एव वर्तते ॥

10

15

20

संस्ततनि विंचिकित्स प्रकृतम्

सूत्रम्---

भिवस्त य उग्गयवित्तीए अणस्थमियसंकष्वे संथ-डिए निवितिगिंछे असणं वा ४ पडिग्गाहिता आहारं आहारेमाणे अह पच्छा जाणिज्ञा—अणुग्गए सुरिए अत्थमिए वा, से जंच मुहे जंच पाणिंसि जं च पडिग्गहए तं विगिचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइक्समइ, तं अप्पणा भुंजमाणे अपणेसिं वा दलमाणे राईभोयणपिडसेवणप्पत्ते आवजड चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुग्घाइयं १-६॥ भिक्तू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकव्पे संथडिए वितिगिछासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहित्ता आहारं आहारेमाणे जाव अन्नेसिं वा दलमाणे राई-भोयणपहिसेवणप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परि-हारट्राणं अणुग्घाइयं २–७ ॥ भिक्तुं य उग्गयवित्तीए अणस्थमियसंकप्पे असंथ-डिए निविवतिगिंच्छे असणं वा ४ पडिगाहित्ता आहारं आहारेमाणे जाव अन्नेसिं वा दलमाणे राईभोयण-पडिसेवणप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्टाणं अणुग्घाइयं ३-८॥

भिवस्तू य उग्गयिवत्तीए अणत्थिमियसंकप्पे असंथ-डिए वितिगिंच्छासमावन्ने असणं वा ४ पडिगाहिता आहारमाहारेमाणे जाव अन्नेसिं वा दलमाणे राई-

१ संघाडिण साब् भा का भो हे ।। २ संघाडिण साब् भा का । ३ भिक्स य उमाय नवरम् – असंधाडिण निष्यतिर्मि ३-८ ॥ भिक्स य उमाय नवरम् — असं-धाडिण निर्मिण्डासमाय ५५-९ ॥ जनुषैस्त्रमिदम् । अस्य स्वचनु भो है । है ।। ५ संघाडिण भा को ।।

भोयणपडिसेवणप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परि-हारट्टाणं अणुग्घाइयं ४–९ ॥

अस्य सूत्रचतुष्ट्यस्य सम्बन्धमाह---

अंष्णगणं वर्षतो, परिणिन्ववितो व तं गणं एंतो । विद्य संघरेतरे वा, गेण्हे सामाऍ जोगोऽयं ॥ ५७८४ ॥

अधिकरणं कृत्वाऽनुपशान्तोऽन्यगणं त्रजन् परिनिर्वापितो वा स्वस्तमेव गणं आगच्छन् 'विहे' अध्वनि संस्तरणे इतरसिन् वा—असंस्तरणे 'श्यामायां' रजन्यामाहारं गृद्धीयार्वे । एप 'जोगः' सम्बन्धः ॥ ५७८४ ॥

अनेनायातस्यास्य व्याख्या— 'शिक्षुः' पूर्ववर्णितः, चशक्दाद् आचार्यं उपाध्यायश्च परिगृद्धते, उद्गते आदित्ये द्वतिः—जीवनोपायो यस्य स उद्गतद्विकः; पाठान्तरं वा — "उगगय-10
ग्रुचीए" ति, पूर्तिः—सरित्य, उद्गते रवी प्रतिक्षयावद्यवाद् वृद्धिः म्वारवती मूर्तिस्य इति
उद्गतमूर्तिकः, मध्यपदकोषी समासः । अनस्वितित पूर्वे सङ्गरुपः—भोजनाशिकाषो यस्य सोऽनस्वामितसङ्गरुरः । संस्तृतो नाम—समर्थदादिवस्यं पर्योग्धमोनी वा । "निविदिशिक्षे" वि
विचिक्तसा—चित्रविद्विता नाम—समर्थदादिवस्यं । एवंविषविद्रोग्धण्युकोऽर्थनं वा पानं वा 15
विचिक्तसा—चित्रविद्वितीः सन्तद्व इत्येकोऽर्थः, सा निर्गता यस्मात् स निर्विचिक्तसः,
उदितोऽनम्हामितो वा रितिरित्येवं निश्चयवानित्यर्थः । एवंविषविद्रोग्धणयुकोऽर्थनं वा गानं वा 15
व्यादिमं वा स्वादिगं वा प्रतिरित्येवं निश्चयवानित्यर्थः । एवंविषविद्रोगणयुकोऽर्थनं वा नागात्वरादितं
व्यव प्रतिग्रहे स्वितं वा; परं विज्ञाय "से" तस्य यच युक्ते प्रक्षिपं यच पाणातुत्यादितं
यच पतिग्रहे स्वितं व (पिद्वायप्त परिद्वायप्त स्वित्येषयन् वा नित्यववं कुर्वेत् 'नो'
वेच मानवानाशान्नामतिकामति । 'तद् अवनादिकं आत्मना युक्नानोऽन्येषां वा ददानो
रात्रिभोजनमतिसेवनमाह आपयते चादुर्गासिकं परिदारस्थानमञ्चादातिकम् ॥

एवमपरमपि सत्रत्रयं मन्तव्यम् । नवरं द्वितीयसत्रे-संस्ततो विचिकित्सासमापन्नश्च यो

र "अक्ष्यायां वर्षतीः" इत्येतत् ५७८४ गायात आरथ्य "एवं मितिरिको वीः" इति ५८१५ गायापर्यन्ता गायाः चूर्णो विद्रोधचूर्णो चापि कममेदेन व्याह्माता विलोक्यन्ते । तमाहि तद्वतः कमः—
कष्ण्याणे ५७८४ उत्यावरिषीः ५७८८ संबंधिनो ०५८०७ सिएसंक्षम् ०५८५ एमेत्र य वरिव० ५८०५
समिविषि० ५८१० अस्मिह्म० ५८११ सव्यवस्त छहुग० ५८०१ णातिक्षत्तीः ५८९४ स्वयस्यंवरे
५७८५ सूरे खुलागाः ५७८५ असुरितमण ५७५० अधुरितमण ५७५६ तद्वाय एते ०५७६६ स्वयस्य समण ५७५१ ततिवस्ताए ५७५५ स्वयस्य ५७५६ स्वयस्य समण ५७५१ ततिवस्ताए ५७५४ स्वयस्य ५५८५ स्वयस्य सम्बन्धिन ५७५६ स्वयस्य सम्बन्धिन ५७५६ स्वयस्य सम्बन्धिन ५७५६ स्वयस्य ५७५६ स्वयस्य प्रक्षित्वे प्रविद्याप ५७८० स्वयस्य सम्बन्धिन ५८०५ एते वितिष्ठि वी ०५८५।
६०० स्वा स्वत्य स्वयस्य स्वयस्य द्वार्य प्रविद्याप स्वयस्य स्वयस्य

मुद्धे । विचिक्तसासमापको नाम-'किम्रुरिवोऽजुरितो वा रिवः ।' अववा—'क्स्त्रमिवोऽनस्त-मितो वा !' इति सन्देहदोळावमानमानसः । एवं मुझ्तनस्यान्येषां वा ददानस्य चर्च्युरुकस्य ॥ तृतीयमुत्रे—''अंस्वाडिए'' चि 'असंस्तृतः' अध्यपतिपत्नः सपको म्लानो वा अप्यते, सः 'तिविचिकित्सः' 'नियमावनुद्रतोऽस्त्रमितो वा रिवः' इत्येवं निःसन्देहं जानानो यदि मुद्धे इत्यापि चर्च्युरुकस्य । शेवं प्रथमस्वयव् ॥

चतुर्थस्त्रे — असंस्तृतो विचिक्तिस्सासमापनश्च यो भुक्ते स आपचते चातुर्मासिकं परिहार-क्यानममुद्धातिकम् । एव सत्रचतुष्टमार्थः ॥ अथ निर्मुक्तिकस्तरः —

'संथडमसंथड या, निष्वितिगिच्छे तहेव वितिगिच्छे।

काले दन्वे भावे, पच्छित्ते मग्गणा होइ ॥ ५७८५ ॥

ण्यमं सूत्रं संस्तृते निर्विचिकत्से, द्वितीयं संस्तृते विचिकित्सासमापके, तृतीयमसंस्तृते निर्विचिकित्से, चतुर्थमसंस्तृते विचिकित्सासमापके मन्तव्यम् । तत्र प्रथमसूत्रे तावत् त्रिभा मायश्चित्तमार्गणा भवति—कारुतो द्वन्यतो भावतश्च ॥ ५७८५ ॥ तत्र कारुतत्वावदाह—

अणुरगय मणसंकप्पे, गवेसणे गहण भ्रंजणे गुरुगा ।

अइ संकियिनम श्रृंजित, दोहि वि लहु उग्गते सुद्रो ॥ ५७८६ ॥

अनुद्रत:-नावाप्युद्रतो रिविरित्येवं निःशक्तिन मनःसङ्करपेन यो मक्त-पानस्य गवेषणं
प्रहणं भोजनं च करोति तस्य चतुर्गुरचः 'झम्यामपि' तपः-काळाच्यां गुरुकाः । अय श्रॅक्कितेन मनःसङ्करपेन श्रेक्क ततस्य प्व चतुर्गुरका झम्यामपि रूपवः । उद्गतः सूर्य इति निःसन्दिष्ये मनःसङ्करपे श्रुक्कानः शुद्धः ॥ ५७८६ ॥

अत्थंगयसंकप्पे, गवेसणे गहणे श्रुंजणे गुरुगा ।

अह संक्रियम्मि श्रुंजह, दोहि वि लहुऽणत्यिमिएँ सुद्धी ॥ ५७८७ ॥ 'असक्रतो रिवः' इत्येषंविधेन सङ्गर्थन गवेषणे प्रहणे मोजने च चतुर्गुरुकाः तपसा कालेन च गुरवः । अथ 'असक्रतोऽनसङ्गतो वा' इति शक्किते अक्के तत्वश्चतुर्गुरुकाः 'द्धाभ्या-मिपे' तपः-कालभ्यां लघनः । यः पुनरनस्तिमितो रिविरित्येवं निःसन्दिष्येन चेतसा अक्के स गुद्धः ॥ ५७८७ ॥ अथ ''उम्मयविची'' इत्यादिपदञ्याख्यानमाह——

उग्गयिन ग्रुची, मणसंकप्पे य होंति आएसा ।

एमेन अणत्थिमिए, धाए पुण संखढी प्रस्तो ॥ ५७८८ ॥

उद्भते रवी इचिः—वर्तनं यस्य स उद्भतक्षतिः। पाठान्तरेण 'उद्भतम्भिः' हति वा, उद्भते सूर्ये मूर्तिः—शरीरं इचिनिमित्तं बहिः समचारं यस्य स उद्भतमृतिः। ⊸ मेनःस**ब्र**स्पे चामी आदेशा भवन्ति— अनुदितमप्यादित्यं यो ⊳ मनःस**ब्र**स्पेन उद्भितं मन्यते स सुझानोऽपि न

१ ''असंबाहिए' मा॰ का॰॥ २ लंघडमसंघडे मा॰॥ ३ विश्वते मार्गणा अवति, तथया—काले प्रथा भावे ब, कालतो द्रव्यतो भावतकोत्पर्यः॥ ५७८५ का॰॥ ४ 'शक्किते' विश्वद्वतोऽद्रकृतो वा रविः!' इति सहावतापक्षे मनःसङ्कर्षे क्षुण्कां॥ ५ ४ ० एतः विद्यात्योऽ पाठः मा॰ कां० एव वतेते॥

80

वोषणाग् भवति, यः पुनरुदितेऽपि रवी 'नाधाप्युदितः' इति चेतसा मन्यमानो श्रुक्के स सदीवः । एवमेवानखमितेऽपि मन्तव्यम् । किसुक्तं भवति !— अखमितेऽपि रती 'नाधाप्य-सङ्गतः' इतिबुद्ध्या शुक्तानोऽपि न पायिश्वरी, अनसामितेऽपि च 'ब्यवह्नतः' इत्यमिमायेण शुक्तानः सदोषः । अर्थवा—''भणसंकप्पे अ होति आदेस'' दि अनुवितमनःसङ्कर्या-रुख-मितमनःसङ्कर्याः कतरो गुरुत्तरे ब्रुद्धतरे वेति चिन्तायां द्वावादेशी भवतः, तो चोचरुत्राभि-ऽ ध्यासेते (गा० ५८०१)। अनुदितेऽज्विति वा कथं प्रदर्भ सम्बति ! इत्याह—''भाते गुण संसर्ख प्रता' पि प्रातं सुनिश्विति वैकोऽर्थः, तत्र सङ्क्ष्यी सम्प्रवित। सा च द्विषा—पुरःसङ्क्ष्यी पश्चाससङ्कर्वी व । तत्र पूर्वोद्धे या कियते सा पुरःसङ्करी, ज्यरसङ्करी, व्यरसङ्करी, व्यरसङ्करी, व्यरसङ्कर्वी अवस्थित रवी पुरःसङ्करी, पुनःशब्दम्हणाद्धं अवस्थित रवी पुरःसङ्करीत ॥ ५७८८ ॥

सरे अजुरगतिमा, अजुदित उदिओ व होति संकप्पो । एवं अत्यमियम्मि वि, एगतरे होति निस्संको ॥ ५७८९ ॥

स्येंऽनुद्रतेऽनुदितसङ्कर्ण व्यवस्य स्थान । भवेत्, उपकथ्ण बैतत्, उदितेऽप्यनुदित उदित इति वा सङ्कर्ण भवेत् । एवमेवाऽस्त्रमिती वा निःशङ्को मनःसङ्कर्णो भवेत् । एवमेवाऽस्त्रमितीऽपि (पक्तरः) अनस्त्रमितीऽस्त्रमिती वा निःशङ्को मनःसङ्कर्णो भवित । उद्यानुदितिदिविषयाऽनत्त्रमिता-उत्त्रमितिवष्या च मलेकं शिक्षगङ्की भवित । 15 तया — अनुदित्तगनःसङ्कर्णो अनुदितगिदितिवर्षयाः च मलेकं शिक्षगङ्की भवित । 15 तया — अनुदितगनःसङ्कर्णो अनुदितगविष अनुदितगोत्री, एवं चर्द्वाभः पदैः सप्रतिपक्षेमेक्षरचनास्त्रकृति । विद्यानि स्वाप्तिक्ष्यम् व्यवस्त्रम् । विद्यानि स्वाप्तिक्षेमेक्षरचनास्त्रम् । विद्यानिक्षयाः । वित्रो स्वयस्य द्वाप्तिक्षयाः । तया अनस्त्रमितसङ्करभोऽनस्त्रमितगवेपी अवस्त्रमितसङ्करभोजनस्त्रमितभवेषी अनस्त्रमितसङ्करभोजनस्त्रमितभवेषी । तया अनस्त्रमितसङ्करभोजनस्त्रमितगवेपी अवस्त्रमिति स्वर्यो । स्वर्या विद्यानिक्षयाः । अन्त्रापि विरो मध्यमपदेषु उपस्पत्रमितसङ्करभोजनस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्त्रमितस्तिस्तिस्तिस्तिस्तिस्ति।

अणुदियमणसंकर्षे, ग्रहण गवेसी य श्वंजणे चेव । उग्गयप्रणस्यमिए या, अस्यंपत्ते वि चत्तारि ॥ ५७९० ॥ अनुदितमनःसङ्ख्ये गवेषण-प्रहण-भोजनास्यैश्विभिः परैर्वेऽडी भ्रहासेष 'क्स्वारः' प्रथम-

भारतिसमाःसङ्कर्षे गावेषण-प्रहण-भाजनास्पीक्षीयः पदेचेऽद्यः भङ्गासीषु 'बस्तारः' प्रथम-द्वितीय-बद्यायी-ऽद्यमसङ्गा पटन्ते, शेषाक्षस्यारेऽषटमानकाः । उद्यत्तमःसङ्करोऽप्येत एव स्वारो पटन्ते न शेषाः । अनतामितसङ्करे आतंगाससङ्करोऽपि वैत एव चत्वारो आखाः, शेषास्तु एतीय-पद्यम-बुक्तसस्या असम्भवित्वातु वर्जनीयाः ॥ ५७९० ॥

अथैतेषामेव घटमानकमङ्गानां विभागतः प्ररूपणामाह--

अणुदितमणसंकप्पे, गवेस-गह-मोपणम्मि पदमलता । वितियार्पे तिसु असुद्धो, उग्गयमोई उ अंतिमञ्जो ॥ ५७९१ ॥ अनुदितमनःसक्क्सोऽनुदितगवेषी अनुदितमाही अनुदितमोनी १, एषा प्रवसा बता, प्रवसी

भक्त इत्यर्थः । द्वितीयस्यां तु स्त्रायां साधुस्तिषु परेषु श्रविद्युद्धः, तद्यया—श्वनुदितसङ्करो-ऽनुदितगनेषी श्रनुदितमाही उद्गतमोजी, हयं हि स्त्रा सङ्कर्य-गनेषण-महणपदेक्षिमिरशुद्धाः उद्गतमोजिलक्रेणानस्परेन तु शद्धा ॥ ५७९१ ॥

तहपाएँ दो असुद्धा, गहणे भोती य दोणिण उ विसुद्धा । संकप्पम्म असुद्धा, तिसु सुद्धा अंतिमलया उ ॥ ५७९२ ॥ तृतीयस्यां कतायां 'श्रे' सहरूप-मवेषणपरे अशुद्धे महण-मोवनपरे हु ह्वे विशुद्धे । तथाया—अनुदितसहरूपेऽप्रदितमंत्री उदितमाही उदितमोशी चेति ॥ 'अन्त्यस्थता नाम' कपुदितसहरूपस्य वस्मा कता चर्डाबीत्यर्थः, सा सहरूपपरेऽविशुद्धा होषेः त्रिभैः परेः शुद्धा । तथाया—अनुदितसहरूपस्य वस्मावितपनाः-

10 सहस्यस्य चतस्रो हता उक्ताः । अभोदितमनःसहस्यस्य चतस्रो हता आह— उग्गवमणसंकप्पे, अणुदितं गवेसी य गहण भौगी य । एमेव य वितियहता, सुद्धा आदिग्मि अंते य ॥ ५७९३ ॥ ततियहताऍ गवेसी, होह असुद्धो उ सेसगा सुद्धा । सन्वविसुद्धा उ भवे, चउत्थहतिया उदियचित्ते ॥ ५७९४ ॥

15 ष्मादित्य उद्वतोऽनुद्वतो वा भवतु स नियमादुद्वतं मन्यत इत्युद्वतमनःसङ्कल्य उच्यते । तत्य प्रयमकता—उद्वतमनःसङ्कल्पेऽनुदितगवेषी अनुदितमाही अनुदितमोजी १ । एवमेव च द्वितीय- स्ताऽपि इष्ट्रव्या, नवस्मादिपदे अन्त्यपदे च सा शुद्धा मध्यमे पद्ववेषऽग्रुद्धा २ ॥ ५७९२ ॥ तृतीयस्तायामेकं गवेषणापदमग्रुद्धत् (शेषाणि' सङ्कल्य-महण-भोजनपदानि त्रीण्यपि शुद्धानि व नवुर्धा तु स्ता सर्वेषु पदेपु शुद्धा १ । एताध्यतकोऽप्युदितचिचतिषया स्ता भावस्य २० विश्वद्धत्वा शुद्धाः प्रतिपद्धश्याः । एवम्पताध्यतमाऽनस्तमितसङ्करपयोरप्यष्टौ स्ता भवन्ति ॥ ५०९१ ॥ तासामेव विभागमुपदर्शयति —

अत्थंगयसंकष्पे, पदम धरेंतेसि ग्रहण मोमी य । दोसंतेस असुद्धा, वितिया मज्झे मत्रे सुद्धा ॥ ५७९५ ॥ ततिया गवेसणाए, होति विसुद्धा उ तीसु अविसुद्धा । र्चनारि वि होंति पदा, चउत्थरुतियाएँ अत्थमिते ॥ ५७९६ ॥

इहास्रामितमनस्तिमतं वा रॉवं यो नियमादस्तिमतं मन्यते सोऽसाइतसङ्करः, तस्य मथमा रुता—अस्तिमतसङ्करपोऽनस्त्रमितगवेषी अनस्तिमतमादी अनस्तिमतमोत्ती रः अत एवाह— मथमायां रुतायां ''धरेतेसिं'' वि श्रियमाणे सूर्ये मक्त-पानस्य एवणं प्रहणं भोजनं च 'अस्त्रज्ञतो रविः' इतिबुख्या करोति । द्वितीया द्व रुता 'द्वयोः' आधन्तपदयोरशुद्धा 'मञ्जे' गवेषणा-४० महणपदयोः शुद्धा र ॥ ५०९५ ॥

१ °द्धः, परं यत उद्रतभोगी अन्त्यपर्युक्तस्ततो निर्दोषः। तद्यथा शं०॥ २ °त पसी य तामा०॥ ३ था उद्रतमनःसङ्करपगोचरा स्तता शं०॥ ४ चत्तारि पय असुद्धा, चडरथ तामा०॥

तृतीया गवेषणायां विशुद्धा 'त्रिषु' शेषेषु सङ्करमादिष्यविशुद्धा ३। चतुर्यकतायां चास-मितविषयस्त्रात् स्त्वार्थिप पदान्यविशुद्धानि । 'अद्यमितगनःसङ्करः' इति कृत्वा चत्त्रसोऽप्येता अविशुद्धाः २ ॥ ५७९६ ॥ अथ विशुद्धकता आह्—

अणत्रधं तमसंकप्पे, पढमा एसी य महण भोगी य । मण एसि गहण सुद्धा, बितिया अंतिम्म अविसुद्धा ॥ ५७९७ ॥ मण एसणाए सुद्धा, ततिया गह-भोषेणेसु अविसुद्धा । संकप्पें नवरि सुद्धा, तिसु बि असुद्धा उ अंतिमिया ॥ ५७९८ ॥

अस्तिनियनस्तिनं वा सूर्ये यो नियमादनस्तिनितं मन्यते तस्य मथमा छवा, अनस्तिनि-तसङ्क्लोऽनस्तिन्वेषी अनस्तिनियाही अनस्तिनियोजी । अत एवाह—"पदमा एसी य गृहणे मोगी य" ति प्रथमायामनस्तिनेषी अनस्तिन्तग्रहण-मोजी चेति । द्वितीया तु स्ता 10 मनःसङ्कल्पेषण-महणपदेषु त्रिषु विशुद्धा अन्त्यपदे अविशुद्धा ॥ ५७९७ ॥

तृतीयलता मनःसङ्कर्षे प्रणे च गुद्धा श्रहणे भोजने चाविग्रुद्धा । 'अन्त्या नाम' चतुर्धी लता सा नवरं सङ्करपपदे विग्रुद्धा रोषेषु 'त्रिषु' गवेषण-श्रहण-मोजनवदेषु अगुद्धा ॥५७९८॥ अत्राष्टासप्यविग्रुद्धलतासु पायश्चिचमाह—

परमाए बितियाए, तितय चउत्थीऍ नवम दसमाए । 15 एकारस बारसीए, लताऍ चउते अचुग्घाता ॥ ५७९९ ॥ प्रथमायां द्वितीयलां तृतीयलां चतुर्थौ नवस्यां दद्यम्यामेकादश्यां द्वादश्यां चेत्यष्टासु रुतासुं भावस्याविद्यद्वतया चलारोऽनुद्वाता मासाः॥ ५७९९ ॥

पंचम छ स्सचिमया, अङ्गमिया तेर चोहसमिया य । पन्नरस सोलसा वि य, लतातों एया विश्वद्वाओ ॥ ५८००॥ 2० पन्नरसी पन्नी सप्तमी अष्टमी त्रवीची चेत्रवी पन्नवशी पोडनी चेत्रवी स्ता विश्वदाः

मतिपत्तव्याः, सर्वत्रापि भावस्य विद्यद्धत्वात् ॥ ५८०० ॥ अत्र शिष्यः प्रच्छति—

दोण्ह वि कतरो गुरुओ, अणुग्गतऽस्थमियश्चंजमाणाणं।

आदेस दोण्णि काउं, अणुग्गए लहु गुरू इयरे ॥ ५८०१ ॥ अनुद्रता-ऽद्यमिवशुक्षानयोद्वंयोर्मध्ये कतरो गुरुतरः—महादोषः ! । सूरिराह—आदेश्वद्वयं 25 कर्तव्यम् । एके आचार्यो बुवते—अनुद्रतभोजिनोऽद्यमितभोजी गुरुतरः । कुतः ! इति चेद् उच्यते—स संक्षिष्टपरिणामः, दिवसतो शुक्तवा सूयो रजन्याः प्रशुस्त एव श्रुक्के, तदानीं चाविशुध्यमानः कालः; अनुदितभोजी पुनः सकला रजनीमधिसस्य क्लान्तो श्रुक्के, विशुध्यमानश्च तदानीं कालः, अतोऽसी स्वुद्धरः । अपरे भणन्ति—अस्तिनभोजिनोऽनुदितभोजी गुरुतरः,

१ °यणम्म व्यवि' ताना । । २ °सु ययाक्रममायासु चतत्त्वचु अनुदितसङ्करपविषयासु अस्त्वासु चतत्त्वचु अस्तितसङ्करपविषयासु अस्त्वासु चतत्त्वचु अस्तितसङ्करपविषयासु आवस्याचे अवेदा । । ५०९९ ॥ पंचम को ॥ ३ °व्यविगुद्धतता मत्त्वाः प्रवास अवेदा अवेदान अव

यकावसी सर्वा रात्रिमधिसञ्च स्तोकं कार्क न प्रतीक्षते ततः संक्रिष्टपरिणानः; इतरस्तु चिन्त-यति—मूनान् मया कार्कः सोढव्य जतो सुद्धे, एवनसी व्हतुतः । एवमावेश्रद्धयं क्रस्या स्थितपक्ष उच्यते—अनुद्रते सूर्ये प्रतिसमयं विशुज्यमानः कार्को मवतीति क्रस्वाऽनुदितमोजी व्युतरः, 'इतरः पुनः' अस्त्रमितमोजी स तदानीं प्रतिसमयमविशुज्यमानः कार्को भवतीति क्रस्या ठ गुरुतरः ॥ ५८०१ ॥ उक्तं कार्लान्यकं प्रायक्षितस् । अथ द्रव्य-मावनिष्यक्षमिभिस्तुराह्—

गेण्हण गहिए आलोयण, नमोकारे धुंजणे य संलेहे ।

सुद्धो विर्मिषमाणो, अविर्मिषण सोहि दस्त्र भावे य ॥ ५८०२ ॥ अनुदितो वाऽसमितो वा रिवरेतेषु स्थानेषु ज्ञातो भवेत्—"गेण्ड्ण" वि इते उपयोगे पदमेषे इते ज्ञातम्, यथा—नाधाण्युद्धतोऽस्तमितो वा; तवा तत एव निवर्तमानः शुद्धः । 10 अत्र महणं—गयेषणं कुवैता ज्ञातं तदापि निवर्तमानः शुद्धः । अत्र गृहीते ज्ञातं ततो वर्षे गृहीतं तत् परिष्ठापयन् शुद्धः । अथाकोषयता ज्ञातं तदापि विविश्वन् शुद्धः । अथाभोष्क-कामेन नमस्कारं भणता ज्ञातं ततोऽपि विविश्वन् शुद्धः । अञ्जानेन ज्ञातं देशं परिस्वजन् शुद्धः । अथा सर्वेक्षिन् शुद्धः । अथाकोषा विविश्वन् । ५८०२ ॥ ।

संलेह पण तिभाए, अवहु दोभाए पंच मोत्त भिक्खुस्स ।

मास चउ छ च लहु-गुष्, अभिक्स्तगहणे तिख्र सूर्णे ॥ ५८०२ ॥ 'संलेखः' कवलत्रयमाणः तमवशेषमनुद्रतेऽस्तिमिते वा ज्ञातेऽपि अक्के मासळ्छु । पद्म कवलत्रयमाणाः तुक्के मासळ्छु । पद्म कवलत्रविष्यमाणान् सुक्के मासळ्छु । 'शिमागः' दशक्वरुतान् शेषान् सुक्के चतुर्लेषु । 'शिमागः' ति ही त्रिमागी विश्वतिः कवलातान् रोज्ञानस्य पद्म सुक्ता ये शेषाः पद्मिति कवलातान् राज्ञानस्य पद्म सुक्ता ये शेषाः पद्मिति स्वति । अभिक्षामहणे पुक्ते । एवं यथा यथा द्रव्यद्वद्विस्तया तथा मायश्चितिति कवलतान् ये दि हो ते । अभिक्षामहणे पुनः पुनरानेवा पतिय हितीयं वारमेवंसुज्ञानस्य मासगुरुकादारुकं छेदे तिष्ठति । स्ति स्वति वार्मेवंसुज्ञानस्य मासगुरुकादारुकं छेदे तिष्ठति । स्ति वार्मेवंसुज्ञानस्य मार्स्यक्तादारुकं छेदे तिष्ठति । स्ति वार्मेवंसुज्ञानस्य मुकं यावद् नायश्चित्तं । अभिक्षामहणे भिक्षोरुक्तम् ॥ ५८०३ ॥

एमेव गणा-SSयरिए, अणवहुच्यो य होति पारंची ।

तिम्म वि सो चेव गमो, भावे पिडलोम वोच्छामि ॥ ५८०४ ॥
एवमेव गणिन:--उपाध्यायसाचार्यस्य च चारणिकागमः स एव कर्तव्यः । नक्रम्उपाध्यायस्य भयमवारं मासगुरुकादारुकं छेदे, द्वितीयवारं चतुर्लेषुकादारुकं मृले, तृतीयवारं
४० चतुर्गुरुकादारुकं अनवसाप्ये तिष्ठति । एवमाचार्यस्यापि प्रथमवारं चतुर्लेषुकादारुकं मृले,
द्वितीयवारं चतुर्गुरुकादारुकंभनवस्थाप्ये, तृतीयवारं पद्ल्षुकादारुकं पाराश्चिके पर्ववस्यति ।
गतं द्वव्यनिष्पनम् । अय भावे प्रतिलोमं प्राविश्वतं वक्ष्यामि —पूर्वे द्वव्यक्द्वी भावस्थितः

१ < > एतदन्तर्गतः पाठः भा० नास्ति ॥

इद्धिरुक्ता, सम्प्रति यथा यथा इत्यपरिहाणिस्तया तथा परिणामसंक्केशबृद्धिमङ्गीकृत्य प्रायश्चि-चबृद्धिममिषास्य ॥ ५८०२ ॥ तामेबाह—

'पंचूण तिमागडद्धे, तिभाग सेसे य पंच मोतु संलेहं। तम्मि वि सो चेव गमो, णायं पुण पंचहि गतेहिं॥ ५८०५॥

'तत्रापि' भावेमायश्चित्रे यो द्रव्यतिण्यन्ने चारणागम उक्तः स एव द्रष्टव्यः । नवरम्— 5
"पंचूण" ति पञ्चमिः कवलैरुतायां त्रिशति होषाः पञ्चित्रिशतिः कवल भवन्ति, ततैः पञ्चमु
कवलेषु गतेषु यदि ज्ञातम् 'अनुदितोऽस्तिमतो वा रिवः' एवं ज्ञात्वा होषान् पञ्चित्रिशतिकवल्यन् सुज्ञानस्य मासस्य । ''तिभाग'' ति त्रिशत् त्रिभागेन हीता विशतिकवल्यसान् सुज्ञानस्य मासमुरु । ''अद्धि' ते 'अद्धै' पञ्चद्रश कवल्यसान् सुज्ञानस्य चतुर्लेषु । 'त्रिमागः' दश्च स्म्यनास्तान् सुज्ञानस्य चतुर्गुरु । त्रिशतः पञ्च स्म्यनान्तान् सुक्तव होषाः पञ्चित्रिशतिस्त्राते 10 सुक्ताः, ज्ञाते तु पञ्च होषान् सुज्ञानस्य पद्लबुक्तः । सेलेस्यनाहोषं सुज्ञानस्य पहुर्त्वः । इद प्रभृत-मृत्यत्यक्वलेषु अधिका-ऽपिकतरायामणि तृत्यी सज्ञातायां होषं स्तीकं स्तोकतरमणि ज्ञाते सति सुक्षे तत्र परिणामः संक्षिष्टः संक्षिष्टतर इति कृत्वा बहु-बहुतरं प्रायश्चित्तम् ॥ ५८०५॥

एमेवऽभिक्खगहणे, भावे ततियम्मि भिक्खुणो मूलं। एमेव गणा-ऽऽयरिए, सपया सपदं हसति इकं॥ ५८०६॥

एवमेवामीक्ष्णअहणेऽपि भावनिष्यन्नं प्रायध्यिषं मिक्षोर्द्रष्टयम् । नवरम्—द्वितीयवारं मासगुरुकादारुवं छेदे तिष्ठति, तृतीयवारं चतुरुषुकादारुवं मूरुं यावद् नेयम् । एवमेव गणिन
आचार्थस्य च द्रष्टयम् । नवरम्—स्वपदात् सण्दमेकसुमयोरपि हृतति । तत्रोपाष्यायस्य
प्रथमवारं मासगुरुकादार्थे तृतीयवारायामनवस्थाय्ये, आचार्थस्य प्रथमवारं चतुरुषुकादारुव्यं
तृतीयवारायां पारश्चिकं तिष्ठति ॥ ५८०६ ॥ इह पूर्वेषुद्रतवृत्तिवरमनत्वितसङ्गरूपपदं च २०
व्याख्यातं न रोषाणि संस्तृतादीनि अतस्तानि व्याच्ये—

संथडिओं संथरेंतो, संतयभोजी व होइ नायव्वो । पजर्च अरुमंतो, असंथडी छित्रमचो य ॥ ५८०७ ॥

संस्तृतो नाम पर्थातं भक्त-पानं रूममानः संदर्गरित, अथवा यः 'सन्ततमोजी' दिने दिने पर्योतमपर्थातं वा भुक्के स संस्तृतो ज्ञातस्यः । यस्तु पर्यातं भक्त-पानं न रूमते चतुर्यादिना 25 छिन्नमक्तो वा सोऽसंस्तृतः ॥ ५८०७ ॥ निर्विचिकित्सवदं स्थाख्याति—

> निस्संकमणुदिनोऽतिच्छितो व स्रो ति गेण्हती जो उ । उदित धरेते वि हु सो, लग्गति अविसुद्धपरिणामो ॥ ५८०८ ॥

१ पण्डीण ति' तामा॰ ॥ २ 'थनिरपन्ने प्राय' कां॰ ॥ ३ 'तः 'पंचिहिं गएहिं' ति विभक्तिस्त्रयात् पञ्चसु कां॰ ॥ ४ 'रच्चं हेरे, हितीयवारं चतुलेषुकादारच्यं मूले, दृतीयवारं चतुलेषुकादारच्यं मूले, दृतीयवारं चतुलेषुकादारच्यं अत्वर्षेयः सम्बन्धः सम्बन्धः स्वत्रप्रकादारच्यं मूले, हितीयवारं चतुर्युकादारच्यं मत्यः स्वत्रप्रकादारच्यं पारा' कां॰ ॥ ५ 'भोगी य हो' तामा॰ ॥ ६ 'रच्न निर्वहन आस्ते, अप्य' कां॰ ॥ २ 'रच्न निर्वहन आस्ते, अप्य' कां॰ ॥ २ 'रच्न निर्वहन आस्ते, अप्य' कां॰ ॥

निर्विचिक्तिस्तो नाम निःशङ्कमनुदितोऽतिकान्तो वा सूर्य इति मन्यते । एवं यो निःशङ्कि-तेन चेतसा गृह्णाते स यथाप उदिते 'श्रियमाणे वा' अनत्तामिते रवी गृह्णाति तथाप्यविशुद्ध-परिणामतया प्रायक्षित्रे रूगति ॥ ५८०८ ॥

> एमेव य उदिउ ति व, धरह ति व सोद्रप्रवगतं जस्स । स विवजए विसुद्धो, विसुद्धपरिणामसंज्ञतो ॥ ५८०९ ॥

प्रमेन यस्य 'मोर्ट' निःसन्तियं चिने उपगतम् — यहुतादित्य उदितः 'भ्रियते वा' नाषाप्यसमिति स यवपि 'विपर्यवे' विपर्यासज्ञाने वर्तते तथापि विशुद्धपरिणाम इति इत्या 'विशुद्धः' न मायश्विषी॥ ५८०९॥ अथ यहुक्तं सूत्रे — 'अह पुण एवं जाणेज्ञा—अणुमाए स्रिए अत्यमिए व'' ति तत्रोद्धनमनस्रमितं वा र्शवं चेतसि इत्या गृहीतं पश्चान् पुनर्ज्ञातं यथा—
10 अनुद्धतोऽस्त्रमितो वा; कथं पुनसद् ज्ञातम् हत्याह—

सिम-चित्रिणिमादीणं, पत्ता पुष्फा य णलिणिमादीणं । उदय-ऽत्थमणं रविणो, कहिंति विगसंत-मउलिता ॥ ५८१० ॥

शमी-विश्विणकादीनां तरूणां पत्राणि निल्नीमभुतीनां च पुष्पाणि विकसन्ति सन्ति रवेस्दयं कथयन्ति । एतान्येव युकुलयन्ति सन्ति रवेरस्तमयनं कथयन्ति ॥ ५८१० ॥ १५ कथं पुनरादित्य उदिनोऽस्तिमतो वा न दृश्यते ? इत्याह्—

अब्भ-हिम-वास-महिया-महागिरी-राहु-रेणु-रयछण्णो । मृढदिसस्स व बुद्धी, चंदे गेहे व तेमिरिए ॥ ५८११ ॥

अन्नसंस्कृत गगने, हिमिनकरे वा पतित, वर्षण वा महिकया वा पतस्या छादिते, महागिरिणा वा अन्तरिते, राहुणा वा सर्वेमहणेनोदया-इस्तमनयोगृहीते रेबी, रेणु:-करकममनापु20 रखाता पुलिः रजः-औत्पादिकं ताभ्यां वा छन्न उदितोऽस्तमितो वा रविने ज्ञायते। दिम्मृद्धो
वा कथिब्द अपरां दिणं पूर्वा मन्यते, स नीचमादित्यं विकोक्य 'उद्गतमात्र आदित्यः' इतिबुद्धा भक्त-पानं गृहीत्वा वसर्ति प्रविद्यो यावद् सक्तकावदन्यकारं जातम्, तत्तो जानाति—
अस्तिमितेऽहं सक्त हति। अथवा 'गोर्ट गृहाम्भणाजति दिवा युस्त, प्रदोषे चन्द्रे उदिते
विद्युद्धो विवरेण ज्योत्कां प्रविद्यां दृष्टा चिन्तयति— एप आदित्यात्यः प्रविद्याः म च तैमिरिको
23 मन्दं मन्दं परयति तत्तो गृहिणा निमम्नितो प्रकाः। एवनादित्यः भाग्यतः प्रविद्याद्वातं मन्येत
उदितं वाइनुदितम्, अस्तिमतम्यनसमितं अनस्तिनवयस्तितव्यस्तितम् ॥ ५८११ ॥ ततः—

सुत्तं पडुच गहिते, णातुं इहरा उ सो ण गेण्हंतो ।

जो पुणै गिण्हित णातुं, तस्सेगङ्गाणगं बहु ॥ ५८१२ ॥ यञ्जूतोऽनदामितो वा इतिबुज्या सूत्रं भतीत्य "उमायवित्तीए आएलमियसंकृष्णे" इति उठ सूत्रमामाण्येन गृहीतं पश्चाच ज्ञातम् 'अनुद्रतोऽस्तामितो वा रविः' ततो यद् मुखे यच्च पाणी यच्च मतिम्रद्रे तत् सर्वमणि व्युत्युत्रेत् । 'इत्तर्या' यदासी पूर्वमेगनुदितमस्त्रमितं वा अज्ञास्त् ततो नामहीष्यत् । यः पुत्रसुद्रतमस्त्रमितं वा ज्ञात्वा गृह्माति गृहीत्वा वा स्रेक्केऽन्येषां वा ददाति

१ रवी उदया-उस्तमने न क्रायेते। तथा रेणुः कं ा २ °ण भुंजइ णा ताया ।।

तसैकं स्थानकं वर्द्धयेत्, तं प्रतीत्व "तं ग्रंजमाणे अनेसि वा दरुमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुम्बाइयं" इत्युत्तरं सूत्रसण्डं वर्धयेदिति भावः ॥ ५८१२ ॥

अथ विवेचन-विशोधनपदे व्याचष्टे---

सम्बस्स छड्डण विगिचणा उ ग्रह-हत्थ-पादळूढस्स ।

फुसण घुवणा विसोहण, सिर्क व बहुसो व णाणचं ॥ ५८१३ ॥ 5 अनुदितमस्तमितं वा जाला यद् मुखे प्रक्षितं तस्य ज्ञाते सित खेळमळ्के यत् प्रक्षेपणम्, यज्ञ हत्ते-पाणौ तस्य प्रतिप्रदे, यत् पानै-प्रतिप्रदे तस्य खण्डिले, एवं सर्वस्थापि यत् परिष्ठापनं सा विवेचना। यत् तु "फुसणं" हस्तेनामर्शनं 'धावनं' कर्पकरणं सा विवेचना। स्वया 'सक्कर्' एकशः परिष्ठापन-स्पर्शन-धावनानां करणं विवेचना, प्रतेषामेव बहुताः करणं विवोगमम् । एतः विवेचन-विदोधनयोगीनात्वमुक्तम् ॥ ५८१३ ॥ 10

अथ "नो अइक्रमइ" ति पदं व्याख्याति-

नातिकमती आणं, धम्मं मेरं व रातिभत्तं वा। अत्तद्देगागी वा, सय भ्रंजे सेस देखा वी॥ ५८१४॥

एवं विविश्चन् विशोधयन् या तीर्यकृतामाज्ञां नातिकामति । अथवा श्रुत्तपर्मे चारित्र-मर्यादां रात्रिभक्तवतं वा नातिकामति । ''नं मुंजमाणे अन्नेसि वा दरुमाणे'' चि पद्वस्य 15 व्यास्थायते— ''अच्छें'' इत्यादि, 'आत्मार्थिकः' आत्मराभामाधि कारणे वा य एकाकी स स्वयं मुक्के नान्येषां ददाति । 'शेषः पुनैः' अनात्मराभी अनेकाकी वा स अन्येषामि दद्यात् स्वयमि भुजीत ॥ ५८१४ ॥

गतं प्रथमं संस्कृतनिर्विचिकित्सस्त्रत्रम्। अथ द्वितीयं संस्कृतविचिकित्सस्त्रत्रं व्यास्याति—
एवं वितिगिच्छो वी, दोहि लह् णविर ने तु तव-काले। 20
तस्स पूण हवंति लता, अह्न असद्वाण इतरातो ॥ ५८१५॥

विचिक्तसते—'िकं उदितो रविः! उत अनुदितः!' इत्यादि संवयं करोतीति विचिक्तस्तंः, सोऽप्येवमेव वक्तव्यः । नवरम्—यानि तस्य तपोऽर्हाणि प्रायश्चित्तानि तानि तपसा कालेन च लघुकानि । 'तस्य च' विचिक्तिसस्य पुनरगुद्धा एव केवला अष्टौ लता भवन्ति न 'इतराः' गुद्धाः, सङ्करुपस्य शङ्कितत्वेन प्रतिपक्षाभावात् ॥ ५८१५ ॥

कथं पुनरसी शङ्कां करोति ? इत्याह---

अशुदिय उदिओ किं तु हु, संकप्पो उभयहा अदिहे उ । घरति ण व चि व छरो, सो पुण नियमा चउण्हेको ॥ ५८१६ ॥ 'उभयथा' उदयकालेऽन्तमनकाले वा अभ-हिमादिभिः कारणैरदृष्टे व्यादिले सक्रल्पो भवति,

'उभयथा' उदयकालंऽस्तानकालं वा अभ-हिमाद्दाभः कारणरदृष्टं श्रादित्यं सङ्करमा भवात, किमनुदित उदितो वा रविः ? अस्तानकालंऽपि—सूर्यो प्रियते न वा ? इति राङ्का भवति । ३० स पुनः सूर्यो नियमादनुदित उदितोऽस्त्राभितोऽनस्त्राभितो वा ? इति चतुर्णौ विकल्यानामे-

१ °तः' आत्म° कं॰ ॥ २-३ संस्कृत° मा॰ ॥ ४ °त्सः, "अच्" (सिद्धद्दे० ५-१-४९) इत्यनेन अचुप्रत्ययः, सोऽप्ये° कं॰॥ ५ °नामेकैकसिन् प्रकारे वर्त्ततेन होषेषु। भक्षाः कं॰॥

कतरस्मित् वर्तते । भङ्गाः पुतरशेखमुषारणीयाः—उदयं मतीत्य विविकित्से मनःसङ्कर्णे सति विविकित्सितगवेषी विविकित्सितमाही विविकित्सितभोजी, एवगधे भङ्गाः; अस्त्रमनमपि मतीत्यैवमेवाधै भङ्गाः । द्वयोरप्यष्टमङ्गवोः प्रथमःद्वितीय-चतुर्या-उष्टमा भङ्गा घटमानकत्वाद् माखाः, शेषाश्चत्वारोऽप्राद्याः ॥ ५८१६ ॥ गतं द्वितीयं संस्तृतविचिकित्सस्रव्रम् । अथ ठत्तीयमसंस्तृतनिर्विचिकित्सद्वत्रं व्याविष्यासुराह—

तव-गेलन-ऽद्धाणे, तिविही तु अँसंथडी विहे तिविही । तवऽसंथड मीसस्सा, मासादारोवणा इणमी ॥ ५८१७ ॥

अंसंस्तृतो नाम षष्टा-ऽप्टमादिना तर्पसा क्कान्तो १ ग्लानत्वेन वाऽसमर्थो २ दीर्घोध्विन वा गण्छन् पर्यासं न रुभते ३, एव त्रिविभोऽसंस्तृतः । ''निव्हें तिविहो'' ति 'निहें' अध्विन 10 योऽसंस्तृतः स त्रिविभः, तष्टया—का्व्यवदेशेऽध्वमच्येऽध्येत्तरे च । तत्र तर्पोऽसंस्तृतस्य निर्मेषिकिस्सस्य मासादिका इयमारोपणा भवति । 'भीसस्य' ति मिश्रो नाम-विविक्तिस्य समापत्रक्रायोपणा कर्तस्या । सा चोत्तत्राभिगास्यते । इद्दापि पूर्वकमण षोडश लताः कर्तस्याः, कालित्यसं च प्रायक्षितं प्रायत् ॥ ५८१० ॥ द्रव्य-मावायश्वित्यरोस्त्यं विशेषः—तर्पोऽसंस्तृतो विकृष्टत्य-क्लान्तः पारणकेऽनुद्वतेऽस्तियते वा उदिता-ऽनस्तिमतबुच्या । उत्यक्त-पानीये युक्ताने यदाऽनुद्वतमस्तिमतं वा जानाति ततः परं युक्तानस्येदं प्रायक्षित्तय्

एक-दुग-तिण्णि मासा, चउमासा पंचमास छम्मामा । सन्वे वि होति लहुगा, एगुचरवड्डिया जेणं ॥ ५८१८ ॥

संलेखनारोपं यदि जाते अङ्के ततं एकंग्रासिकम् । पश्च कवलान् समुद्दिशति द्विगासिकम् । दश लम्बनान् समुद्दिशति त्रैमासिकम् । पश्चदश कवलान् अज्ञानस्य चतुर्भासिकम् । विंशतिं 20 अज्ञानस्य पश्चमासिकम् । अथ पश्च कवला विद्युद्धमानेन समुद्दिष्टाः रोषान् पश्चविंशतिकव-लान् ज्ञाते अङ्के ततः वाण्णासिकम् । एतानि सर्वाण्यपि लमुकानि प्रायक्षितानि अवन्ति । कुतः । दृत्याह—येन कारणेनैकोचसङ्ख्या द्विज्यादिकप्रया अमृनि वर्द्धितानि ॥ ५८१८ ॥ इदमेव अमिक्त—

दुविहा य होइ बुद्धी, सद्घाणे चेव होइ परठाणे।

सहाणिम्म उ गुरुसा, परठाणे लहुग गुरुसा वा ॥ ५८१९ ॥ द्विविधा व भवति वृद्धिः। तथथा—स्वस्थानवृद्धिः परस्थानवृद्धिः । स्वस्थानवृद्धिः परस्थानवृद्धिः । स्वस्थानवृद्धिः परस्थानवृद्धिः । स्वस्थानवृद्धिः । स्वस्थानविद्धिः । स्वस्यानविद्धिः । स्वस्यानविद्धिः । स्वस्यानविद्धिः । स्वस्यानविद्धिः । स्वस्यानविद्धिः । स्वस्यविद्धिः । स्वस्यविद्धिः । स्वस्यविद्धि

१-२ संस्कृत° भा•॥ ३ असंखडी ३०। असंघडी भा•॥ ४ °संखड ३०। 'संघड भा•॥ ५ असंस्कृतो भा•॥६ °संस्कृत° भा•॥ ७ °संस्कृतो मा•॥८ < ▷ एत्विक्षात-र्गतः पाठः भा• सं• एव वर्तते ॥

20

तत्र लघुकस्थानादारच्या लघुका गुरुकस्थानादारच्या गुरुका भवति । अत्र च मासलघुका-दारच्या अतः सर्वाण्यपि लघूनि द्रष्टय्यानि ॥ ५८१९ ॥

> भिक्तुस्स ततियगहणे, सङ्घाणं होइ दव्वनिष्फन्नं । भावम्मि उ पडिलोमं, गणि-आयरिए वि एमेव ॥ ५८२० ॥

मिक्षोद्वितीयबारं द्वेमासिकादारुषं छेदे तिष्ठति, तृतीयबारं महणे त्रेमासिकादारुषं ⁵ 'स्हस्थानं' मूरुं यावद् नेयम् । एवं द्वव्यनिष्पत्रं प्राथश्चित्तपुक्तम् । भावनिष्पत्रं पुनरेतदेव प्रतिकोमं मन्तव्यम्। गणिन आचार्थस्यापि द्वव्य-भावयोरुभयोरप्येवयेव प्रायश्चित्तम् । नवरम्— उपाच्यायस्य द्वेमासिकादारुकं त्रिभिवीरेतवस्थाप्ये, आचार्थस्य त्रैमासिकादारुकं त्रिभिवीरेः पाराश्चिकं पर्यवस्यति ॥ ५८२० ॥ गतस्यपेऽसंस्यतः। अथ स्कानासंस्यतमाह—

> एमेव य गेलके, पद्ववणा णवरि तत्थ भिण्णेणं । चउहि गहणेहिं सपदं, कास अगीतत्थ सुत्तं तु ॥ ५८२१ ॥

क्शानासंस्तृतस्थाप्येवमेव प्राथिश्वस् । नवरम्—तैत्र "भित्रेणं" ति भित्रमासात् प्रस्थापना कर्तव्या । प्रथमं वारं पश्चमासरुषुके, द्वितीयं पण्मासरुषुके, तृतीयं छेदे, चतुर्षे वारं मूरुं तिद्वति । अत एवाट्—'चतुर्भिग्नेरंगैं। अभीक्ष्णसेवाहरूपेः 'खपरं' मूरुं भिद्धुः प्राप्नोति । उपाप्यायसर रुषुनासादारुभं चतुर्भिगेरंत्वस्थाप्ये, आचार्यस्य द्विमासरुष्ठुकादारुभं चतुर्भिगेरंत्वस्थाप्ये, आचार्यस्य द्विमासरुष्ठुकादारुभं चतुर्भिगेरंत्वस्थाप्ये, अवार्यस्य द्विमासरुष्ठुकादारुभं चत्र्वासं राह्यस्य प्राप्तिके पर्यवस्यति । त्रिष्यः प्रच्छित—कस्यैतत् प्रायक्षित्तम् द्विस्तराह—यद् उक्तं यच्च वस्यमाणम् एतत् सर्वमागीतार्थस्य स्त्रं भवति, प्रस्तुतस्त्रोक्तं मायश्चित्तित्यर्थः । स हि कार्यमकार्ये वा यतनामयत्वां वा न जीनाति अतस्तस्य प्रायक्षित्तम् ॥ ५८२१ ॥

गतो म्लानासंस्तृतः । अथाध्वासंस्तृतमाह---

अद्धाणासंथडिए, पवेस मज्झे तहेव उत्तिण्णे । मज्झिम्मि दसगबुद्धी, पवेस उत्तिण्णि पणएणं ॥ ५८२२ ॥

'अध्विन' मार्गे योर्डसंस्ततः स त्रिविधः । तद्यथा — अध्वतः प्रवेशे मध्ये उत्तरे च । तत्र प्रथमं मध्ये भाव्यते — भिक्षोः संलेखनादिषु षद्यु स्थानेषु दशरात्रिन्दिवमादो कृत्वा प्रायश्चितः इद्धिः कर्तव्या, उपाध्यायस्य पश्चदशरात्रिन्दिवादिकम्, आचार्यस्य विंशतिरात्रिन्दिवादिकं प्रायश्चित्यम् । अषे एतदेव प्रतिलेशेमं वक्तव्यम् । अथ मचेशे उत्तरणे च भण्यते — "पवेस २० उत्तिष्ण पणप्पं" ति प्रवेशे तथा उत्तरणपुत्तीर्णं तत्र च पश्चकेन स्थापना कियते, संलेख-नादिषु पद्यु पद्यु पश्चप्रतिन्दिवात्यादी कृत्वा मासल्युकं यावद् नेतव्यसिति भावः । तथा उभयोरिष अष्टभिवंशिकुं माम्रोति, उपाध्यायस्य दशरात्रिन्दिवादिकमध्यवारायामनवस्थाप्यम्,

र 'संस्कृत' भाग ॥ २ 'तत्र' ग्ळानासंस्तृते 'भिष्नेणं' ति विभक्तिव्यत्ययाद् भिष्न-मासात् प्रस्थापना कर्सव्या। ततस्य प्रथमं वारं भिष्नमासादारच्यं पञ्चमासागुरुके, द्वितीयं वारं छघुमासादारच्यं पप्मासाळघुके, तृतीयं वारं द्वेमासिकादारच्यं केदे, चतुर्यं वारं हेन्स्तिकादारच्यं मूळे सिद्यति। अत कांग॥ ३ जानीते अत्र भाग डेग्॥ ४ 'संस्कृत' भाग॥ ५ 'संसंस्कृतः भाग॥ **काचार्यस्य पञ्चदशरात्रिन्दिवादिकं पाराञ्चिकान्तम् । भावे एतदेव प्रतिलोमं प्रायश्चित्तम् ।**

शिष्यः पृच्छति—अध्वासंस्तृतो मध्ये क्षिप्रमेव सपदं प्रापितः प्रवेरो उत्तरणे च विरेण तदेतत् कथम् ! अत्रोच्यते—अध्वनः प्रवेरो भयषुत्यस्ते 'कथमध्यानं निस्तरिष्यामि !' उत्तरणे-ऽपि बुगुक्षा-तृपादिभिरत्यन्तं क्वान्तः, अत एतो विरेण सपदं प्रापितो, अध्वमध्ये पुनर्जितभयो ठमातिक्वान्त्र अतः शीमं सपदं प्रापितः । अत्रैकैकस्मित् पदं आज्ञादयो रात्रिभोजनदोषाश्च । अमीतार्थस्य वैतन्मन्तव्यम्, न गीतार्थस्य ॥ ५८२२ ॥ कृतः ! इति चेद् उच्यते—

उग्गयमणुग्गते वा, गीतत्थो कारणे णऽतिकमति ।

द्ताऽऽहिंड विहासी, ते वि य होती सपडिवक्सा ॥ ५८२३ ॥
गीतार्थः अञ्चनवेशारी कारणे उराले उठतेऽगुद्रते वा सूर्ये यतनयाऽरक्तोऽद्विष्टो अञ्चानो
१० भगवतामाञ्चं पर्वे वा मातिकामति । ते चाध्यमितपाक्षिविधाः—द्रवन्त आहिण्डका विहासिणश्च । तत्र द्रवन्तः—प्रामानुमामं गच्छन्तः, आहिण्डकाः—सततपरिक्रमणशीलाः, विहासिणः—

मासं मासेन विहरन्तः । तेऽपि प्रत्येकं समतिपक्षाः ॥ ५८२३ ॥ तद्यथा---दृहजंता दुविधा, णिकारणिमा तहेव कारणिमा । असिवादी कारणिता, चके थुमाईता इतरे ॥ ५८२४ ॥

15

30

उवदेस अणुवदेसा, दुविहा आहिंडगा मुणेयव्या । विहरता वि य दुविधा, गच्छगता निग्गता चेव ॥ ५८२५ ॥

द्वन्तो द्विविधाः—निष्कारणिकाः कारणिकाश्च । तत्राशिवाः उदमोदयं-राजद्विद्यादिनिः कारणैः, उपधेर्लेगस्य वा निमित्तं, गच्छस्य वा बहुगुणतरमिति कृत्वा, आचार्योदीनां वा आगादे कारणै दे द्ववित ते कारणिकाः। ये पुनरुत्तरापयं धर्मचर्कः मयुरायां देवनिर्मितस्तप् 20 आदिशस्तात् कोस्वारायां जीवन्तवामित्रतियां तीर्यकृतां वा जन्मादिस्मय एवमादिदर्शनार्थं दर्वनित्रालकाः।॥ ५८२२॥

आहिण्डका अपि द्विमा—उपदेशाहिण्डका अनुपदेशाहिण्डकाथ । तत्र ये सुत्रा-ऽभीं
गृहीत्वा भविष्यदाचार्यो गुरूणाद्वुपदेशेन विषया-ऽऽचार-भागोपकम्भनिमित्तमाहिण्डनते ते
उपदेशाहिण्डकाः, ये तु कोनुकेन देशदर्शनं कुर्वन्ति तेऽनुपदेशाहिण्डकाः । विहरन्तोऽपि
शाहिष्याः— गच्छाना गच्छिनिर्गताथ । तत्र 'गच्छगताः' गच्छवासिनः ऋतुबद्धे मासं मासेन
विहरनित । गच्छिनिर्गता द्विषयाः— विधिनिर्गता अविधिनिर्गताथ । विधिनिर्गताश्च विकासिक्षा स्थावन्दिकाः गुद्धपारिहारिकाश्चेति । अविधिनिर्गताः सारणाविभास्त्वाविता एकाकीमुताः ॥ ५८२५ ॥

एतेषां भेदानामिमेऽनुदिता-ऽस्तमितयोः प्रायश्चिते लगन्ति—

निकारणिगाऽणुवदेसिंगा य लग्गंतऽणुदिय अत्थमिते । गच्छा विणिग्गता वि हु, लग्गे जति ते करेक्षेवं ॥ ५८२६ ॥

१ °संस्कृतो भा० ॥ २ वा, उपलक्षणत्वाद् अस्तमितेऽनस्तमिते वा सूर्ये ढां० ॥ ३ °बा समासेणं। विद्व° तथा० ॥ ४ °वन्ति ते इतरे मन्तव्याः । इतरे नाम-निक्का° कां० ॥

25

निष्कारणिका द्रवन्तो अनुपदेशाहिण्डका अविधिनिर्गताश्चानुदितेऽस्तिमिते वा यदि गृहिन्त भुक्कते वा ततः पूर्वोक्तशायश्चिते रुगन्ति । ये तु कारणिका द्रवन्त उपदेशाहिण्डका गच्छगताश्च ते कारणे यतनया गृह्वाना भुक्कानाश्च गुद्धाः । ये तु गच्छनिर्गता जिनकल्पिकादसस्तेऽपि यथेवमनुदितेऽस्तमिते वा प्रहणं कुर्युस्ततो रुगन्ति परं ते नियमात् तदानीं न गृहिन्त, त्रिकाछविषयज्ञानसम्पत्रस्वात् ॥ ५८९६ ॥

अहवा तेसिं ततियं, अप्पत्तो अणुदितो भवे सरो । पत्तो तु पच्छिमं पोरिसिं च अत्थंगतो होति ॥ ५८२७ ॥

अथवाशब्दः प्रकारान्तरवाची । 'तेषां' जिनकल्पिकादीनां तृतीयां पौरुषीमप्राप्तः सूर्योऽनु-दितो भण्यते, पश्चिमां च पौरुषीं प्राप्तोऽसङ्गत उच्यते । अत एव भक्तं पन्याश्च तेषां तृतीय-पौरुष्यामेव भवति नान्यथा ॥ ५८२७ ॥

गतमसंस्तृतिविधिकत्सस्त्रम् । अथासंस्तृतिविधिकत्सस्त्रं व्याविधे— वितिगिच्छ अन्भेंसंथह, सत्यो उ पहावितो भवे तुरियं । अणुकंपयाएँ कोई, भत्तेण निमंतणं कुजा ॥ ५८२८ ॥

अश्रसंस्तृत-हिमानीसम्पातादिभिरदृश्यमाने सूर्ये विचिकित्सा भवति । ते च साधवः सार्थेन अध्वानं प्रतिपत्नाः, अन्तरा चाऽभिमुत्तोऽपरः सार्थ आगतः, द्वावप्येकस्थाने आवासितौ, 15 अभिमुत्तागन्तुकसार्थिकश्च कोऽप्यनुक्तपया साधूनां भक्तन निमन्नणं कुर्योत्, यस्त्रिश्च सार्थे साधवः स चिलतः अतः सूर्योदयवेकायामुदितोऽनुदिन इति शक्क्षया गृहीयुः । इहापि त्रिवि-धेऽसंस्तृते तथेवाष्टी खताः । नवरम्—असंस्तृते निर्विचिकित्से तपःप्रायश्चित्तानुभयगुरुकाणि, असंस्तृते विचिकित्से पुरुष्टि । इति ।

॥ संस्तृत-निर्विचिकित्सप्रकृतं समाप्तम् ॥

उद्गरंश कुत मू

सूत्रम्---

इह स्रत्नु निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा रातो वा वियाले वा सपाणे सभोयणे उग्गाले आगच्छेजा, तं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ। तं उग्गिलित्ता पचोगिलमाणे राईमोयणपिडसेव-णप्पत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणु-ग्याइयं १०॥

१-२ °संस्कृत° मा॰ ॥ ३ व्यास्याति को॰ ॥ ४ °संखड के॰ । °संघड मा॰ ॥ ५ °संस्कृत° मा॰ ॥ ६-७ °संस्कृते मा॰ ॥ ८ असंबिचि° को॰ विता ॥

अस्य सम्बन्धमाह----

निसिमीयणं तु पगतं, असंधरंती बहुं च भीचूणं । उग्गालग्रनिलिजा, कालपमाणा व दव्वं तु ॥ ५८२९ ॥

निश्चिमोजनं पूर्वसूत्रं पक्रतम्, इहापि तदेवाभिषीयते । यद्वाऽसंखरत् 'बहु' पम्रतं सुक्वा क रजन्याषुद्वारमागतसुद्रित्नेत् तन्त्रिवधार्थमिदं सूत्रन् । अथवा काल्यमाणमनन्तरसूत्रे उक्तम्, इह तु काल्यमाणादनन्तरं द्रव्यपमाणसुच्यते ॥ ५८२९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—'इह' अस्मिन् मौनीन्द्रे प्रवचने ग्रामादौ वा वर्तमा-नस्य 'स्रञ्जः' वाक्याख्क्कारे निर्मन्थस्य वा निर्मन्थया वा रात्रौ वा विकाले वा सह पानेन सपानः सह भोजनेन सभोजन उद्गार आगच्छेत् । किसुक्तं भवति ?—सिक्यविरिहेतमेर्कः 10 पानीययुद्गरिण सहागच्छिति, कृरसिक्यं वा केवलमागच्छिति, कदाचिदुमयं वा । 'तम्' उद्गारं 'विविक्षम् वा' सकृत् परित्यजन् 'विद्योधयन् वा' बहुशः परित्यजन् नो आजामतिकामति । तमुद्गरीर्थ 'प्रत्यवगिन्दन्' स्पोऽप्यास्यादयन् आपवते चातुभीसिकं परिहारस्थानं अनुद्धातिकम् । एष सुत्रार्थः ॥ सम्प्रति निर्विक्तिविक्तराः—

उद्दरे विमेत्ता, आतिअणे पणगवृद्धि जा तीसा ।

> गणि आयरिए सपदं, एगग्गहणे वि गुरुग आणादी । मिच्छत्तऽमचबदुए, विराहणा तस्स वऽण्णस्स ॥ ५८३१ ॥

गणी-उपाध्यायसम्य चतुर्गुरुकादाग्व्यं स्वयदमनस्थाप्यं यावद् नेयम्। आचार्यस्य षद्25 लघुकादार्क्यं स्वयदं पाराधिकं यावद् द्रष्टव्यम्। एवं दिवसत उक्तम्। रात्रो तु यथेकमपि
सिक्यं 'गृह्वाति' प्रत्यादपं ततश्वतुर्गुरु आज्ञादयश्चदोषाः। मिष्यास्यं चासावन्येषां जनवति—
यथा वादिनस्त्रथा कारिणो न सन्त्यमी इति। राजा वा तं ज्ञाला भिक्षादीनां प्रतिषेषं कुर्वाद्,
भा वा कोऽप्यमीषां मध्ये प्रमाजीन्' इति वारयेत्, असारं च प्रवचनं मन्येत, अस्तिसरजक्त अप्यमीपिवान्तमापिवार्जिता इति। 'तस्य वा' वान्ताशिनः 'अन्यस्य वा' तं पद्यतो
30 विराषणा भवति। अन्नामास्यबुद्कष्टणन्तः—

एगो रंकवडुतो संखडीए मजियाकूरं अइप्यमाणं जिमितो । निम्मयस्स य रायमम्माने-गाढस्स हिययमुच्छक्षं । अमचपासायस्स हिट्टा विमेउमारद्धो, अमचेण य वायायणद्विपण दिह्यो ।

१ एतदनन्तरं ग्रन्थाग्रम्—६००० कां ।।।

15

25

30

स्ते व विभिन्ना तमाहारमिवणहं पासिचा छोमेण झुंजिडमारहो । तं दहूण अमबस्त अंगाणि उद्धासियाहं, उर्द्ध च जातं । अमबो दिणे दिणे जेमणवेखणः समुद्धिसतो संभरेचा उर्द्ध करेह । एवं तस्स वग्गुली बाही जातो, तओ मओ । सो वि घिज्ञाईओ एवमेव विणहो । जन्हा एते दोसा तन्हा पमाणपर्च मोचन्त्रं ॥ ॥ ५८२१ ॥

> एवं तात्र दिवसतो, रातो सित्थे वि चउगुरू होंति । उद्दरगहणा पुण, अववाते कप्पए ओमे ॥ ५८३२ ॥

प्वं तावत् कवरुपञ्चकागर्ते। इत्वा पञ्चकरुष्टा चतुर्रुधुकादिकं प्रायक्षिणं दिवसत उक्तस्। रात्राचेकसिक्यस्यापि म्रहणे चतुर्युरवो भवन्ति। यच नियुक्तिगाधायागपुर्द्वदरमहणं इतं तदेवं ज्ञापयति — अपवादपदे अवसे प्रस्वविकतमपि करूपते॥ '५८३२॥ अत्र शिष्यः माह्---

> रातो व दिवसतो वा, उग्गाले कत्थ संभवो होजा। गिरिजण्णसंखडीए, अड्राहिय तोसलीए वा॥ ५८३३॥

रात्री वा दिवसतो वा कुत्रोद्वारस्य सम्मवो भवेत् ? । स्रिराह—गिरियज्ञादिषु सङ्खर्डाषु तोसल्गिविषये वा अष्टाहिकादिमहिमासु प्रमाणातिरिक्तं कुक्तानामुद्रारः सम्मवति ॥५८३ २॥

तत्र पायश्चितमभिषित्सुः प्रस्तावनार्थं तावदिदमाह—

अद्धाणे वत्थव्वा, पत्तमपत्ता य जोअण दुगे य । पत्ता य संखर्डि जे. जतणमजतणाएँ ते दविहा ॥ ५८३४ ॥

ते सङ्क्षडीमोजिनः साधवो द्विविधाः — अध्वयतिपन्ना वार्षाव्याश्च । तत्र ये वास्तव्यास्ते द्विविधाः — सङ्क्षड्याः मेक्षिणोऽमेक्षिणश्च । अध्वयतिपन्ना अपि द्विधाः — तत्रेव गन्दुकामा अन्यत्र वा गन्दुकामाः । येऽन्यत्र गन्दुकामाः द्विधाः — मास्यिका व्याप्तस्यिकाश्च । प्राप्तस्य वा गन्दुकामाः । योऽन्यत्र गन्दुकामाः सङ्क्षडीमिष्यार्थं अध्योजनादाग्वज्ञति । अपाप्त-20 स्पिका नाम-ये योजनाद् योजनद्व योजनद्व वावस्य उपवस्य व्याप्त द्वादशयोजनेत्र्यः सङ्कृष्ठी-तिमित्तवागताः । ये तत्रेव गन्दुकामाः सङ्कृष्ठीमिष्तपानातः । ये तत्रेव गन्दुकामाः सङ्कृष्ठीम् प्राप्तास्ते 'द्विविधाः' द्विभन्नाराः — यतनानामा अयतनामासाः ॥ ये पदमेदमकुर्वन्तः स्वार्थोग्वरुष्ये विदयाना आगतास्ते यतनामासः । ये पदमेदमकुर्वन्तः स्वार्थोग्वरुष्ये विदयाना आगतास्ते यतनामासः य व सङ्कृष्ठी

वत्थव्त्र जतणपत्ता, एगगमा दो वि होंति षेयव्ता। अजयण वत्थव्ता वि य. संखडिपेही उ एक्गमा॥ ५८३५॥

तत्र ये वास्तन्याः सङ्काञ्चपछोकिनो ये च तत्रैत गन्तुकामा यतनायाप्ताः एते द्वयेऽपि प्रायश्चित्तवारणिकायामेकगमा भवन्ति ज्ञातन्याः । ये तु तत्रैत गन्तुकामा अयतनाप्राप्ताः ये च वास्तन्याः सङ्काडीप्रकोकिनः एते द्वयेऽपि चारणिकायामेकगमा भवन्ति ॥ ५८३५ ॥

"पत्ता य सङ्क्षिं जे" (गा० ५८३४) इति पदं व्याख्याति —

तत्वेव गंतुकामा, बोलेउमणा व तं उवरिएण्ं। पदमेद् अजयणाए, पढिच्छ उन्यत्त सुतमंगे॥ ५८३६॥ यत्र मामे सङ्काडिजनेव ये गन्तुकामाः ये वा तत्त्व मामस्योपिर बोळियिदाननसत्ते बदि इ॰ १९४ समावगतेः पदमेदं कुर्वन्ति, एकद्यादीनि वा दिनानि प्रतीक्षन्ते, अवेकायासुद्धतंन्ते वा, सूत्रार्वपीरुषीरुषेत्र वा प्राप्ता भवन्ति तदाऽयतनापाप्ताः । इतरथा यतनापापाः ॥ ५८३६ ॥ भाषमुमिकान अपाप्तमुमिकांश्च व्याख्याति—

संखडिमभिषारंता, दुगाउया पत्तभूमिगा होति ।

जीयणमाई अप्पत्तभूमिया बारस उ जाव ॥ ५८३७ ॥

सङ्घाडिमामपार्धतो ये गन्तुकामास्ते यदि सङ्घाडीमभिषाँचे गन्त्युतद्वयादागच्छन्ति तदा प्राप्त-मृमिका भवन्ति । ये पुनर्योजनाद् योजनद्वयाद् यावद् द्वादशयोजनेभ्य आगच्छन्ति ते सैर्वेऽप्राप्तम्मिकाः॥ ५८३७॥ ³

खेत्तंतों खेत्तबहिया, अप्पत्ता बाहि जीयण दुगे य !

10 चत्तारि अद्र बारसऽजग्ग सुत्र विगिचणाऽऽदियणा ॥ ५८३८ ॥

सङ्कर्डी श्रुत्या क्षेत्रान्तः क्षेत्रविद्या आगच्छेष्ठः । ये क्षेत्रान्तः सार्धकोष्ठाद्वयादागच्छिन्त ते प्राप्तभूमिकाः । ये पुनः क्षेत्रविद्यः योजनाद् योजनद्वयात् चतुर्योजनाद्वयोजनादागच्छिन्त तेऽशासभूमिकाः । एते सर्वेऽणि सङ्कल्ल्यानिमात्रं भुक्तवा प्रदोषे न्य ''ज्ञॅग' एत ककारमक्षेपाद् -- न जाप्रति, ''युव'' नि वेशिवककारुवेद्यायामि 'स्वपन्ति' 16 नेशिवन्ते, ''विर्गिचण'' नि उद्गारमुद्रीयं परिस्वजन्ति, ''आइचण' नि तमेव 'आपिबन्ति' मस्वपिक्ति ॥ ५८३८ ॥ एतेषु चतुर्यं एरेषु इयमारीपणा—

वत्थन्व जयणपत्ता, सुद्धा पणगं च भिष्णमासो य ।

तव-कालेहिँ विसिद्धा, अजतणमादी वि उ विसिद्धा ॥ ५८३९ ॥

सङ्क्रव्यप्रकोकिनो वास्तस्या यतनया प्राप्ताध्यागन्तुकाः सङ्कृष्ट्यां यावद् द्रवं सुत्वा प्रादो20 षिकी पोरुषीं न कुर्वन्ति 'मा न जरिप्यति' इति क्रत्या तत आचार्यानापुच्छ्य स्वपन्तः शुद्धाः ।
त एव यदि वैरात्रिकं स्वाध्यायं न कुर्वन्ति तदा प्रखरात्रिन्दिवानि तपोछपूनि कारुगुरूणि ।
अधोद्वार आगतस्तं च यदि विविद्यन्ति ततो भिन्नमासस्तपोगुरुः कारुरुष्टुः । अध्य तसुद्धारमाधिवन्ति ततो मासरुषु तपसा कारेन च गुरुकम्ं । येऽयतनाप्राप्ता ये च वास्तस्याः सङ्कृष्टिप्रकोकिनः एते हुरेऽपि सङ्कृष्ट्यां सुक्तवा प्रादेषिकं स्वाध्यायं न कुर्वन्ति मासरुषु द्वाभ्यामपि

25 रुषुकम् । वैरात्रिकं साध्यायं न कुर्वन्ति मासरुषु कारुगुरुकम् । उद्वारमागतं परिस्वजन्ति मासरुषु
तपोगुरुकम् । उद्वारं प्रस्वविग्वन्ति मासरुषु तपसा कारेन च गुरुकम् ॥५८३९॥अत एवाहः—

तिसु लहुओ गुरु एगी, तीसु य गुरुओ उ चउलहू अंते।

र 'धार्य द्विगव्यूतादाग' मा॰ कां॰ ॥ २ सर्वेऽपि अप्रा' भा॰ ॥ ३ इरमेव सिवशेषमाह इखनतर्ण कां॰ ॥ ४ ४ ा० एविव्हान्तर्गतः पाटः कां॰ एव वतंते ॥ ५ 'मू । एवं तपः-कालाभ्यां विशिष्टानि पञ्चकारीनि भाषिक्वानि यथाकमं मन्तव्यानि । "अजयणमाई वि उ' क्ति येऽपति कां॰ ॥ ६ 'म् । अत एवाह—"विसिद्धे' त्ति 'पते' मासलपु-मासगुरुलक्षणे प्राथिक्वेत तपा-कालाभ्यां विशिष्टे कत्त्रं यो ५८३९ ॥ अनन्तरोक्तमेव प्राथिक्वत्तं समर्थ- यक्तीमनं व मतिपादयक्षाह्न—तिस्त कां॰ ॥ ५८३९ ॥ अनन्तरोक्तमेव प्राथिक्वत्तं समर्थ-

तिसु चउलहुगा चउगुरु, तिसु चउगुरु छक्कहू अंते ॥ ५८४० ॥ तिसु छक्कहुगा छग्गुरु, तिसु छग्गुरुगा व अंतिमे छेदो । छेदादी पारंची. बारसगादीस त चउकं ॥ ५८४१ ॥

'त्रिषु स्वानेषु' मादोषिकलाध्याय-वैरातिकाकरणोद्वारिविवेचनरूपेषु लघुको मासः, 'एक-स्मिन्' चतुर्षे प्रत्यविगलनाएंगे स्वाने मासगुरु । येऽन्यत्र गन्तुकामाः प्राप्तपूमिकाः सङ्क्षडि- विदेशीजनादागतास्त्रेषं प्रादोषिकलाध्यायाकरणादिषु त्रिषु स्वानेषु मासगुरु, अन्त्यस्वाने चतुर्लेषु । येऽप्राप्तपूमिकाः सङ्क्षडिनिमित्तं योजनादागतास्त्रेषां प्रादोषिकादिषु त्रिषु पदेषु चतुर्लेषु अन्त्यपदे चतुर्लेषु अन्त्यपदे चतुर्लेषु । येऽप्राप्तपूमिकाः सङ्क्षडिनिमित्तं योजनादागतास्त्रेषामादिपदेषु त्रिषु चतुर्णुरु, अन्त्यपदे चतुर्लेषु । येऽप्रत्यो

ये योजनचतुष्टयादागतास्तेषां त्रिष्वायपदेषु पड्लेषु, अन्तयपदे पहुरु । ये योजनाष्टकादा-10 गतास्तेषां त्रिषु पहुरु, अन्त्यपदे च्छेदः । ये द्वादशयोजनादागतास्ते प्रादोषिकं स्वाध्यायं न कुर्वेन्ति च्छेदः, आदिशब्दाद् वैरात्रिकमकुर्वेतां मूल्रम्, उद्गारं विविध्वतामनवस्थाप्यम्, प्रत्या-पिवतां पाराधिकम् । ''बारसगादीसु य चउकं'' ति प्रतीपकमेण यानि द्वादशयोजन-प्रमृतीनि स्थानानि तेषु सर्वेज्वपे प्रत्येकं प्रत्येकं प्रादोषिकादिचतुष्कं मन्तव्यम् । चतुष्वेपि पदेषु व्योहणि प्रायध्वितानि प्राम्वत् तपः-कालविशेषितानि कर्तव्यानि ॥ ५८४१ ॥ 10

-अस्यैवार्थस्य सुखावबोधार्थमिमां प्रस्ताररचनामाह—

खेत्तंतों खेत्तवहिया, अप्पत्ता बाहि जीयण दुगे य ।

चत्तारि अट्ट बारसऽजग्ग सुन विगिचणाऽऽदियणा॥ ५८४२॥ इहोर्द्धाधःक्रमेणाष्टो गृहाणि स्थापनीयानि, तिर्यक् पुनश्चतारि, एवं द्वात्रिशद् गृहकाणि कर्तन्यानि । प्रथमगृहाष्टकपक्क्यामघोऽध एतेऽष्टो पुरुषविभागा लेखितन्याः—ये तत्रैव गन्दु-२२ कामा यतनाप्राप्ता ये च बास्तन्या यतनाकारिण एष एकः पुरुषविभागः १ । ये तु तत्रैव गन्दुक्तामा एवायतनया प्राप्ता बास्तन्याश्चायतनाकारिण एष द्वितीयः २ । ये तु अन्यत्र गन्दुक्तमासा खायतन्या प्राप्ता वास्तन्याश्चायतनाकारिण एष द्वितीयः २ । ये तु अन्यत्र गन्दुक्तमासा क्षेत्रानः क्षेत्रबहित्तं जगता मेरेयुः । ये क्षेत्रानत्ते प्राप्तमुक्तिका उच्यन्ते, एष सुतीयः ३ । ये तु क्षेत्रबहित्तं जगतास्तृतिका उच्यन्ते, ते च योजनादागताः स एष चतुर्थः पुरुषविभागः १ । योजनद्वयादागताः पद्मनः ५ । चतुर्योजनादागताः वहः ६ । अष्टयोजना-२३ द्यायातः सप्तमः ७ । द्वादशयोजनादागता अष्टमः ८ । उपरितनितिर्थगयातचतुष्क्रक्क्क्रा उपरिक्रमणामी चलारो विभागा लेखितन्यः—पद्विष्ठान्यारणं १ वैराविक्रखास्यायवेकायां स्वपनम् २ उद्वारविवेचनम् ६ उद्वारम्यविक्रम् १ ॥ ५८४२॥

आदिमचतुष्कपक्क्यां द्वितीयगृहादम्लि प्रायक्षिचानि क्रमेण स्वापयितव्यांनि— पणगं च मिण्णमासो, सासो लहुओ उ पदमतो सुद्धो । मासो तब-कालगुरू, दोहि वि लहुओ अ गुरुओ च ॥ ५८४३ ॥

१ येऽयतनाप्राप्तास्तत्रेव गन्तुकामा ये च सङ्क्षद्विमेक्षिणो वास्तव्यास्तेषां 'त्रिषु स्थानेषु' कां ॥ २ °व्यानि । कानि पुनस्तानि ? इत्यत साह—पणगं कां ॥

लहुओ गुरुओ मासो, चउरो लहुगा य होंति गुरुगा य । छम्मासा लहु-गुरुगा, छेदो मूर्ल तह दुगं च ॥ ५८४४ ॥

द्वितीयगृहे पश्चकम्, नृतीयगृहे भिन्ननासः, चतुर्थे मासलन् । 'प्रथमगृहे शुद्धः, चतुर्थे द्व पदे मासः तपसा कालेन च गुरुकः । यत्र चादिपदेऽपि प्रायक्षित्तं भवति तत्र द्वाष्ट्यामपि ८ स्थुकम्, मध्यपदयोर्द्वगोरपि यथासञ्चनं तपमा कालेन च गुरुकम् ॥ ५८१२ ॥

द्वितीयादिचर्तुष् गृहपद्भयः सर्वा असुना प्रायश्चितेन प्रयितव्याः-

द्वितीयस्यां पक्को त्रिषु गृहेषु रुष्ट्यासः, चतुर्थे गुरुमासः। तृतीयस्यां त्रिषु गुरुमासः, चतुर्थे चतुर्रुषु । चतुर्था त्रिषु चतुर्रुषु, चतुर्थे चतुर्गुरु । पश्चम्यां त्रिषु चतुर्गुरु, चतुर्थे पड्रुषु, पष्ट्यां त्रिषु पड्रुषु, चतुर्थे पहुरु । सप्तम्यां त्रिषु पहुरु, चतुर्थे हेदः । अष्टम्यां पक्को चतुर्षु १० गृहेषु च्छेद-मूल-उनवस्याप्य-गराधिकालि ॥ ५८९४ ॥ तथा चाह —

> जह भणिय चउत्थस्स य, तह इयरस्स पढमे सुवेयव्वं । पत्ताण होइ भतणा, जे जतणा जं तु बत्यव्वे ॥ ५८४५ ॥

यथा पूर्वस्यां पक्की चलुर्थे स्थाने भणितम् , गाथायां सप्तम्यर्थे षष्ठी, तथा 'इतस्याः' अमेतन्याः पक्केः प्रथमेषु त्रिषु स्थानेषु प्राथिश्वचं ज्ञातन्यम् , अन्त्यपदे पुनस्ततोऽमेतनम् । यथा—
15 यतनापामा वेऽध्यप्तपता ये च वास्तत्या यतनाकारिणः तेषां चतुर्थे स्थाने मासरुषुरूपं
'यतु' वत पुनः प्राथिश्वचपुकं तदेव तेषाभेवायतनायाथेषु त्रिषु स्थानेषु भवति, अन्त्यपदे
तु मासपुरुकमिति । एवं प्राप्तमूमिकादिश्वपि 'भजना' प्राथिश्वचन्वना विशेषा । नवरम्—
अन्त्यपक्कां छेद-मूख-जनवस्थाप्य-पारिश्विकाति भवन्ति ॥ ५८९७ ॥

एएण सुत्त न गतं, सुत्तनिवाते इमे तु आदेसा । लोही अ ओम पुण्णा, केइ पमाणं इमं बेंति ॥ ५८४६ ॥

एतत् सर्वमि मसङ्गती विनेशानुमहार्थगुक्तम्, नेतेन सूत्रं गतम् । यत्र च सूत्रस्य निवाती सबति तत्रामी आदेशा भवन्ति—''लोही अ ओम पुण्ण'' ति गुरुभणिति—पुणकारिसाड् अवमं भोक्तव्यं यथोद्वारो नागच्छति । तथा चात्र लोही—कवाडी तद्द्रधान्तः—

यथा कवश्यां यद्ययमं स्वामाणाद्नमाद्रघते ततोऽन्तरन्तः उद्वरीते, उपरिमुखं न निर्म-25 च्छति; अय 'पूर्णा' आकण्ठं भृता तत उद्वर्तिता सर्वमणि परित्यवति, अग्निमणि विस्वापयति । प्रमेव यद्ययमाद्रियते ततो वातः शरीरान्तः सुखेनैव मविचरति, मविचरिते च तस्त्रिश्चुद्रारी नायाति; अथातिमात्रं ससुद्दिश्यते ततोऽन्तर्वायुपूरपेरित उद्गार आगच्छति ॥

तसादवममेव भोक्तव्यम् । केचित् पुनराचार्यदेक्याः 'इदं' वश्यमाणं प्रमाणं मुवते तत्रा-नन्तरोक्तं कवस्त्रीदृष्टान्तं मावयति ॥ ५८४६ ॥

अतिश्वते उग्गाली, तेणीमं श्वंत जण्ण उग्गिलसि ।

१ °तुष्कगृह' मा॰ को॰ ॥ २ °म् । गाधायाम् "इयरस्स" ति पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृत-त्वात्। अन्त्यं को॰ ॥ ३ °न्ति । इह पङ्कीनां स्थापना स्वयमेवानन्तरप्रदर्शितनीस्था कतेच्या ॥ ५८४५ ॥ यूरण को॰ ॥ ४ ंटछति, जटराज्ञिबिध्वापनं च समुपक्रायते । तस्मर° को॰ ॥

छिड्डिजिति अतिपुण्णा, तत्ता लोही ण पुण जोमा ॥ ५८४७ ॥
गतार्था ॥ ५८४७ ॥ नैगमपक्षात्रिताः पुनराचार्यदेशीयाँ इत्यं बदन्ति—
तचऽस्यमिते गंधे, गलग पिडगते तहा अणाणीए ।
एते ण होति दोण्णि वि, ब्रह्णिग्मतं णातुमोगिलणा ॥ ५८४८ ॥
एको नैगमपक्षात्रितो मणति—तसे कविक्षे बिन्दुः पिततो यथा तत्स्रणादेव नस्यति तथा १
यद् अक्तमात्रं जीर्थति हेहसम्बगमाहरणीयम् । एवमपरः—अस्त्रमिते रंशे यद् वीर्यते ।
तृतीयः—गन्वेन रहितः सहितो वा यथोहार एति । चतुर्थः—गलकं यावदुद्वार नागम्य
पनामोगने अजानत एव 'प्रतिगच्छति' भूम प्रविशति हेहसं समुद्दिश्वताम् । गुरुसह—
एते इयेऽपि प्रकारा न भवन्ति । इये नाम-वे प्रथम-दितीयो दिवाऽप्यदारं प्रतिभेचयन्ति ये

न हानिस्तावदाहारियतव्यम् । सुस्तिभीतं बोद्रारं ज्ञास्ता यः प्रत्यवगिकति तत्र सूत्रनिपातः ॥ ५८४८ ॥ पैनां सङ्गडमार्था विवरीदराह—

> मणति जति ऊपमेर्च, तत्तकबक्के य बिंदुणासणता । बितिओ न संबरेवं, तं भ्रुंजसु सरें जं जिजे ॥ ५८४९ ॥ निग्मंघो उग्माहो, ततिए गंघो उ एति ण उ सित्यं । अविजाणंत चउत्थे, पविसति गरुगं तु जो पप्प ॥ ५८५० ॥

च ततीय-चतर्था रात्रावद्वारमनमन्यते एते द्वयेऽपि न घटनते. किन्ते येनाऽऽवश्यकयोगानां 10

एको नेगमनयाश्रितो भणति — यक्न मोक्तव्यं ततस्त्रते कवहे प्रक्षिमस्योदकिनन्दोस्तरकाल-मेव यथा नशनं भवति तथा यद् सुक्तमात्रमेव जीर्यति ईटशं मोक्तव्यम् । द्वितीयः श्राह्-'पवस्' ईटशे सुके न संस्तरति तस्याल तदीटशं सुरूक्व यत् सूर्येऽस्तमवति जीर्यते। ११८९॥ मञ्चे द्वालादेशो। पको भणति —सर्योक्तपने जीर्यं आहरे ।त्रावसन्तरणं भवति समाधी-१००

राज्य द्वावार्या। पुरुष संगात—प्यावाराण जाण आहार राज्ञावराण नेपात तस्त्राच्याद्व इशं भुक्कां येनास्त्रिमेदार्थ 'निर्गन्धः' अज्ञान्यरहित उद्गार एति । द्वितीयः प्राह—यदि गन्य उद्गारस्य 'एति' आगच्छति तत आगच्छत्व यथा सिक्यं नागच्छति तथा भुक्काम् । एतौ द्वावय्येक एव तृतीय आदेशः । चतुर्थों मणति—ससिक्य उद्गारो गरूकं प्राप्याविज्ञानत एव यावव् सूयः प्रविद्याति ताववृ भुक्काम् । एते चत्वारोऽप्यतादेशाः ॥५८५०।। तथा ज्ञाह— पद्यस-वितिष्य दिया वी. जुरुसान्। एति वर्षे पद्याविज्ञान

पदम-बितिए दिया वी, उग्गाली णित्थ किं पुण निसाए। गंधे य पंडिगते या, ते पुण दो वी अणाएसा ॥ ५८५१ ॥

मधम-द्वितीययोगदेशयोदिंबाऽप्युद्धारो नास्ति किं पुनर्निशायाम् ! इत्यतसायनादेशो । यस्तुतीयोगपदेशयोदिंबाऽप्युद्धारो नास्ति किं पुनर्निशायाम् ! इत्यतसायनादेशो पश्च चतुर्थ उद्घारस्य गरुके मितगमनादेशः एती द्वाविष स्वाधीर्मिर्मायं-बहिर्मुतस्वादनादेशो ॥ ५८५१ ॥ कः पुनरादेशः ! इत्याह—

१ °या आहारे रत्यं प्रमाणं बद्दित । कथम् । रत्यात आह—तत्तराव शं । । २ जीयंते ताबन्मात्रं भुज्यताम् । वृतीयो बक्ति – गर्वेन बं । ॥ ३ पति तथा भोक्तव्यम् । बतुयां मृते—सङ्क बं । ॥ ४ °या आखार्या दिवा °कं ।॥ ५ श्रमु यावता भुक्तेनाऽऽव धः ॥ ६ अयेनां निर्मुक्तिगायां वं ।॥

25

पहुपस्रऽणामते वा, संजमजोगाण जेण परिहाणी । ण वि जायति तं जाणस. साहस्स पमाणमाहारे ॥ ५८५२ ॥

'श्रखुराने' वर्तमानेऽनागते वा कारुं 'धेन' यावता भुक्तेन 'संयमयोगाना' प्रख्येश्वणादीनां परिहाणिने जायते तदाहारस्य प्रमाणं साधोजीनीहि ॥ ५८५२ ॥

एवं पमाणजुनं, अतिरेगं वा वि शुंजमाणस्स ।

वायादीखोभेण न, एञ्जाहि कईचि उग्गाली ॥ ५८५३ ॥ एवंत्रियं प्रमाणधुक्तं कारणे वाऽतिरिक्तमणि आहारं सुझानस्य वातादिक्षोभेण वा कथिब-टटार आगच्छेत् ॥ ५८५३ ॥ ततः किम् ! ईत्यत आह—

त् ॥ ५८५२ ॥ ततः ।कम्ः इत्यतं जाह—— जो पुणै सभोयणं तं, दवं व णाऊण णिग्गतं गिरुति ।

जा पुण समायण त, द्व व पाऊण ाणग्गत गरूरात १ १० तहियं सुत्तनिवाओ, तत्थाऽऽएसा इमे होंति ॥ ५८५४ ॥

पुनःश्रन्त्रो विश्वेषणे, स चैतद् विशिनष्टि—यः 'तम्' उद्घारमागतं परित्वजति तत्य न प्रायश्चित्तम् । यस्तु 'तम्' उद्घारं सभोजनमच्छं वा द्रवमागतं ज्ञात्वा सुन्ताद् निर्गतं गिरुति तत्र 'सत्रनिपातः' प्रस्तुतसुत्रसावतारः । तत्र चेमे आदेशैः भवन्ति ॥ '५८५४ ॥

> अच्छे ससित्थ चित्रय, ग्रुहणिग्गतकवल भरियहत्थे य । अंजलि पडिते दिहे. मासादारोवणा चरिमं ॥ ५८५५ ॥

अच्छं द्रवमागतं यदि परेणाइष्टमापिवति नतो मासल्घु, अथ दृष्टं सतो मासगुरु । सिव-वसमागतं परेणाइष्टमाददानस्य मासगुरु, दृष्टं चतुळ्छु । अथ तं सित्तवधमदृष्टं चवैवति तत्वधदुर्श्च, दृष्टं चतुर्गुरं । मुलाद् निगेतं कवस्मेकदृत्तेन मतीच्याइष्टमापिवति चतुर्गुरु, दृष्टे पद्रस्त्रु । अथेकं हत्तपुटं मरितनप्रदृष्टमापिवति ततः स्ट्रस्तु, दृष्टं पृक्तुरु । अथाञ्जर्कि मरि-२० तमदृष्टमापिवति पृङ्कुर, हृष्टे च्छेप्ट: । अञ्जर्कि भृत्या यद् अन्यद् पृक्ति पतितं तदिष्टि अद्वर्ष्ट-भाषिवति च्छेदः, हृष्टं मृत्रुमः । एवं भिक्षोरुकत्त्व । उपाध्यायस्य मासगुरुकादारुक्यमनवस्थाप्ये तिष्ठति । आचार्यस्य चतुर्क्षपुकादारुक्षं चरमं तिष्ठति । एवं मासादिका चरमं यावदारोपणा मन्तवस्या ॥ भद्रभुर ॥ प्रकारान्तरेण प्राथिक्षत्तमाह—

दिय रातो लहुःगुरुगा, बितियं स्यणसहितेण दिइंतो । अद्धाणसीसए वा, सत्थो व पहावितो तुरियं ॥ ५८५६ ॥

अथवा सितिक्थमितकथं वा रष्टमदृष्टं वा दिया प्रत्यवगिकतश्चद्रकेषु, रात्रौ चतुर्गुरु । द्वितीयपदमत्र भवति—कारणे वात्तमध्वापिवेद् न च प्रायक्षितमामुयात् । तत्र च रज्ञस-हितवणिजा दृष्टान्तः कर्तव्यः । कथं पुनरिदं सम्भवति ! हत्याह्—अध्वद्यविके मनीज्ञं भक्तं सुक्तं तत्र वात्तम् अन्यक्ष न कम्यते, साथों वा त्वरितं प्रधावितः, ततस्वदेव द्यागिब-30 द्रन्येण वासिवत्वा भुक्ते ॥ ५८५६ ॥ अथ रज्ञसहितवणिग्दृष्टान्तमाह्—

जल-थलपहेसु रयणाणुवज्जणं तेण अडविपश्चंते ।

१ इत्याह भाग्॥ २ °ण तं अच्छं वा, दर्व ताभाग्॥ ३ 'आदेशाः' प्रायक्कित्तप्रकाराः अवस्ति ॥ ५८५४ ॥ के पुनस्ते ? इत्याह—अच्छे कांग्॥

निक्खणण फुट्टपत्थर, मा मे रयणे हर पळावो ॥ ५८५७ ॥ घेचुण णिसि पळायण, अडवी मडदेहमावितं तिसितो । पिबिज रयणाण भागी, जातो सयणं समागम्म ॥ ५८५८ ॥

जहा एगो विषिओ कहिँ नि जरुपहेण किहिन थरुपहेण महता किलेसेण सतसहस्समोक्षाई पंच रयणाई उजिजिणिया परदेसे पच्छा सदेसे पिथतो। तत्य य अंतरा पर्वत्विसए एगा अडबी र सवर पुर्विद-वीराकिण। सौ विंति — कहमविग्मेण नित्यरिज्ञामि ? ि । ते रयणे एक्सिम विज्ञणे परेसे निक्वणति, अने फुटएरथरे वेतुं उम्मतगवेसं करेति, वोराकुर्क च अडविं पज्जह, तक्से एक्साणे पासिचा भणेति — अहं सागरद चौ नाम रयणवाणिओ, मा मे दुकह, मा मे रवणे हरीहह। सो पञ्चतं वोरिह गहितो पुच्छितो — कतरे ते रवणा!। सो फुटएरथरे दंसित। बोरेहिं नातं — केणावि एयस्स रयणा हरिता तेण उम्मतगो जातो । मुक्को य । पवं तेण 10 तण-पत्प-पुण्य-फरू-कह-कंद-स्काहारेण सा आडवी पंथो य आगम-गमं करेतेण जाहे भाविता ताहे ते रयणे तिसाए येणु अर्डविं पवनो। जाहे अडवीं व वहुगा गता ताते ताते तहार पार-कमाणो एगामि सिलातककुंडे गवादिसहययदेहमावित विवक्त-गंध-रसं उदगं वहुं विंति — जित एयं नातिवासि तो ने रयणेवज्ञणं संखं निरस्थयं कामभोगाण य अणाभागी मवामि । नाहे तं पिविचा अडविं तिच्छिण्णो, सवण-प्रण-कामभोगाण य सर्वीसं आभागी जाशे ॥

अक्षरममिनका—कस्यापि वणिजो जल-स्वरुपययो रजानामुगार्जनं कृत्वा 'प्रत्यन्तविषयेऽ-ट्रस्यां बहवः सेनाः सन्ति' इति कृत्वा रज्ञानां किचत् प्रदेशे निलननं स्फुटितप्रस्तराणां च महणम् । 'मा मदीयानि रज्ञानि हरत' इति प्रलापेन च भाविष्त्या निशि रात्रौ रज्ञानि गृहीत्वा प्रलापमम् । अटब्यां तृषितो सृतदेहभावितं जलंगीत्वा स्वजनवर्गं समागम्य रज्ञानामा-मागी जातः ॥ ५८५७ ॥ ५८५८ ॥ एव दृष्टान्तः, अयमर्थोपनयः—

विषयत्थाणी साहू, रतणत्थाणी वता तु पंचेव । उदयसरिसं च वंतं, तमादितुं रक्खते ताणि ॥ ५८५९ ॥

वणिक्सानीयाः साधवः, रत्नस्थानीयानि पञ्च महामतानि, तुशब्दस्यानुक्तसमुच्चमार्थरवात् तस्करस्थानीया उपसर्गाः अटनीस्थानीया द्रव्यापदादय हत्यपि द्रष्टवम्, मृतोदकसदशं वान्तम्, तत् कारणे आपिवन् 'तानि' महामतान्यास्मानं च रक्षति ॥ ५८५९ ॥

कथं पुनरापिबेद् ! इत्याह---

दियरातों अण्ण गिण्हति, असति तुरंते व सत्थें तं चेव । णिसि लिंगेणऽण्णं वा, तं चेव सुगंधदच्वं वा ॥ ५८६० ॥

अध्वर्शीर्षके मनोज्ञं भुक्तं परं वान्तं ततो दिवा रात्रौं वाऽन्यद् गृढ्ढांति । अकस्यमाने वा 'निक्षि' रात्रावन्यिकेहेनात्यद् गृह्वाति । तस्याप्यमावे सार्थे वा स्वरमाणे 'तदेव' वान्तं गृहीस्वा 30 चार्जातकादिना सुगन्धिद्वत्येण वासयित्वा सुद्धे, न कश्चिद् दोषः ॥ ५८६० ॥

॥ उद्वारप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ °हाति। तस्याप्यसति तदेवोपाद्से। अथवा खिलक्षेत्रालभ्यमाने "लिंगेण" ति परिकेम मित्रि राजा को ॥

आ हार विघित्र कत स

सूत्रम्---

निम्मंथस्स य गाहावइकुठं पिंडवायपडियाए अणुप्यिविट्टस्स अंतोपडिग्गहंसि पाणाणि वा बीयाणि
वा रए वा परियावजेजा, तं च संचाएइ विगिंचित्तर वा विसोहिचए वा तं पुट्वामेव ठाइया विसोहिया विसोहिया ततो संजतामेव भुंजेज वा पिवेज वा। तं च नो संचाएइ विगिंचित्तए वा विसोहि-चए वा तं नो अप्पणा भुंजेजा नो अन्नेसिं दावए, एगंते बहुफासुए पएसे पडिलेहित्ता पमजिता परिद्विविय्वेव सिया ११॥

अस्य सम्बन्धमाह---

वंतादियणं रत्तिं, णिवारितं दिवसतो वि अत्थेणं । वंतमणेसियगहणं, सिया उ पडिवक्खओ सुत्तं ॥ ५८६१ ॥

गत्री बान्तापानं पूर्वसृष्ठं निवारितम् , दिवसतोऽपि अंधेन निवारितम् । अनेपणीयम्हणमिष साधुंभिबोन्तमेव, अतस्विद्धं प्रतिविध्वते । ''सिया उ पडिवक्सओ सुतं' ति 'स्याद्' भवतया प्रतिपक्षतो या एटत् सुदं भवति अपतिपक्षतो या । तत्र प्रतिपक्षतो यथा—पूर्वसृष्ठे सन्त्री वान्तापानं निवारितम् , इदं उ दिवाऽनेषणीयं वान्तं निवार्ते । अपतिपक्षतो यथा—पूर्वसृष्ठे वान्तं न वर्तते प्रद्यापाद्यास्युक्तम्, इदाप्यनेषणीयं वान्तं न वर्तते प्रद्यास्युक्तस्य इदाप्यनेषणीयं वान्तं न वर्तते प्रद्यास्यविद्यत् ॥५८६५ १०० अनेन सम्बन्धेनायात्यास्य व्याद्या—पूर्वस्थे व्याद्यास्य त्रिव्याद्यास्य त्रव्यास्य व्याद्यान्य विद्यास्य विद्यास्य

पाणग्गहणेष तसा, गहिया बीएहि सन्त बणकाओ । स्तगहणा होति मही, तेऊ व ण सो चिरद्राई ॥ ५८६२ ॥

१ 'अग्रेन' निर्युक्तिविस्तरादिना तदेव निवा^० सं० ॥ २ 'पुमिः प्रमण्यामाददानैर्यान्तर सं० ॥ ३ 'प्रत्युपेदय' चक्षुपा निरीक्ष्य 'प्रमुज्य' रजोहरणादिना प्रतिकेच्य परि° सं० ॥

15

25

इह प्राणमहणेन त्रैसाः गृहीताः । बीजमहणेन तु सर्वोऽपि वनस्पतिकायः सूचितः । रजोमहणेन च 'मही' पृथिवीकायो गृहीतः, तेजःकायो वा, परं स चिरस्वायी न भवतीति इत्वा विवेचनादिकं तत्र न घटते ॥ ५८६२ ॥

ते पुण आणिजंते, पडेज पुर्विव व संसिया दृव्वे । आगंतु तुन्मवा वा, आगंतुहिं तिमं सुर्वे ॥ ५८६३ ॥

'ते पुनः' त्रसाद्य आनीयमाने वा भक्ते पतेषुः, पूर्वे वा तत्र 'द्रव्ये' भक्त-पाने 'संक्षिताः' स्थिताः । ते च द्विविधाः—आगन्तुकासतुद्भवा वा । तत्रागन्तुकत्रसादिविषयम् इदं पस्तुतसूत्रं मन्तव्यमे ॥ ५८६३ ॥

अथ के तदुब्रवाः ? के वा आगन्तुका भवेयुः ? इत्याह-

रसता पणतो व सिया, होज अणागंतुगा ण पुण सेसा । एमेत्र य आगंत्, पणगविवजा भवे दुविहा ॥ ५८६४ ॥

ये 'रसजाः' तक-दिध-तीमनादिरसोत्पन्नाः कृग्यादयस्ता यश्च पनकः स्याद् एते 'अनाग-न्तुकाः' तदुद्भवा भवन्ति, न पुनः 'शेषाः' पृथिवीकायादयः । एवमेव च ये पनकविवजीः 'द्विविषाः' त्रसाः स्वावराश्च जीवाः ते सर्वेऽप्यागन्तुकाः सम्भवैन्ति ॥ ५८६४ ॥

सुत्तिमि किब्रुपिमि, जयणा गहणं तु पिडतों दहुव्वी । लहुञो अपेक्खणिमि, आणादि विराहणा दुविहा ॥ ५८६५ ॥

एवं सुत्रमुक्षार्थ पदच्छेदं कृत्वा य एपं सुत्रार्थो भणितः एतत् सुत्रमाकार्थतिमिति भण्यते । एवं सुत्रे आकर्षिते सति निर्मुतिविस्तर उच्यते —तेन साधुना यतनया भक्त-पानस्य महणं कर्तव्यम् । का पुनर्यतना ! इत्याह —पूर्वमेव गृहस्वहत्तावः पिण्हो नितीक्षणीयः, यदि शुद्ध- स्ततो गृह्यते । एवं यतनया गृहीतोऽपि प्रतिमहे पतितो द्रष्टव्यः । यदि न भेक्षते ततो उक्को 20 मासः, आज्ञादयश्च दोषाः । विराधना व द्विविधा —तत्र संयमे त्रसादय उच्णे व। द्रवे वा पतिता विराध्यन्ते, आरामविराधना जु मिह्नकादिसमित्रे भुक्ते वस्पुलीव्याधिर्मरणं वा मवेत् । तस्मात् प्रथमनेव प्रतिमहपतितः पिण्डो द्रष्टव्यः ॥ ५८६५ ॥

अहिगारों असंसत्ते, संकप्पादी तु देस संसत्ते । संसज्जिमं तु तहियं, ओदण-सत्तु-दधि-दवाई ॥ ५८६६ ॥

अत एव यसित् देरो जनगणादिभिः संसक्तं भक्त-पानं न भवति तत्रासंसक्तेऽधिकारः, तसिष्ठेव देरो विदरणीयमिति भावः । यस्तु संसक्तं देरो सङ्करपादीनि पदानि करोति तस्य

१ 'बसाः' द्वीन्द्रियादयो गृही कं ॥ २ भ्म्, तेपामेव प्रकृतसूत्रोकस्य विवेचना-वेर्षेटमानकत्वात् ॥ ५८६३ ॥ कं ॥ ३ 'विति, न पुनः पनकः, तस्य तदुक्रससैय सम्मवात् ॥ ५८६४ ॥ तवेषं कृता विवमपद्रव्यास्या भाष्यकृता, सम्मिति निर्शुक्तिविस्तर-स्यायसरः, तथा चाह – सुक्तिम कं ॥ ॥ ४ विषमपद्रव्यास्याकरः स्वा भाष्य ५ 'क्रुक्यः' परीक्षणीयः, क्रिययं बसादिसंसकः १ उत न १ इति । वयेषं परीक्षणम्-अवकोकनं न करोति ततो लघुको सं ॥

भाषश्चिष्ठम् , तक्षोष्ठरत्र वक्ष्यते । तत्र च 'संसजिनं' संसक्तियोग्यमोदन-सक्तु-दर्षि-द्रवादिकं द्रव्यं मन्तव्ययः ॥ ५८६६ ॥ अथं संसक्तदेशे सङ्करगदिषु भाषश्चित्तमाह——

संकप्पे पयमिंदण, पंथे पत्ते तहेव आवण्णे । चत्तारि छच्च लहु गुरु, सद्वाणं चेव आवण्णे ॥ ५८६७ ॥

उ यसिन् विषये भक्तादिकं प्राणिभिः संसद्यते तत्र 'सङ्कर्ष' गमनाभिगायं करोति चतुर्रुष्ठ , पदमेदं करोति चतुर्गुरु, संसक्तविषयस्य पन्धानं गच्छतः यद्रुष्ठ , तं देशं प्राप्तस्य षहुरु । तथैव द्विनिद्वयादेः सङ्घटनादिकमापकस्य सस्यानमायश्चित्तम् । तथ्या—द्वीनिद्वयं सङ्घटनादिक चतुर्गेरु, अपदाचयित यद्रुष्ठ , अपदाचयित चतुर्गेरु, अपदाचयित पद्रुष्ठ , जीन्द्रियाणां सङ्घटनादिष्ठ पदेशु चतुर्गेरुकादारुकं पद्गुक्ति ते तथिति ।। पर्दिष्ठ ॥ । अभिवादित्वयाणां सङ्घटनादिष्ठ पद्रुष्ठ ।। अभिवादित्वयाणां सङ्घटनादिष्ठ पद्रुष्ठ । संस्थिताद पित्रज्ञयंति ।। पर्दिष्ठ ॥ । अभिवादित्वर्षितं त नर्षित्व प्रविद्या संस्थिताद परिजञ्जयंति ।

असिवादिएहिं तु तिहं पविद्वा, संसिजिमाइं परिवजयंति । भड़इसंसिजिमदन्वलंभे, गेण्डतवाएण इमेण जुत्ता ॥ ५८६८ ॥

भूरहत्ताकाव प्रवेशका मण्डलायाः रचन अता । एरण् अश्राक्षित्रादिभः कारणेः 'तत्र' संसकदेशे प्रविद्याद्यतः 'संसवित्रानि' सक्यु विषम्प्रतीनि द्रव्याणि परिवर्जयन्ति । अव 'स्विष्ठानि' प्रभृततराणि संसवित्रदृत्याणि कस्यन्ते ततोऽमुनो-पायेन 'युक्ताः' प्रवक्षपरा ग्रह्णन्ते ॥ '८६८ ॥ ँ

> गमणाऽऽगमणे गहणे, पत्ते पिंडए य होति पिंडलेहा । अगहिय दिद्र विवज्जण, अह गिण्डह जं तमावजे ॥ ५८६९ ॥

भिक्षार्य दायको मध्ये गमनं कुसैन् कीटिका मण्डूकीमभृतिजन्तुसंसक्तायां भूमी मा विराधनां कुर्यादिति सम्यग् निरीक्षणीयः । एवमैगमने भिक्षाया हस्तेन प्रहणे च विलोकनीयः । प्राप्ते च दायके तदीयहस्त्रगतः पिण्डः मण्डुपेक्षणीयः । पात्रे च पतितैः प्रस्पुपेक्षितस्यः । ततो यद्य20 गृहीते तसादिकं प्राणजातं पश्यति ततसस्तिसन् दृष्टं विवजयति, न गृह्वातीत्यर्थः । अभ
गृह्यति ततो येन द्वीन्द्रयादिना संसक्तं गृह्याति तिल्यपत्रं प्रायश्चित्तमायवते ॥ ५८६९ ॥
अथ पुनरेवं न प्रस्योधनोत तत इसे दोणाः —

पाणाइ संजमर्मिम, आता मयमच्छि कंटग विसं वा । सृइंग-मच्छि-विच्छुग-गोवालियमाइया उभए ॥ ५८७० ॥

5 संपेमे त्रसमाण-पनकादयो विराध्यन्ते। आत्मविराध्यायां धृतमक्षिकासम्मिश्रे भुक्ते बर्ग्युडी-व्याधिः, ततश्च कमेण मरणं भवेत् , कण्टको वा विषं वा समागच्छेत्। उभयविराधनायां 'श्चरक्काः' पिपीलिका मक्षिका-वृश्चिक-गोपालिकादयो वा भवन्ति। गोपालिका—अहिछोडिकास्त्यो जीव-विरोषः। पते हि जीवा भक्तेन सह भुक्ताः संयमोषधातमात्मनश्च मेषाधुपधातं कुर्वन्ति ॥५८७०॥

१ अधात्रैय द्वितीयपदमाह इत्त्वतरणं को ॥ २ 'संसजिमानि' संसक्तियोग्यानि सन्दर्भु को ॥ ३ 'न्ते नेतराणि ततो को ॥ ४ क्ष्यम् १ इति मत आह इत्त्वतरणं को ॥ ५ भक्तायं ठे ॥ ६ 'म् 'आगमने' आगमनं कुर्वन् 'महक्ते च' मिस्रां हत्ते सृक्षानो दायको विक्ते' को ॥ ७ 'तितस्य पिप्डस्य प्रत्युपेक्षणा कर्तव्या भवति । ततो य° को ॥ ८ 'संयमें संयमविराधनायां चिन्त्यमानायाममत्युपेक्षिते भक्तायाने मृहीते 'माणाः' अद्ध' को ॥

20

पनयणघाति व सिया, तं वियडं पिसियमङ्कातं वा । आदाण किलेसऽयसे, दिइंतो सेडिकन्बर्टे ॥ ५८७१ ॥

भवननोपघाति वा स्यात् तत् विकटम्, पिशितं वा तत् 'स्याद्' भवेत्, 'अर्थजातं वा' सुवर्ण-सङ्गिलेका-मुद्रिकादिकं कश्चिद्वकृष्यया मस्योकत्या वा दचात्, ततः पतितं पिण्डं प्रयुपेक्षत् । तत्त्वाप्रयुपेक्ष्य गृहीतं मन्द्रभगेणः कस्याप्युत्मवितुकाससः 'आदातम्' आजीविकाकारणं मवति, व तद् आदायोसम्बन्धतीत्वर्थः । अर्थजाते च गृहीते साधूनां स्कणादिको महान् पिरिक्वेशोऽवशो वा मवेत् । तथा चात्र ''सिट्किक्वेह्ने' ति राज्यपदीपविष्टकर्वसकोपलक्षितस्य काष्ट्रश्चेष्टिनो हष्टान्तः, स च आवश्यकटीकातो मन्तव्यः (पत्र)॥ ५८७१॥

तम्हा खलु दहुन्त्रो, सुक्लग्गहणं अभिण्हणे लहुगा । आणादिणो य दोसा. विराहणा जा भणिय पुन्ति ॥ ५८७२ ॥

यत एते दोशातसात् 'सतु' नियमात् पात्रकपतितः गिण्डो द्रष्टस्यः । संसक्ते च देशे शुण्कस्य कूरस्य प्रथमात्रके प्रहणं कार्यम् । अत्र प्रथम् न गृहाति ततश्चतुर्रेषु आज्ञादयश्च दोशाः, विराधना च द्विथा संयमा-ऽऽत्मविषया या 'पूर्वम्' अनन्तरमेव भणिता ॥ ५८७२ ॥ इदमेव भावयति—

> संसक्षिमिम्म देसे, मत्तग सुक्ख पडिलेहणा उवरि । एवं ताव अणुण्हे, उण्हे कुसणं च उवरि तु ॥ ५८७३ ॥

संसजिमे देरो यः गुष्कः पौद्रालिकोऽनुष्णो लभ्यते स मात्रके गृहीस्वा प्रस्तुपेक्ष्य यद्यसं-सक्तसद्वा प्रतिप्रहोपरि प्रक्षिप्यते । एवं तावदनुष्णे विधिरुक्तः । यः पुनरुष्णः कूरः कुसणं वा तदु नियमादसंसक्तमिति कृत्वा प्रतिमहस्यैवोपरि गृह्यते ॥ ५८७३ ॥

गुरुमादीण व जोग्गं, एगम्मितरम्मि पेहिउं उवर्रि । दोस्र वि संसत्तेसुं, दुछह पुन्वेतरं पच्छा ॥ ५८७४ ॥

गुरू-स्थानादीनां वा योग्यमेकसिन् मात्रके गृह्यते, 'इतरसिन् ! द्वितीये मात्रके संसक्तं प्रख्येषस्य पतिग्रहोपरि प्रसिप्यते । एवं तावद् यत्रैकं भक्तं पानकं वा संसैकं तत्र विधिरुक्तः । यत्र द्व द्वे अपि-भक्त-पानके संसक्ते भवतः तेत्र यद् भक्तं पानकं वा दुर्कमं तत् पूर्वे गृह्वन्ति 'इतरत्' सुकं पक्षाव् गृह्वन्ति ॥ ५८७४ ॥

एसा विही तु दिहे, आउड्डियगेण्हणे तु जं जत्य । अणभोगगह विगिचण, खिप्पमविविचति य जं जत्य ॥ ५८७५ ॥

एष विधिः हैंष्टे गृह्माणे मणितः। अथाकुहिकर्षा संसक्तं गृहाति ततो यद् यत्र द्वीन्द्रिय-परितापनादिकं करोति तत् तत्र प्रामोति । अथानाभोगेन संसक्तं गृहीतं ततः क्षिप्रमेव

१ °सर्क सम्भवति तत्र कं॰ ॥ २ तत्र द्वयोरिप संसक्तयोः सम्भवतोर्मध्ये यद् कं॰ ॥ ३ 'इष्टे' प्रत्युपेक्ति पिण्डे ग्रुखः कं॰ ॥ ४ °याऽप्रत्युपेक्षितं संसक्तमेव भक्त-पानं युः कं॰ ॥ ५ °ति, प्रायक्षित्रसित्यर्थः । अथाः कं॰ ॥

विवेचैनम् । अब क्षित्रं न विविनक्ति ततो यावत् परिष्ठापयति तावद् यैत्र यद् विनाशमश्रुते तिविष्पत्रं प्रायक्षितम् ॥ ५८७५ ॥ कः पनः क्षित्रकारः ? इत्याह —

> सत्त पदा गम्मंते, जावति कालेण तं भवे खिप्पं। कीरंति व तालाओ, अहुयमविलंबितं सत्ता ॥ ५८७६ ॥

b यावता काळेन सप्त पदानि गम्यन्ते तत् क्षिपं मन्तब्यम् । यावता वा कालेनाद्वतमविल-म्बितं सम् तालाः क्रियन्ते तावान कालविशेषः क्षिपम् ॥ ५८७६ ॥

> तम्हा विविचितव्वं, आसक्षे वसिंह दूर जयणाए । सामारिय उण्ड ठिए. पमजणा सत्तम दवे य ॥ ५८७७ ॥

तस्मात् तद् जन्तुसंसक्तमनन्तरोक्तक्षिप्रकालमध्य एवं विवेचनीयम् । यदि च वसितरासमा
10 ततस्म्रत्र गत्वा परित्यक्तव्यम् । अथ द्रे वसितः ततः शूर्यगृश्वदिषु यतनय। परिष्ठापयति ।
अथ सागारिके पश्यति उच्णे वा भूभागे 'स्थितो वा' ऊर्द्धस्थितः परिष्ठापयति ततो वश्यमाणं
प्रायश्चित्त्व् । यत्र च परिष्ठाप्यते तत्र प्रमाजेना कर्तव्या । एवमोदनस्य विधिरुकः । सक्तां
द्रवस्य चैवमेवाल्यसागारिके प्रमुज्य छायायां परिष्ठापतं विधेयस् ॥ ५८७०॥ इँदमेव व्याचष्टे—

जावइ काले वसहिं, उवेति जति ताव ते ण विदंति।

15 तं पि अणुण्हमदवं तो, गंतृणग्रुवस्तए एडे ॥ ५८७८ ॥

यावता कालेन वसतिसुपैति तावता कालेन यदि 'ते' प्राणिनः 'न विद्रान्ति' न विनश्यन्ति तदा तद् वसतिं नीयते । तदप्यनुज्जनद्वं च यदि भवति तदाः प्रतिश्रयं नेतव्यम् । किसुक्तं भवति !—वदि उप्णः कृरो द्वं वा संसक्तं ततः प्रतिश्रयं न नीयते, मा यावत् प्रतिश्रयं निकार्य । प्राण्जातीया उप्णे द्वं वा सिर्ध्यनतिति कृत्वा । अथानुष्णमद्वं च तत उपा20श्रये गावा 'एडयेन्' परिष्रापयेत् । यन् पुनरूणं द्वं वा तत् तत्रेव शून्यगृहादो परिष्ठापनीयम् ।
अथ दूरे वसतिस्तोऽनुष्णमाणि शून्यगृहादिषु परिष्ठापयितव्यम् ॥ '५८७८ ॥

सुण्णघरादीणऽसती, दुरे कोण वतिअंतरीभृतो ।

उकुडु पमज छाया, बति-कोणादीसु विक्लिरणं ॥ ५८७९ ॥

अथ शूरयगृहादीनि न सन्ति ततो दूरे एकान्तं गत्वा यत्र कोणस्थितो बूत्याऽन्तरितीसूतो 25 वा सागारिको न पश्यति तत्रोरकुरको मूत्वा मयुज्य छायायां द्वतेः कोणके प्रक्षिपति, आदिप्रहणेन होर्नोप्येऽपि विकिरति, परिष्ठापयतीत्यर्थः । एवमोदनस्य सक्तूनां द्रवस्य वा परिष्ठापनं कर्तव्यम् ॥ ५८७९ ॥

> सागारिय उण्ह ठिए, अवमजंते य मासियं लहुगं । बोच्छेदुइाहादी, सागारिय सेसए काया ॥ ५८८० ॥

30 अथ सागारिके उच्छो वा प्रदेशे मूर्ब 'स्थितो वा' ऊर्द्धीमृतोऽप्रमार्ज्य वा परिष्ठापयति

१ 'चनीयम् । अय भा॰कां० ॥ २ 'यत्र' भक्ते पानके वा 'यत् 'प्राणजातं विना' कां० ॥ २ इमामेव निर्वुक्तिगायां व्या' कां० ॥ ४ 'द्रवं प्रतिश्रयक्ष प्रत्यासक्तस्तत उपा' कां० ॥ ५ विकरणं करोति, परि' कां० ॥

ततश्चतुर्ण्वीप रुषुमासिकम् । सागारिके च पश्चति यदि भक्तं परिष्ठाप्यते तदा स भक्तः पानदानव्यवच्छेदभुङ्काहादिकं वा कुर्यात् । 'होषे हु' उष्णादित्रये परिष्ठापयतः पृषिव्यादिकाया विराध्यन्ते ॥ ५८८० ॥

> इइ ओअण सत्तुविही, सत्त् तिहणकतादि जा तिण्णि । वीसुं वीसुं गहणं. चतरादिदिणाइ एगत्थ ॥ ५८८१ ॥

'इति' एवमीदनस्य संसक्तस्य विधिरुकः। अय सक्तृनां संसकानां विधिरुव्यते—यत्र सक्तवः संसका रूप्यत्ते तत्र नैव गृद्धन्ते । अथ न संस्तात्ति ततस्विद्वसकृतान् सक्तृन् गृहृति । आदिशब्दात् तैरप्यसंसरन्तो "द्वितीय-तृतीयदिनकृतानिष सक्तृ गृहृति , ते पुनः प्रथक् प्रथम् गृद्धन्ते । चर्रादिसस्कृतात्यस्तु सर्वेऽप्येषक गृद्धन्ते तेषात्मयं प्रसुपेषणाविधः—रज्ञक्षाणमधः मस्तीये तस्योपि पात्रकवन्यं कृत्वा तत्र सक्तवः प्रकीर्यन्ते, तत कर्द्धग्रलं पात्रकवन्यं कृत्वा गि एकस्यन्यं स्ता व्यव्यव्यक्षणाविधः—रज्ञक्षाणमधः प्रस्तीय तस्योपि पात्रकवन्यं कृत्वा तत्र सक्तवः प्रकीर्यन्ते, तत्र कर्द्धग्रलं पात्रकवन्यं कृत्वा गि एकस्यन्ते । प्रदेश्य सामा उद्धत्य कर्परे प्रविष्यन्ते, एवं प्रसुपेक्ष्य मृयोऽपि तथेव प्रसुपेक्षन्ते ॥ ५८८१ ॥ ततः—

नव पेहातों अदिहे, दिहे अण्णाओं होंति नव चैव । एवं नवगा तिण्णी, तेण परं संधरे उन्हें ॥ ५८८२ ॥

नववाराः प्रत्युपेक्षणां क्रत्वा यदि प्राणजातीया न दृष्टाखतो भोक्तव्यासे सक्तवः, अथ 15 दृष्टाखतो सूर्योऽप्यन्या नववारा प्रत्युपेक्षणा भवति, तथापि यदि दृष्टाखतः पुनरिष नवबाराः प्रत्युपेक्षन्ते । ततो यथेवं त्रिभिनेवकैः शुद्धाखतो सुझताम् । अथ न शुद्धाखदा ततः पर्र 'उज्झेत्' परिष्ठापयेत् । अथासंसर्गं ततस्तावत् प्रत्युपेक्षन्ते यावत् शुद्धीभवन्ति ॥ ५८८२ ॥

प्राणजातीयानां च परिष्ठापने विधिरयम्-

आगरमादी असती, कप्परमादीसु सत्तुए उरणी । पिंडमलेवाडाण म, कातूण दवं तु तत्थेव ॥ ५८८३ ॥

या जरुणिकाः मञ्जोक्षमाणेन दृष्टासा आकरादिषु परिष्ठापनीयाः । इह घरहादिसमीपे मम्ता यत्र तुषा भवन्ति स आकर उच्यते । तस्याभावे कपरादिषु खोकात् सक्त्र् प्रक्षिप्य तत्रोरणिकाः स्वापियता बहिरनावाधे प्रदेशे स्वाप्यन्ते । यदि च द्रवमावनं नास्ति ततो ये सक्तवः गुद्धा अलेपकृताश्च ते 'पिण्डं कृत्वा' माजनस्वैकपार्धे चम्पयित्वा तत्रैव च द्रवं 'कृत्वा' 25

आयाम् संसद्रसिणोदगं वा, गिण्हंति वा णिर्व्युत चाउलोदं ।

गृहीत्वा भुक्तते ॥ ५८८३ ॥ यत्र च काक्षिकं संसज्यते तत्रायं विधिः—

रे 'द्वापयित तदा मा॰ कां ।। २ °त्—कहो ! अमी अमणका मत्ताः यदेवं दुर्लममा-हारं गृहीत्वा छर्वयन्तीित । 'द्रोपे तु' कां ।। ३ द्वितीयदिवसकृतान् यावत् त्रयो दिवसा येवां सञ्जाताः तृतीयदिवसकृता हत्यदें तानिष गृहन्ति, तेवां पुनः 'विष्वा विष्वा' पृथक् पृथ्य प्रहणं कर्नव्यम् । चनुर्दिवस् कां ।। ४ °क्ते । एवं त्रीणि नवकानि प्रत्यु-पेक्षणानां मचन्ति । ततो यद्येवं कां ।। ५ °ते, आदिशन्दादन्यस्यान्येवंविषस्य परिप्रहः । तस्या' कां ।। ६ °द्यक्क चाइठोव्यं। तिष्कः तमाल ॥ गिहत्यमाणेसु व पेहिजणं, मने व सोहेनुवारं छुमंति ॥ ५८८४ ॥ श्रीयामं संस्रष्टपानकपुष्णोदकं वा 'निर्वृतं वा' प्रायुकीयूतं 'चाउळोदकं' तण्डुळ्यावनं गृद्धन्ति । एतेपाममाने तदेव काक्षिकं गृहस्माजनेषु मत्युपेस्य मात्रके वा घोषयित्वा यद्यसं-सक्तं तदा प्रतिमहोपरि प्रक्षिपन्ति ॥ ५८८४ ॥ द्वितीयपदमाह—

बिहयपद अपेक्सणं त्, गेरुण्ण-ऽद्धाण-ओममादीसु । तं चेत्र सुक्खगहणे, दुख्तभ दव दोसु वी जयणा ॥ ५८८५ ॥

द्वितीयपदे स्वाना-ऽध्वा-ऽवमादिषु कारणेषु 'अप्रेक्षणं' पिण्डलाप्रत्युपेक्षणमपि कुर्यात् । 'तदेव च' स्वनत्वादिकं द्वितीयपदं 'ग्रुण्कत्य' ओदनस्य प्रहणे मन्तव्यम् । दुर्कमं वा द्ववं पश्चान्न रुभ्यते ततः पूर्वे तद् गृहीतमिति क्वां नास्ति तद् भाजनं यत्र पृथक् गुँग्कं गृष्टते । 10 'द्वोसु वी जयण' नि 'द्वयोरिप' अप्रत्युपेक्षणा-शुष्कप्रतृणयोरेण यतना कर्तव्या । एपँ सङ्कराधारमासार्थः ॥ ५८८५ ॥ साम्प्रतमेनामेन विवृणीति —

अचाउर सम्मृदो, वेलाऽतिकमति सीयलं होइ। असदो गिण्हण गहिते, सुज्झेज अपेक्समाणो वि॥ ५८८६॥

कश्चिरतीय 'आतुरस्वेन' ग्लानत्वेन 'सम्पदः' सम्पोहं-समुद्रात्वपुरगतसतो यावत् मञ्जेशते 15 तावद् वेलाऽतिकामति शीनलं वा तावना कालेन भवति, तत एवम् 'अशठः' विशुद्धभावो गृह्यानो वा गृहीते वा पिण्डे प्रञ्जुवेक्षणामकुर्वाणोऽपि 'शुष्येत' प्रायश्चित्तमाग् न भवेत्॥५८८६॥"

ओमाणपेछितो वेलऽतिकमो चलिउमिच्छति भयं वा । एवंविहे अपेहा, ओमे सतिकाल ओमाणे ॥ ५८८७ ॥

अध्वित वा गच्छतां सार्थः 'अवसानभेरितः' प्रमूतिभक्षाचराकीणः, यावच प्रस्तुपेक्षते तावद् २० वेखातिकमो भवति, स च सार्थश्वितितुमिच्छति, पृष्ठतो गच्छतां च भयम्, तत एवंविषे कारणेऽभेक्षा, प्रस्तुपेक्षामन्तरेणापि पिण्डं गृहीयादित्यर्थः । अवसे च मत्सुपेक्षमाणानां 'सत्कारूः' भिक्षाया देशकारः स्फिटति सूर्यो वाऽस्तमेति अवमानं वा—भिक्षाचराकीणं ततोऽप्रस्तुपेक्षित-मपि गृहीयात् ॥ ५८८७ ॥ परम्—

तो कुजा उवओगं, पाणे दडूण तं परिहरेजा।

26 कुजा ण वा वि पेहं, सुज्झह अतिसंभमा सो तु ॥ ५८८८ ॥ यदि अनन्तरोक्तकारणैः प्रस्त्रपेक्षणं न भवति तत उपयोगं कुर्यात् । कृते चोषयोगे यदि

याद अनन्तराककारणः प्रस्युपर्शण न मर्वातं तत उपयोगं कुयाँत्। कृते चोपयोगे यदि प्राणिनः पश्यति ततस्तान् दृष्ट्यः 'तत्र्' भक्त-पानं परिहरेत्। अथवा अत्यादुरः 'प्रेश्वास्' उपयोगमपि च कुर्याद् वा न वा। अनुपयुक्षानोऽपि चातिसम्प्रमादसौ साघुः शुध्यति । यन्नाधस्तादुकं

१ 'जायामम्' अवस्रावणं संस्पृष्यानकं-गोरसभाजनधावनम् उष्णोदकं वा-उहत्त-विदण्डं 'निष्टुं' कं ।। २ अथात्रेव द्विती' कं ।। ३ शुष्कम्-ओदनं शुक्कते, अतस्तरभष्य एव तद् पृद्वीयात् । ''दोसु कं ।। ४ 'प निर्युक्तिगाथा' कं ।। ५ भावितं ग्लानत्वे तत्तियुवस्य । अयाऽध्वा-उयमयोस्तदेव भावयति स्वकारणं कं ।। ६ 'ग्रेक्सं' प्रत्युपेक्ष-णाम् उप' कं ।।

25

"संसक्तः ग्रुष्कीदनः पृथम् गृद्धते" (गा० ५८७२) तत्राप्वेतेण्वेव ग्लाना-ऽथ्वा-ऽवमेषु कारणेषु द्वितीयपर्दं मन्तव्यम् ॥ ५८८८ ॥ तथा चाह-—

वीसुं घेप्पइ अतरंतगस्स बितिए दवं तु सोहेति । तेण उ असुक्खगहणं, तं पि य उण्हेयरे पेहे ॥ ५८८९ ॥

'अतरन्तगस्य' म्छानस्य योग्यं 'विष्वग्' एकसिन् मात्रके गृह्यते, द्वितीये च मात्रके द्ववं व शोधयति, ततो यत्र शुष्कीदनः पृथग् गृह्यते तत् तृतीयं मात्रकं नासीति कृत्वा शुष्कमाद्रै वा एकत्रैव मतिप्रद्वे गृहीयात् । म्हानस्यापि यद् ओदन-द्वितीयाक्षादिकमेकसिन् मात्रके गृह्वाति तद्यपि उच्चं प्रद्वीतन्त्रम् । 'इतरत् तु' शीतकं प्रस्त्रपेक्षेत, यदि असंसक्तं ततो गृह्वीयादन्यथा तु नेति मावः ॥ ५८८९ ॥

अद्धाणे ओमे वा, तहेव वेलातिवातियं णातुं । दल्लभदवे व मा सिं. घोवण-पियणा ण होहिंति ॥ ५८९० ॥

अध्यति वाऽवमीद्र्ये वा वेठाया अतिशालम्-अतिकमं ज्ञात्वा तथैव शुर्वेक विष्यम् न गृहीयात् । दुर्वेभं वा तत्र प्रामे द्रवं-पानकं ततो मा "सिं" एषां साधूनां भाजनधावन-पाने न भविष्यत इति कृत्वा पूर्वं मात्रके द्रवं गृहीतं ततो नास्ति भाजनं यत्र शुष्कं पृथम् गृह्यते अत एकत्रैव गृहीयात् ॥ ५८९० ॥ उक्तमोदनविषयं द्वितीयपदम् । अथ पानकविषयमाह्— 15

आउद्दिय संसत्ते, देसे गेलण्णऽद्धाण कक्लाडें अखिप्यं। इयराणि य अद्धाणे, कारण गहिते य जतणाए ॥ ५८९१ ॥

यथा कारणें 'आकुट्टिकया' जानन्तोऽपि संसक्ते देशे गच्छन्ति तथा तत्र गताः सन्तः संसक्तमपि पानकं गृह्वन्ति । गृहीत्वा च म्लान्त्वेऽध्विन 'कर्कशे वा' अवसे क्षिप्रं न परित्यजे- युरिष । तथाहि — म्लान्त्वे यावत् संसक्तं परिष्ठाप्यन्ति तावद् म्लान्त्व विद्यतिकमी भवति, 20 अध्विन सार्थात् परिभ्रवयन्ति, अवगोदर्ये भिक्षाकारुः निरुद्धति, तति क्षिप्रं परित्यजेषुः । 'दित्राणि च' सागारिकस्य पद्यवेतं परिष्ठापन्त् इत्यादीनि यानि पूर्वमतिषद्धानि तान्यप्रध्विन वर्तेमानः कुर्योद् । एम कारणे यतन्या गृहीतस्य संसक्तस्य विवेचने विधिरवगन्तव्य हैति सक्वह्याध्यासमार्थाश्यः ॥ ५८९१ ॥ अथैनामेव विद्यणीति—

आउट्टि गमण संसत्त गिण्हणं न य विश्विष्ट खिप्पं । ओम गिलाणे बेला. विहम्मि सत्थो वहक्रमह ॥ ५८९२ ॥

यथाऽऽकुट्टिकया संसक्तदेशे गमनं तथा तत्र गतः संसक्तमपि गृहीयात् न च क्षिपं 'विविष्टयात्' परिष्ठापयेत् । कुतः ! इत्याह—अवसे भिक्षाकालः स्फिटति, स्वान्यं वा स्वानस्य वेकाऽतिक्रमेत्, 'विहे' अध्विन सार्थो व्यतिकामति, ततः क्षिपं न परित्यजेत् ॥ ५८९२ ॥

१ 'स्तीति, तेन कारणेन अग्रुप्कस्य-आर्द्रस्य तुशब्दात् शुष्कसार्थम् ओदनस्य एकत्रैव प्रतिप्रहे प्रहणं कत्त्वयम् । स्टान° को ॥ २ 'शुष्कम्' ओदनं वि° को ॥ ३ अवमीदर्या-परपर्योषे "अक्षिप्रं" ति क्षिमं को ॥ ४ °तः उप्ये वा भूमागे ऊर्ड्डस्थितस्य या पत् परिश्रुपनं तङ्कसणानि त्रीणि स्थानानि यानि को ॥ ५ इति मिश्रुक्तिगाधा" को ॥

25

असिवादी संसत्ते, संकप्पादी पदा तु जह सुज्हे । संसद्ध सत्तु चाउल. संसत्तऽसती तहा गहणं ॥ ५८९३ ॥

अशिबादिभिः कारणैर्यया संसक्ते देशे सङ्कल्पादीनि पदानि कुर्वाणोऽपि शुष्यति तथा तत्र गतो यदि असंसक्तं पानकं न रुमते तैतः संस्ष्टपानकं तन्दुरुवेदकं वा संसक्तं सकृत् वा ध्रमकान् तथैव ग्रहीयात ॥ ५८९३ ॥ तेषां पुनः गृहीतानामयं विधिः —

ओवन्गहियं चीरं, गालणहेउं घणं तु गेण्हंति ।

तह वि य असुज्झमाणे, असती अद्भाणजयणा उ ॥ ५८९४ ॥

औपमहिकं 'बनं' निश्छिदं चीवरं तेषां संसक्तपानकानां गालगहितोगृंहन्ति । 'तथापि' तेनापि गाल्यमानं यदि न शुष्यति न वा तण्डुलधावनादिकापि रुम्येते, ततो या प्रथमोदेश-१०केऽध्विन गच्छतां ''तुवरे फले य स्क्खे॰'' (गा॰ २९२२) इत्यादिना पानकयतना मणिता सा कर्तव्या ॥ ५८९१ ॥ अथ वधिविषयं विधिमाह—

> संसत्त गोरसस्सा, ण गालणं णेव होइ परिभोगो । कोडिटुग-लिंगमादी, तहिँ जयणा णो य संसत्तं ॥ ५८९५ ॥

यदि कापि संसक्तो गोरसो रूम्यते ततस्तस्य न गालनं न वा परिभोगः कर्तव्यः, किन्तु 15 "कोडिदुग-र्रिंगमाइ" चि कोटिद्वयेन-विद्योभिकोट्या अविद्योधिकोट्या च भक्त-पानप्रहणे यतितस्यं याबदाधाकमीपि गृष्ठते, अन्यलिक्षमपि कृत्वा भक्त-पानमुखायते, न पुनः संसक्तो गोरसो प्रहीतव्यः ॥ ५८९५ ॥

अथ ''इयराणि य" (गा० ५८९१) इत्यादिपश्चार्द्ध व्याचष्टे---

सागारिय सन्वत्तो, णित्थि य छाया विहम्मि दूरे वा । वेला सत्थो व चले, ण णिसीय-पमझणे कुझा ॥ ५८९६ ॥

अध्वति गच्छतां सवैतोऽपि सागारिकम्, छाया च तत्र नास्ति, अस्ति वा परं दूरे, तत्र च गच्छतां वेळाऽतिकामति, सार्थो वा चलति, तत्र उष्णेऽपि भूमाँगे परिष्ठापयेत् । यत्र चोपविश्वतः सागारिकं शङ्कादयो वा दोषाः अशुचिकं वा स्थानं तत्र निषदन-प्रमार्जने अपि न कुर्यात् ॥ ५८९६ ॥

॥ आहारविधिप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ तत एवमसंसकस्य पानकस्यासितं संसक्तमिष संसुष्ट्रपानकं तन्दुलोदकं वा संस-कान् वा सक्तृ तथेव गृहीयात् । इट पानकाथिकारे सक्तप्रहणं संसक्तत्वसाम्यात् प्रसङ्गायातिमितं कृत्वा न दुष्टम् ॥५८९३ ॥ तेषां पुनः संसक्तपानकानां गृहीं कां ॥ २ भ्यते, तत प्रमाशुभ्यति 'असति या' अविद्यानो पानकजाते प्राप्यमाणे इत्यर्थः प्रयानो का ॥ १ भागे सागारिकस्य पद्यतोऽपि पिरिको ॥

पानक विधित्र कृत स्

सूत्रम्---

निग्गंथस्स य गाहावइकुळं पिंडवायपिडयाए अणु-प्यिवट्टस्स अंतोपिडिग्गहगंसि दगे वा दगरए वा दगफुसिए वा परियावजेजा, से य उसिणे भोयण-जाते भोत्रव्वे सिया; से य सीए भोयणजाते तं नो अप्पणा भुंजेजा, नो अन्नेर्सि दावए, एगंते बहुफासुए पदेसे परिद्वेयव्वे सिया १२॥

अस्य सम्बन्धमाह---

आहारविही बुत्तो, अयमण्णो पाणगस्स आरंभो ।

कायचउकाऽऽहारे, कायचउकं च पाणम्मि ॥ ५८९७ ॥
आहारविधिः पूर्वसूत्रे उक्तः, अयं पुनरन्यः पानकस्य विधिवतिषदनाय सुत्रारमः क्रियते ।
तथा आहारेऽनन्तरसूत्रे प्राणम्हणेन त्रसा बीजम्रहणेन वनस्यतिकायाः रजोम्रहणेन पृथिव्यम्निकायौ गृहीताविति कायचतुष्कमुक्तम् । इहापि पानके कायचतुष्कमुच्यते—तत्र शीतोदकमप्कायः, उष्णोदकमम्निकायः, नालिकेरपानकादिकं वनस्यतिकायः, दुग्धं त्रसकायः । एवं १३
चत्वारोऽपि काया अत्रापि सम्भवन्तीति ॥ ५८९७॥ अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्यास्था—

निर्भन्थस्य गृहपतिकुळं पिण्डपातप्रतिज्ञया प्रविष्टस्यान्तःप्रतिष्ठहे भक्त-पानमध्ये 'दकं वा' प्रमुताप्कायरूपं 'दकरजो वा' उदकविन्दुः 'दकस्पर्शितं वा' उदकश्चीकराः पर्यापतेषुः । तक्षोष्णं भोजनजातं ततो भोक्तव्यं स्थात् । अथ श्लीतं तद् मोजनजातं ततस्वनारमा भुझीत, नान्येषां दद्यात् , एकान्ते बहुपाशुके प्रदेशे परिष्ठापितव्यं स्यादिति सुत्रार्थः ॥ अथ माप्यम्— 20

परिमाणे नाणत्तं, दगविंदुं दगरयं वियाणाहि । सीभरमो दगक्रसितं, सेसं त दगं दव खरं वा ॥ ५८९८ ॥

दकरजः भ्रमुतीनां परिमाणकृतं नानात्वस् । तथाहि — यसावद् दकविन्दुस्तं दकरबो विजानीहि । ये तु 'सीमराः' पानीयेऽन्यत्र प्रक्षित्यमाणे उदकसीकरा आगत्य प्रपतन्ति ते दकस्पर्कितम् । 'शेषं तु' यत् प्रमुतमुदकं तद् दकमिति भण्यते । तच द्ववं वा खरं वा भवति 25 इति विषमपदन्यास्थानं भाष्यकृता कृतम् ॥ ५८९८ ॥ सम्प्रति निर्युक्तिविस्तरः —

एमेव वितियसुचे, पलोगणा गिण्हणे य गहिते य । अणमोगा अणुकंषा, पंतचा वा देंगं देखा ॥ ५८९९ ॥ अभक्तनाहारसुवादिदं द्वितीयसूत्रयुच्यते । तत्र द्वितीयसूत्रेऽप्येवमेव विधिर्वष्टन्यैः । महणे

र पा, पश्चिमीता वा दगं को ।। २ दवं दे' ताना ।। ३ व्याः । कथम् १ इति अत माइ—उदकस्य प्रदेशे को ।।

गृष्टीते च पानके 'प्रकोकना' प्रस्तुपेक्षणा पिण्डसेव मन्तत्या। तच्च उदकं त्रिभिः कारणैर्द-याद्। तच्या—''अणगोगा' इत्यादि। अनाभोगेन काचिदगारी एकनैव कांक्रिकं पानीयं चास्तीति इत्या 'कांक्रिकं दास्याभि इति बुद्धा विस्पृतिवशाज्यं दयात् । अनुकम्पया वा श्रीप्मसमये तृषाक्रान्तं साधुं दृष्टा 'शीतलं जलं पिनेट्' इति बुद्धा कांबिदुदकं द्यात् । अमातत्वया मस्तीकत्या वा काचिद् शिक्षकायुपासिका 'परतेपायुदकं न कह्पते अतो व्रतमक्षं करोमि' इति बुद्धा साधुनायुदकं वयात्॥ 'प्रदेश। अथानैव विधिमाह्—

सुद्धम्मि य गहियम्मी, पच्छा णाते विगिचए विहिणा । मीसे परुविते उण्डन्सीतसंजीग चउमंगी ॥ ५९०० ॥

यदि तदुदर्क 'छुद्वे' रिक्ते भतिमहे गृष्टीतं 'पश्चाच' भ्रहणानन्तरं ज्ञातम् यथा—उदक-10मिदम् ; ततः 'विधिना' वश्यमाणेन 'विविश्यात' परिष्ठापयेत् । 'भीते'' ति मिश्रं नाम-यत्र भतिमहे पूर्वमन्यद् द्रवं गृहीतं पश्चाच पानीयं पतितम् एतद् मिश्रमुच्यते, तत्र 'मिश्रे' उज्ज-शीतसंयोगे चतुर्भक्ताः भरूपणा कर्तव्या ॥ ५९०० ॥

तत्र रिक्ते प्रतिष्रहे यद् गृहीतं तस्यायं परिष्ठापनाविधिः---

तत्थेव भाषणम्मी, अलब्भमाणे व आगरसमीवे । सपडिग्गर्ह विगिचह, अपरिस्सव उल्लभाणे वा ॥ ५९०१ ॥

यतो भाजनादिवरतिकथा दत्तं तत्रैव तदुदकं प्रक्षिपति । अथ सा तत्र प्रक्षेत्रं न ददाति तत प्रवमकःभ्यमाने ता प्रच्छाते—इत्तरत्वयेदमानीतम् ! । ततो यस्मात् क्रूष-सरःअप्रतेना-करादानीतं तस्य समीपे गत्वा परिष्ठापनिकानिर्भुक्तिमणितेन (गा० ४ आव० हारि० टीका पत्र ६९९-२०) विधिना परिष्ठापयेत् । अथवा सप्ततिभ्रहमार्ष क्षीग्रहमस्य च्छायायामेकानैत २० स्थापयति । अथ प्रतिभ्रहोऽन्यो न विद्यते ततो यद् अपरिश्रावि पदादिकमार्द्रं जन्मवित भाजनं तत्र प्रक्षिपति ॥ ५९०१ ॥ अथ पूर्वमन्यद्रव्यं गृहीते पतितं तत इयं चूर्तमङ्गी—

दब्बं तु उण्हसीतं, सीउण्हं चेव दो वि उण्हाई।

दुण्णि वि सीताई चाउलोद तह चंदण घते य ॥ ५९०२ ॥

इह द्रव्यं चतुर्या, तथयं।—किखिटुण्णं त्रीतपरिणामम् १ अपरं श्रीतप्रण्णपरिणामम् २ २० अन्यटुण्णपुष्णपरिणामम् ३ अपरं शीतं शीतपरिणामम् १। अथासन्नतात् प्रयमं चतुर्थमन्नं व्याख्याति—''चाउळोद'' इत्यादि । तण्डुळोदक-चन्दन-घृतादीनि द्रव्याणि 'श्रीतानि' शीत-परिणामानि ॥ ५९०२ ॥ तृतीयभन्नमाह—

आयाम अंबकंजिय, जित उसिणाणुसिण तो विवागे वी। उसिणोदग-पेजाती, उसिणा वि तणुं गता सीता॥ ५९०३॥

१ 'त्ते 'विविन्तिः' परिष्ठापयति को॰ ॥ २ °धा—''उण्ह्रसीयं' ति ''स्वनात् स्वम्'' इति कृत्वा किञ्चिं को॰ ॥ ३ 'म् ४ । इह तृतीयमहे समावपरिणामलस्ये द्वे अपि वस्तुनी उण्ये, चतुर्षमहे तु द्वे अपि शीते । अधा' को॰ ॥ ४ शीतसमावानि शीतपरिणामानि मवन्तीति चतुर्थो महः॥५९०२॥अध प्रथम-तृतीयमङ्गावाह को॰॥ ५ °णा उसिण तामा ॥

भायामा-ऽम्ब्रकाक्षिकादीनि द्वन्याणि यद्युष्णानि ततो 'निपाके' परिणामेऽपि तान्युष्णान्येव भवन्तीति कृत्वा वृतीयो भक्तः । यानि पुनरुष्णोत्क-पेयादीनि द्रव्याणि तान्युष्णान्यपि 'तर्नुं' शरीरं गतानि शीतानि भवन्तीत्यनेन अथमो भक्तो व्याख्यातः ॥ ५९०३ ॥

अथ द्वितीयभन्नं व्याचष्टे---

सुत्ताह अंबकंजिय-घणोदसी-तेल्ल-लोण-गुरुमादी । सीता वि होति उसिणा, दुहैतो बुण्हा व ते होति ॥ ५९०४ ॥

सुर्च-मिद्रासोरुः देशविशेषप्रसिद्धो वा कश्चिष् द्रव्यविशेषः, तदादीनि यानि द्रव्याणि, यच अम्हं काञ्चिक्तम्, अम्हा च धनविक्कृतिः, अम्हां च उद्धित्-तक्रम्, यच तैहं रुवणं गुडो वा, एवमादीनि द्रदयाणि शीतान्यपि परिणामत उण्णानि भवन्तीति द्वितीयभक्केऽ- वतरन्ति । अथ तान्युष्णानि ततः 'उष्णानि' उष्णपरिणामानीति तृतीये भक्के प्रतिपच्चानीति 10 ॥ ५९०४॥ आहं कृतिविधः प्रनः परिणामः १ इति उच्यते —

परिणामो खल्ज दुविहो, कायगतो बाहिरो य दन्त्राणं । सीओसिणत्तर्णं पि य, आगंतु तदुन्मवं तेसिं ॥ ५९०५ ॥

द्रव्याणां परिणामः द्विविधः—कायगतो बाह्यस्य । तत्र कायेन-शरीरेणाहारितानां द्रव्याणां यः शीतादिकः परिणामः स कायगतः, यः पुनरनाहारितानां स बाह्यः । स च बाह्यः परिणामः 15 शीतो वा स्वादुष्णो वा । तदिप च शीतोष्णत्वं द्रव्याणां द्विधा—आगन्तुकं तदुद्ववं च ॥ ५९०५ ॥ उभयमि व्याचष्टे—

साभाविया व परिणामिया व सीतादतो तु दन्वाणं । असरिससमागमेण उ, णियमा परिणामतो तेसिं ॥ ५९०६ ॥

स्ताभाविका वा परिणामिका वा शीतावयः पर्याया द्रव्याणां भवन्ति । तत्र स्त्राभाविका 20 यथा—हिमं स्त्रभावशीतस्त्रम्, तापार्वैकं स्त्रभावादेबोण्णम् । परिणामिकास्तु पर्याया द्रव्यान्त-रादिबाखकारणजनिताः, तथा चाह—"असरिस" इत्यादि, असडरोन वस्तुना सह यः समाग्यमः—मीलकस्तेन नियमात् 'तेषां' द्रव्याणां 'परिणामः' पर्यायान्तरगमनं भवति, यथा— उदकादैः श्लीतस्त्रस्यायमितापेन स्वादित्रस्रिमतापेन वा उप्णतागमनम् ॥ ५९०६ ॥

एतदेव सुव्यक्तमाह---

25

30

सीया वि होंति उसिणा, उसिणा वि य सीयगं पुँणरुवेंति । दन्वंतरसंजोगं, कालसभावं च आसज्ज ॥ ५९०७ ॥

द्रव्यान्तरेण-अधि-जळादिना सयोगं-सम्बन्धं फालस्य च-प्रीप्म-हेमन्तादेः सभावमासाध श्रीतान्यपि द्रव्याण्युष्णानि भवन्ति उष्णान्यपि च शीततां पुनरुपयान्ति ॥ ५९०७ ॥

एष आगन्तुकः परिणामो मन्तव्यः । अयं पुनस्तदुद्भवः---

ताबोदगं तु उसिणं, सीया मीसा य सेसगा आबो ।

१°हतो उपहा तामा॰॥ २ "उदची तकं" इति चूर्णो विशेषचूर्णो च॥ ३°कं राजगृह-मगरआवि स्वभा° कां॰॥ ४ पुण भवंति तामा॰॥

एमेव सेसगाइं, रूवीदव्वाइँ सञ्बाइं ॥ ५९०८ ॥

तापोदकं सभावादेवोष्णम्, 'शेषा आपः' अपकायद्रव्याणि शीतानि 'मिश्राणि वा' शीतो-ष्णोभयसभावानि मन्तव्यानि । एवमेव 'शेषाणि' अपकायविरहितानि यानि सवीष्यणि स्रपि-द्रव्याणि तानि कानिचिद्रष्णानि यथा अग्निः, कानिचित् शीतानि यथा हिमम्, कानिचित् 5तु सीतोष्णानि यथा पृथिवी ॥ ५९०८ ॥

एएण सुत्त न गर्त, जो कायगताण होइ परिणामो । सीतोदमिस्सियम्मि उ, दच्वस्मि उ मग्गणा होति ॥ ५९०९ ॥ य एष 'कायगतानाम्' आहारितानां द्रव्याणां परिणाम उक्तो नैतेन सूत्रं गतम्, किन्दुँ 'श्रीतोदकमिश्रितेन' सचित्तोदकमिश्रेण द्रव्येणेहाषिकारः। तत्र चेयं मार्गणा मवति ॥५९०९॥'

दुहतो थोवं एकेकएण अंतिम्म दोहि वी बहुगं।

भाशुगमभाशुगं पि य, फासादिविसेसितं जाणे ॥ ५९१० ॥
इह पूर्वगृहीते दृत्ये यदा शीलोदकं पतित तदा ह्यं वस्पेश्री—''दृहतो थोवं'' ति स्तोकं
स्तोकं पतितिमिति प्रथमो भक्षः । ''एकेक्कपण्" ति स्तोकं बहुकं पतितिमिति द्वितीयः, बहुवैः ।
सोकं पतितिमिति तृतीयः । ''अंतिम्म दोहि वी बहुतं' ति वहुनि वहु पतितिमिति द्वितीयः, बहुवैः ।
15 यद् हृद्धं पतिति यत्र वा पाति तद् भाशुक्तमभाशुकं वा स्पर्शादिविशोधतं जानीयात् । किंगुक्तं
भवति ! — स्पर्श-स्त-गन्धेरुक्तरत्वया यद् अपराणि द्वस्याणि स्तर्यादिभिग्नीवयति—पिणामयति
तद् भाशुक्तम् , तद्विपरीतमभाशुक्तम् । ये च स्तोक-बहुण्दाभ्यां चत्वारो भक्षाः कृतासेषु प्रस्वेक्रममी चत्वारो भक्षा भवति— उण्णे उप्णे पतितम् १ उण्णे शीतं पतितम् २ शीते उण्णे पतितम्
इ शीते (मन्धाम्स— ६००० । सर्वमन्धाम्स— ३९.२९५) शीतं पतितम् १ ॥ ५९१०॥
पतेष विधिमाह—

चरमे विभिचियव्वं, दोसु तु मिन्झिष्ठ पडिऍ भयणा उ । खिप्पं विधिचियव्वं, मायविम्रुकेण समणेणं ॥ ५९११ ॥

चरमं नाम-व्यत् शीते शीतं पतितम् तत् पुनः स्रांके वा सोकं पतितं बहुकं बा बहुकं पतितं भवेद उभयमपि क्षिप्रं 'विषेक्तव्यं' परिष्ठार्ययेतव्यम् । 'द्वयोस्तु मध्यस्योः अङ्गयोः' 25 'डणो शीतं पतितम्, शीतं उप्णं पतितम्' इतिक्षणयोर्वश्यमाणा भजना भवति । यः पुनरूणे उण्णं पतितमिति भयमो भङ्गः तत्र तत्रकृष्णादेव सचित्रमावो नापगच्छतीति कृत्वा क्षिममेव मायाविद्यक्तम् भगोन तद् विवेचनीयम् । मायाविद्यक्तमृष्टणेतं ज्ञापपतिः—शीत्रं परिष्ठाप-विद्यक्तमार्थणेतं अपितः—शीत्रं परिष्ठाप-विद्यक्तमार्थणेतं ततः परित्यक्तं च परिष्ठाप्यति । अश्र मायाविद्यक्तमृष्टणेतं ततः परित्यक्तं च परिष्ठाप्यति । अश्र मायाविद्यक्तमृष्टणेतं ततः परित्यक्तं च परिष्ठाप्यति । अश्र मायाविद्यक्तमृष्टणेतं ततः परित्यक्तं च परिष्ठाप्यति । अश्र मायाविद्यक्ति विद्यत्यति च—तिष्ठद्व तावत् पश्चात् परिणवं परियोक्षेत्रं, उप्पं मायां कुचीतः स्विष्टळात्वांक् परिणवत्ति च—तिष्ठद्व तावत् पश्चात् परिणवं परियोक्षेत्रं, उप्पं मायां कुचीतः स्विष्टळात्वांक् परिणवत्ति । कस्यते ॥ ५९११ ॥

अथ मध्यमभङ्गद्वये भजनामाह----

१ °न्तु विनेयन्युत्पादनार्थमिदं सर्वं व्याख्यातम्। अत्र तु 'शीतो' कां ॥ २ तामेव दर्शयति इत्वतरणं कां ॥ ३ °जनां व्याख्यानयन्नाह् कां ॥॥

थोवं बहुम्मि पडियं, उसिणे सीतोदगं म उन्हांती ।

हंदि हु जाव विगिचति, भावेजति ताव तं तेणं ॥ ५९१२ ॥

बहुके पूर्वगृष्टीते स्त्रोकं पतिवसित्यत्र यदि उच्चे बहुनि शीतोदकं स्त्रोकं पतितं तदा नोज्ञ्रान्ति । कुतः ! इत्याह — 'हन्दि' इत्युपमदर्शने, याबद् विविनक्ति ताबत् 'तत्' स्त्रोकं शीतो-दकं 'तेन' बहुकेनोच्चेन 'भाव्यते' परिणतं क्रियते, ततः परिभोक्तव्यं तदिति माबः ॥५९१ २॥ ठ

जं पुण दुहतो उसिणं, सममतिरेगं व तक्खणा चेव । मज्ज्ञिस्त्रभंगएसं, चिरं पि चिट्ठे बहुं छूटं ॥ ५९१३ ॥

यत् पुनर्ह्विषाऽष्युष्णम् – उप्णे उप्णं पतितिमत्त्यर्थः तत् परिणामतः परस्परं 'समं' तुष्यं भवेद् 'अतिरिक्तं वा' द्वयोरेकतरमधिकतरं तत्रापि तत्त्रणादेव सचिचमावो नापगच्छतीति' वाक्यशेषः । या तु मध्यमा हो भक्तो 'उप्णे शीतं पतितम्, शीते वा उप्णं पतितप्' 10 इतिचक्षणो तयोः स्तोके बहु प्रक्षिप्तं चिरमपि सचिचं तिष्ठेत्, ततस्तदपि क्षिप्रं चिरेण वा विवेचनीयम् ॥ ५९१३ ॥ अथोदकस्येव परिणमनच्छाणमाह——

वण्ण-रस-गंध-फासा, जह दन्वे जिम्म उक्कडा होंति । तह तह चिरं न चिद्रहा असमेस समेस कालेणं ॥ ५९१४ ॥

यसिन् देव्ये यथा यथा वर्ण-नन्ध-स-स्पर्शो उत्कटा उत्कटतरा भवन्ति तथा तथा तेन 15 द्रव्येण सह मिश्रितमुदकं चिरं न तिष्ठति, क्षिपं क्षिपतरं परिणमतीति भावः । किमविदोषेण १ न इत्याह—येऽग्रुमा वर्णादय उत्कटासेप्येव क्षिपं परिणमति, ये तु शुभा वर्णादयसेपूक्टेपु कालेन परिणमति, चिरादित्यर्थः ॥ ५९१४ ॥ अत्रेदं निदर्शनम्—

जो चंदणे कडरसो, संसद्वजले य दूसणा जा तु। सा सब्द दगस्स सत्थं, फासो उ उवग्गहं क्रणति ॥ ५९१५ ॥

ता (अपु परास्त ताय, काला उ उपपाद जुणाता । १८९८ । इह तण्डुकोदक चन्दनेन कापि मिश्रितं तत्रै च चन्दनस्य यः कटुको रक्षः स तण्डुकोदकस्य शक्षं परं यक्तदीयः स्पशेः शीतरुः स जरुसोपम्रहं करोतीति क्रत्वा चिरेण तत् परिणमति । एवं संस्रष्टजनस्यापि या 'चणा' अम्लरसता सा उदकस्य शक्षं स्पर्शस्त शीतरूवादपम्रककारि

अतिश्चरेण परिणमति ॥ ५९१५ ॥ घयकिङ्क-विस्सर्गभा, दगसरथं मधुर-सीतलं ण घतं । कालंतरग्रप्पणा, अविलया चाउलोदस्स ॥ ५९१६ ॥

पुतस्य सबन्धी यः किट्टी यश्च विस्तो गन्धः तातुर्वकस्य राख्नम्, यत् तु रसेन मधुरं स्पर्शेन च शीतरुं पुतं तद् उपग्रहं करोतीति शखं न मबति, अतश्चिरात् परिणमति ।

१ 'ति अतः परिष्ठापनीयं तदिति वाक्य' कां । "इतो णाग पुज्याहितं पि उत्तिणं जं पि पित्तं ते पि उत्तिणं तं पि पित्तं तं पि उत्तिणं तं पित्तं विकास के व

तथा कुंकुसे:--अतिगुलिकेताण्डुलोदकस्याग्लता या कालान्तरेणोतन्ता साऽप्युदकस्य शक्षं भवति ॥ ५९१६ ॥

अच्युकंते जित चाउलोदए छुन्मते जलं अण्णं ।
दोण्णि वि चिरपरिणामा, अवंति एमेव सेसा वि ॥ ५९१७ ॥
'अन्युत्कान्ते' अपरिणते तण्डुलोदके यद् 'अन्यद्' अपरं सचित्तं जलं पक्षिप्यते ततो द्वे
अप्युदके चिरपरिणामे भवतः । 'शेषाण्यि' यानि संख्यानक-कश्पानकादीनि तेष्यि सचित्तेदकं यदि प्रक्षिप्यते ततः 'एवमेव' तान्यपि चिरात् परिणमन्तीति ॥ ५९१७ ॥

अथ द्वितीयपदमाह---

थंडिस्सिस अलंभे, अद्धाणीम असिने गिलाणे ना ।

10 सुद्धा अनिर्विनंता, आउट्टिय गिण्हमाणा ना ॥ ५९१८ ॥
स्मण्डितस्यालाभेडपरिणतपानकमपरिष्ठापयन्तोऽपि गुद्धाः । अध्वा-ऽनमा-ऽशिव-म्लानतेषु
ना कारणेषु पानकस्य दुर्कमतायाम् 'अनिनिक्कतः' अपरिष्ठापयन्तः 'आङ्गद्धिकया ना' जाननोऽपि ग्रह्मतः ग्रद्धाः ॥ ५९१८ ॥

॥ पानकविधिपकृतं समाप्तम् ॥

ब्रह्म रक्षा प्रकृत म्

सूत्रम्---

15

20

25

निग्गंधीए रातो वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिंचमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजातीए वा पक्लिजातीए वा अन्नयरं इंदियजायं परामुसेजा, तं च निग्गंधी साइजेजा, हत्थ-कम्मपडिसेवणप्पत्ता आवजइ मासियं अणुग्धा-इयं १३॥

निग्गंथीए रातो वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिंचमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजातीए वा पिक्खजातीए वा अन्नयरंसि सोयंसि ओगाहिजा, तं च निग्गंथी साइजेजा, मेहुणए-

१ "कुबुसा-आंनगारेता तेसिचएण तंदुलोदयस्य अविलतं चिरेणं कालेणं रूपाकं" इति खूर्णी। "कुबुसो-अभिडुलिओ तस्स केरएणं तंदुलोययस्स अविलतं चिरेण कालेण उप्पर्भ" इति विदेशच्यूणी। २ श्वीप य रा"कां । एतद्युसारणेव कां ठीका, इस्थतां पत्रं १५६१ दिष्पणी २॥

डिसेवणप्पत्ता आवजङ चाउम्मासियं अणुग्धा-इयं १४ ॥

अस्य सूत्रद्वयस्य सम्बन्धमाह-

पढिमेह्नुग-ततियाणं, चरितो अत्थो वताण रक्खद्वा । मेहुणरक्खद्वा प्रण, इंदिय सीए य दो सत्ता ॥ ५९१९ ॥

'मथम-तृतीययोर्नतयोः' माणातिपाता-ऽदत्तादानविरतिलक्षणयो रक्षणार्थं तीर्थकरान्द्रीत-श्रीतोदकपरिभोगे तयोभिङ्गो मा भूदिति कृत्वा पूर्वसूत्रस्यार्थः 'चिरतः' गतः, भणित इत्यर्थः । सम्प्रति त मैधनवतरक्षणार्थमिन्दियविषय-श्रोतोविषये दे सत्रे आरभ्येते ॥ ५९१९ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्ये व्याख्या —निर्धन्थ्याः रात्रौ वा विकाले वा उचारं वा प्रश्रवणं वा विविश्वन्त्या वा विशोधयन्त्या वा अन्यतरः 'पशुजातीयो वा' वानरादिकः 'पक्षिजातीयो 10 वा' मयूरादिकोऽन्यतरदिन्द्रियजातं 'परामृशेत्' स्पृशेत् , सा च निर्मन्थी तं च स्पर्शै 'खाद-येत' 'सन्दरोऽस्य स्पर्शः' इत्यनुमन्येत, इस्तकर्मप्रतिसेवनपामा आपद्यते मासिकमनुद्धातिकं स्थानम् । इह निर्धन्थीनां परिहारतपो न भवतीति कृत्वा "परिहारद्वाणं" ति पदं न पठनीयम् ॥

एवं द्वितीयसुत्रमपि व्याख्येयम् । नवरम्-अन्यतरस्मिन् 'श्रोतसि' योग्यादो वानरादिर-वगाहेत. सा च मैथनप्रतिसेवनप्राप्ता यदि स्वादयेत तैतश्चतर्गरुकमिति सत्रार्थः ॥

अथ भाष्यविस्तरः---

वानर छगला हरिणा, सुणगादीया य पसुगणा होंति । बरहिण चासा हंसा, क्रक्डिंग-सगादिणो पक्सी ॥ ५९२० ॥

वानराः छगला हरिणाः शनकादयश्च पशुगणा मन्तन्याः । वर्हिणश्चाषा हंसाः कुकट-गुकादयश्च पक्षिण उच्यन्ते ॥ ५९२० ॥

जहियं तु अणाययणा, पासवणुचार तहिँ पडिकृद्धं । लहगो य होह मासो, आणादि सती कुलघरे वा ॥ ५९२१ ॥

यत्रैते पराजातीयाः पक्षिजातीयाश्च प्राणिनः सम्भवन्ति तद अनायतनमुच्यते, तत्र निर्धन्थी-नामवस्थानं प्रश्रवणोश्चारपरिष्ठापनं च पतिकृष्टम् । यदि कुर्वन्ति तदा रुघुमासः, आज्ञादयश्च दोषाः । "सई कुछवरे व" चि अक्तभोगिन्याश्च स्मृतिकरणं कुछग्रहे वा भूयस्तासां बान्ध-25 वादिभिर्नयनं कियते ॥ ५९२१ ॥ इदमेव व्याच्छे---

भ्रता-ऽभ्रत्तविभासा, तस्सेवी काति कुलघरे आसि । बंधव तप्पक्सी वा, दहणे लयंति लजाए ॥ ५९२२ ॥

१ °काततदीयजीवादत्त-शीतो° कां०॥ २ °स्य सुत्रद्वयस्य व्याख्या—निर्मन्थ्याः चशब्दो वाक्योपन्यासे रात्री कां ।। ३ तत आपधते चातुर्मासिकमनुद्धातिकम्, चतुर्गुरुक-मित्यर्थः ॥ अथ कां • ॥ ४ °ड-सुयमादि 'तामा • ॥ ५ °ण णयंति तामा • कां • ॥

युक्ता-अक्किविभाषा, युक्तमीमिन्याः स्मृतिकरणममुक्तभीगिन्याश्च कौतुक्युरपेषेतेत्वर्धः । तथा "तस्सेवि" ति गृहवासे तैः—यगुजातीयादिभिः मतिसेविता काचित् कुकगृहे आसीत् सा तान् दृष्ट्वा स्मृतपूर्वरता प्रतिगमनादीनि कुर्यात् । यद्वा तासां बान्धवास्तराक्षिका वा सुद्द-दस्तादशेऽनायतने स्थितां तामार्थिकां दृष्ट्वा रुज्जया भूयः स्वगृहमानयन्ति ॥ ५९२२॥ किश्च—

आर्लिंगणादिगा वा, अणिहुय-मादीसु वा निसेविजा। एरिसगाण पवेसो, ण होति अंतेपुरेसं पि ॥ ५९२३॥

ते पशुजातीयादयस्तां संयतीमालिङ्गेयुः, सा वा संयती तानालिङ्गेत, एवमालिङ्गनादयो दोषा मवेयुः। अपि च—एते वानरादयः समावादेवानिमृताः—कन्दर्पबहुलः मायिनश्च मवन्ति ततस्त्रैरनिभृत-मायिभिः सा कदाचिदास्मानं निषेवयेत् । ईदृशानां च पशु-पक्षिजातीयानां 10 प्रवेद्यो राज्ञोऽन्तःपुरेष्विपे 'न मवति' न दीयते । कारणे पुनरन्यस्या वसतेरमावे तत्रापि तिष्ठेयः॥ ५९२३॥

> कारणें गमणे वि तर्हि, विविचमाणीएँ आगर्तो लिहेजा। गुरुगो य होति मासो, आणाति सती तु स चेव ॥ ५९२४॥

कारणे तत्रापि स्थितानामुचारम्भी प्रश्रवणम्मी वा गला 'विविधन्त्याः' परिष्ठापयन्त्या 15 बानरादिः समागच्छेत्, आगतश्च तामालिक्षेत्, सा च यदि 'लिखात्' तं स्पर्श स्वादयेत् ततो गुरुमासः आज्ञादयश्च दोषाः, स्पृतिश्च सा चैव पूर्वोक्ता भवति ॥ ५२२४ ॥

अथ न स्नादयति ततः सा शुद्धा, यतना चेयं तत्र कर्तव्या— वंदेण दंडहृत्था, निग्मंतं आयरंति पडिचरणं।

पविसंते वारिति य, दिवा वि ण उ काइयं एका ॥ ५९२५ ॥

ं 'ब्रैन्देन' द्वि-त्यादिव्यतिनीसमुदायेन दण्डकहत्ता निर्मच्छन्ति, निर्मत्य च कायिकादिक-माचरन्ति, वानरादीनां च प्रतिचरणं कुर्वन्ति । ये तत्राभिद्रवन्ति तान् दण्डकेन ताडयन्ति, प्रतिक्रये च प्रविश्यते। निवारयन्ति । दिवाऽषि च कायिकास्मिम् 'एका' एकािकनी न गच्छति ॥ ५९२५ ॥ व्याख्यातमिन्द्रियसूत्रम् । सम्प्रति श्रोतःसूत्रं व्याचष्टे—

एवं तु इंदिएहिं, सोते लहुगा य परिणए गुरुगा।

वितियपद कारणिर्मम, इंदिय सोए य आगाहे ।। ५९२६ ।।
एवं तावद इन्द्रियस्त्रे प्रायक्षित्तं विभिश्लोकः । यत्र तु पश्चतातीयादयः श्रोतोऽवगाहनं
कुर्वन्ति तत्र तिष्ठन्तीनां चतुर्रुष्ठ् । तेषु श्रोतोऽवगाहनं कुर्वाणिषु यदि सा सुन्दरमिदमिति
परिणता ततश्चतुर्गुरु । द्वितीयपदे आगाहे कारणे इन्द्रिये ओतिस च परामर्श्व लादयेदिष ।
इद्युत्तरत्र भावयिष्यते ॥ ५९२६ ॥ कारणे एकाकिन्यासिष्ठन्त्यास्तावदियं यतना—

गिहिणिस्सा एगागी, ताहिँ समं णिति रत्तिग्रुभयस्सा ।

१ °वा कर्चवा, इंदरोऽनायतने स्थिताया मुक्तभोगिन्याः स्मृतिकरणम् अमुक्तभोगिन्याः स्रोतिकरणम् अमुक्तभोगिन्याः स्रोतिकरणम् त्र ताहरो उपाश्रवे स्थिता सती 'वन्ये' को ॥ २ ताहरो उपाश्रवे स्थिता सती 'वन्ये' को ॥

दंडगसारक्खणया, वारिति दिवा य पेष्ट्रंते ॥ ५९२७ ॥

गृहस्पनिश्रया कारणे काचिदेकािकती वसन्ती 'तािभः' अविरतिकािभः समं रात्री 'उमयस्य' प्रश्नवणीकारस्य न्युरसर्जनार्थं निर्पच्छति, निर्यन्ती च वानरादीतिभद्रवतो दण्डकेम संरक्षति, दिवा च प्रतिश्रयं 'प्रेरयतः' प्रविदातो निवारयति ॥ ५९,२७॥ अथागाहकारणं व्याचेष्टे—

> अद्वाण सद्द आर्त्तिगणादिपाकम्मऽतिच्छिता संती । अचित्त विव अणिहत, कुलघर सद्वादिंगे चेव ॥ ५९२८ ॥

कस्याश्चिदार्थिकायाः सिनिमचोऽनिमिचो वा मोहोद्भवः सञ्चातस्वतो निर्विकृतिकादिकायां मोहिष्किस्सायां कृतायागिप यदा न तिष्ठति तदाऽस्थाने शन्दगतिबद्धायां वसती सा स्थाप-नीया। ततो यत्राविरतिकानामालिक्षनादिकं क्रियमाणं दृश्यते तत्र स्थाप्यते। तत्राऽप्यनुपरते मोहे पादकमं करोति। तद्यप्यतिकानता सत्ते यद् 'अचित्तं विन्यं' कुँग्दृश्चित्तं तत्र प्रति-10 सेनयति। तथाऽप्यतिष्ठति योऽनिमृतत्तानादिकं सर्वमणि कृत्या ततः कुरूगृष्टे मणिन्या आगृत्वासाया वा आलिक्षनादिकं क्रियमाणं प्रेशते। तदमात्रे श्राद्धिकार्याः, तदपासी यथामदिकाया अपि प्रेशते। प्रथममिन्द्रियं, पश्चात् श्रीतस्यपि यतनयेति॥ ५९२८॥

सूत्रम्---

नो कप्पइ निगांथीए एगाणियाए गाहावइकुँठं पिंडवायपडियाए निक्स्लिमित्तए वा पवितित्तए वा, बहिया वियारमृमिं वा विहारमृमिं वा निक्स्लिमित्तए वा पवितित्तए वा, एवं गामाणुगामं वा दूइजित्तए वा वासावासं वा वस्थए १५॥

एवं यावदेकपार्श्वशायिग्रञ्जं तावत् सर्वाण्यपि सूत्राण्युचारयितव्यानि ॥ अथामीषां सूत्राणां २० सम्बन्धमाह —

> बंभवयरक्खणद्वा, एमधिमारा तु होंतिमे सुत्ता । जा एमपाससायी, विसेसतो संज्ञतीवरमे ॥ ५९२९ ॥

ब्रह्मजतरक्षणार्थमनन्तरं सुबद्धयसुक्तत्, अमृत्यिः सुत्राणि यावदेकपार्श्वद्वाचिद्यतं तावत् सर्वाण्यपि 'एकाधिकाराणि' तस्येव ब्रह्मजतस्य रक्षणार्थमिमिषीयन्ते । ''विसेसओ संजई-25 वन्मे'' ति एतेषु सुत्रेषु किश्चिद् निर्म्रत्यानामिष सम्मवति, यथा—एँकाकियुत्रस्; परं विशेषतः संयतीवर्गमिकिरुलामृति सर्वाण्यपि द्रष्टःथानि ॥ ५२२९ ॥

१ °तोहे य को । १ "जापे न ठाति ताहे डॉडसेवेन" हित चूर्णी। "जाहे न ठाह ताहे फुंकसिवेन" हित बिनोयचूर्णी। १ व्याः आदिवास्त्रात् तद् को । । ४ 'कुळ अस्तार वा पाणाए चा लिक्सा का । एतथाजदासरेक को डीस, हस्वता पत्रं १५६० टिव्यनी १ ॥ ५ 'वार्षाधिकार' विस्त अविता । किसा —"विसे "को ॥ ६ एकपार्थ्यशायियुव्य को ॥

खनेन सम्बन्धेनायातानाममीषां प्रथमत्त्रस्य तावव् व्याख्या—नो करपते निर्प्रन्थया एका-किन्या गृहपतिकुंकं रिण्डपातप्रतिज्ञयां निष्क्रीमतुं वा मवेषुं वा, बहिर्विचारम्मौ वा विहार-भूमौ वा निष्क्रमितुं वा प्रवेषुं वा, प्रामानुष्रामं वा 'द्रोतुं' विहर्तुं वर्षावासं वा वस्तुमिति सुत्रार्थः ॥ सम्प्रति निर्युक्तिविक्तरः—

एगागी वद्यंती, अप्या त महत्वता परिचत्ता ।

छडु गुरु रुडुगा गुरुगा, भिक्ख वियारे वसहि गामे ॥ ५९३० ॥ एकाकिनी निर्मन्या यदि भिक्षादी बजति तत आत्मा महाबताने च तया परित्यकानि भवन्ति, खेनाचुपद्रवसम्भवात्। अतो भिक्षायामेकाकिन्या गच्छन्त्या रुचुनासः, बहिविंबारम्या गच्छन्त्यां गुरुगासः, ऋतुबद्धे वर्षावासे वा वसति एकाकिनी गृह्वाति चतुर्केषु, प्रामानुपाममे-१०काकिनी द्रवति चतुर्गुरु॥ ५९३०॥ इदमविशेषितं प्रायधित्तमुक्तम्। अथ विशेषितमाह—

मासादी जा गुरुगा, थेरी-खुड्डी-विमज्झ-तरुणीणं । तव-कालविसिद्रा वा, चउसं पि चउण्ड मासाई ॥ ५९३१ ॥

संविराया एकाकिन्या भिक्षावे। वजन्या भाराख्यु, क्षुकिकाया मासगुरू, विमध्यमायाश्चतुर्रुधु, तरुण्याश्चतुर्गुरु । अंश्वना स्वविरा यदि एकाकिनी भिक्षायां याति ततो मासल्यु तपसा
10 कालेन च रुषुकम्, बहिर्षिचारम्भे। विहारम्भो वा याति मासल्यु कालेन गुरुकम्, वसर्ति
गृह्णाते मासल्यु तपसा गुरुकम्, मामानुमामं द्रवति मासल्यु तपसा कालेन च गुरुकम् ।
क्षुक्षिकाया एवमेच चतुर्धु स्थानेयु चत्वारि मासगुरूणि तपः-कालविशेषितानि कर्तव्याति ।
विमध्यमायाश्चतुर्थु स्थानेयु चत्वारि चतुर्वश्चित तपः-कालविशेषितानि । तरुण्याः स्थानचतुष्टयेऽपि तथेच तपः-कालविशेषितानि चस्वारि चतुर्गुरूणि ॥ ५२३१॥ तथ्य दोषानाहः—
20 अच्छती वेचानीः निक्ष एक होसे ण हरिक्या पाते ।

अच्छंती वेगागी, ैंकिं ण्हु हु दोसे ण इत्थिगा पावे । आमोसग तरुणेहिं, किं पुण पंथम्मि संका य ॥ ५९३२ ॥

किमेकाकिनी स्त्री प्रतिश्रये तिष्ठन्ती दोषान् न प्राप्नोति येनैवं भिक्षाटनादिकमेवैकाकिन्याः

मितिषिष्यते १ इति शिष्येण पृष्ठे सूरिराह—तन्नापि तिष्ठन्ती प्राप्नोत्येव दोषान् परम् आमोषकाः—सेनास्तरुणाः—युवानतेः इता एकाकिन्याः पिथ गच्छन्त्या मूयांतो दोषाः, शक्का च
26 तत्र भवति— अवस्यमेषा दुःशीला येनैकाकिनी गच्छति ॥ ५९२२ ॥ किक्क-

एगाणियाएँ दोसा, साणे तरुणे तहेव पिंडणीए । भिक्खऽविसोहि महन्वत, तम्हा सवितिञ्जियागमणं ॥ ५९३३ ॥

१ 'कुलं भक्ताय वा पानाय वा निष्क' कं ।। २ 'भूमी उपलक्षणत्वाद् विहारभूमी व गच्छ' कं ।। ३ स्वविरा-श्रुल्लिक: विमध्यमान्तरुणीनां यथाक्षमं मासल्युकमादी कृत्या बतुर्गुरुकं यावद् प्रायश्चित्तम्। तिष्या—स्वविराया कं ।। ४ अथवा 'चतव्या-स्वविराया कं ।। ४ अथवा 'चतव्या-स्वविराया कं ।। ४ अथवा 'चतव्या-स्वविराया कं ।। ४ कि. उत्पादा कि. प्रायश्चित्र या विष्यया स्थाविरायश्चित्र के ।। ५ कि. प्रायश्चित्र या विष्यया स्थाविर या विष्यया स्थावित्र के ।। भिक्षा विष्यया स्थावित्र विषया स्थावित्र विषया विषया स्थावित्र विषया व

एकाकिन्या भिक्षामटन्या पते दोषा भवन्ति—धानः समागत्य दरीत्, तरुणो वा कथि-दुपसर्गयेत्, प्रत्यनीको वा हन्यात्, गृहत्रयादानीतायां निक्षायामनुषयुज्य गृह्यमाणायामेषणा-विद्युद्धिने भवति, कोण्टल-विण्टलपयोगादिना च महात्रतानि विराध्यन्ते । यत एते दोषाः खतः सद्वितीयया निर्मन्य्या भिक्षादौ गमनं कर्तत्यस् ॥ ५९३३ ॥ द्वितीयपदमाह—

असिवादि मीससत्थे, इत्थी पुरिसे य पूतिते लिंगे । एसा उ पंथ जयणा, भाविय वसही य भिक्खा य ॥ ५९३४ ॥

अशिवादिभिः कारणैः कदाचिदेकाकिन्यपि भवेत् तत्रेयं यतना— प्रामान्तरं गच्छानी स्वीसार्थेन सह व्रजति, तदमावे पुरुषमिश्रेण स्वीसार्थेन, तदपाती सम्बन्धिपुरुषसार्थेन व्रजति, स्वथा यत् तत्र परिवाजकादिलिकं पूजितं तद् विधाय गच्छति । एषा पथि गच्छतां यतना भणिता । प्रामे च प्राप्ता यानि साधुमावितानि कुळानि तेषु वसतिं गृह्वाति, मिक्षामपि तेष्वेव 10 कुरुषु पर्यटति ॥ ५९६४ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथीए अचेलियाए हुंतए १६॥

नो कल्पते निर्मन्थ्याः 'अचेलिकायाः' वस्तरहिताया भवितुम् । एष स्त्रार्थः ॥ अथ भाष्यम्— 15

बुत्ती अचेलधम्मी, इति काइ अचेलगत्तणं वनसे ।

जिणकप्पो चऽजाणं, निवारिओ होइ एवं तु ॥ ५९३५ ॥ अचेलको धर्मो भगवता प्रोक्त इति परिभाव्य काचिदार्थिका अचेलकत्वं 'व्यवस्थेत्' कर्तुम-भिरुषेत्, अतस्रतिषेधार्थिकिंद् सूत्रं कृतम् । अचेलकत्वप्रतिषेधेन आर्थाणां जिनकस्पोऽपि 'एवम' अनेनैव सुत्रेण निवारितो मन्तव्यः ॥ ५९३५ ॥ कृतः ' इत्याह—

अजियम्मि साहसम्मी, इत्थी ण चए अचेलिया होउं। साहसममं पि करे, तेषेव अदृष्यसंगेण ॥ ५९३६॥ कुठडा वि ताव षोच्छति, अचेलयं किम्रु सई कुले जाया। धिकारेषकियाणं. तित्थच्छेओ उलम वित्ती॥ ५९३७॥

'साध्वसे' भये तरुणादिकृतोपसर्भसपुरथेऽजिते सति अचेलिका भवितुं 'से' निर्मन्यी न 25 शकुयात्। अस भवित ततः 'तेनैव अतिसक्षेत्रने' अचेलताल्क्षणेन 'अन्यदर्षि' चतुर्थसेवादिकं साहसं कुर्यात्। ५९३६॥ तथा—

कुरुटाऽपि ताबद् नेच्छत्यचेछताम् किं पुनः कुले जाता 'सती' साध्वी १ । अचेछतापति-पन्नानां चार्यिकाणां 'विक्कारैयुक्कितानां' लोकापवादजुगुम्सितानां तीर्थेच्छेदो दुर्कमा च दृत्तिर्भ-चित, न कोऽपि प्रत्रजति न वा भक्त-पानादिकं ददातीत्यर्थः ॥ ५९३७ ॥

गुरुगा अचेलिगाणं, समलं च दुर्गछियं गरहियं च।

१ °न्ती सा कारणतः एकाकिनी प्रथमतः स्रीसार्थे° कं । ॥ २ °रघुक्कि° कं । । °रमुक्कि° मा॰ तारी॰ तामा॰ ॥ ३ °रघुक्कि° कं ॰ । °रमुक्कि? मा॰ तारी॰ ॥

होइ परपत्थणिजा, विदयं अद्धाणमाईसु ॥ ५९३८ ॥

जत एव यथार्थिका अवेलिका मवन्ति ततस्तासां चतुर्गुरुकाः आज्ञादयश्च दोषाः । तथा चेक्सित्तां संगतीं 'समलां' मलदिः पदेहां हम्न लेकः 'जुगुप्सतं जुगुप्सां कुर्यात्—व्याः ! कष्टम्, इह्छोके एवेहश्यवस्या परलोके तु पापतरा भविष्यति, 'गार्हितं च' गर्हो प्रवचनस्य ४ कुर्यात्—असारं सर्वमेतव् दर्शनमिति । अवेलिका च परस्य प्रार्थनीया भवति । अत्र द्विती-ययदमध्यादिषु विविक्तानां मन्तव्यय् ॥ ५९३८ ॥ अपि च—

षुणरावित्त निवारण, उदिण्णमोहो व दहु पेल्लेजा । पडिबंधो गमणाई. डिंडियदोसा य निगिणाए ॥ ५९३९ ॥

अचेल्यमायाँ दृष्ट्वा प्रवश्यामिनुसानामपि कुल्लीणां पुनराष्ट्रचिनेवति, प्रवन्यां न शृद्धीपुरि10 त्वार्षः । अन्यो वा कश्चित् निवारणं कुर्योत् — किमेतासां कापालिनीनां समीपे प्रवजितेन !

इति । यहा कश्चित्रचीणंमोहस्तामपावृतां दृष्ट्वा कर्मगुरुकतया पेरयेत् । साऽपि तत्रैव मितवन्यं
कुर्योत् प्रतिगमंनादीनि वा विदय्यात् । 'विष्टिमदोषाक्ष' गर्भोत्यात्वप्रभृतयो भयेषुः । यत

एते नमाया दोषा अतोऽचेल्या न भवितन्यम् । द्वितीयपदे संयत्योऽध्यनि सेतीविविक्तास्त्रतो न किमपि वसं भवेत् , आदिशक्यात् स्वितिच्या यक्षाविष्टा वा वस्नाणि परित्यनेत् ,

10 एवमचेलाऽपि भवतीति ॥ ५९३९ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथीय अपाइयाए हुंतए १७॥

नो करवते निर्मन्थ्याः 'अपात्रायाः' पात्ररहिताया भवितुमिति सुत्रार्थः ॥ अथ भाष्यम्— गोणे साणे व्य वते, ओभावण स्थितमा कुरुषरे य ।

20 णीसह खइयल्जा, सुण्हाए होति दिहंतो ॥ ५९४० ॥

पात्रकमन्तरेण यत्र तत्र समुद्देशनीयम् ततो लोको त्र्यात्—यथा गौथत्रैव चारि प्राप्नोति तत्रैवालक्ष्मथ्यति, यथा वा धानो यत्रैव खरणमप्याहारं लगते तत्रैव निस्त्यो सुद्धे, एवमेता लगि गो-धानसहस्यो यत्रैव प्राप्नुवन्ति तत्रैव लोकस्य पुरतः समुद्दिशन्ति, अहो ! अमूमिगीवर्त धानवते वा प्रतिपत्नम् ; एवमपश्राजना भवति । "सिसणा कुल्धरे र" ति तास्त्रथाभुक्षाना २० हष्टा तदीयकुल्धर्हे गत्वा लोकाः सिसां कुर्यात्, यथा—युप्पदीया दुहितरः स्त्रृण वा याः पूर्व चन्द्र-पूर्यक्रिणोप्यस्थ्रष्टगात्रास्ताः साम्यतं सर्वलोकपुरतो गा इव चरन्त्यो हिण्डन्ते । प्रवृक्तके ते भूयसाः सगृहमानयन्ति । "नीतहं" अत्यर्थं च 'स्वादितं' भक्षणं लोकस्य पुरतः कुर्वाणास्य लोका नृपात् —कहो ! बहुमक्षका लमूः, स्त्रीणां च लज्जा विमृत्यणं सा चैतासां नास्त्रिति । अत्र च लज्जायां सुपाद्दाननो भवति । स च द्विषा—प्रशसोऽप्रशस्तश्च ॥ ५९४० ॥

उचासणस्मि सुण्हा, ण णिसीयह ण वि य भासए उचं। णेव पगासे भुंजह, गृहह वि य णाम अप्पाणं॥ ५९४१॥

१ °मनं-भूयो गृहवासाभ्रयणं तद् अादिशब्दात् पार्श्वस्थादिगमनं वा ब्रिद् का० ॥

यथा 'सुषा' समूक्ते आसने न निषीदति, नामि 'उत्तं' महता झन्देन भाषते, न च मकारो भूमाने प्रक्ते, आत्मीयं च नाम 'गृहति' न मकटयति, एवं संवतीभिरिष भवितव्यय् ॥५९४१॥ अप्रश्नस्तसुषाष्ट्रान्ताः पुनरवय्---

> अहवा महापदाणि, सुण्हा ससुरी व इक्तमैकस्स । इलमाणामि विवासं, लजाणासेण पावंती ॥ ५९४२ ॥

'अथवा' मकारान्तरेण कुषारष्टान्तः कियते—'महावदानि' विक्वष्टतराणि बदानि खुषा श्रद्धाः केकस्य परस्परं मयच्छन्तो यथा कज्ञानारोन विनाशं माम्नुतः तथा संयत्वपि निकंजा विनश्रवि हासप्तरार्थः । मानार्थस्ययम्

एगस्स भिजाइयस्स भजाए मयाए पुत्तेण से अहियाणि 'माय' ति काउं गंगं नीयाणि । इयरिहें मुष्टा-समुरेहिं हास सिङ्काइयं करेतिहिं निक्षज्ञतणाओं निस्सेणि आरुहिचा व्यभिष्पाय-10 पुत्र्यं विगिहतराइं पयाई देतिहिं एकमैकस्स सागारियं पद्धप्पाइयं । दो वि विणद्माइं । एवं निक्षज्ञाए विणासो हुज्जा ॥ ५९४२ ॥ द्वितीयपदमाह—

> पार्यासह तेणहिए, झामिय वृढे व सावयमए वा । बोहिमए खित्ताह व, अपाह्या हुऊ विद्यपदे ॥ ५९४३ ॥

पात्रस्वामाने, स्तेनकेन वा हतेऽभिना वा ध्यामिते दकपूरेण वा ब्यूढे पात्रे, श्यापदमये 16 बोषिकमये वा सींघ पात्राणि परित्यत्रय नष्टा सती, श्विसचित्रा वा आदिशस्त्राद् यक्षानिष्टां वा 'अपात्रिका' पात्ररहिता द्वितीयपदे भवेत् ॥ ५९७३ ॥

सूत्रम् —

नो कप्पइ निग्गंथीय वोसटुकाइयाए हुंतए १८॥

नो करवते निर्धन्थ्याः 'व्युत्त्वृष्टकायिकायाः' परित्यक्तदेहाया भविद्वमिति सूत्रार्थः ॥ अत्र भाष्यम्—

बोसटुकाय पेळ्ळण-तरुणाई गहण दोस ते चेव । दब्बावह अगणिम्मि य, सावयभय बोहिए वितियं ॥ ५९४४ ॥

च्युत्यप्रकायिका नाम-'दिच्यायुपसर्या मया सोढण्याः' इत्यिभग्रहं गृहीत्वा शरीरं ज्युत्स्यज्य समयमसिद्वेनाभिभवकायोत्सर्येण स्थिता, तथास्थितायाधीदीर्णमोहप्रेरण-तरुणग्रहणा स्थल एव 25 दोषा मन्तव्याः । द्वितीयपैदे तु द्रव्यापदि अभिसम्ब्रमे श्वापदभये बोधिकभये वा गाडतरे च्यस्थिते ख्युत्त्यहकायाऽपि भवेत् ॥ ५९४४ ॥

स्वन्--

नो कप्पड्ट निग्गंथीए बहिया गामस्स वा जाव सन्निवेसस्स वा उड्डं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय

१ °यपदमत्र भवति, कि पुनस्तत्? इत्याह—द्रव्यापदि समूत्पद्वायात्र शक्ति का ॥

सूराभिमुहीए एगपाइयाए ठिच्चा आयावणाए आयावित्तए।

कप्पइ से उवस्तयस्स अंतोवगडाए संघाडिपडिव-द्धाए पछंबियबाहियाए समतछपाइयाए ठिचा

⁵ आयावणाए आयावित्तए १९ ॥

नो करूपते निर्भन्थ्या बहिर्धामस्य वा यावत् सिलवेशस्य वां 'कर्द्धम्' ऊर्द्धाभिमुली बाह् 'भगृष्ध मगृष्धं' मकर्षेण गृहीता कृत्वेत्यवंः सूर्याभिमुल्याः 'एकपादिकायाः' एकं पादमुर्द्धमा-कृष्ध्यापमेकं पादं भुवि कृतवत्या एवंविधायाः खिल्वा आतापनयाऽऽतापिवतुम् । किन्तु—-करूपते ''से'' तस्या उपाश्रयत्यानविभाजायां प्रचम्वितवाहायाः समतकपादिकायाः खित्वा १० श्रातापनया आतापिवत्रमिति सत्रावंः ॥ अथ भाष्यम्—-

आयावणा य तिविहा, उक्तेसा मज्झिमा जहण्णा य । उक्तोसा उ णिवण्णा, णिसण्ण मज्झा ठिय जहण्णा ॥ ५९४५ ॥ आतापना त्रिविधा—उक्त्रष्टा मध्यमा जवन्या च । तत्रोक्त्रष्टा निपन्ना, निपन्नः-द्यायतो यां करोतीत्वैधः । मध्यमा निष्णास्य । जवन्या "ठिय" चि जद्भीस्वतस्य ॥ ५९४५ ॥ १३ प्रसेकेका त्रिविधा—

> तिविहा होइ निवण्णा, ओर्मेत्थिय पास तहयमुत्ताणा । उक्तोसुकोसा उक्तोसमन्त्रिमा उक्तोसगजहण्णा ॥ ५९४६ ॥

या निपत्रस्योत्कृष्टातापना सा त्रिविधा भवति — उस्कृष्टोर्कृष्टा उस्कृष्टमध्यमा उत्कृष्टजधन्य। च । तत्र यद् अवाष्पुलं निपत्य आतापना क्रियते सा उत्कृष्टोत्कृष्टा । या तु पार्श्वतः शयानैः २० क्रियते सा उत्कृष्टमध्यमा । या पुनरुतानशयनेन विधीयते सा 'तृतीया' उत्कृष्टजधन्या ॥५९४६॥

> मज्ज्ञकोसा दुहओ, वि मज्ज्ञिमा मज्ज्ञिमाजहण्णा य । अहमुकोसाऽहममज्ज्ञिमा य अहमाहमा चरिमा ॥ ५९४७ ॥

१ वा, यावन्करणात् सेटस्य वा कवंटस्य वा मडम्बस्य वा इत्यादिपरिप्रहः, 'ऊर्ड्स', कां ।। २ उपाध्रयसः 'अन्तवेषडायां' वयाडा नाम-पाटकस्तस्याम्यन्तरे 'सङ्ग्रहीप्रक्तिं व बद्धायाः' सङ्ग्रहीप्रक्ति स्वाद्धान्ति सङ्ग्रित्यम् सङ्ग्रहीप्रक्ति स्वाद्धान्ति सङ्ग्रित्यम् स्वाद्धाने सङ्ग्रह्मित्यक्षेत्रम् व्यवस्ताने स्वाद्धान्ति स्वाद्धानि स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धान्ति स्वाद्धानि स्वाद्यानि स्वाद्धानि स्वाद्धा

15

20

25

निषण्णस्य या मध्यमातापना सा त्रिधा---मध्यमोरकृष्टा ''दृहुओ वि मज्ज्ञिम'' ति मध्य-ममध्यमा मध्यमज्ञवन्या च । ऊर्व्हस्थितस्य या जवन्या साऽपि त्रिधा-अधमीत्कृष्टा अधम-मध्यमा अधमाधमा च चरिमेति । अधमशब्दो जघन्यवाचकोऽत्र द्रष्टव्यः ॥ ५९४७ ॥

ऐतासामिदं स्वरूपम्—

पलियंक अद्ध उकुडुग, मो य तिविहा उ मज्ज्ञिमा होह। तह्या उ हत्थिसुंडेंगपाद समपादिगा चेत्र ॥ ५९४८ ॥

मध्यमोत्क्रष्टा पर्यक्कासनसंस्थिता. मध्यममध्यमा अर्द्धपर्यक्का, मध्यमजघन्या उत्कटिका । क्रचिदादर्शे प्रवीदिमित्थं दृश्यते—''गोदोहकड पिल्यंक मो उ तिविहा उ मिल्झमा होइ" ति, तत्र मध्यमीत्कृष्टा गोदोहिका, मध्यममध्यमा उत्कटिका, मध्यमजधन्या पर्यक्कास-नरूपा। मोशब्दैः पादपूरणे । एषा त्रिविधा मध्यमा भवति । या तु 'तृतीया' स्थितस्य 10 जवन्योत्कृष्टादिभेदात् त्रिधा भणिता सा जवन्योत्कृष्टा 'हस्तिग्रुण्डिका' पुताभ्यामुपविष्टस्यैक-पादोत्पाटनरूपा, जघन्यमध्यमा 'एकपादिका' उत्थितस्थैकपादेनावस्थानम् , जघन्यजघन्या 'समपादिका' समतलाभ्यां पादाभ्यां स्थित्वा यद् ऊर्द्धस्थितैराताप्यते ॥ ५९४८ ॥

कथं पुनः शयितस्योत्कृष्टातापना भवति ? इति उच्यते-

मञ्बंगिओ पतावी. पताविया घम्मरस्सिणा भूमी। ण य कमइ तत्थ वाओ, विस्सामी णेव गत्ताणं ॥ ५९४९ ॥

भूमौ निवन्नस्य सर्वाङ्गोणः 'प्रतापः' प्रकर्षेण तापो लगति, धर्मरदिमना च मूमिः प्रकर्षेण-अत्यन्तं तापिता, न च 'तत्र' भूमी वायः 'क्रमते' प्रचरति, न च 'गात्राणाम्' अज्ञानां विश्रामी भवति. अतो निपन्नस्योत्कष्टातापना मन्तव्या ॥ ५९४९ ॥

अधामुषां मध्यादार्थिकाणां काऽऽआतापना कर्त्ते करूपते ? इत्यत आह---

एयासि णवण्डं पी. अग्रणाया संजर्डण अंतिह्या।

सेसा नाणुकाया. अद्र त आतावणा तासि ॥ ५९५० ॥ एतासां नवानामप्यातापनानां मध्यादु 'अन्तिमा' समपादिकाख्या आतापना संयतीनामन्-जाता । 'शेषाः' अष्टावातापनास्तासां नानुज्ञाताः ॥ ५९५० ॥

कीहरो पनः स्थाने ता आतापयन्ति ? इति उच्यते---

पालीहिं जत्थ दीसह, जत्थ य सेंहरं विसंति न जुवाणा। उग्गहमादिस सञ्जा. आयावयते तहि अजा ॥ ५९५१ ॥

यत्र प्रतिश्रयपालिकाभिः संयतीभिरातापयन्ती दृश्यते, यत्र च 'खैरं' खच्छन्दं यवानो न प्रविशन्ति तत्र स्थाने ऽवप्रहा-ऽनन्तकादिभिः सङ्घाटिकान्तैरुपकरणैः 'सज्जा' आयुक्ता आर्थिका प्रलम्बतबाहुयुगला आतापयति ॥ ५९५१ ॥ 30

१ पतासां यथाकममिवं का॰ ॥ २ चूर्णिकता विशेषचूर्णिकता चैष एव पाठ भारतोऽस्ति । तथाहि---"मिज्ञसुकोशा मिज्रसमानिसमा मिज्रानजहन्ता गोदोहिया उक्कड्रगा प्रतियंका यथासञ्ज्यम" इति ॥ ३ °म्द डमयोरपि पाठयोः पाद' कां ।। ४ सहरं वयंति ण जुवाणा तामा ।।

किमधैमक्महानन्तकादिसञ्जा ! इति चेद् अत आह-

क्षेज्छाएँ निवडिताए, वातेण सम्रुद्धते व संवरणे । गोतरमजयणदोसा, जे बता ते उ पाविजा ॥ ५९५२ ॥

तस्या आतापयन्त्याः स्वरतरातपतम्पर्कपरितापितायाः कदाचिद् मूच्छी सङ्गार्येत सथा च 5निपतितायाः, वातेन वा 'संवरणे' प्रावरणे समुद्धते, अवमहामन्तकादिमिर्विना गोचरचर्या-यामयतनया मनिष्टाया ये दोवास्तृतीयोदेशके उक्तास्तान् मामुयात्, अतस्तैः मादृता आतापर्यते ॥ ५९५२ ॥

सैत्रम--

10

20

नो कप्पइ निगंधीए ठाणाययाए हुंतए २०॥
नो कप्पइ निगंधीए पडिमट्टाइयाए हुंतए २१॥
एवं नेसिज्जियाए २२ उक्कुडुगासिणयाए २३ वीरासिणयाए २४ दंडासिणयाए २५ ठगंडसाइयाए २६
ओसंथियाए २७ उत्ताणियाए २८ अंबखुज्जियाए २९
एगपासियाए ३०॥

13 वैतिकस्पतै निर्मन्थ्याः स्थानायताया भितृतुम्। एवं मित्रमास्थायिम्या नेषधिकाया उत्किटि-कासनिकाया वीरासनिकाया दण्डासनिकाया उपण्डशायिन्या अवाञ्चलाया उत्तानिकाया आमञ्जल्जिकाया एकपार्थशायिन्या इति सुत्राक्षरसंस्कारः ॥

अत्र भाष्यकारो विषमपदानि स्यास्त्यानयति---

उद्धाणं डाणायतं तु पडिमाउ होति मासाई । पंचेन णिसिजाओ, तासि विभासा उ कायन्ना ॥ ५९५३ ॥ बीरासणं तु सीहासणे व जह मुक्तजण्युक णिनिहो । दंडे लगंड उनमा, आयत सुजाय दुण्हं पि ॥ ५९५४ ॥

स्थानायतं नाम ऊर्द्धस्थानरूपमायतं स्थानं तद् बस्थामस्ति सा स्थानायतिका । केचित्तु "ठाणाइयाए" इति पठन्ति, तत्रायमधैः—सर्वेषां निषदनादीनां स्थानीनां आदिम्तमृद्धस्था-२० नत्त्, अतः स्थानानामादी गच्छतीति खुल्पस्या स्थानादिगं तत् उच्यते, तथोगाद् आर्थिकाऽपि स्थानादिगैति व्यपदिस्थते। प्रतिमाः मासिक्यादिकाः तासुं तिष्ठतीति प्रतिमास्थायिनी ।

१ मुच्छाय विवक्षियाते, वातेण समुद्धिते व तामाः ॥ २ "म्रतं—"नो रूप्तः निर्मापीए अवायविक्षयः होयए । एवं तक्षे मुता उवारेयका जाव उत्तापतास्यए ॥" इते व्यूर्णी विदेशवयूर्णी व ॥ २ वंदनेतान्येकादश स्वाणि। सम्बन्धः प्रायुक्त यद। अयामीपां व्यावया — नो कस्यक्षिते को ॥ ४ निर्मातं वद्यं भौतिमृतं स्थानम्, उद्देश्यानमित्यदैः, "उद्द निर्माय तुवस्यान स्वाप्तः । अतः स्थानामा को ॥ तु होर नायदंवं।" (जीवनिक मान गान १५२) इति ययनात्, जतः स्थानामा को ॥

"नेसज्जियाय" ति निषद्याः पश्चेव भवन्ति तासां विभाषा कर्तव्या । सा चैयम्---निषद्या नाम-उपवेशनविशेषाः, ताः पश्चविधाः, तद्यथा-समपादयता गोनिषचिका हस्तिशण्डिका पर्यक्राऽर्धपर्यक्का चेति । तत्र यस्यां समी पादी प्रती च स्पृशतः सा समपादयुता, यस्यां तु गौरिवोपवेशनं सा गोनिषधिका, यत्र पुताभ्यासुपविश्यैकं पादसुत्पाटयति सा हिस्तिश्रिष्डिका, पर्यक्रा प्रतीता. अध्पर्यक्रा यस्पामेकं जानमत्पादयति । एवं विषया निषयया चरतीति नैष- व धिकी । उत्कटिकासनं तु सुगमत्वाद भाष्यकृता न व्याख्यातम् ॥ ५९५३ ॥

वीरासनं नाम यथा सिंहासने उपविद्यो भून्यस्तपाद आस्ते तथा तस्यापनयने क्रतेऽपि सिंहासन इव निविष्टो मुक्तजानुक इव निरारुम्बनेऽपि यद आसी । दष्करं चैतद . अत एव वीरस्य-साहसिकस्यासनं चीरासनमित्युच्यते, तद् अस्या अस्तीति वीरासनिका । तथा दण्डासनिका-लगण्डशायिकापदद्वये यथाकमं दण्डस्य लगण्डस्य चायत-कुक्कताभ्यासुपमा 10 कर्तव्या । तद्यथा--दण्डस्येवायतं-पादप्रसारणेन दीर्धं यदु आसनं तदु दण्डासनम् , तद् अस्या असीति दण्डासनिका । लगण्डं किल-दःसंस्थितं काष्ट्रमः , तद्वतः कुन्नतया मस्तक-पार्णिकानां भुवि लगनेन पृष्ठस्य चालगनेनेत्यर्थः, या तथाविधामिम्रहविद्रोषेण होते सा लगण्डशायिनी । अवाळाखादीनि तु पदानि सुगमत्वादु न व्यास्त्यातानीति द्रष्टव्यम् । एते सर्वेऽप्यभिग्रहविज्ञेषाः संयतीनां प्रतिषिद्धाः ॥ ५९५४ ॥

एतान प्रतिपद्यमानानां दोषानाह---

जोणीखन्भण पेळ्ण, गुरुगा भूत्राण होइ सहकरणं। गुरुगा सर्वेटगम्मी, कारणें गहणं व धरणं वा ॥ ५९५५ ॥

ऊर्द्धसानादी स्थानविशेषे स्थिताया आर्थिकाया योनेः क्षीभी भवेत . तरुणा वा तथा-स्थितां दृष्टा 'भेरयेयुः' प्रतिसेवेरन् । अत एवेतानभिग्रहान् प्रतिपद्यमानायास्त्रस्थाश्चतर्गरु । 20 अक्तभोगिनीनां च येन कारणेन स्पृतिकरणमितरासां कीत्रकं च जायेते । तथा वक्ष्यमाणसूत्रे प्रतिषेश्यव्यमाणं सवेण्टकं तम्बकं यदि निर्मन्थी गृह्णाति तदा चतुर्गुरु, स्मृतिकरणादयश्च त एव दोषाः । कारणे त तस्यापि भ्रहणं धारणं चानजातम् । एतचामस्ततमपि छाघवार्थे स्मृतिकरणादिद्रोषसाम्यादत्र भाष्यकताऽभिहितमिति सम्भावयामः, अन्यथा वा सुधिया परिभाव्यम् ॥ ५९५५ ॥ 25

वीरासण गोदोही. मुत्तं सब्वे वि ताण कप्पंति । ते पुण पद्धच चेद्रं, सत्ता उ अभिग्गहं पूष्पा ॥ ५९५६ ॥

अनन्तरोक्तासनानां मध्याद् वीरासनं गोदोहिकासनं च मुक्तवा शेषाण्युर्द्धस्थानादीनि सर्वाण्यपि तासां करूपन्ते । आह-सूत्रे तान्यपि प्रतिषिद्धानि तत् कथमनुज्ञायन्ते ? इत्याह—'तानि पुनः' शेषाणि स्थानानि चेष्टां प्रतीत्य करुपन्ते, न पुनरभिष्महिवशेषम् ; 30 सूत्राणि पुनरभित्रहं 'प्राप्य' प्रतीत्य प्रवृत्तानि, तत इदमुक्तं भवति - अभिप्रहविशेषादुर्द्ध-

१ वीरासनादीनि त पवानि विवागोति इसवतरणं कां॰ ॥ २ °यते अतो न प्राह्मा एतेऽ-भिग्रहा आर्थिकयेति । तथा बक्ष्य कां ।

95

स्थानादीनि संबतीनां न करूपते, सामान्यतः पुनरावश्यकादिवेद्यवां यानि कियन्ते सानि करूपन्त एव ॥ ५९५६ ॥ परः पाह—ननु चालिमहादिक्तपं तपः कर्मनिर्जरणार्थयुक्तम् ततः किमेवं संयतीनां तत् प्रतिषिच्यते ! उच्यते—

तको सो उ अणुण्णाओ, जेण सेसं न छप्पति ।

अकामियं पि पेल्लिजा, वारिओ तेणऽभिग्महो ॥ ५९५७ ॥

तपस्तदेव भगविद्गरनुज्ञातं येन 'रोवं' त्रक्षचर्यादिकं गुणकद्वकं न छुप्यते । कवं पुनः शेषं छुप्यते ! इत्याह—"अकामियं" इत्यादि, दण्डायतादिखानस्वितामार्थिकां द्रष्टा कथि-दुरीर्णकर्या ताम् 'अकामिकाम्' अनिच्छन्तीमपि 'भैरयेत्' प्रतिसेवेत । तेन कारणेन बारित एताइतासामभिष्रहः ॥ ५९५७ ॥ किश्च—

जे य दंसाद्ओ पाणा, जे य संसप्पगा श्ववि ।

चिष्टुस्सग्गद्विया ता वि, सहंति जह संजया ॥ ५९५८ ॥

इह द्विभा कायोत्सर्गः— येष्टायामभिभवे चे । तत्राभिमवकायोत्सर्गस्तासां प्रतिषिद्ध इति इत्वाऽभिषीयते—ये च दंश-मशकादयः प्राणिनो ये च सुवि 'संसर्गकाः' सम्बरणशीला उन्दुर-कीटकादयक्षैः कृतानुपद्रवान् यथा संयताः सहन्ते तथा 'ता अपि' आर्थिकाभेष्टाका-16 योत्सर्गिश्चता आवस्यकादिवेकायां सम्यक् सहन्ते, तत एवं ता अपि कर्मनिर्जरां कुर्वन्ति ॥ ५९५८ ॥ आह—यदि उदीर्णकर्मणा तरुणादिना प्रेर्यमाणाऽपि सा संयती न स्वादयित ततः किमिति येनाभिम्नहविशेषण वहुतश कर्मनिर्जरा भवति स वार्यते ! उच्यते—

वसिक्षा बंभचेरंसी, धुजमाणी तु कादि तु । तहावि तं न पूर्यति, थेरा अयसभीरुणो ॥ ५९५९ ॥

20 यदापि 'काचित्र्' आर्थिका पुति-बस्युक्ता 'सुग्यमाना' प्रतिसेत्यमानाऽपि भावतो ब्रह्मचर्ये बसेत् तवापि 'स्वित्राः' गौतमादयः सूर्यः प्रवचनापयशः प्रवादनीत्वक्ता न पूजयन्ति, न प्रशंतनतीत्वर्थः ॥ ५९५९ ॥ किञ्च —

तिब्बाभिग्महसंजुचा, थाण-मोणा-ऽऽसणे रता । जहा सुन्त्रंति जयओ, एगा-ऽजेगविहारिणो ॥ ५९६० ॥ लज्जं वंभं च तित्यं च, रबसंतीओ तवीरता । गच्छे चेव विसुन्त्रंती, तहा अणसणादिहिं ॥ ५९६१ ॥

तीके:-ह्रव्यादिविषयेरिभिवर्दै: संयुक्ताः, स्थान-भीना-ऽऽसतविरोषेषु तताः, 'प्रका-ऽनेकवि-हारिणः' केचित् प्रकाकिविहारिणो जिनकश्यिकात्य इत्यर्थः, केचिचानेकविहारिणः स्यविर-कश्यिका इत्यर्थः, प्वंविधा यतयो यथा ग्रुध्यन्ति तथा निर्मन्थ्योऽपि ठ्यां ब्रह्मवर्थं तीर्थे ३)च सुचोक्कविधिना रक्षन्त्यः 'तपोरताः' साध्यायादितपःकर्मेपरायणा गच्छ एव चसन्त्योऽनश-

र 'ध्यते ? किं तासां कर्मनिर्जरवा न कार्यम् ? उच्य' सं । ॥ २ च । उमयोरिष स्वकपमितम् — सो उस्सम्मा दुनिशो, चेह्नाए अभिमचे य नायच्यो । भिक्कायियाइ पद्दमो, उवसम्मऽभिज्ञंजने बीजो ॥ (आव० निर्जु० गा० १४५२) तकाभि कं ।॥

25

नादिभिष्योचितैसारोभिः शुञ्जन्ति, न तीनैरानेष्यहैः ॥ ५९६० ॥ ५९६१ ॥ व्यपि च— जो वि दाहिषणो हुआ, इत्यिचिंघो तु केवली । वसते सो वि गच्छम्मी. किन्न त्यीवेटसिंघणा ॥ ५९६२ ॥

वसत सा । व गच्छन्मा, कक्षु त्यावरात्रचणा ॥ ५८६८ ॥ बोऽपि 'दम्पेन्यनः' भससात्कृतवेदमोहनीयकर्मा 'स्नीचिदः' बहिःस्नीळ्सणजसितः केवली भवति सोऽपि गच्छवासे वसति किं पुनर्या संयती स्नीवेदेन सैन्यना है, सा खुतसं गच्छे ऽ वसेदिति भावः ॥ ५९६२ ॥

यदप्युक्तम्—'यदि न लादयति ततः को नाम तत्या अभिग्रहग्रहणे दोषः !' तदप्य-युक्तम्, प्रतिसेन्यमानाया आलादनस्य यादच्छिकत्वात् । कथम् ! इति चेद् उच्यते—

अलायं घड्डियं ज्झाई, फुंफुना इसहसायई । कोवितो वहती नाही, हत्थीवेदे वि सो गमो ॥ ५९६३ ॥

कोवितो वहृती वाही, हत्यीवेद वि सो गमो ॥ ५९६३ ॥ 10 'अलातम्' उत्पृक्त 'यद्वित' चालितं सद् यथा 'ध्यायति' प्रचलति, यथा वा फुन्फुका यद्विता 'हसहसायति' युत्तं दीव्यते, यथा वा व्याधिपय्थायेवनादिना कोषितो स्वेते, स्वीवेदाणि स एव गमो मनत्वया, सोऽपि यद्वितः प्रचलतीत्यर्थः । अतो यादच्छिकमासादनमिति॥५९६३॥ आह —संयतीनां प्रतिषद्धा अभी अभिम्नहाः परं संयतानां का वातो ! अनोच्यते—

कारणमकारणिम य, गीयत्थिम य तहा अगीयिम । एए सब्वे वि पए. संजयपनेखे विभासिजा ॥ ५९६४ ॥

यानि एतानि व्युत्स्प्रकायिकेत्वादीनि पदान्युक्तानि तानि 'कारणे' सिंहादिभिरिभम्तृतस्य देवताकम्पनिमित्तं वा गीतार्थस्यागीतार्थस्य वा कल्पन्ते । अकारणे पुनरगीतार्थस्य न कल्पन्ते । अकारणे पुनरगीतार्थस्य न कल्पन्ते । अवेक्टल्वादिकमपि गीतार्थस्य जिनकस्य मृतिपद्यमानस्य कल्पते । एवं संयतपक्षे 'एतानि' अवेक्टलादीनि सर्वाण्यपि 20 पदानि विभाषयेत् ॥ ५९६४ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथीणं आकुंचणपद्दगं धारित्तए वा परिहरित्तए वा । कप्पइ निग्गंथाणं आकुंचणपद्दगं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ३१ ॥

एवं यावद् दास्त्ण्डकसूत्रम् ॥ अवानीयां सूत्राणां सम्बन्धमाह— वंभवयपारुषाडुा, तहेव पद्दाइया उ समणीयां । विद्यपदेण जर्दवं, पीडन-फलए विवजित्ता ॥ ५९६५ ॥

१ 'भिः भगवद्वचनप्रभाष्याचेव 'ग्रुष्यन्ति' कर्ममळावयमतो निर्मेळीजवन्ति न तीवे' को॰ ॥ २ 'कत्य-प्रभागदिवश्चैः प्रदेशातापनाष्ट्रणवस्त्रश्चेतीनि चद्रस्युकानि तानि 'कारणे' सिहादिमिरिनिश्तृतस्य ततुरुयोषद्वप्रश्चमननिश्चित्तं वा कं०॥ १ 'विभायवेत्' वधासन्त्रवं प्रतिपादवेत् ॥ ४९ ६४ ॥ अं० ॥

यथा ब्रह्मनतपाळनार्थमचेळत्वादीनि न कल्पन्ते तथा ब्रह्मचर्यरक्षणार्थमेन अमणीनां पद्यद-योऽपि दारुदण्डकान्ते। न कल्पन्ते । द्वितीयपदे तु यतीनां कल्पन्ते परं पीठ-फळकानि वर्जयित्वा, तानि साधूनामपवादमन्तरेणापि कल्पन्त एवेत्यर्थः । अत एतेषां सूत्राणामारम्भः ॥ ५९६५॥ अनेन सम्बन्धेनावातानार्मापां प्रथमसूत्रस्य व्याख्या—नो कल्पते निर्धन्यानाम् 'आकु-ष्रवापष्टं' पर्यक्तिकापद्टं धारयितुं वा परिहर्तुं वा । कल्पते निर्धन्यानामाकुखनपद्टं धारयितुं वा परिहर्तुं वेति सूत्रार्थः ॥ अथ भाष्यम्—

> गन्बो अवाउडतं, अणुवधि पलिमंथु सत्थुपरिवाओ । पद्मजालिय दोसा. गिलाणियाए उ जयणाए ॥ ५९६६ ॥

> थेरे व गिलाणे वा, सुत्तं काउम्रुवरिं तु पाउरणं। सावस्सए व वेद्दो, पुत्र्वकतमसारिए वाए ॥ ५९६७ ॥

२० सूत्रपौरुषाम् उपरुक्षणस्त्राद् अर्थपौरुषा च 'कतुँ' शिष्याणां दात्तुमित्यथं: स्वितिरे ग्लानो वा वाचनाचार्यः पर्यस्तिकां कृत्वा उपिर पाष्ट्रणुयात् । उत्तरार्द्धं पश्चाद् व्यास्यास्यते ॥

स च पर्थस्तिकापटः कीदशः ! इत्याह--

फल्लो अचित्तो अह आविओ वा, चउरंगुरूं वित्थडो असंघिमी अ। विस्सामहेउं तु सरीरगस्सा, दोसा अवदंभगया ण एवं ॥ ५९६८ ॥

१ 'न्ता वक्ष्यमाणाः पदार्थाः न करुपन्ते । यतीनां तु ते पद्दादयः "विद्यपदेण" ति विभक्तिव्यत्ययात् द्वितीयपदे प्राप्ते सति करुपन्ते पर्त पिड कं । व 'मीपां सूत्राणां मध्यात् प्रथमस्वस्य तावद् वास्त्र्याः नो करुपते विभिन्धीनाम् 'आङ्गञ्जनपदः' पर्वस्ति- काष्टः, कोऽष्टः' सूत्रे नपुंसकत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, सः 'धारितृतं " स्वस्त्राचां स्थापितृतं पितृतं वो स्वस्त्राचां स्थापितृतं पितृतं वो स्वर्तात् स्त्रः स्वाप्तितं पितृतं वो पत्रिमोकुम्, न करुपते दित सम्बन्धः ॥ इत्यं निर्प्रन्धीविषयं विषेधसुत्रमाद्याः ॥ इत्यं निर्प्रन्धीविषयं विषेधसुत्रमादः "'कप्पद्र" इत्यादि, करुपते निर्प्रभावा" का ॥ निर्प्रम्था यदि पर्यक्तिकापद्दं सुक्कृति परिभुद्धे वा तदा चतुर्णुरुकाः। तथा पर्यं का ॥ ध 'क्षां नुच्छक्षभावानामिष परिकृत्वे वा तदा विषद्धः । द्वितीयपदे या संयती का विषदः। द्वितायपदे या संयती का तथा वा स्वा

फहाद जात: फील: सौत्रिक इत्यर्थ:. 'अचित्रः' अकर्बुर: । अथ सौत्रिको न प्राप्यते तत आविको वा । स च चतुरङ्गरुं 'विस्तृतः' पृथुरुः 'असन्धिमश्च' अपान्तराले सन्धिरहितः, एवंविधः पर्यस्तिकापदः शरीरस्य विश्रामहेतोर्गृह्यते । ये चावष्टम्भगतीः "संचरकंथहेहिय" (ओधनिर्यु० गा० ३२३) इत्यादिका दोषास्तेऽपि 'एवम' आकुञ्चनपट्टे परिधीयमाने न भवन्ति ॥ ५९६८ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पड निग्गंथीणं सावस्सगंसि आसणंसि आस-इत्तए वा त्यटितए वा। कप्पड निग्गंथाणं सावस्त्रयंति आसणंति आस-इत्तए वा तहियत्तए वा ३२॥

सावश्रयं नाम-यस्य प्रष्रतोऽब्रष्टम्भो भवति एवंबिधे आसने निर्धन्धीनां नो कल्पते आसितं वा स्वर्ग्वार्ततं वा । कल्पते निर्धन्धानां सावश्रये आसने आसितं वा त्वस्वर्तितं वा । निर्धन्ध्यस्त ताहरो आसने यदि उपविशन्ति शेरते वा तदा त एव गर्वादयो दोषाश्चतुर्गुरु च प्रायश्चितम् । द्वितीयपदेऽल्पसागारिके स्थविरा म्लाना वा उपविशेत । निर्मन्थानामैपि न कल्पते । यदि . उपविशन्ति तदा चतुर्रुषु । सूत्रं तु कारणिकम् ॥ तदेव कारणमाह--

''सावस्सए'' इत्यादि पश्चार्द्धम् । यो वृद्ध आचार्यः सः 'पूर्वकृते' गृहस्भैः सार्थे निष्पादिते सावश्रयेऽप्यासँने उपविष्टः 'असागारिके' एकान्ते 'वाचयेत' विनेयानां वाचनां दबात ॥ ५९६७ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पड निग्गंथीणं सविसाणंसि पीढंसि वा 20 फलगंसि वा आसइत्तए वा त्यहित्तए वा । कप्पड निग्गंथाणं सविसाणंसि पीढंसि वा फलगंसि वा आसडत्तए वा तयत्तिहरू वा ३३॥

सविषाणं नाम-यथा कपाटस्योभयतः श्रोहे भवतः एवं यत्र भिसिकादौ पीठे फळके वा विषाणं-श्वक्रं भवति तत्र निर्भन्थीनामासित् वा शयितं वा न कल्पते । निर्भन्थानां तु १४ करुपते । निर्धन्थ्यस्तु सविषाणे पीढे फलके वा यद्यपविशन्ति शेरते वा तदा चतुर्गरु आज्ञादयश्च दोषाः ॥ तथा----

१ फाल्यः इति चुर्णौ विशेषचुर्णौ च ॥ २ एतदनन्तरम् ग्रन्थाग्रम् — ७००० कां॰ ॥ ३ °मपि सावश्रमे जासितं न क' का ॥ ४ 'सने सिंहासनापरपर्यामे ''बिट्रो'' सि उप' का ॥ ५ भा० विनाडन्यत्र-वा त्वायत्तितं वा न कां०॥

सनिसामे उड्डाहो, पाकम्मादी य तो पडिकुई । बेरीए वासासं, कप्पड छिण्णे विसाणम्मि ॥ ५९६९ ॥

सिवाणे आसने उपविश्वन्यामार्थिकायामुङ्काहो भवति, पादकर्मादयश्च दोषाः सम्बवन्ति, सतः भैतिकुष्टं सन्नोपवेशनिति गम्यते । द्वितीयपदे वर्षामु पीठ-फरुकदुर्कभतावां सविषाणमपि ठ गुष्टते, तस्य च विषाणं छित्त्वा परिष्ठाप्यते । एवं छिन्ने विषाणे स्वविरायां अन्यस्या बा करुपते ॥ ५९६९ ॥

> जं तु न लब्भइ छेत्तुं, तं धेरीणं दलंति सविसाणं । छायंति य से दंढं, पाउंछण महियार वा ॥ ५९७० ॥

यत् 'तु' पुनश्छेतुं न रुभ्यते ततः सविषाणमपि तदासनं खविरसाध्वीनां साधवः प्रयच्छन्ति, 10तदीयं च दण्डं पादमोन्छनेन घनं छादयन्ति, तेन वेष्टयित्वा स्यूलतरं कुर्वन्तीत्यर्थः; सृविकया वा परिवेष्टयन्ति । निर्मन्यानां सविषाणमपि कष्ट्यते ॥ ५९७० ॥ कृतः ! इत्याह्न—

> समणाण उ ते दोसा, न होंति तेण तु हुवे अणुण्णाया । पीढं आसणहेर्ज, फलगं पुण होइ सेअडा ॥ ५९७१ ॥

श्रमणानां पुनः 'ते' पादकमीदयो दोषा न भवन्ति ततः 'द्वे अपि' पीट-फल्के सविषाणे 15 अच्यनुज्ञाते तत्र पीठमासनहेतोः फल्कं पुनः 'शस्यार्थ' शयननिमित्तं वर्षायु गृक्षते ॥ ५९७१ ॥ अथ किमर्थे वर्षायु तत्रोपवेशनं शयनं वा कियते ! इत्याह —

> कुष्क्रण आय दयद्वा, उज्ज्ञायगमरिस-वायरक्सद्वा । पाणा सीतल दीहा, रक्सद्वा होइ फलगं तु ॥ ५९७२ ॥

आर्द्रांयां मूमी स्थाप्यमानाया निषवायाः कोथनं भवति, शीतकायां च भूमावुपविश्वतां
20 धान्यं न जीविति ततो ग्लानत्वेन आत्मविराधना, 'दयार्थं च' जीवदयानिमित्तं वर्षाधु मूमी
नोपवेष्टव्यस्, ''उच्छावणं'' ति भूमेरार्द्रभावेन मिलनीमृतस्योपचेर्जुपुप्यनीयता स्थात्, अर्थांसि
वा क्रुप्नेयपुः, वातो वाऽधिकत्तरं मक्रप्येत्, तत्त एतेषां रक्षार्थं पीठकं महीतन्वयम् । तथा
शीतकायां मूसी वहवः कुन्युप्यतकप्रयुत्यः प्राधिनः सम्स्च्लेंद्यः ततो सूसी शयानानां तेषां
विराक्ता मसति, दीर्षजातीया वा मूसीनेर्गत्य दशेषुः, उपलक्षणमिदम्, तेनोपधिकोधना25 ऽजीर्णतादयोऽपि दोषा भवन्ति, एतेषां रक्षार्थं वर्षाष्ठ कलकं गृक्षते ॥ ५९०२ ॥

सूत्रम्---

मो कप्पइ निग्गंथीणं सर्वेटगं लाउयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा । कप्पइ निग्गंथाणं सर्वेटगं लाउयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ३४ ॥

र 'प्रतिकुष्टं' प्रतिविद्धं संयतीनामनेन सूत्रेण सविवाणस्यासनस्य प्रद्रकमिति

कस्य स्थाह्या सुगमा । नवरम्----'सवेण्टकं' चालयुक्तं अखाबुकं तद् निर्धन्यीनां न कस्पते । निर्धन्यानां तु करुपते ॥ अत्र भाष्यम्---

ते चेव सर्वेटिम्म, दोसा पादिम्म जे तु सविसाणे । अदृरेग अपडिलेहा, विद्य गिलाणोसहृद्ववणा ॥ ५९७३ ॥

त एवं 'सब्द-तेऽपि' सनालेऽपि अलाबुनये पात्रे दोषा मन्तन्या मे सितवाणे आसने 5 पादकर्मादय उक्ताः । द्वितीयपदे तु धारयेदपि । तंत्राध्वनि घृतं वा तेले वा सुव्तेतैवापरिग-ल्डुब्बते, ग्लानाया वा योग्यं तत्रीषधं प्रक्षित्तमालो । तच सब्दनकं प्रवर्तिनी खयं सास्यति । निर्मन्यानामपि निष्कारणे न कल्पते । यदि धारयन्ति ततोऽतिरिक्तोपकरणदोषः, सब्दन्तकं च प्रस्पुपेक्षणा न शुध्यति । द्वितीयपदे म्लानस्य योग्यमीवधं तत्र स्थापनीयमिति कृत्वा मही-तन्यम् ॥ ५९७२ ॥

सूत्रम्---

नो कप्पइ निग्गंथीणं सर्वेटियं पादकेसिरयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा । कप्पइ निग्गंथाणं सर्वेटियं पादकेसिरयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ३५॥

नो करुपते निर्मन्धीनां सष्टन्तिका पादकेसरिका धारयितुं वा परिहर्तुं वा। करुपते निर्मन्धानां 15 सष्टन्तिका पादकेसरिका धारयितुं वा परिहर्तुं वा।। अब कयं सष्टन्ता पादकेसरिका ! इत्याह —

लाउयपमाणदंडे, पढिलेहणिया उ अग्गए बद्धा । सा केसरिया भन्नह, सनालए पायपेहद्वा ॥ ५९७४ ॥

यत्राभिनवसङ्कटमुखे अञाबुनि इस्ती न माति तस्याञाबुनी यद् उत्तरंव तस्यमाणी वण्डः कियते, तस्याप्रमाने बद्धा या प्रस्त्रपेक्षणिका सा पादकेसारिका सङ्ग्ता भण्यते । सा च कारण-20 गृहीतस्य सनास्त्रस्य पात्रस्य प्रस्त्रपंक्षणार्थं गृह्यते । तां यदि निर्भन्ययो गृह्यति तदा चतुर्गृह, सैव च प्रतिसेवनादिका विराधना । निर्भन्यानामण्युस्तर्गतो न करूपते । द्वितीयपदे सनास्त्र-मळावकं तथा प्रस्त्रपेक्य ततो मुखं कियंते ॥ ५९७४ ॥

सूत्रम्---

नो कष्पइ निग्गंथीणं दारुदंडयं पायपुंछणं धारित्तए वा परिहरित्तए वा । कष्पइ निग्गंथाणं दारुदंडयं जाव परिहरित्तए वा ३६॥

१ तत्र सनाले तुम्बकेऽप्यनि घृतं चा तेलं चा सुखेनैय वृन्तं हस्तेन गृहीत्या भूगाव-परि कं। ॥ २ 'पार्वकारेया जाम बहरां चीरं । अवहरं चीराणं दावर वण्यति' हति चूर्यों ॥ १ चा । सुचे चा हितीयानिर्देशः प्राष्ट्रतत्यात् प्रथमार्थे ब्रष्ट्रचः। अथ केरं कं। ॥ ४ 'वते, पत्तवर्थे साउपि प्रहीतच्या ॥५९७॥ ॥ च 'व्हंपं पायचुंखणं चारिचप् वा परि' कं। ॥ . अस ब्याख्या—यत्र दाहमयस्य दण्डस्यात्रभागे ऊर्णिका दिशका बध्यन्ते तद् दाहदण्डकं पादमोन्छनसुच्यते । तद् निर्प्रन्थीनां न कल्पते, निर्प्रन्थानां तु कल्पते ॥ अत्र भाष्यम्—

> ते चेव दारुदंडे, पाउंछणगम्मि जे सनालम्मि । दण्ह वि कारणगहणे. चप्पडए दंडए कुछा ॥ ५९७५ ॥

वे सनाले पीत्रे दोषा उक्तास्त एव दाहदण्डकेऽपि पादपोव्छनके भवन्ति । 'ह्योरणि च' सनालपात्र-दाहदण्डकयोः कारणे निर्मन्थीनामपि महणं भवति । तत्र च महणे कृते 'चप्पड-कात्र' चतुष्पकान् दण्डकात् कुर्यात् ॥ ५९७५ ॥

॥ ब्रह्मरक्षापकृतं समाप्तम् ॥

मो कप्रकृतम्

10 सूत्रम्--

15

25

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अन्नमन्नस्स मोयं आइयत्तए वा आहमित्तए वा, नन्नत्थै गाढा-ऽगाढेसु रोगायंकेसु ३७॥

अस्य सम्बन्धमाह----

वंभवयपालणहा, गतोऽहिगारो तु एगपक्सम्मि । तस्सेव पालणहा, मोयाऽऽरंभो दुपक्ले वी ॥ ५९७६ ॥

ब्रह्मत्रपारुनार्थभेकस्मिन्—संयतीरुक्षणे पक्षे पूर्वसूत्रेषु योऽधिकारः स गतः, समर्थित इत्यर्थः । सम्प्रति तु 'तस्वय' ब्रह्मत्रतस्य पारुनार्थं 'द्विपक्षेऽपि' संयत संयतीपक्षद्वयविषये मोकस्वत्रारम्भः क्रियते ॥ ५९७६ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्यास्था—नो करुपते निर्धन्थानां वा निर्धन्यीनां वा 'अन्यो-न्यस्य' परस्परस्य मोकमापातुं वा आचिमतुं वा । कि सर्वथैव १ न इत्याह्ं—गादाः—अहि-विष-विस्चिकात्यः अगादाश्च—ज्वरात्यो रोगातक्कासेम्थोऽन्यत्र न करुपते, तेषुं तु करुपत इत्यर्थः । एष सुत्रार्थः ॥ सम्प्रति निर्मुक्तिविस्तरः—

> मीएण अण्णमण्णस्स आयमणे चउगुरुं च आणाई । मिच्छत्ते उड्डाहो, विराहणा भावसंबंधो ॥ ५९७७ ॥

'अन्योन्यस्य' संयतः संयतीनां मोकेन संयती वा संयतानां मोकेन निशाकस्य इति कृत्वा रात्री यद्याचमति तदा चतुर्गुरु, आज्ञादयश्च दोवाः, मिध्यासं च भवेद् न यथावादी

 १ पात्रे पादकर्मकरणादयो दोषा कं०॥ २ 'त्थ आगाडा-ऽणागा' कं०। एतलाठानुसारेणैव कं० टीका, इत्थतां टिप्पणी ३॥ ३ 'द्व — आगाडाः-अहि-विष-विस्चिकादयः अनागाडाश्च-ज्वरा' कं०॥ ४ 'खु तु मोकमापातुमाचिमतुं वा परस्परस्य कल्प' कं०॥ कश्चकारीति कृत्वा । यहा कश्चिरभिनवधर्मा तब् निरीक्ष्य सिर्ध्यात्वं गच्छेत् — अही ! असी समस्य इति । उड्डाहश्च भौगिनी-चाटिकादिह्यापने भवति । विराधना च संयसस्यात्मनो वा भवति । तत्र संयमित्याधना तेन स्पर्धेनैकतस्य भावसन्यन्धे भवेत् , ततश्च प्रतिगमनादश्चे दोषाः । आस्मविराधना तु "वितेइ दहुमिच्छइ" (गा० २२५८) इत्यादिकमण अवर-वाहादिका ॥ ५९७० ॥ किष्य—

दिवसं पि ता ण कप्पइ, किम्रु णिसि मोएण अष्णमण्णस्स । इत्यंगते किमण्णं, ण करेज अकिचपडिसेवं ॥ ५९७८ ॥

दिवसेऽपि तावक करुपते अन्योन्यस्यं मोकेनाऽऽचिमित्रं किं पुनः 'निशि' रात्री !। 'इत्यक्कते हि' परस्परं मोकाचमनेऽपि इत्ते किं नाम तदक्रत्यमस्ति यस्य प्रतिसेवैं। न कुर्याताम् !॥ 'प९०८ ॥

बुतुं पि ता गरहितं, किं पुण घेतुं जें कर बिलांओ वा । घासपहड्डो गोणो, दुरक्खओ सस्सअन्मासे ॥ ५९७९ ॥

वक्तुमपि तावदेतद् मोकाचमनं गहितं कि तुनः संयत्याः करावः 'विलाद् वा' भगादित्यवंः मोकं ब्रहीतुर्षे ! अपि च वासः-चारी तत्याक्षरणार्थे गीः विष्टः सन् 'सत्याभ्यारो' धान्य-मूले चरत् दूरक्षो भवति, धान्यमदन् दुःखेन रक्ष्यत इत्यर्थः, एवमयमपि संयत्या मोकेनाचमन् 15 प्रसङ्गतः शेषामपि क्रियां कुर्येन् न वारथितुं शक्य इति भावः ॥ ५९७९ ॥

दिवसओं सपक्सें लहुगा, अद्धाणाऽऽगाढ गच्छ जयणाए।
राँच च दोहिं लहुगा, बिह्यं आगाढ जयणाए।। ५९८०।।
दिवसतः 'पपश्चेण संपतः संयतानां संयती वा संयतीनां मोकेन यदि आचमति तदा
चुर्जुक्षं । श्रेक्षाणां तदचकोकनादन्ययाभावो भवेत्। गृहस्य-परतीर्थेकाश्चोड्डाहं कुर्युः॥

कथम ! हत्याह —

अद्विसरक्खा वि जिया, लोए णत्थेरिसऽन्नधम्मेसु । सरिसेण सरिससोही, कीरड कत्थाड सोहेजा ॥ ५९८१ ॥

अहो । अमीभिः श्रमणकैरेदं मोकेनाचमद्भिरिक्षसरमस्का अपि जिताः, असिक्षोकेऽन्ये बहवो धर्मा विद्यन्ते परं कुत्रापि ईहशं शौचं न दृष्टम् । सद्दोन च सहशस्य या शोधिः क्रियते ²⁵ सा किं कुत्रचित् 'शोधयेत्' शुद्धं कुर्यात् ! अशुचिना धान्यमानमर्श्यच न शुध्यतीति भावः ॥ ५९८१ ॥

द्वितीयपदे अध्वनि वर्तमानस्य गच्छस्यापरस्मिन् वा आगाढे कारैंगे यतनया दिवा स्वपक्ष-मोकेनाचमेत् । अथ रात्रौ निष्कारणे मोकेनाचमति ततश्चतुर्रुषु 'द्वाभ्यामपि' तपः-कारु।भ्यां

१ °दिकामविषयदशादशकानुमयनम् ॥ ५९७७ ॥ कं॰ ॥ २ °स्य साधु-साध्यीनां परस्परस्य मोके °कं॰ ॥ ३ °वां तो साधु-साध्यीननो न कु॰ कं॰ ॥ ४ °ठाईहिं। घास तामा॰ ॥ ५ °म् १ ''जे'' इति पादपूरणे। अपि कं॰ ॥ ६ 'ग्रुचि कथं नुनाम ग्रुध्य' कं॰ ॥ ७ °रणे वह्यसाणकक्षणे यत' कं॰ ॥ ७ °रणे वह्यसाणकक्षणे यत' कं॰ ॥ ७ °रणे वह्यसाणकक्षणे यत' कं॰ ॥

20

रुषु । ''र्शि दवे नि रुहुग'' ति पाठान्तरम्, तत्र रात्रौ द्ववं-पानकमाचमनार्ये यदि परिवासयति ततश्चतुर्रुषु, सम्रय-पनकसम्मूच्छीनादयश्चानेकविधा दोषाः । आह**च सृह-**ऋाष्यकृत्—

र्रांच दवपरिवासे, ल्हुगा दोसा हवंतऽणेराविहा । इति । वितीयपदे आगाढे कारणे यतनया रात्राविष मोकेनाचमेद् द्रवं वा परिवासयेत् ॥५९८०॥ तत्राध्वनि द्वितीयपदं व्याचष्टे—

निच्छुभई सत्थाओ, भत्तं वारेइ तकरदुगं वा।

फासु दवं च न लम्भइ, सा वि य उिचहुविजा उ ॥ ५९८२ ॥ यदि अध्यति मितपन्ने गच्छं मत्यनिकसार्थवाहादिः सार्थाद् निष्काशयति, भक्तं वा 10 वारयति, यद्वां 'तस्करहिकम्' उपि-अरीरखेनद्वयपुपद्रोतुमिच्छति; तत्र कस्यापि साधोरामि-चारुक विचा समिसा यया परिजिपतया स आवर्षते, स च साधुस्तदानीं संज्ञालेपकृत्युतः, प्राधुक्तं च द्वं तत्र न लभ्यते, साऽपि चोच्छिष्टविया, ततो भोकेनाचम्य तां परिजपेत् ॥ भ९८२ ॥ अथागादयदं व्याख्याति—

असुकडे व दुक्से, अप्पा वा वेदणा स्ववे आउं। तत्य वि सु सेव गमो, उचिद्वगमंत-विज्ञाऽऽसु ॥ ५९८३॥

अस्युत्करं वा श्रूयदिकं दुःखं कस्याप्युरक्तम्, 'अरुपा वा वेदना' सर्पदशनादिरूपा सञ्जाता या शीष्रमायुः क्षिपेत्, ततस्त्रजापि स एव गमो मन्तव्यः, प्राशुकद्रवाभावे मोकेनाचमेदि-स्पर्थः। तत उच्छिष्टं मम्नं विद्यां वा परिजय्य तं साधुं आशु-शीमं प्रमुणं कुर्योत् ॥ ५९८३ ॥ अन्न यतनामाह——

मत्तम मोयाऽऽयमणं, अभिगऍ आइण्ण एस निसिकप्पो । संफासङ्गाहादी. अमीयमत्ते भवे दोसा ॥ ५९८४ ॥

कायिकामात्रके मोकं गृहीत्वा तेनाचमनं कर्तव्यम्, 'अभिगतस्य' गीतार्थस्याचीर्णमेतत्, एव च निशाकस्य उच्यते, पानकामाचेन रात्राचेच प्रायः क्रियमाणस्वात् । अथ मोकमात्रकं विना मोकं स्वपक्षसागारिकाद् गृहन्ति ततः संस्यशींङ्वाहादयो दोषाः । एवं रात्रौ मोकेनाचम-१६ नीयम्, न पुनस्तद्र्थं द्रवं स्वापनीयम् । द्वितीयपदे स्वापचेदपि ॥५९८८॥ कथम् ! इस्वाह—

पिट्टं को वि य सेहो जह सरई मा व हुज से सन्ना। जयणाएँ ठवेंति दवं, दोसा य भवे निरोहम्मि॥ ५९८५ ॥

यदि कोऽपि शैक्षः पिट्टं सरति, अतीव ब्युत्सर्जनं करोतीत्वर्थः । स बाधापि मोकाचम-नेनामावित इति कृत्वा तदर्षं यतनया द्रवं स्थापयन्ति । सामान्यतो वा मा 'तत्व्य' शैक्षस्य 30 रजन्यामकस्माद् ब्युत्सजनं भवेद् इति कृत्वा द्रवं स्थापयन्ति । अथ न स्थाप्यते ततः स रात्रौ संज्ञासम्यवे पानकाभौवे निरोधं कुर्यात् , निरोधे च परिताय-मरणादयो दोषा भवेदुः ॥५९८५॥

र °या वक्ष्यमाणलक्षणया रात्रा° कं०॥ २ °भावे संज्ञाया देगस्य निरोधं कं०॥ ३ °य-महादुःस-भर° कं०॥

एवं ताबदाचमने भणितम् । अथापिवतां दोषानाह---

मोयं तु अन्नमन्नस्स, आयमणे चउगुरुं च आणाई। मिच्छत्ते उड्डाहो, विराहणा देविदिदंतो ॥ ५९८६ ॥

अन्योन्यसं मोकं यदि आपिति तदा चतुर्गेत, आज्ञादयश्च दोषाः, मिध्यालं च सागा-रिकादिसदवलोक्य गच्छेत, उज्जादो वा भवेत, विराधना च संयमस्यात्मनो वा भवति । 5 तत्र च देवीदद्यान्तः ॥ ५९८६ ॥ तमेवाह्—

दीहे ओसंहभावित, मोयं देवीय पित्रओ राया । आसाय पुच्छ कहैंणं, पिडसेवा मुच्छिओ गलितं ॥ ५९८७ ॥ अह रचा तूरंते, सुंक्खन्महणं तु पुच्छणा विज्ञे । जह सक्कमस्थ जीवह, सीरेण य पत्रिओ न मुजो ॥ ५९८८ ॥

जाई सुनस्पारयं जावह, स्वारण य पाजजा न मजा । ५५८८ । 10 एगो राया महाविसेणं अहिणा सहजो । विज्ञेण भाजियं—जह परं मोयं आइयह तो न मरह । तजो देवीतणयं ओसहेहिं वासेकण दिनं । तेण थोवावसेसं आसाइयं । तजो पउणो पुच्छह-—िर्क ओसहं ! तेहिं कहियं । सो राया तेण वसीकजो दिया रिंच च पिडसेविज्ञमारद्धो । देवीए नायं—भाजी होहिंह' वि सुक्षं कप्पारेण सारवियं । अवसाणे नीसहो जाओ मरिज्ञमारद्धो । विज्ञेण भाणियं—जह एयस्स चैव सुक्षं अध्यि तो जीवह । 15 तीए भाणियं—अध्य । स्विरंण समं कढेउं दिशं । पउणो जाओ ॥

अधाक्षरामनिका—'दीर्घेण' अहिना मक्षितो राजा। देव्याः सम्बन्धि मोकमौषधमावितं पायितः। तत आखादे ज्ञाते पृच्छा कृता। ततः कथनम्। तेतो दिवा रात्री च प्रतिसेवां मूर्च्छितः करोति। प्रमृतं च ग्रुकं गिरुतम्॥

'अथ' अनन्तरं राज्ञि मरणाय त्वरमाणे देव्या शुक्रप्रहुणम् । वैद्यस्य च प्रच्छा—यदि 20 शुक्रपति ततो जीवति । एवं कथिते क्षीरेण समं तदेव शुक्रं पायितस्ततो न मृतः । एवमेव संयत्याः मोकेन पीतेन साधुरिष वशीक्रियेत, वशीक्रतस्थावभाषेत, प्रतिगमनादीनि वा कुर्योत् , तस्माद् नाऽऽपातव्यम् । कारणे पुनराचमनमापानं वा कुर्योत् ॥ ५९८७ ॥ ५९८८ ॥

तथा चाह---

सुत्तेणेवऽववाओ, आयमइ पियेज वा वि आगाढे।

आयमण आमय अणामए य पियणं तु रोगिम्म ॥ ५९८९ ॥ सुत्रेणैबापवादो दस्पेते—''आगोढे रोगातक्के आचमेत् आपिवेद्धा' हति यदुक्तं सूत्रे तत्र 'भाचमन' निर्केषनम् 'आमये' रोगे 'अनामये च' निशाकरूँगे भवति ! पानं तु रोग एव

१ 'अन्योन्यस्य' साधुः संयत्याः संयती च साधोः सत्कं मोकं कां ॥ २ ओसहरिवतं, मोयं तामाः कां । । चूर्णिकृता विशेषचूर्णिकृता वायमेव पाठ आहतोऽस्ति । तसाहि—"ओसहरिवरं देविपणो ५ ॥ ४ सुक्कृद्वयं तु तामाः ॥ ५ ततः 'अतिसेवा' दिवा माः कां ॥ ६ वाहः दश्यां दिपणो ५ ॥ ४ सुक्कृद्वयं तु तामाः ॥ ५ ततः 'अतिसेवा' दिवा माः कां ॥ ६ 'वाहे उपल-सृणस्वाद् अनागाहे च रोगा' कां ॥ ७ 'व्यं मचयरिजयनादी वा प्रागुक्तुस्यो मच' कां ॥

सम्भवति नान्यदा ॥ ५९८९ ॥ तत्रायं विधिः---

दीहाइयणे गमणं, सागारिय प्रच्छिए य अइगमणं ।

तासि सगारज्ञयाणं, कप्पइ गमणं जिंह च भयं ॥ ५९९० ॥

दीर्चेण कस्यापि साधोः अदने-भक्षणे कृते स्वयक्षमोकामावे संवतीमतिश्रये गमनम् । इत्तत्स्वासां सागारिके पृष्टे सति 'अतिगमनं' प्रवेद्यः कर्तव्यः । अथ संयत्याः सर्पद्यानं आतं ततस्वासां सागारिकयुक्तानां साधुवसतो गमनं करूपते । यत्र च भयं तत्र दीपको महीतव्य इति वाक्यदोषः । एपं सङ्कद्वगाधासमासार्थः ॥ ५९९० ॥ साध्यतमेनामेव विवृणोति—

निद्धं भ्रुत्ता उवत्रासिया व वोसिरितमत्त्रगा वा वि ।

सागारियाइसहिया, सभए दीवेण य ससहा ॥ ५९९१ ॥

अहिना शिक्षतः साषुः सपक्ष एव साधूनां मोकं पाय्यते । अथ तेषां नास्ति मोकम्, कुतः ? इत्याह—िक्षण्यमाहारं तिह्वसं भुक्ता उपयासिका चा ततो नास्ति मोकम्, अथवा व्युत्सप्टमायकास्ते, तक्षण एव मोकं खुत्सप्टमापरं च नास्तीति भावः, ततो निर्मन्धीनां प्रतिश्रये गान्तव्यम् अदि निर्मयं तत एवमेव गम्यते । अथ समयं ततः सागारिकादिना केनचिद् हितीयेन दीपकेन च सहिताः सडाब्दा गम्छितः । ततः संयतीवसति प्रविश्वन्ते यदि नैषेपिकी 10 कुर्वन्ति तत्सक्षद्वीतः ॥ ५९९१ ॥ तथा—

तुसिणीए चउगुरुगा, मिच्छत्ते सारियस्स वा संका । पडिबुद्धबोहियासु व, सागारिय कजदीवणया ॥ ५९९२ ॥

तूष्णीका अपि यदि प्रविश्वान्त तया चतुर्गुरु । मिध्यात्वं वा कश्चित् तूष्णीभावेन प्रविश्वतो हृष्ट्वा गच्छेत् । सागारिकस्य वा शङ्का भवति — किमन्न कारणं यदेवममी अवेलायामागताः है थण्डित, 'स्तेना अमी इति वा मन्यमागो प्रहणा-ऽऽक्षणादिकं कुर्योद् लाहन्याद्वा । ततस्तूर्णा-कैरिन प्रवेष्टव्यं किन्तु प्रथमं सागारिक उत्थापनीयः, ततसेन प्रतिबुद्धेन-उत्थितेन भोषिताष्ठ संयतीष्ठ सागारिकस्य कार्यदीपना कर्तव्या—एकः साधुरहिना दष्टः, इह चौषधं साधितमस्ति तदथे वयमागताः ॥ ५९९२ ॥ ततः प्रवर्तिनी भणन्ति —

मोपं ति देइ गणिणी, थोवं चिय ओसहं लडुं णेहा। मा मग्गेज सगारो, पढिसेहे वा वि बुच्छेओ ॥ ५९९३ ॥

जहिदष्टसीषधं मोकभिति प्रयच्छत । ततः 'गणिनी' प्रवर्तिनी यतनया मोकं गृहीत्वा साधूनां ददाति भणति च—स्तोकमेवेदगीषधमेतावदेवासीत्, नातः परमन्यदस्तीत्वर्धः, अतः 'रुखु' द्यीवं नयत । क्रिमधंभित्यं कथयति ! इत्याह—मा सागारिकः 'ममाणि एतदौषधं प्रयच्छत' इत्येवं मार्गयेत् । यदा तु 'नास्यतः परम्' इति प्रतिषेधः क्रुतस्तदा व्यवच्छेदः 30कृतो भवति, न गृयो मार्गयतीत्यर्थः ॥ ५९९३ ॥

न वि ते कहंति अमुगी, खड्ओ ण वि ताव एय अमुईए।

१ °च्छिऊण अइ° तामा॰ ॥ २ 'दीघेंण' सर्पेण रात्री कस्यापि की॰ ॥ ३ °च निर्युक्ति-गाधा" की• ॥

षेतुं णयणं खिप्पं, ते वि य वसिंह सयमुवैति ॥ ५९९४ ॥

ते सांधंबी न कथयन्ति, यथा—अधुकः सांधुरहिना साहितः। ता अप्यार्थिका न कथ-यन्ति, यथा—एतन्मोकमयुक्तस्याः सत्कमिति। गृहीत्वा च क्षिपं नयनं कर्तव्यम्। पूर्वोक्तेन च विषिना ते 'स्वकाय' आत्मीयां वसतिम् उपयान्ति॥ ५९९८॥ आह—'यदि अधुकः सांधुर्दष्टः, अयुक्तस्या वा मोकमिदम्य' इति कथ्यते ततः को दोषः! इत्याह—

जायति सिणेहों एवं, भिण्णरहस्सत्तवा य वीसंभो ।

तम्हा न कहेयच्नं, की व गुणी होइ कहिएणं ॥ ५९९५ ॥
एवं कथ्यमाने तयोः श्रेहो जायते, भिन्नाहस्यता च भवति, रहस्ये च भिन्ने विश्रम्मो
भवति । यत एते दोषास्तसाद् न कथ्यितन्त्रम् । को वा गुणस्तेन कथ्यितेन भवति ! न
कोऽपीत्यर्थः ॥ ५९९५ ॥ यदा संयती टीर्फजातीयेन द्वारा भवति तदाऽयं विधिः—

सागारिसहिय नियमा, दीवगहतथा वए जईनिलयं।

सागारियं तु बोहे, सो वि जई स एव य विही उ ॥ ५९९६ ॥ आर्थिका नियमात् 'सागारिकसहिताः' शस्यातरसहायाः सभये च दीपकहस्ता यतीनां निरुयं व्रजेषुः । स च संयतीसागारिक इतरं संयतसागारिकं बोषयति । सोऽपि प्रतिबुद्धः सापून् बोधयति । अत्रापि स एव विधिमोंकदाने द्रष्टव्यः ॥ ५९९६ ॥

॥ मोकपकृतं समाप्तम् ॥

परिवासित प्रकृत म्

सूत्रम्--

नो कप्पड़ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासि-यस्स आहारस्स जाव तयप्पमाणमित्तमवि भृड्प्प-माणमित्तमेवि बिंदुप्पमाणमित्तमवि आहारं आहा-रित्तप्, नन्नत्थे आगाढेसु रोगायंकेसु ३८॥

अस्य सूत्रस्य सम्बन्धमाह----

रयेदिति मस्त्रतं सत्रमारभ्यते ॥ ५९९७ ॥

उदिओऽयमणाहारी, इमं तु सुत्तं पड्डच आहारं । अत्थे वा निसि मोयं, पिजति सेसं पि मा एवं ।। ५९९७ ।। 'अयं' मोकळक्षणोऽनाहारः पूर्वेसूत्रे 'उदितः' भणितः, इदं तु सूत्रं आहारं प्रतीत्यारभ्यते । अँथेतो वा 'निशि मोकं पीयते' इत्युक्तम् अतः 'रोषमपि' आहारादिकमेवं मा रात्री आहा-

१ भिवि तोयर्थिषुष्प[®] को० विना । एतरणळञ्जूसारेणैव को० विना टीका, हरवतां पत्रं १५८४ टिप्पणी १ ॥ २ ९१**ध आगाहा-ऽणागार्डे** को० । एतरणळञ्जूसारेणैव को० टीका, हरवतां पत्रं १५८४ द्विप्पणी २ ॥ ३ 'अर्थे' अर्थतो वादास्वात् सुत्रतोऽपि 'निश्चि को० ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्पास्य व्याख्या—नो करुपते निर्धन्यानां वा निर्धन्यीनां वा 'परिवा-सितस्य' रजन्यां स्यापितस्याहारस्य मध्यात् स्ववभगाणमात्रमपि भृतिप्रमाणमात्रमेपि विन्दुप्रमाण-मात्रमपि यावदाहारमाहर्तुम् । इह स्ववप्रमाणमात्रं नाम—तिरुद्धपत्रिभागमात्रम् तत्त्वाशनस्य घटते, मृतिप्रमाणमात्रं सक्तुकादीनां नेयम् , बिन्दुप्रमाणमात्रं पानकस्य । इदमेवापवदेति—आगाढेभ्यो 5 रोगा-ऽऽतक्केभ्योऽन्यत्र न करुपते, तेषु पुनः करुपते इति सुत्रार्थः ॥ अथ निर्धुक्तिविस्तरः—

परिवासियआहारस्स मग्गणा आहारो को भवे अणाहारो।

आहारी एगंगिओ, चउन्विही जं वऽतीइ तिहं ॥ ५९९८ ॥

परिवासितस्याहारसः 'गागैणा' विचारणा कर्तव्या । तत्र शिष्यः प्राह—वर्य तावदेतदेव न जानीमः—को नामाहारः ! को वाऽनाहारः ! इति । सूरिराह—'एकाक्षिकः' शुद्ध एव यः 10 क्षुषां शमयति स आहारो मन्तव्य । स चाशनादिकश्चबुर्विषः, यद्वा तत्राहारेऽन्यव् ख्वणा-दिकं 'अतियाति' प्रविशति तदप्याहारो मन्तव्यः ॥ ५९९८ ॥

अथैकाङ्गिकं चतुर्विधमाहारं व्याचष्टे-

कूरो नासेइ छुद्दं, एँगंगी तक-उदग-मञ्जाई।

खाइमें फल-मंसाई, साइमें महु-फाणियाईणि ॥ ५९९९ ॥

अञ्चने क्रः 'एकाक्षिकः' शुद्ध एव क्षुषं नाशयति । पाने तकोदक-मचादिकामकाक्षिकमिष पुषं नाशयति आहारकार्यं च करोति । सादिमे फल्-मांसादिकं स्वादिमे मधु-फाणितादीनि केवलान्यप्याहारकार्यं कुर्वन्ति ॥ ५९९९ ॥ "वं वर्ऽहं तर्हिं" ति पदं व्याख्याति—

जं पुण खडापसमणे, असमत्थेगंगि होइ लोणाई।

तं पि य होताऽऽहारो, आहारजुयं व विजुतं वा ॥ ६००० ॥

 यत् पुनरेकाक्षिकं श्रिपामशमनेऽसमर्थ परमाहारे उपयुज्यते तद्य्याहारेण संयुक्तमसंयुक्तं बा लाहारो भवति । तच ठवणादिकम् । तत्राशने ठवण-हिङ्कु-जीरकादिकमुपयुज्यते ॥६०००॥

उदए कप्पूराई, फलि सुत्ताईणि सिंगबेर गुले।

न य ताणि खर्विति खुइं, उवगारित्ता उ आहारो ॥ ६००१ ॥

उदके कर्पूरादिकसुपयुज्यते, आमादिफ्लेषु सुरादीनि द्रव्याणि, 'शृक्षचेर च' शुण्ड्यां गुरू 25 उपयुज्यते । न नैतानि कर्पूरादीनि क्षुषां क्षपयन्ति, परसुपकारित्वादाहार उच्यते । शेषः सर्वोऽज्यनाहारः ॥ ६००१ ॥

> अहवा जं श्रुक्लत्तो, कहमउवमाह पक्लिवह कोहे। सन्वो सो आहारो, ओसहमाई पुणो भइतो॥ ६००२॥

अश्ववा बुगुक्षया आर्तः यत् कर्दमीपमया स्वादिकं कोष्ठे प्रक्षिपति । कर्दमीपमा नाम'अपि कर्दमिण्डानां, क्रयीत क्रीक्षं निरन्तरम्।''

जान कर्नापण्डामा, जुलात् जान नारन्तरम् । स सर्वोऽप्याहार उच्यते । औषधादिकं पुनः 'भक्तं' विकल्पितम् , किश्चिदाहारः किश्चिचा-

१ 'प्रापि तोयबिन्दु' कां॰ विना ॥ २ 'दति—आगाढा-ऽनागाढेक्यो रो' कां॰ ॥ ३ एगागी पाणगं तु मद्भाई ताभा॰ ॥ नाहार इत्यर्थः । तत्र शर्करादिकतीषधमाहारः, सर्पदष्टादेग्नेतिकादिकमीषधमनाहारः ॥६००२॥ जं वा श्रेकसत्तरस उ. संकसमाणस्स देड अस्सातं ।

ज वा सुक्खत्तस्य उ, सकसमाणस्य दह अस्यातः। सच्चो सो आहारो, अकामऽणिहं चऽणाहारो ॥ ६००३ ॥

यत् वा द्रव्यं बुशुक्षातंस्य 'सङ्कषतः' मसमानस्य कवरुपक्षेपं कुर्वेत इत्ययेः 'आखादं' रसनाहादकं खादं प्रयच्छति स सर्वे आहारः । यत् पुनः 'अकामप्' अभ्यवहरामीत्येवमन-5 भिरुषणीयम् 'अनिष्टं च' जिह्वाया अरुच्यम् ईदशं सर्वमनाहारो भण्यते ॥ ६००३ ॥

तचानाहारिममिदम्---

अणहारों मोय छल्ली, मूलं च फलं च होतऽणाहारो । सेस तय-भ्रह-तोयं विद्रम्मि व चउगुरू आणा ॥ ६००४ ॥

'मोकं' कायिकी 'छक्षी' निम्बादित्वम् 'मूकं च' प्रबस्कादिकं 'फर्कं च' आमळक-हरी-10 तक-विमीतकादिकम्, एतत् सर्वमनाहारो भवतीति चूर्णिः । निश्चीधचूर्णां चु—''या निम्बादीनी 'छक्षी' त्या एवा तेषासेव निम्बोठिकादिकं फर्कं यच तेषासेव स्कृत्, एवमादिकं सर्वमप्यनाहाराः' दिन व्याख्यातम् । ''सेसं'' ति 'शेषम्' आहारः । तत्याहारस्य परिवासितत्व्य यदि तिळतुषस्यमात्रमप्याहरति, सक्तुकादीनां ग्रुष्कचूर्णानामेकस्यामङ्कले यावती मूतिमात्रा कर्णात तावन्मात्रमप्याद अआति, तोयस्य-पानस्य विन्दुमात्रमपि यद्यापिवति तदा चतुर्गृक्, 10 आज्ञा च तीर्थकृतां कोषिता गर्वति ॥ ६००४ ॥ एते चापरे दोषाः—

मिच्छत्ता-ऽसंचइए, विराहणा सत्तु पाणजाईओ । सम्प्रुच्छणा य तक्कण, दवे य दोसा इमे होंति ॥ ६००५ ॥

अश्रांनीदि परिवासमानं दृष्टा श्रेक्षोऽन्यो वा मिध्यात्वं गच्छेत्, उङ्काहं वा कुर्योत्— अहो ! अभी असञ्चयिकाः । परिवासिते तु संयमा-ऽऽस्पविराधना भवैति । सकुकादिषु 20 धार्यमाणेषु उर्राणकादयः प्राणजातयः सम्मूच्छंनित, पूर्णकेकादिषु खळादिसम्मूच्छंना च भविते, उन्दरो वा तत्र 'तर्कणमः अमिलापं कुर्वत् पार्थतः परिभान् मार्जारादिना मस्यते, एवमादिका संयमविराधना । आस्पविराधना तु तत्राशनावौ ठाळाविषः सर्पो छाळां सुखेत्, त्वित्वेषो वा जिमन् निःश्वानेन विषीकुर्योत्, उन्दरो वा ठाळां सुखेत् । द्वे चाहिरे एते वश्यमणाणा दोषा भवित्त ॥ ६००५ ॥ अथ 'भिच्छत्तमसंचर्य'' ति पदं व्याख्याति—

सेह गिहिणा व दिट्ठे, मिच्छनं कहमसंचया समणा । संचयमिणं करेंती, अण्णत्य वि नृण एमेव ॥ ६००६ ॥ शैक्षेण ग्रहिणा वा केनापि तत्राशनादौ परिवासिते हप्टे मिथ्यासं भवेत — एवंविषं सम्रयं

१ सुजंतस्सा, संकममाण तामा ॥ २ मूळ कट्ट फळ तामा ॥ ३ °नां कडुकसूलाणां 'छही' कं ॥ ४ 'वित । अत एव प्रथमतो रजन्यामाद्दारः परिवासियतुमिष न कश्यते ॥ ६००४ ॥ यदि परिवासयति तत एते दोषाः — निच्छं कं ॥ ५ 'नादिकं रजन्यां परि' कं ॥ ६ परिवासयति तत एते दोषाः — निच्छं कं ॥ ॥ ५ 'नादिकं रजन्यां परि' कं ॥ ६ परिवासयति तत एते दोषाः निच्छं कं ॥ ॥ ९ 'हारे राज्ञे परिवास्याने परे कं । ॥

ये कुर्वन्ति कयं ते श्रमणा असखया अवन्ति ! । यथा ''सैवेसाद् रात्रिभोजनाद् विष्टमण्डः')' इत्यमित्रदं गृहीत्वा द्धम्यन्ति तथा 'तून'सिति विवक्रयान्यदम्—'अन्यत्रापि' पाणिवशदावेव-मेव समापरन्ति ॥ ९००६ ॥ अध 'द्वेन दोषा असी भवन्ति' इति पदं व्याचष्टे—

निद्धे दवे पणीए, आवज्रण पाण तकणा झरणा ।

आहारें दिह दोसा, कप्पइ तम्हा अणाहारो ॥ ६००७ ॥

इह वस्यमाणे अभ्यक्षनसूत्रे भणितं यद् घृतादिकं तैल-वसावर्जितं अद्भवं भवति तदेव क्रिम्बसुच्यते । यत् तु सोवीरद्रवादिकं अलेपकृतं यच दुग्ध-तैल-वसा-द्रवचृतादिकं लेपकृतं तदमयमपि द्रविस्ट्रच्यते ॥ तथा चार्वे—

> सुत्तमणियं तु निद्धं, तं चिय अदबं सिया अतिस्न-वसं । सोवीरग-दद्धाई, दवं अलेवाड लेवाडं ॥ ६००८ ॥

च्यास्यातार्था ॥ ६००८ ॥ पणीतं नाम-गृहस्रेहं घृतपूरादिकं आर्द्रसायकम्, यद्वा बहिः स्रोहेन मक्षितं मण्डकादि अपरं वा स्रेहावगाढं कसणादि प्रणीतमृच्यते । तथा चाह---

> गृहसिषेहं उछं, तु खजर्ग मक्तियं व जं बाहिं। नेहागाढं क्रसणं, तु एवमाई पणीयं तु ॥ ६००९ ॥

15 गतार्था। ६००९ ॥

प्वंविषे क्षिग्धे द्ववे प्रणीते च रात्री स्थापिते कीटिकादयः प्राणजातीया आपद्यन्ते, पतन्तीत्वर्थः, तत्र गृहकोलिकादितर्कणपरम्परा वक्तव्या । "झरणा य" वि स्यन्दमाने आजनेऽअस्ताव् प्राणजातीयाः सम्पतन्ति । परः प्राह—नन्वेते दोषा आहारे दृष्टास्त्रसादनाहारः परिवासयितुं कल्पते ॥ ६००७ ॥ सूरिराह—

अणहारो वि न कप्पह, दोसा ते चेव जे भणिय पुर्वित । तहिवसं जयणाए, बिड्चं आगाढ संविग्गे ।। ६०१० ।।

र्जनाहारोऽपि न करूपते स्वापयितुष् यदि स्वापयित ततश्चतुर्छतु, 'त एव वं' विराधनादयो दोषा ये 'पूर्वम्' आहारे भणिताः, तस्मादनाहारमपि न स्वापयेत् । यदी प्रयोजनं तदा तद्विवर्षं विभीतक-द्दरीतकादिकं मार्थते । अथ न उम्यते, दिने दिने मार्गयन्तो वा गाँहीताद्वातो यत-४०नया यथा अगीतायो न परयन्ति तथा द्वितीयपदमाश्रित्यागाढे कारणे संविम्रो गीतार्थः स्वापयित, घनचिरिण चर्मणा वा दर्दरयति, पार्थतः क्षारणावगुण्डयति, उभयकाङं प्रमाज-यति ॥ ६०१०॥

जह कारणें अणहारी, उ कप्पई तह भवेज इयरो वी । वीच्छिण्णम्मि मर्जने, बिह्नयं अद्धाणमाईसु ।। ६०११ ॥ ३० सम्रा कारणेऽनाहारः स्थापविद्धं कस्पते तथा 'इतरोऽपि' आहारोऽपि कारणे कस्पते

१ ''छडे अंते! वए व्यक्षिणे मि सन्बाओं राहभोयणाओं वेरमणं'' इति हि पाक्षिकसञ्जयनम् ॥

र "ह बृह्यङ्गान्यकर् — हार्च कंश्वा राह्मायणाओ वरमण" हाते हि पाक्किस्यूत्रवचनम् ॥ २ "ह बृह्यङ्गान्यकर् — हार्च कंश्वा १ का.माझिकादयः संग ॥ ४ न केयवस्माहारः स्त्रा कंश्या ५ व्ह संयमा-5ऽस्मविरा° कंश्या ६ "दा ग्लानादिमयो" कंश्या

स्वापितुत् । कथम् ! इत्याह—व्यवच्छिने मडन्ने कारणे स्विताः सन्तो द्वितीयपदं सेक्ते । तथाहि—तत्र पिप्पस्यादिकं दुर्कभव् मत्यासमं प्रामादिकं च तत्र नास्ति ततः परिवासयेदपि । यथा कारणे पिप्पस्यादिकं स्वापयन्ति तथा द्वितीयपदेऽशनाधाप स्वापयेत् । ''अद्वाणमादीयु'' वि अध्यपपन्नाः सन्तोऽध्वकरणं स्वापयेयुः, आदिशब्दात् प्रतिपन्नोचमार्थस्य स्कानस्य वा योग्यं पानकादिकं स्वापयेत् ॥ ६०११॥ व्यवच्छिन्नमडम्बपदं व्यास्याति—

बुच्छिण्णम्मि मडंबे, सहसरुगुप्पायउवसमनिमित्तं । दिद्वत्थाई तं चिया गिण्हंती तिविह मेसऊं ॥ ६०१२ ॥

व्यवस्थिते महत्त्वे वर्तमानानां सहसा शुरू विश्वविद्यास्त्री कार्युत्यक्षेत तस्त्रोपश्चम-निमित्तं दृष्टार्थाः —गीतार्था आदिशक्यात् संविद्योदिगुणयुक्तास्त्रेऽनगतसेव तदेव द्रव्यं गृह्वन्ति येनोपशमो भवति । तच्च भैषजद्रव्यं 'त्रिविषम्' वात-पिच-क्रेप्समैषजमेदात् त्रिप्रकारं 10 ज्ञेयम् ॥ ६०१२ ॥

सूत्रम्—

नो कप्पद्द निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासि-एणं आलेवणजाएणं आलिंपिचए वा विलिंपिचए वा, नम्नस्य आगाँढोहीं रोगायंकेहिं ३९॥

एवं म्रक्षणसूत्रमप्युचारणीयम् । अस्यं सम्बन्धमाह---जह भ्रतं पश्चिमिद्धोः परिवासे मा ह को

जह श्रुतुं पडिसिद्धो, परिवासे मा हु को वि मक्सहा। बुत्तो वा पक्सेवे, आहारों इमं तु लेवस्मि ॥ ६०१३॥

यदि परिवासित आहारो भोक्तुं प्रतिषिद्धस्तरः मा कश्चिद् मक्षणार्थं परिवासवेदिति मस्तु-तस्त्रमारम्यते । यद्ग पूर्वसूत्रे ''पक्सेव'' ति मुसप्रश्लेपणद्वारेणाहार उक्तः, हेंदं तु सूत्रमाले-20 पविषयं मोच्यते ॥ ६०१३ ॥

> अध्भितरमालेबी, बुत्ती सुत्तं इमं तु बज्झम्मि । अहवा सी पक्खेबी, लीमाहारे इमं सुत्तं ॥ ६०१४ ॥

अथवा आभ्यन्तरः 'आलेपः' आहारलक्षणः पूर्वसूत्रे उक्तः, इदं तु सूत्रं बाह्यालेपविषयपु-च्यते । अथवा 'सः' पूर्वसूत्रोकः मक्षेपाहारः, इदं तु सूत्रं लोगाहारविषयमारम्यते ॥६०९५॥ 2० एभिः सम्बन्धरायातस्यास्य व्याख्या—नो करपते निर्मत्यानां वा निर्मत्यीनां वा परिवा-सितेनालेयनजातेन 'आलेपयितं वा' ईपक्षेपर्यितं 'विलेपयितं वा' विद्रोषेण लेपयितवः, नाम्य-

१ °कमधेत्तीययोजनानन्तरे तत्र कां । ॥ २ °इता मियक्रमेताविगुण कां । ॥ ३ °गाडा-ऽणागाविद्धिं कां । एतावावावायोग कां २ तेक, रसतां दिणणी ६ ॥ ४ 'स स्वत्रवस्य सम्ब कां ॥ ५ वहं त्वराक्षेप' कां ॥ ६ 'तुं व्रणादिकमित गम्यते, विकेषित्रे तां विशेषेण केप्यितुम्, नाव्यवायादा-ऽनागाविम्यो रोगा-ऽऽतक्केम्य इति स्वार्थः ॥ सय भाष्य-कारक्षाक्रना-स्वयवस्थानकक्षणं व्याक्याद्वरं वर्षेपनाह—मन्त्रभे कां ॥

त्रागहिस्यो समासद्देश्य इति सत्रार्थः ॥ अय मार्थम---

मक्सेजर्ण लिप्पड, एस कमो होति वंगतिगिच्छाएँ । जड ते ण तं पमाणं, मा क्रणं किरियं सरीरस्स ॥ ६०१५ ॥

करः प्राहं — मनु वणचिकित्सायां पूर्वं वर्णा व्रक्षित्वा ततः विण्डीपदानेन आलिष्यते, एवं 5 कमः, ततः प्रथमं प्रथ्नणञ्जञ्जलया पश्चादालेपनसूर्वं भणितुसुचितमित भावः । यदि चैतत् 'ते' नव न प्रमाणं ततो मा शरीरस्य कियो कार्षीरिति ॥ ६०१५ ॥ सरिराहः—

> आलेवमेण परणह, जो उ वणी मन्स्वमेण किं तत्थ । होहिङ वणो व मा में, आलेवो दिर्जाई समर्ण ॥ ६०१६ ॥

हात्वर प्रणाप नाग न, जात्या (पुरार तागणा। ४०६४।।
तामंनेकान्तः यद् जवस्यं त्रणे प्रक्षणमालेयनं च द्वयमि भवति, किन्तु कुत्र विदेकतर्रै
16 कुत्राऽप्युमर्यम्, ततौ यः किल त्रण आलेपेन प्रगुणीनवति तत्र किं प्रवणेन कार्यम् !
किंखिदित्ययः। यद्वा मा मे त्रणो भविष्यति हति कृत्वा प्रथममेवालेयः 'शमनम्' औषमं
वीयते॥ ६०१६॥ किश्च—

अचाउरे उ कजे, करिति जहलाभ कत्थ परिवाडी । अखाउठिव संतविमवे, जुजह न उ सन्वजाईस ॥ ६०१७ ॥

७ 'अल्यादुरे' आगार्दे कार्ये यथालामं आलेपो ब्रक्षणं वा यः प्रथमं लम्यते तेनैव चिकित्सां कुर्दीन्ते । कुत्र नाम 'परिपाटिः' कमी विधते ? । इत्मैव व्यनक्ति — यः 'सद्विभवः' विध-मानविभृतिस्तत्र चिकित्साशास्त्रमणिता परिपाटिः 'युज्यते' चिकित्साशास्त्रमणिता परिपाटिः 'युज्यते' घटते, न पुनः सर्वजातिषु, अतः किमत्र कमनिरीक्षणेन ? इति ॥ ६०१७ ॥

सुत्तम्मि कद्वियम्मि, आलेव ठविति चउलहू होति।

श्राणाइणो च दोसा, विराहणा इमेहिँ ठाणेहिं ॥ ६०१८ ॥ स्त्रार्थकमनेन स्त्रे आकृष्टे सति निर्युक्तिविस्तर उच्यते—यदि आलेप रात्रो स्वापयित तदा चत्रुरुष, आज्ञादयश्च दोषाः, विराधना चार्मीभः स्वानैभवति ॥ ६०१८ ॥

निद्धे दवे पणीय, आवजण पाण तकणा झरणा । आर्यक विवचासे, सेसे लहुगा य गुरुगा य ॥ ६०१९ ॥

१६ "बिरंचे द्रवे प्रणीते आलेपे खाषिते माणिनामायतनं तर्कणं 'क्षरणं च' तस्य द्रवादेः सन्दर्न मंबित । अत्र दोषमावना प्राम्वत् । 'आतक्क च' रोगे विपयीसेन क्रियाकरणे वक्ष्यमाणं क्रायं-बिचर्षम् । ''रोसि'' वि आगाडा-ऽनागाडकारणमन्तरेण मदि परिवासयित ततः प्राशुकादौ खाचमाने क्युर्केष्ठ, अप्राशुकादौ च्युर्गेरु ॥ ६०१९ ॥ इदमेव व्याच्छे---

र 'निस आयुर्वेदविदः । कुत्र को ० ॥ २ प्रदर्शितायाक्षेप-परिहारी आध्यकृता । सम्प्रिति विश्वेदरः इत्यकृतणं को ० ॥ ३ तान्येव दर्शयति इत्यक्तणं को ० ॥ ४ क्षित्रकं द्वार्वे व्यक्तिकं च त्रयक्षयत्वस्तरः स्वेदे व्यक्त्यातम् । प्रविवेदे त्रिविधेऽपि जालेपे स्वाचित्ते 'अधिकां प्रविक्तां त्राप्ति अस्तिकं स्वाचित्ते 'अस्तिकं प्रविक्तां प्रविक्तां त्राप्ति जनिकंतिः च व्यक्तिकंतिकारीनां तात् प्रति जनिकंतिः 'अस्तिकंति स्वाचित्ते प्रविक्तां तात् प्रति जनिकंतिः 'अस्ति विविद्यां तात् प्रति जनिकंतिः 'अस्ति विविद्यां तात् प्रति जनिकंतिः ।।

ति किम संचमदोसा, तमाविसे कारु विकास विक्रमं दा। अंबीभूयं विरुप, उन्हामणुज्यंति जे दोसा ॥ ६०२० ॥

त प्त सम्बयादयो दोषां मन्तव्याः, स्विवः सर्पः स्ट्रान्त, ठाळावियो वा विह्वया लेहवं कुर्यात्, ब्रितीये च दिनेऽम्डीमृतं तदुण्डयते, अनुष्टातो वा ये दोषास्तान् प्रामोति॥६०२०॥ यत एते दोषास्ततः—

> दिवसे दिवसे गहणं, पिट्टमपिट्टे य होह जयणाए । आगाढे निक्लवणं, अपिट्ट पिट्टे य जयणाए ॥ ६०२१ ॥

यदा म्हानार्थमारूपेन प्रयोजनं भवति तदा दिवसे दिवसे प्रहणं विधेयम् । तत्र प्रथमं पिष्टस्य पश्चादिषिष्टस्यापि यतन्या प्रहणं कर्तन्यं भवति । आगाढे व म्हानस्ये आक्रेपस्य निवेषयं परिवासनम् पि कुर्यात्, तदस्यपिष्टस्य पिष्टस्य वा यतन्त्या कर्तन्यन् ॥ ६०२१ ॥ 10 कथातह्यस्वस्यासं व्यास्याति —

आगार्हे अणागार्ह, अमगार्ह ना वि कुणह आगार्ह ।

एवं तु विवसासं, कुणइ व वाए कर्कातिभिच्छं ॥ ६०२२ ॥ आगाढे म्लानतेऽनागाढां कियां करोति चतुर्गुर । अनागाढे वा आगाडां करोति चतुर्कुतु । यद्वा वाते चिकित्सानीये कफचिकित्सां करोति, ⊲ उँगळशणभिवम् , तेन कफे चिकित्सानीये 15 वातं चिकित्साने इत्याविष द्रष्टव्यम् । ⊳ एव विषयीसो मनतस्य ॥ ६०२२ ॥

अध "सेसे लहुगा य गुरुगा य" (गा० ६०१९) ति पदं ज्याच्छे-

अगिलाणो खलु सेसो, दन्नाईतिनिहआनहज्जहो वा । पच्छिने मग्गणया, परिनासिनस्मिमा तस्त ॥ ६०२३ ॥

'शेषो नाम' य आगाडोऽनागाडो वा रुजानो न भवति, यो वा त्रस्य-सेष-कास्वपञ्चेत्रत् विवि-20 धया आपर्दो 'जदः' सुक्तः स रोष उच्यते । तस्य परिवासयत इयं प्रावक्षित्वमार्गणा॥६०२३॥

कासुगमकासुमे वा, अन्तिक चित्ते पश्चिऽप्रति वा ।

असियेह सियेहराए, अणहाराऽऽहार लहु-मुहगा ॥ ६०२४ ॥ अन्तुकं स्थापयति चतुर्केषु, अपाशुकं स्थापयति चतुर्गेह । अविवे स्थापयामे चतुर्केषु, सन्धिये चतुर्गेह । परीचे चतुर्केषु, अकारो चतुर्गेह । अवेहे चतुर्केषु, 'सेहमते' सेहारामदे 25 चतुर्गेह । अनाहारे चतुर्केषु, आहारे चतुर्गेह ॥ ६०२४ ॥

सूत्रम्--

नो कप्पइ तिग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासि-एजं तिक्षेण वा घष्टण वा नवणीएण वा स्थाप वा

रे जा: प्रवेषुयोक्तः सन्त्रवाः। तथा त्यन्वियः सर्थः स्पूर्धेत् । "स्पूतः कार्यः संघ फीक्तक्षिणेक्वरः" एतादि (निवादे० ८४-१८२) वणसार् स्पूतः। क्षेत्रकः। सन्तर्भः संकः ॥ २ से संग्रासः ५८८सक्षियाध्यासास्त्रत्या त्रीयः चंः॥ २ ४ ४ १५ प्रतिकात्योतः प्रकः संः पत्र गतेते॥ ४ शा प्रकः स्पूत्रकः। तस्य वास्त्रातस्य निविधायमुक्तस्य क्रु अस्ते स्त्रीः संकः।

गायं अडमंगित्तए वा मक्खित्तए वाः, नम्नत्थ आगा-ढेहिं रोगायंकेहिं ४०॥

अस्य सम्बन्धमाह—

ससिणेही असिणेही. दिखह मक्लित वा तर्ग देंति ।

सच्ची वा णालिप्पइ, दहती वा मक्खणे सूपा ॥ ६०२५ ॥

आंलेपः सम्बेटीऽस्रोहो वा दीयते, तती यथा स्रोहेन प्रस्त्यां कियते न वा तथाऽनेनाभिषीयते।
यद्धा वर्ण प्रक्षित्वा 'तक्तप् ' अनन्तरस्त्रजोक्तमालेपं प्रयच्छन्ति । न वा सर्वोऽपि वण आलेप्यते ।
द्विधा वा प्रस्त्यो स्त्रता, व्योऽपि प्रस्त्यते आलेपोऽपि प्रस्तिद्धां दीयत इति भावः ॥६०२५॥
अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—नो करुपते परिवासितेन तैलेन वा छतेन वा
10नवनीतेन वा वसया वा गात्रम् 'अभ्यक्तिद्धं वा' बहुकेन तैलादिना 'प्रक्षिद्धं वा' सर्ह्येन
तैलादिना, नान्येत्र गाद्धागादेभ्यो रोगातक्क्षेत्र्यः, तात् गुक्तवा न करुपते । दोषाक्षात्र त एव
सम्बन्धाय्यो मन्तव्याः ॥ लाह—यथेवं परिवासितेन न करुपते असिद्धं ततस्तिद्विसानीतेन
करिपन्यते ! स्तिराह—

तदिवसमक्खणम्मि, लहुओ मासो उ होइ बोधव्वो ।

आणाइणो विराहण, पुलि सरक्खे य तसपाणा ॥ ६०२६ ॥

तिह्वसानीतेनामि यदि अक्षयति तदा लघुमासः आज्ञादयश्च दोषाः, विराजना च संय-मस्य भवति । तथाहि—अक्षिते गात्रे धूलिर्लगति, 'सरजरको वा' सचितरजोरूपो वातेनोद्धतो लगति, तेन चीवराणि मलिनीक्रियन्ते, तेषां धावने संयमविराधना, श्रेहगन्धेन वा त्रसमाणिनो लगन्ति तेषां विराधना भवेत् ॥ ६०२६ ॥

20 धुवणा-ऽधुवणे दोसा, निसिमत्तं उप्पिलावणं चेव ।

बउसत्त सम्रह तलिया. उञ्बद्धणमाह पलिमंथी ॥ ६०२७ ॥

खेहेन मिलनीकृतानां चीबराणां गात्राणां वा धावना-ऽधावनयोरुमयोरिप दोषाः, तथाहि— यँदि न षाव्यन्ते तदा निशियक्तम्, अध धाव्यन्ते ततः प्राणिनामुद्धावना मवेत् , उपकरण-शरीरयोर्षकृश्यतं च भवति । ''समुह्'' ित स पव हेवाको लगति । प्रक्षिते च गात्रे पादयोमी 26 मृत्री लगिष्यतीति कृत्वा तलिकाः पिनष्यति, तत्र गर्वे निर्मार्दवतिस्वादयो (गा० २८५६) वोषाः । यावच्च गात्रस्वोद्धर्तनादिकं करोति तावत् सुत्रार्थपरिमन्यो भवति ॥ ६०२७॥

१ आगाढाणागाहै जं ।। २ व्रणस्मालेपः सम्बेदोऽक्षेद्रो वा दीयते । तत्र यथाऽन्नेद्रो दातव्यस्त्रधा पूर्वसूत्रे उक्तम् । सम्बेदे त्यालेपे दातव्ये यथा क्रेहेन झक्षणं क्रियते न वा तयाऽनेन सूत्रेण विचिर्दाभीयते । यहा वणं प्रक्षित्वा 'तकस्' अनन्तरस्त्रोक्तेसालेपं भ्रयस्कृतिन, अतोऽपि क्रकणस्तुत्रमयस्यं वक्तव्यम् । न वा सर्वोऽपि व्रण सालेख्यते किन्तु

कोऽपि केवलं प्रक्ष्यत प्रवेति प्रक्षणस्त्रमारम्यते । द्विषा वा प्रक्षणे स्वा सं०॥ ३ °न्यत्रागादा-ऽनागादे° सं०॥ ४ यदि भगवत्प्रतिविद्यमिति कृत्वा धावतं न करोति सद्दा निकि॰ सं०॥

तिह्वसमक्त्रविण उ, दिद्वा दोसा जहा उ मिक्खा । अद्वाषोणुन्वाए, वाय अरुग कच्छ जयणाए ॥ ६०२८ ॥

तिह्वसमक्षणेन जनिता एते दोषा दृष्टाः । द्वितीयपदे यथा मक्षयेत् तथाऽभिषीयते— षण्यगमनेनातीव 'उद्वातः' परिश्रान्तः, वातेन वा कटी गृहीता, 'अरुः' वणं तद्वा घरीरे जातम्, 'कच्छः' पामा तथा वा कोऽपि गृहीतस्ततो यतनया मक्षयेदपि॥६०२८॥ तामेवाह— व

समाईकयकजो, धुविउं मक्खेउ अच्छए अंतो।

परिपीय गोमयाई, उन्बद्धण घोन्वणा जयणा ॥ ६०२९ ॥

संज्ञागमनम् आदिशब्दाद् भिक्षागमनादिकं च कार्ये कृतं येन स संज्ञादिकृतकार्यः, सर्वोणि बहिर्गमनकार्योण समाप्येखयः। स यावन्मात्रं गात्रं प्रश्नणीयं तावन्मात्रमेव धावित्वा प्रक्षास्य ततो प्रक्षयति । प्रक्षयित्वा च मित्रश्रयस्थान्तः तावदास्ते यावत् तेन गात्रेण सत् 10 तिकादिकं प्रक्षणं परिपीतं भवति । ततो गोमयादिना तस्योद्धतंनं कृत्या यत्तनया यथा प्राणिनां प्रायना न भवति तथा धावनं कार्यस् ॥ ६०२९ ॥

जह कारणें तिह्वसं, तु कप्पई तह भवेज इयरं पि । आयरियवाहि वसमेहि पुच्छिए विज संदेसी ॥ ६०३० ॥

यथा कारणे तिह्वसानीतं प्रक्षणं करूपते तथा 'इतरति' परिवासितं प्रक्षणं कारणे 16 करूपते । कथर १ इति चेद् अत आह — आचार्यस्य कोऽपि व्याधिरुरानः, तती वृष्मैर्भैवः पूर्वोक्तेन विधिना प्रदृष्टः तेन च प्रदेन 'सन्देशः' उपदेशो दत्तो अवेत्, यथा — शतपाका-दीनि तैब्यानि यदि अवन्ति ततिश्चिक्तसा कियते ॥ ६०२०॥ ततः किं कर्तव्यस् १ इत्याह —

सयपाग सहस्तं वा, सयसहस्तं व हंस-मरुतेछं।

> एयाणि मक्सणहा, पियणहा एव पतिदिणालंभे । पणहाणीए जहुरं, चडुगुरुपती अंदोसाओ ॥ ६०३२ ॥

'प्रतानि' शतपाकादीनि तैकानि ब्रक्षणार्थे पानार्थे वा प्रतिदिनं यदि न क्रम्यन्ते ततः पश्चकपरिहाण्या यतित्वा चतुर्युक्कं यदा प्राप्तो भवति तदा परिवासयकापि 'अदोपः' न प्राय- ३० स्थिचमाक् । सर्वयेवाकामे गुरूणां हेतोरासमाऽपि यतनया पचन्ति ॥ ६०३२ ॥

॥ परिवासितप्रकृतं समाप्तम् ॥

१ °म् । यया यतना मन्तव्या ॥६०२९॥ जहु कां॰ ॥ २ अदोसाय ताभा॰ । अदोसो उभा॰॥

न्य व हार प्रकृत स

सूत्रम्---

परिहारकष्पट्टिए भिक्स् बहिया थेराण वेयाविक-प्राए गच्छेना, से य आहम्म अइकमिजा, तं च थेरा जाणिजा अप्यमो आगमेणं अन्नेसिं वा अंतिए सुद्या, ततो पच्छा तस्त अहालहुत्सए नाम ववहारे पट्टिवेयव्वे सिया ४१॥

श्राम सम्बन्धमाह---

श्लिकारसप्रदिशेकी, अजयगकारी व कारणे साहू । अदुवा चिअचिकिचे, परिहार पाउषे जोगो ॥ ६०३३ ॥

निष्कारणे गात्रप्रक्षणादिकं प्रतिसेनित्तं सीत्रमस्थिति निष्कारणप्रतिसेनी सः, तथा कारणे वा यो 'अवतन्त्रकारी' पूर्वोक्त्यतनां विना गात्रप्रक्षणविधायी साधुः, अथवा यः 'त्यक्त क्ल्यं' नीकान्यूतोऽपि तदेव अञ्चणादिकसुगनीनित स परिहारतवः प्राप्तुवादिति 'योगः' सम्बन्धः ॥ ६०६२ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातसास व्याख्या—परिहारकल्यक्षितो भिश्चः 'बहिः' अन्यत्र नगरादी 'स्वित्राणाम्' आवार्याणामदेरोन वैयाहत्यार्थं गच्छेत् । किन्नुकं भवित ?— अन्यस्मिन् गच्छे केषाधिदावार्याणां वादी नास्तिकादिक उपस्थितः, तेषां च नास्ति वादळिवसम्यत्रः, ततसे येग्रुस्त्रवार्याणां सापरिहारिकसेवामितिक सङ्घाटकं भेष्यतिन, स च सङ्घाटकं भूते—वादिनं कृत्रक्ष मुक्कळ्यत । एवमुके ते आवार्याः परिहारिकं परवादिनिम्द्रसमं मत्त्रत अपेषयिन । 20 तक्कात्रव्यक्षेत्रस्त्रे परिहारतयो बहुमान एव तत्र गच्छेत । इदं मत्त् प्रवचनस्य वैयावृत्यं सङ्घास्त्राप्तिम्द्रसम् परवादिनिम्द्रणम्, तत्त्रव्यव्ये गतः 'सः' परिहारिकः ''अव्याख्य ब्राख्यः स्वाक्षित्रः मतिकेवेत, 'तथ' प्रतिसेवनं 'स्वविदाः' सोखावार्यं ब्राख्यः 'अपाममेन' अवस्थाखितश्वानोनान्येषां वाऽन्तिके ख्रुला जानीयुः । 'ततः पश्चाद्' तस्यरिक् ज्ञानान्तर्त 'तसः' परिहारिकस्य 'असारुख्यक्षे नाम' स्रोकस्प्रयक्षित्रस्यो व्यवहारः प्रसापक्वानान्तर्त 'तसः' परिहारिकस्य 'असारुख्यको नाम' स्रोकस्प्रयक्षित्रस्यो व्यवहारः प्रसापक्वानित्तरं स्वार्थः ॥ अव भाष्यस्—

पिहारिको व पन्छे, आसम्बे गच्छ वाह्णा कर्त्र । आसम्बं वर्षि गममं, कारण पडिसेनला नाम ।। ६०३४ ॥

परिहारिकः कानि बच्छे निचतं, कविचासनेऽज्याच्छे नादिना कार्यस्टरसम्, ततः 'तत्र' गच्छे 'आगमनम्' अभ्यमच्छात् सङ्घाटक आगतः, तेन च 'वादी प्रेच्यतान्' ह्युके १९ कोरोक्का वृद्धिहारतपेवहुसावसेव तस तत्र यमनस्, इत गतेन तेन प्रवाही सम्बद्धास-

Ĥ

म**र्के निर्णिष्टमभ-**च्याकरणः इतः, ततः प्रवेचेतस्य महती प्रमावना समेजनि, तैन च विदेश कारणेऽमनि मतिसेवितामि मवेग्रः ॥ ६०२४ ॥

पाया व देंसी व सिया उ घीया, वा-बुद्धिहेर्तु व पणीयमर्त । तं वातिर्ग वा मह-सचहेर्द्ध, समाजयद्धा सिचये व सके ॥ दै०३५ ॥

पादो वा दन्ता वा प्रवचनजुगुस्तापरिहारार्थं भोताः 'खुः' भवेशुः । 'फुणीतमर्कं वा' ⁵ पृत-दुम्बादिकं ''वा-बुद्धिहेतुं व'' ति वाग्वेतोबुद्धिहेतां अ कुक्तं भवेत्, ''कृतिन वर्भते नेभा" हत्यादिवचनार्थे । 'बातिकं नाम' विकटं तह्य मतिहेताः सन्वहेतांवो सैवितं भवेत् । मतिनीम-परबाधुम्बस्तस्य सार्धनस्यापृवीपृर्वपृष्ठाहासम्बत्ते नातिहोत्तेः, सक्तं-अभूतं भृत्तारंभाषणे प्रवद्धमान आन्तर उत्साहिवहोत्तः । समाजयार्गे वा शुक्कं 'सिचंय' वक्षं प्रावृत्ते भवेते , ''विता क्षवता समा' इति वचनात् ॥ ६०२५॥

बेश पुण जार्णती, आगमओ अहव अन्मओं सुचा । परिसाए मज्झरिम, पहुबणा होइं पच्छित्ते ॥ ६०३६ं ॥

एवमादिकं तेन प्रतिसेवितं 'स्वविराः' सूरवः पुनरांगमतो जानीयुः, अथवा अन्यतः श्रुत्वा, ततकास्य मुद्रः समागतस्य पर्वनमध्ये प्राथिश्वतस्य प्रस्थापना कर्तव्या अविति ॥ ६०३६॥ इतमेव व्याचष्टे—

नव-दस-चउदस-ओही-मणनाणी केवली य आगंभिडी।

सो चेवऽण्णो उ भवे, तद्युच्चरो वा वि उवगो वा ॥ ६०१६ ॥ वे ख्विरा नवपूर्विणो दवपूर्विणश्चदुर्देशपूर्विणोऽविषश्चानिनो मनःपर्यायज्ञानिनः केवक्का-निनो वा ते 'आगम्य' अतिदायेन ज्ञात्वा प्रायक्षित्रं हाः। अन्यो नार्त्यः भेषित्रादिक-स्वमुखादाशेचनाद्वारेण श्वत्वा, यदा ये तत्व-परिदारिकस्वानुवर्गः—सहायाः प्रेषितात्वैः कवि- १० तस् । 'उवको नाम' अन्यः कोऽपि तियेगापतितो मिलितः, तेषां गच्छसस्को न मवतिविधाः, तेन वा कथितम्, यथा— एतेनागुकं गादधावनादिकं प्रतिसेवितम् ॥ ६०२७ ॥ तत्रः—

तेसिं पचयहेउं, जे पेसविया सुर्यं व तं जेहिं।

भयहेउ सेसगाण य, इमा उ आरोबणारयणा ॥ ६०३८ ॥ ये तेन साद्धे प्रेषिता वैर्बाऽप्रेष्टितिष प्रतिसेवनं श्रुतं 'तेषाम्' उनयेषामप्यपरिणामकानां ४० प्रत्ययहेतोः 'शेषाणां च' श्रतिपरिणामिकानां भयोत्पादनहेतोरियम् 'आरोषणारचना' व्यवहार-प्रस्वापमा सुरिभिः कर्तव्या ॥ ६०२८ ॥

गुरुओ गुरुअतराओं, अहागुरुओ य होइ वंबहारी । लहुओ लहुपतराओं, अहालह होइ ववहारी ॥ ६०३९ ॥ लहुतो लहुरतराओं, अहालहुती अ होइ वंबहारी । एतेसि पण्डिलं, बुल्डामि आहागुगुन्तीए ॥ ६०४० ॥ व्यवहारिकिसियः, तथाया—गुरुको लकुते लकुतका । तम यो गुरुकः स दिविद्यः.

25

वध्या—गुरुको गुरुतरको यथागुरुकथ । रुपुकोऽपि त्रिविघः, तद्यथा—रुपुरुक्तरो यथारुपुथ । रुपुलकोऽपि त्रिविधः, तद्यथा —रुपुलको रुपुलतरको यथारुपुलकथ । एतेशं
स्ववहाराणां 'यथानुपूर्यां' यथोक्तपरिगात्या प्रायक्षित्तं वस्यामि । किन्नुकं भवति !—एतेषु
स्ववहाराणां 'यथानुपूर्यां' यथोक्तपरिगात्या प्रायक्षित्तेषु समुप्रिक्ति । ६०३९ ॥ ६०४० ॥
रुप्याग्रिकातस्य करोति —

गुरुगो य होइ मासो, गुरुगतरागो भवे चउम्मासो ।

अहगुरुगो छम्मासो, गुरुगे पक्खिम्म पडिवत्ती ॥ ६०४१ ॥ गुरुको नाम न्यवहारः 'मासः' मासपरिमाणः, गुरुके न्यवहारे समापतिते मास एकः

गुरुको नाम व्यवहारः 'मासः' मासपरिमाणः, गुरुके व्यवहारे समापतिते मास एकः मायश्चित्तं वातव्य इति भावः । एवं गुरुतरको भवति 'चतुर्गोसः' चतुर्मासपरिमाणः । यथा-१० गुरुकः 'षण्मासः' षण्मासपरिमाणः । एषा 'गुरुकपक्षे' गुरुकव्यवहारे त्रिविषे यथाकमं प्राय-श्चित्तपतिः ॥ ६०४१ ॥ सम्प्रति लघुक-लघुस्तकव्यवहारविषयं प्रायश्चित्तपरिमाणमाह—

तीसा य पण्णवीसा, वीसा वि य होइ लहुयपक्खिमा । पन्नरस दस य पंच य, अहालहुसगिम्मि सुद्धो वा ॥ ६०४२ ॥

ल्युको व्यवहारिक्रियादिवसपरिमाणः, एवं ल्युतरकः पश्चिविवातिदिनमानः, यथाल्युको 15 विश्वतिदिनमानः, एषा ल्युकल्यवहारे त्रिविधे यथाक्रमं मायश्चित्वपतिपत्तिः। ल्युस्वको व्यवहारः पश्चदशदिवसमायश्चितपरिमाणः, एवं ल्युस्वतस्को दशदिवसमानः, यथाल्युस्वकः 'पञ्चदिव-सानि' पश्चदिवसमायश्चितपरिमाणः। यद्वा यथाल्युस्वके व्यवहारे 'शुद्धः' न प्रायश्चित्तमाक् ॥ ६०४२ ॥ अथ कं व्यवहारं केन तपसा पूरयति ! इति प्रतिपादनार्थमाह—

गुरुगं च अट्टमं खडु, गुरुगतरागं च होइ दसमं तु ।

अहगुरुग दुवालसमं, गुरुगे पक्खिम्म पडिवत्ती ॥ ६०४३ ॥

गुरुकं ब्यवहारं मासपरिमाणमध्मं कुर्वन् पूर्यति । किंगुक्तं भवति ?—गुरुकं व्यवहारं मासपरिमाणमध्मेन वहति । तथा गुरुकतरकं चतुर्मासपमाणं व्यवहारं दशमं कुर्वन् पूर्यति, दशमेन बहतीत्यर्थः । यथागुरुकं षण्मासप्रमाणं 'द्वादशं कुर्वन्' द्वादशेन वहन् पूर्यति । एषा 'गुरुक्पन्ने' गुरुव्यवहापुरणविषये तपःगतिपत्तिः ॥ ६०३३ ॥

छहं च चउत्थं ना, आयंनिल एगठाण पुरिनहुं।

निन्बीयं दायन्वं, अहालहुसगम्मि सुद्धो वा ॥ ६०४४ ॥

रुषुकं व्यवहारं त्रिंशिहनपरिमाणं षष्ठं कुनैन् प्रयति, लघुतरकं पश्चविंशतिदिसपरिमाणं व्यवहारं चतुर्यं कुनैन् प्रयति । एषा रुषुकंत्रिवेश्ववहारं चतुर्यं कुनैन् प्रयति । एषा रुषुकितिविध्यवहारपूरणे तपःप्रतिपितः । तथा रुषुकित्ववध्यवहारपूरणे तपःप्रतिपतिः । तथा रुषुकित्वध्यवहारं पश्चदशदिसपरिमाणमेक-20 स्वानकं कुनैन् पूरयति, रुषुक्षतरकं व्यवहारं दशदिसपरिमाणं पूर्वोर्दं कुनैन्, यथारुषुक्कत्व्यवहारं पश्चदिनप्रमाणं निर्वेकृतिकं कुनैन् पूरयति । एतेषु गुरुत्र।दिषु व्यवहारेप्वनैनैव क्रमेण तपो दातव्यम् । यदि वा यथारुषुक्के व्यवहारे प्रसापितव्ये स प्रतिपन्नपरिहारतपः-

१ एतर्नन्तरम् अन्धात्रम् - ७५०० इति कां ।।।

प्रायक्षित एवमेवालोचनापदानमात्रतः शुद्धः क्रियते, कारणे यतनया प्रतिसेवनात ॥६०४४॥ एवं प्रस्तारं रचयित्वा सरयो भणन्त---

> जं इत्थं तह रोयइ, इमे व गिण्हाहि अंतिमे पंच। हत्यं व भमाडेउं, जं अकमते तमं वहह ॥ ६०४५ ॥

यद 'अत्र' अमीषां प्रायश्चितानां मध्ये तव रोचते तद् गृहाण, अमुनि वाऽन्तिमानि पश्च-ऽ रात्रिन्दिवानि गृहाण । एवसुक्ते स यथालघुत्वकं प्रायश्चित्तं गृह्वाति । अथवा हस्तं भ्रामयित्वा यत् प्रायश्चित्तं गुरव आकामन्ति तकद् गृह्याति ॥ ६०४५ ॥ सूरवश्चेदं तं प्रति भणन्ति-

> उच्भावियं प्रवयणं. थोवं ते तेण मा पुणो कासि । अंडपरिणएस असं. बेड वहंती तमं एयं ॥ ६०४६ ॥

त्वया परवादिनं निगृह्णता प्रवचनसुद्धावितं तेन स्तोकं ते प्रायश्चित्तं दत्तम् , मा पुनर्भूयो-10 Sप्येवं कार्षीः । अथातिपरिणता अपरिणताश्च चिन्तयेयः-'एष तावद एतावन्मात्रेण मुक्तः' इति ततो यदि तस्य 'अन्यद्' अपरं प्राचीनं तपोऽपूर्णं तदा तदेव बहमानोऽतिपरिणामिका-दीनां परतो गरून भणति-एतत प्रायश्चितं यष्माभिर्दत्तं वहासीति ॥ ६०४६ ॥

॥ व्यवहारप्रकृतं समाप्तम् ॥

प्रलाक भक्त प्रकृत म

15

20

सत्रमु---

निग्गंथीए य गाहावडकुरुं पिंडवायपडियाए अणु-प्यविद्वाए अन्नयरे पुलागभत्ते पडिग्गाहिए सिया. सा य संथरिजा. कप्पइ से तहिवसं तेणेव भत्तद्वेणं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ दुर्च पि गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसित्तए: सा य नो संथरेजा. एवं से कप्पइ दुचं पि गाहावइकुलं पिंडवायपडि-याए पविसित्तए ४२॥

अस्य सम्बन्धमाह----

उत्तरियपचयद्वा, सुत्तमिणं मा हु हुज बहिभावी । जससारक्खणसभए, सत्तारंभी उ वहणीए ॥ ६०४७ ॥ 25

१ अपरिण्णयस्स असं तामा॰ । एतदनुसारेणैव चूर्णिः । दश्यतां टिप्पणी २ ॥ २ अधाति-परिणताश्चिन्त° मो॰ छे॰ । "जाते य अपरिणामया चितेजा-एस एतिहरूणं मुको" इत्यादि चार्णी । "अतिपरिणया वितेवा—एस एतिहर्ण मुक्को" इत्यादि विद्योचचार्गी ॥

केकोचरिकाणाम्—अपरिणामका-ऽतिपरिणामकानां प्रत्ययार्थं स्त्रैमिद्सनन्तरसुक्तम् , मा तेषां बहिर्मावो भवेदिति क्वत्या । अयं तु त्रतिनीविषयः प्रस्तुतस्त्रस्यारम्भः 'उमये' लोके कोकोच्ते च यशःसंस्क्षणार्थं कियते ॥ ६०२७ ॥

अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य व्याख्या—िनर्भन्य्या गृहपतिकुलं पिण्डपातमितज्ञयाऽनुपवि-5 ष्ट्या 'अन्यतरद्' धान्य-गन्ध-रसपुळाकानां वहा-विकट-दृष्धादिरूपाणाभेकतरं पुळाकभक्तं प्रतिगृहीतं स्यात् , सा च तेनेव युक्तनं 'संस्तरेत' दुर्भिक्षायमावाद् निवेहेत् , ततः कल्पते तस्यास्तिह्वसं तेनेव भक्तभंत्र 'पर्युषदुं' निर्वाहयितुष् । नी ''से'' तस्याः कल्पते द्वितीयमपि वारं गृहपतिकुलं पिण्डपातमितज्ञया प्रवेषुष् । अथ सा न संस्तरेत् ततः कल्पते तस्या वितीयमपि वारं गृहपतिकुलं पिण्डपातमितज्ञया प्रवेषुम् ।

10 अथ निर्यक्ति-भाष्यविस्तरः--

तिविहं होइ पुलागं, धण्णे गंधे य रसपुलाए यै। चउगुरुगाऽऽयरियाई, समणीणुहहरगगहणे ॥ ६०४८ ॥

त्रिवियं पुरुषंक भवति, तवथा— धान्यपुरुषंकं गन्यपुरुषंकं रसपुरुषंकं चेति । एतत् सूत्र-भाचार्यः प्रवर्तिन्या न कथयति चतुर्पुरु, आदिशन्दात् प्रवर्तिनी निर्मन्थानां न कथयति 10 चतुर्पुरु, निर्मन्थ्यो न प्रतिशृण्यन्ति मासरुषु । श्रमणीतामां कर्ज्वदरे-गुभिन्ने पुरुषंकं गृह्णतीनां चतुर्पुरु ॥ ६०४८ ॥ अय त्रीण्यपि धान्यपुरुषकादीनि व्याचप्टे—

निष्फावाई धन्ना, गंधे बाइग-पलंडु-लसुणाई।

खीरं तु रसपुलाओ, चिंचिणि-दक्खारसाईया ॥ ६०४९ ॥

निष्पाबा:-बहासदादीनि धान्यानि धान्यपुरुणकम् । तथा वाइगं-विकटं पर्छाण्डु-रुगुने 2)च-प्रतीते तदादीनि यान्युरकटगन्यानि द्रव्याणि तद् गन्यपुरुणकम् । यत् पुनः क्षीरं यो वा विश्विणिकाया:-अन्त्रिकाया रागे द्राक्षारसो वा आदिशब्दाद् अवरमापि यद् शुक्तमतिसारयति तत् सर्वमपि रसपुरुककम् ॥ ६०४९ ॥ अथ किमधैमेतानि पुरुषकान्युस्यन्ते ! दुर्लाह---

आहारिया असारा, करेंति वा संजमाउ णिस्सारं ।

निस्सारं व पवयणं, दहुं तस्सेविणि विति ॥ ६०५० ॥

इह पुळाकमसासमुख्यते, तत आहारितानि सन्ति वल्लादीनि यतोऽसाराणि ततः पुळाकानि मण्यन्ते । 'संयमाद्वा' संयममङ्कांकृत्व यतः क्षीरादीनि निःसारां साध्वां कुर्वन्ति ततस्तान्यिष पुळाकानि । प्रवचनं वा निःसारं यतः 'तत्सेविनी' तेषां विकटादीनां सेवनशीळां संयतीं हृष्टा जना बुवते ततस्तानि पुळाकानि उच्यन्ते ॥ ६०५० ॥ एषु दोषानाह—

आणाइणो य दोसा, विराहणा मञ्जगंध मय खिसा । निरोहेण व गेलण्णं, पढिगमणाईणि लजाए ॥ ६०५१ ॥

१ "उत्तरिय" ति पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् लोको का २ व्यम् 'इदम्' परिद्वारिकविषयमनन्तर' का ॥ ३ य । उद्दरे निग्गंधीण गेण्हणे चउगुरु आयरिय-मारी॥ तामा ॥ ॥ ४ व्याशक्वाह का ॥ एकां अयाणामि पुलाकानां महणे आज्ञादयो दोषाः, विराधना च संयमा-ऽऽस्मविषया मवति । तथा गम्पपुलाके पीते सति मयगन्धमाध्राय मदविहलां वा तां दृष्टा लोकः सिंसां कुयोत् । धान्यपुलाके पुनराहारिते वायुकायः प्रमूतो निर्गच्छति, ततो यदि भिक्षार्थं मविद्या तस्य निरोधं करोति तता स्वासंव भवेत् , अश्व वायुकायं करोति तत उङ्खाहो भवेत् , उङ्खाहिता च लज्जया प्रतिगमनादीनि कुयोत् । एवं रसपुलाकेऽपि श्रीरादौ पीते मिक्षां प्रविद्या यदि ⁵ संज्ञामागच्छन्ती निरुणदि ततो स्वानत्यम् , अथ न निरुणदि ततो स्वस्यजन्ती केनापि दृष्टा रुज्जया प्रतिगमनादीनि कुयोत् ॥ ६०५१ ॥ किश्च —

वसहीए वि गरहिया, किम्र इत्थी बहुजणस्मि सक्खीवा। लाहकं पिछणया. लजानासो पसंगो य ॥ ६०५२ ॥

'स्नी' निर्मरणी 'स्विना' नयमदयुक्ता बसताविष बसन्ती गहिंता कि पुनर्बेहुजने पर्यटन्ती ! 110 तथाहि—तां मदविहुळां आपतन्तीं मपतन्तीं आलमाळानि च प्रलगन्तीं हुण लोकः प्रवचनस्य ''काहुका'' ठाववं कुर्योत्—आहो ! मचवालपासण्डमिदमित्यादि । मदेन चाचेतना सक्नाता सती प्रार्थनीया सा भवति । तत उद्धामकादयस्तासाः 'मेरणां' मतिसेवना कुर्युः। मदवदोन च यदि तदिष प्रलग्न्या लक्जानाशो भवेत् । तत्र असिवनादाविष प्रसन्नः स्वत् ॥ ६० ५२ ॥

घुन्नइ गई सदिद्वी, जहा य रत्ता सि लोयण-कवोला । अरहइ एम पुताई, णिसेवई सज्झए गेहे ॥ ६०५३ ॥

तां तथामद्रभावितां दृष्ट्या द्रोको त्रृयात्—यथाऽस्या गतिः 'सदृष्टिः' दृष्टियुक्ता बूर्णते, यथा चास्या कोचन-कपोटा रक्ता दृश्यन्ते तथा नृतुमर्दत्येषा 'पुताकी' देशीवचनस्वाद् उद्धा-मिका ईदर्शी विडम्बनामनुभवितुम् या 'सध्वजगेहैं।नि' करूपपालगृहाणि निषेवते ॥६०५२॥ त्रिविपेऽपि पुलाके यथायोगमभी दोषाः—

छकायाण विराहण, वाउभय-निसम्मओ अवस्रो य । उज्ज्ञावणमुज्ज्ञंती, सह असह दवम्मि उड्डाहो ॥ ६०५४ ॥

मैद्विहला पण्णामिष कायानां विराधनां कुर्यात् । धान्यपुङ्गिकत शीरेण वा युक्तेन वायु-काय उमयं च-संज्ञा-काथिकीरूपं समागच्छेत् , ततो मिक्षां हिण्डमाना यदि तेषां निसर्गं करोति ततः प्रवचनस्थावणां भवेत् , परावग्रदे वा व्युत्स्पृष्टं पुरीषादिकमषमहस्वामिनस्तस्याः 25 पार्श्वात् उज्ज्ञापयन्ति स्वयमेव वा ते गृहस्था उज्ज्ञान्ति । "सह असह दविम उङ्काहु" चि असि द्ववं परं कलुषं स्तोकं वा नास्ति वा मूलत एव द्ववं तेत उमयथाऽपि प्रवचनस्योङ्काहो

र अत्र क्षीयो मत्त इति यदाय्येकार्यो दाध्दी तथाप्यत्र क्षीयराज्यो भावप्रधानतया मद्पर्यायः, ततोऽयमधैः—'क्षी' कं ।।। २ 'छा। रत्त ति एस सुत्ता, णिसेवई तामाः ॥ ३ 'द्वानि' ध्वतः—करपाळस्त सहितानि गृहा' को । ''वग्न्या काळिनेहा' इति चूर्णो विशेषचूर्णो न ॥ ४ गन्यपुळाके पीते सति भद्षिहळा सा निर्मे क्षी पण्णामिप कायानां विराधनां क्रुपोत् । यहादिकप्यान्यपुळाकेन क्षीरेण वा युक्तेन यथाक्रमं वायु' कं ० ॥ ५ तत एवं संद्वाच्युत्सर्गानस्तरं सति असति वा द्ववे उम' कं ० ॥

15

भवेत्॥ ६०५८ ॥

हिओ अह सक्खीवा, आसि ण्हं संखवाइभञ्जा वा ।

भग्गा व णाए सुविही, दुदिष्ठ कुलम्मि गरहा य ॥ ६०५५ ॥

'श्वः' करुये अन्यस्मिन् दिने, 'अय' इति उपदर्शने, इयं 'सक्षीवा' मद्यमदयुक्ता आसीत्। 5''ग्हुं'' इति वाक्यालक्कारे । एवं गन्धपुलाकं सुक्तवतीं संवतीं जना उपहसन्ति । वायुकाय-हाव्यं च श्रुत्वा ज्ञवीर्न्न — अही । इयं शक्क्वावक्त्यः मायी पूर्वमासीत्; यद्वा भमाऽनया इत्यं वायुकायेनाआन्ते प्रत्यन्या ''सुविद्दी'' अक्रणमण्डिपका एवं भयश्चयेषुः । ''दुिंदु कुल्डिम् गरिहा य' ित दुईष्टपमीणो जमी, कुल्युहं चैतािभरास्मीयं महिनीकृतम्, एवं गर्हा भविति । तत्था प्रतिगमनादयो दोषाः ॥ ६०५५॥ यत एवसतः—

> जिहें एरिसों आहारो, तिहें गमणे पुन्वविणया दोसा। गहणं च अणाभोए, ओमे तहकारणेण गया॥ ६०५६॥

यत्र विषये 'ईहशः' पुरुषक आहारो लम्यते तत्र निर्मन्यीभिर्नैव गन्तव्यम् । यदि गच्छन्ति तता त एव पूर्ववर्णिता दोषाः । अथावमा-ऽशिवादिभिः कारणैर्गता भवेयुः, तत्र चाना-भोगेन पुरुषकभक्तस्य महणं भवेत् ॥ ६०५६ ॥ ततः किम् १ इत्याह—

गहियमणामीएणं, वाइग वजं तु सेस वा शुंजे !

भिच्छप्पियं तु भ्रुतुं, जा गंधो ता न हिंडंती ॥ ६०५७ ॥

यदि अनामोगेन पुलाकं गृहीतं भगति तदा ''वाह्नां'' विकटं तद् वर्जयिता 'होवं 'वा' विमायमा सुक्रीरत् । किसुक्तं भगति ?—यदि तदपर्याप्तमन्यच भक्तं रूप्यते तदा न सुक्रते किन्तु तत् परिष्ठाप्यान्यद् भक्तं गृहितः, अथ पर्याप्तं तदा सुक्रते, सुक्तवा च तेनैव भक्तार्थेन १० पर्युवयन्तिः, विकटं तु प्रवर्धेव न भोक्तव्यम् । भिक्षप्रियं नाम-पराण्डु तत् पुनर्शुक्तवा यावत् तदीयो गन्य आगच्छिति तावद् न हिण्डन्ते ॥ ६०५७ ॥'

कारणगमणे वि तर्हि, पुन्त्रं घेत्र्ण पच्छ तं चेव । डिण्डण पिछण बिहए, ओमे तह पाहुणहुा वा ॥ ६०५८ ॥

र्जंबमादिकारणेर्गतानामपि मद्य-पलाण्डु-रुशुनात्येकान्तेन प्रतिपिद्धानि । अथ पूर्वमनामो-25 गादिना गृष्टीतं ततस्तद् गृष्टीत्वा पश्चान् तदेव अनुवा तेनैव भक्तार्थेन तदिवसमासते न भूयो भिक्षामटन्ते । द्वितीयपदे द्वितीयमपि वारं निक्षार्थे प्रविशेत् । 'अवमं' दुर्भिक्षं तत्र पर्याप्तं न रुम्यते प्राष्टुणिका वा संयत्यः समायातास्ततो भूयोऽपि मिक्षाष्टिण्डनं कुर्वाणानामियं यतना— "पिक्षण" पि धान्यपुरुकोके स्नाहारिते यदि वायुकाय आगच्छेत् तत्रैकं पुनः पार्थं प्रेयं वायु-

१ किञ्च रूक्तवरणं को॰ ॥ २ 'निन । धान्यपुटाकं च भुक्तवर्यास्तस्या वायु' को॰ ॥ ३ अया 'अयमे' दुर्भिन्ने "तदकारणेण' चि तयारुपेणान्यन वा अशिवादिना कारणेन शताकां ॥ ४ 'त्रोपं धान्यपुटाकादिकं 'वा' इति विभा' को॰ ॥ ५ इत्सेव सविशेषमाह रूप्तवरणं को॰ ॥ ६ 'तत्र' तादशेऽचमादिकारणेनेमने सञ्जातेऽपि मद्य-पछाण्डु-स्रुग्नना-दीनि गन्यपुटाकार्यकारनेन को॰ ॥

कार्यं निष्ठजन्ति । उपरुक्षणनिवस् , तेनै यदा संज्ञासम्भवस्तदा यदि अन्यासां संयतीनामासका वसतिस्तदा तत्र गन्तन्यस् । तदभावे भावितायाः श्राद्धिकायाः पुरोहडादौ न्युस्तर्जनीयस् ॥ ६०५८॥

एसेव गमो नियमा, तिविह पुलागम्मि होह समणाणं । नवरं पुण नाणत्तं, होह गिलाणस्स वहवाए ॥ ६०५९ ॥

एष एव 'गमः' प्रकारो नियमात् त्रिविधेऽपि पुळाके श्रमणानामपि भवति । नवरं पुनरत्र नानात्वम्—म्ळानस्य दुग्धादिकमानेतुं त्रिजिकायां साधवो गच्छेयुः, तत्र च गताः संस्तरन्त आस्मयोग्यं रसपुळाकं न गृह्वन्ति, अथ न संस्तरन्ति ततः श्लीरादिकं सुक्त्वा न भूगो मिक्षा-मटन्ति । कारणे तु भूयोऽप्यटन्तस्त्रथैव यतनां कुर्वन्ति ॥ ६०५९ ॥

॥ पुलाकभक्तप्रकृतं समाप्तम् ॥

10

॥ इति श्रीकल्पाध्ययनटीकायां पञ्चमोद्देशकः समाप्तः ॥

श्रीमब्िर्णिवचांसि तन्तव इह ज्ञेयास्त्रथा सद्धरो-रामायो नळकस्तुरी वुधजनोपास्युद्भवा चातुरी । ईत्येतैर्विततान साधकतमेः श्रीपश्चमोद्देशके, जाक्यापोहपटीयसीमहमिमामच्छिद्धटीकापटीस् ॥

15

१ 'न रसपुटाके युके सति यदा कं ।। २ वथ निर्मन्यानामसुमेव विधिमतिदि-शक्षाह स्ववतरणं को ।। ३ नानास्वं भवति—तेयां त्रिविधमपि पुटाकं मृहतां चतुर्लेषुकाः मायक्षित्रम्, निर्मन्यीनां तु चतुर्युकतमुक्तमिति विशेषः । तथा द्वितीयपदे ग्लानस्य कं ।। ४ हस्यते रोताऽत्र साधकतमैः श्रीपञ्चमोदेशके, जान्यापोहपदीयसी सन्पर-योरस्यंग् सीकापदी कं ।।।

डाम्धनास.	मुख्यम्.	धन्धनाम. सूत्राम्.
५८ महाबीरचरियम्	9- 0-0	x७३ करपस्त्रं किरणावस्त्रीटीकोपेतस् ०- ०-०
५९ केमुसीसज्ञानग्वं नाटकस् ६० प्रवृद्धरिष्णयाटकस् ६१ धर्मान्युत्यगाटकस् १२ पाकिसँग्वयगाटकस् १३ राकिसँग्वयगाटकस् १३ राकिसँग्वयगाटकस् १३ राकिसँग्वयगाटकस् १३ राकिसँग्वयगादकराणस् १३ राकिसँग्वयगादकराणस् १३ राकिसँग्वयगादकराणस् १३ पाकिसँग्वयगादकराणस् १३ पाकिसँग्वयगादकराणस्थान्यस्य वर्षुत्रग्वयगादकराणस्थान्यस्य वर्षुत्रग्वयगादकराणस्थान्यस्य वर्षुत्रग्वयगादकराणस्थानस्य १४ सहनिवासक्यानकः	0- ६-0 0- ५-0 0- ६-0 0- ६-0 0-10-0 स्-0-0 स्-0-0 स्-7 स्-0-0 स्-7 स्-7	४७३ कव्यसुषं किरणावडीटीकोचेत्य ७२ योगदर्वेनं सटीकं योगदिकित च सटीका १-८-० ३१ योगदर्वेनं सटीकं योगदिकित च सटीका १-८-० ३५ वेचन्त्रनरकेन्द्रप्रकाणं सटीकम् ७० १वेचन्त्रनरकेन्द्रप्रकाणं सटीकम् ७० सुस्त्रमुल्याविभित्रयुक्तकाः ०-११-० ३६ तेनमेयदुक्तकार्यं सटीकम् २० ८० अवक्रयविधिप्रकाणं सटीकम् २० ८० १ दृंद्रस्तिवश्चादिकां सटीकम् २० ८० १ दृंद्रस्तिवश्चादिकां सटीकम् २० ८० सुद्रविष्ववृद्धिविधिक्रमाः २-८-० ८० सदुवेदविष्वविद्यासमातः २-८-० ८१ सुर्वेदविष्वविद्यासमातः १-८-० ८१ मुर्वेदविष्वविद्यासमातः १-०००
प्रकरणं सटीकम् ६९ चेड्र्यनंदणमहाभासं छायाटिप्यः णीपुतम् ७० प्रसपद्गतिः	. ,	८७ दृश्करम्मूचं सरीकम् चतुर्थे विभागः ६– ८-० ८८ दृश्करम्मूजं सरीकम् पञ्चमो विभागः ५- ४-०

श्रीआत्मानन्द-जैनग्रन्थरत्नमालायां मुद्यमाणा ग्रन्थाः।

बृहत् कक्ष्पसूत्रं सटीकं पहो विभागः

धर्माम्युद्यमहाकाव्यम् (सङ्गपतिचरितम्)

श्रीआत्मानन्द्-जैनग्रन्थरत्रमालायां सुद्रयिष्यमाणा ग्रन्थाः। वसुदेवहिण्डी वृतीयो विभागः मरुयगिरिशन्दानुशासनस्

श्रीआत्मानन्द-जैनग्रन्थरत्नमालायामचाविध मुद्रितानां ग्रन्थानां सूची।

प्रम्थनाम.	मृत्यम्.	प्रन्थनाम.	मुखम्.
× १ समवसरणस्तवः सावचूरिकः	0- 9-0	×२८ सम्यक्तवकोसुदी	0-97-0
× २ श्रुह्णकमवाविल-		×२९ आन्तगुणविवरणम्	1- 0-0
प्रकरणम् सावच्रिकम्	0- 9-0	×३० धर्मरजयकरणं सटीकम्	0-17-0
× ३ लोकनालिद्वात्रिंशिका सटीका	o- १ -0	×३१ करूपसूत्रं सुबोधिकास्मय	Π
x ध्रयोनिस्तवः सावचृरिकः	0- 9-0	ब्या रूययोपेतम्	0- 0-0
x ५ काल्सप्ततिका-		×३२ उत्तराध्ययनसूत्रं सटीकम्	4- 0-0
प्रकरणम् सावचूरिकम्	o- 1-E	×३३ उपवेशसप्ततिका	0-93-0
x ६ देहस्थितिस्तवः सावचूरिकः	c- 4-0	×३४ कुमारपाछप्रवस्थः	3- 0-0
× ७ सिद्धरण्डिका सावचृरिका	0 - 9-0	×३५ आचारोपदेशः	o- 1-0
x ८ कायस्थितिस्तवः सटीकः	0-8-0	×३६ रोहिण्यशोकचन्द्रकथा	0- 7-0
× ९ भावप्रकरणं सटीकम्	0- 4-0	×३७ गुरुगुणषदत्रिंशन्षदत्रि-	
×१० नवतस्वप्रकरणं भाष्यटीकोपेतम्	0-35-0	शिकाकुलकं सटीकम्	0-10-0
×११ विचारपञ्चादिका सटीका	o- 4-0	×३८ ज्ञानसारः सटीकः	9-8-0
×१२ वन्धपदशिंशिका सदीका	0- 6-0	३९ समयसारप्रकरणं सटीकम्	0-10-0
×१३ परमाणुखण्डपदक्षिक्षिका		×४० सुकृतसागरमहाकाव्यम्	0-88-0
पुद्रलपहर्त्रिकाका निगोदषहर्त्रिकाच सटीका		×४१ धन्मिलकथा	0- 7-0
	0- X-0	४२ प्रतिमाशतकं छबुटीकायुतम्	0- 6-0
×१४ श्रावकवतमङ्ग-	3-0	×४३ अन्यकथानकश्	0- 2-0
प्रकरणम् सावचूरिकम् ×१५ देवचन्द्रनादिभाष्य-	0- 4-0	×४४ चतुर्विशतिजिनस्तुतिसंब्रहः	o- 6-0
त्रयं सावच्रिकम्		×४५ रीहिणेयकथानकम्	o- 2 -0
प्रव सावपूरकम् ×१६ सिद्धपञ्चाशिका सटीका	0- 3-0	×४६ छघुक्षेत्रसमासप्रकरणं सटीकम्	9- 0-0
१७ अक्षायउंछकुरुकं सावच्रिकम्	o- 2-0	×४७ बृहरसंप्रहणी सटीका	R- 6-0
१८ विचारसप्ततिका सावचूरिका	0- 3-0	🗙 ४८ आ द्विधिः सटीका	₹- ७-०
१९ अस्पबहुत्वविचारगर्भितं सहावीर		×४९ षड्दर्शनसमुख्यः सटीकः	3 - 0-0
स्तवनं महादण्डकस्तोत्रं प		×५० पञ्चसंप्रहपूर्वोर्द सटीकम्	3- 6-0
	o- 2-0	×५१ सुकृतसंकीर्तनम्	0- 4-0
सावचूरिकम् २० पञ्चसूत्रं सटीकम् २१ जम्बस्वामिचरित्रम	(o- 6-o	×५२ चरवारः प्राचीनाः	
१। जम्बूस्वामिचरित्रम्	0-8-0	कर्मभन्धाः सटीकाः	₹- ८ -०
१२ रक्षपालनुपकथानकम्	0- 4-0	×५३ सम्बोधसप्ततिका सटीका	e- 9-e
२३ सूक्तरबावली	0-8-0	×५३ कुवलयमालाकवा	9- 6-0
२४ मेघद्वसमस्यालेखः	0-8-0	५५ सामाचारीप्रकरणं आराधक-	
२५ चेतोतृतम्	0- 8-0	विराधकचतुर्भेङ्गी च सटीका	0- 6-0
×२६ पर्श्वेषणाष्टाहिकाब्याख्यानम्	o- Ę-o	५६ करुणावज्रायुधनाटकम्	0- 8-0
X२७ चम्पकमालाकथा	0- 8-0	×५७ कुमारपाकमहाकाव्यम्	0- 6-0
****		· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	0-0

वीर सेवा मन्दिर पुस्तकालय २२ अद्

शीपंक नृहत व्यक्त सूत्रत्र